वैष्णव तन्त्र

(सिद्धान्त और साधना)

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी

चौखम्भा ओरियन्टालिया
दिल्ली - 110007

॥ श्रीः ॥

चौखम्भा प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

३१

27325

वैष्णव तन्त्र

(सिद्धान्त और साधना)

व्याख्याता

डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली - 110 007 (भारत)

प्रकाशक :
चौखम्भा पब्लिशर्स
गोकुल भवन, के-37/109, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी-221001 (भारत)

शाखा :
चौखम्भा ओरियन्टालिया
पोस्ट बॉक्स नं. 2206
बंग्लो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर
(कमला नगर के पास)
दिल्ली-110007 (भारत)
फोन : 23851617, 23858790

© चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी

प्रथम संस्करण : 2013
मूल्य : ₹ 800

ISBN : 978-81-89469-53-5

मुद्रक : तरुण आफसेट प्रेस, नई दिल्ली-2

27325

विषयानुक्रमणिका

विषय—	पृष्ठ सं.
वक्तव्य	3-4
प्रस्तावना-	5-58
(क) सिद्धान्त पक्ष	4
प्रथम अध्याय—परमतत्त्व	6
द्वितीय अध्याय—शक्ति तत्त्व और उसका स्वरूप	60
तृतीय अध्याय—जीव तत्त्व	134
चतुर्थ अध्याय—जगत तत्त्व	158
पञ्चम अध्याय—सृष्टि-विज्ञान	172
(ख) साधना पक्ष	
षष्ठ अध्याय—मुक्ति और मुक्ति के साधन-मार्ग	210
सप्तम् अध्याय—वैष्णवागम का वर्ण-विज्ञान एवं मन्त्र तत्त्व	238
अष्टम् अध्याय—मान्त्री साधना और उसका रहस्य	268
नवम् अध्याय—साध्यतत्त्व और भक्ति मार्ग-साधना	301
दशम् अध्याय—पूजा तत्त्व, पूजाङ्ग एवं वैष्णवागम	329
एकादश अध्याय—दीक्षा, भाव तत्त्व एवं वैष्णवागम	356
द्वादश अध्याय—साधना एवं पूजा के अन्य अंग	377
त्रयोदश अध्याय—योग और योग-साधना	405
चतुर्दश अध्याय—बन्धन और मुक्ति	462
पञ्चदश अध्याय—एकविहंगमावलोकन	510

प्रथम अध्याय— 6-58

(1) परमतत्त्व—वैष्णवागम का 'साध्य' विष्णु ही वैष्णवदर्शन का परमतत्त्व है। वैष्णव तत्त्व—(शारदा तिलक)—सांख्य से उधार लिए गए तत्त्व-वासुदेव-विष्णुपुराण की दृष्टि—परम तत्त्व-राधा कृष्ण (2) राधा की महिमा—राधा शब्द का महत्त्व (3) वैष्णवागम में लक्ष्मीनारायण

(ब्रह्म) ही परम तत्त्व हैं (4) परम तत्त्व की एकात्मता, परमात्मा का प्रधान वैलक्षण्य (5) परमात्मा तत्त्व (6) वैष्णवागम के परमोपास्य (इष्टदेव) (7) वैष्णवागम में प्रतिपादित परात्पर ब्रह्म के नाम एवं विभिन्न स्वरूप (8) ज्ञान ही परब्रह्म है- ज्ञान विषयक अन्य दृष्टियाँ (9) भगवती लक्ष्मी, व्यूह एवं वासुदेव (10) परमात्मा-परमात्मा के लक्षण (11) पञ्चविध ब्रह्म (12) अध्वा-अध्वातीत, परं वासुदेव, व्यूह चतुष्टय (13) ब्रह्मत्रय, वासुदेव के चार व्यूह (14) परमशिव-काश्मीरीय शैव तांत्रिको की दृष्टि (15) 'विश्वमय' एवं 'विश्वोत्तीर्ण' तत्त्व, षाड्गुण्य (16) भगवती लक्ष्मी की विराट अहन्ता का स्वरूप, ज्ञानतत्त्व (17) षाड्गुण्य' लक्ष्मीजी का स्वरूप है, अद्वैत (18) अहंरूप वासुदेव, परमात्मा के साथ विश्व की एकता (19) 'एकोऽहं बहुस्याम्'- विश्वमय-विश्वातीत (20)षाड्गुण्य, अहिर्बुध्न्य संहिता की दृष्टि निर्गुण-सगुण की समस्या—षाड्गुण्य और भगवती लक्ष्मी, षाड्गुण्य और परमात्म चतुष्टय (21) ज्ञानतत्त्व-ज्ञान का लक्षण-षाडगुण्य-विग्रह, ज्ञान और ब्रह्म—'शक्ति'—शक्ति और ब्रह्म, वासुदेव (22) विष्णु और वासुदेव, बल, शक्ति एवं बल (23) वीर्य, तेज, (अहिर्बुध्न्य संहिता की दृष्टि) (24) षड्गुण्य एवं तेज—ऐश्वर्य-लक्ष्मी तंत्र की दृष्टि (25)'चतुर्व्यूह' एवं 'षाड्गुण्य', व्यूह संबंधी शंकराचार्य की दृष्टि, व्यूह और उनके कार्य (26) व्यूह और उसके कार्य, चतुरात्म्य वासुदेव (27) चातुरात्म्य-वासुदेव-प्रकृति-अर्चावतार (28) वैष्णव दर्शन में भगवान के पञ्च स्वरूप—अर्चामूर्ति के प्रकार, कृष्ण की सर्वोच्चता-विष्णुस्वरूप का चतुर्धाविभाजन-भगवान स्वयं जगत है, जगत का स्वरूप (29) भगवान विष्णु की सर्वरुपता (30) परमात्मा का स्वरूपपञ्चक, परमात्मा का विश्वमय स्वरूप—परमात्म-शक्ति (31) परमात्मा की शक्तियाँ, स्वातंत्र्य शक्ति, चित्शक्ति—अहन्ता—शक्ति का पररूप ज्ञान।

द्वितीय अध्याय 60-131

शक्ति तत्त्व और उसका स्वरूप

(1) शक्ति तत्त्व और उसका स्वरूप (2) शक्ति तत्त्व (3) अहन्ता शक्ति, औपनिषदिक दृष्टि, ब्रह्मवैवर्त पुराण की दृष्टि (4)जगज्जननी—शक्ति, पराप्रकृति, शक्ति-शक्तिमान, लक्ष्मी विभिन्न नाम (5) लक्ष्मी के रूप, भगवती और नारायण एवं षाड्गुण्य

(6) भगवती जगत की परात्पर माता, शक्ति का स्वरूप, कुलार्णव तंत्र की शक्ति विषयक दृष्टि, भगवती-नर-नारी दोनों (7) भगवती लक्ष्मी और 'पराहन्ता' 'नारायणी शक्ति' 'सिसृक्षा', 'निमेषोन्मेष'-सुषुप्सा, वैकुण्ठ, शक्ति के रूप (8) लक्ष्मी और 'चन्द्रिका', 'अस्मिता' (भगवान से) तादात्म्य (9) भगवती लक्ष्मी की अवस्थायें, भगवती के गुण एवं व्यूहावतार, लक्ष्मी की अवस्थायें—'शान्तावस्था' 'उदितावस्था', वासुदेव और लक्ष्मी—अवस्थायें, व्यूह और भगवती लक्ष्मी (10) ईश, ईशता, ईशितव्य तथा लक्ष्मी नारायण (11) शक्ति का वाक्तत्वावतार, पद्माचार्य की दृष्टि, प्रयोग दीपिकाकार का मत, लक्ष्मी तंत्र की दृष्टि, आत्मा की प्रथम शक्ति—'क्रियात्मिका शक्ति', शक्ति चतुष्टय स्वातंत्र्य शक्ति, भगवती लक्ष्मी के तीन रूप, भगवती का स्वातंत्र्य—स्वातंत्र्यवाद, स्वातंत्र्यवाद का अर्थ, शक्ति के कार्य, तिरोभाव शक्ति, 'अविद्या' तत्व, योग की दृष्टि, क्लेशो की आख्या, तिरोभावरूप अविद्या शक्ति, काल और काली, भगवती के पञ्चकर्म, अविद्या। 'तत्त्वसमाससूत्र' की दृष्टि—सांख्य तत्त्व कौमुदीकार की दृष्टि, कर्म और वासना, अविद्या के पञ्चपर्वों का जनम, सृष्टि शक्ति, सप्तशक्तियाँ, अनुग्रह शक्ति, अनुग्रह और शक्तिपात, कर्मसाम्य, शक्तिपात, कर्मसाम्य का प्रभाव, पञ्चमी शक्ति, शुद्धविद्या, अविद्या पञ्चपर्वा, अविद्या, नारायणाश्रिता शक्तियाँ, भगवती लक्ष्मी का आत्मविभाजनात्मक स्वरूपचतुष्टय, भगवती का 'मूर्तिचतुष्टयात्मक स्वरूप', 'पराहन्ता' लक्ष्मी का ध्यान, लक्ष्मी की सखियाँ, अनुचर चतुष्टय, 'कीर्ति' का स्वरूप, 'जया' 'माया' (लक्ष्मी की चार मूर्तियाँ), मायानुचर, सांकर्षणी अहन्ता, महालक्ष्मी—महामाया-महाविद्या, प्रसूति कोश-तृतीयोन्मेष, षाड्गुण्य, 'मन्त्र' 'मन्त्रेश्वर' न्यासादिक, अनिरुद्ध, अहन्ता और लक्ष्मी, लक्ष्मी का षट्कोशात्मक स्वरूप, षाड्गुण्य (लक्ष्मी का शरीर है), आत्मभित्ति, 'क्रिया' और 'मूर्ति', गुण, भगवती का मंत्रात्मक स्वरूप, वाक्चतुष्टय मंत्र का स्वरूप। भगवती का सोमात्मक स्वरूप, संकोच-विसर्ग, बिन्दु और विसर्ग, चन्द्रमा की 7 रश्मियाँ, समतुल्य दृष्टि, भगवती का वर्णात्मक स्वरूप, बोध, भगवती-निर्गुण-सगुण दोनों हैं, भगवती आधाराधेय एवं सर्वव्यापक दोनों हैं, वर्णमाला और लक्ष्मी, भगवती का शक्तिस्वरूप, इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्तियाँ एवं लक्ष्मी, शक्ति और शक्तिमान (एक तुलनात्मक विवरण)

तृतीय अध्याय 134-156
जीव तत्त्व

(1) जीव तत्त्व—पुरुषरूप जीव, मल एवं बन्धन, कर्म और कर्म-विपाक, पञ्चपर्वा क्लेश, मल (2) मलत्रय और जीव, मल के भेद, समावेश (3) जीवों के प्रकार, जीव तत्त्व, जीव है क्या?—जी की चार अवस्थायें—जीव-अंशांशिवाद (4) 'चित्शक्ति' का स्वरूप, लक्ष्मी और जीव, पञ्चक्लेश, 'जीव तत्त्व' है क्या? 'अविद्या', जीव का क्रिया-कलाप (5)जीव की मुख्य अवस्थायें, भगवती और चित् शक्ति, जीव और पञ्चकृत्य, त्रिकदर्शन (6) परमात्मा की शक्तियां—'क्रिया शक्ति', जीव की अवस्थायें, जीव का चिन्मय स्वरूप (7) जीव की चार दशायें—(लक्ष्मी तंत्र के आलोक में) जीव की त्रिरूपात्मक दशा।

चतुर्थ अध्याय 158-170
जगत् तत्त्व

(1)जगद्योनि 'शक्ति', वैष्णवागम की अद्वैत दृष्टि, जगत्तत्व, भगवती रूपमिति पर निर्मित, जगद्रूप चित्र, 'जगत'-लक्ष्मी के रूपान्तर के रूप में 'जगत'-शक्ति का आत्मसंकोच-जगत और वासुदेव-परमात्मा जगन्मय है (2) जगत्-लक्ष्मी का आत्म संकोचात्मक स्वरूप है, शक्ति का कुण्डलित रूप कुण्डलिनी ही जगत है (3) वाग्भवबीज (ऐं) जगत, 'ऐं' से ही जगत की उत्पत्ति होती है, भगवान विष्णु स्वयमेव जगद्रूप हैं—जगत परमात्मा का स्थूल स्वरूप है-लीलावाद। (4) अहिर्बुध्न्य संहिताकार की दृष्टि, लीलारस (5) पदार्थ क्या है? पदार्थ और उसकी शक्ति-जगत, ऋषि शाण्डिल्य की दृष्टि, जीव और परमात्मा, 'विष्णु पुराण' की दृष्टि—जगत की नित्यता का प्रतिपादन, जगत- भगवान के आयुध एवं आभूषण के रूप में विष्णुपुराणकार की दृष्टि, 'लक्ष्मी तन्त्र' में जगत् विषयक दृष्टि ज्ञान-बल एवं संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध, 'आद्यवासुदेव' 'व्यूहवासुदेव' तत्त्व और वैष्णवागम का मत, तेज, विश्राम, प्रकृति का यथार्थ स्वरूप, व्यूहों द्वारा आत्मविभाजन, प्रकृति का स्वभाव—पदार्थ, सृष्टि तत्त्व-शुद्ध सृष्टि-शुद्धेतर सृष्टि-शुद्धसर्ग, प्राधानिक सर्ग, ब्रह्म सर्ग, व्यूह, विभव, अर्चावतार, अन्तर्यामी अवतार-शक्ति

शक्तिमान में संबंध-लक्ष्मी और सृष्टि, लक्ष्मी-क्रियाशक्ति-भूतिशक्ति, सृष्टि का आरम्भ कैसे? 'चतुर्व्यूह सिद्धांत– शांकरमत– शुद्ध-प्राधानिक-ब्राह्म सर्ग, विश्व की सृष्टि, वासुदेव में षड्गुणों का उन्मेष (षड्गुणोन्मेष), वासुदेव में षड्गुणों का उन्मेष (षड्गुणोन्मेष), वासुदेव () सृष्टि-क्रम, अंशांशिवाद और वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध, वासुदेव सिसृक्षु स्वरूप में () अनन्त और वासुदेव, गुणों की अनेक स्थितियाँ, षड्गुणोन्मेष, सृष्टिक्रम () वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध।

पञ्चम अध्याय 172-207
सृष्टि विज्ञान

(1) 'सृष्टि स्तु कुण्डलीख्याता'– जगत का आधार-भगवती लक्ष्मी, सृष्टि-उसका स्वरूप तथा सृष्टि-प्रक्रिया-वैष्णवागम कार्य-कारणवाद-'लोकोत्तर कार्यकारणवाद'-क्रियाशक्ति- 'भूतिशक्ति' सांख्य दर्शन एवं वैष्णवागम (ना. पञ्चरात्र) की दृष्टियों में विरोध– सांख्य दर्शन प्रतिपादित दृष्टि (2) सृष्टि-क्रम, सृष्टि तत्त्व, स्वातंत्र्यवाद, लक्ष्मी द्वारा सृष्टि, (शुद्ध-अशुद्ध सृष्टि, शुद्धाशुद्ध शक्ति एवं सृष्टि, भाविकी-लैंगिकी-विराज सृष्टि भगवती का सर्वात्मस्वरूप एवं सृष्टिस्वरूप (3) सृष्टि का समवायिकारण-सृष्टि का मूल तत्त्व एवं मूल उत्स, सृष्टि के मूल तत्त्व और उनकी संख्या-सृष्टि का मूल स्त्रोत या जनक, सृष्टि के जनक अन्य दृष्टियाँ-(4) 'अहिर्बुध्न्य संहिता' की दृष्टि, शक्ति और सृष्टि स्वातंत्र्यशक्ति-'क्रिया', 'मूर्ति', संकल्प और सुदर्शन, भगवती के दो रूप, 'भूति शक्ति', 'क्रिया शक्ति', भूति के भेद, प्रलय की स्थिति (5) प्रलय-सृष्टि-उदय चक्र, संकल्पवाद और सृष्टि-स्वातंत्र्य-संकल्प (6) 'षाड्गुण्य' के भेद, शुद्धसृष्टि, सनत्कुमार संहिता-प्रतिपादित दृष्टि– शुद्धध्वा का सर्ग, शुद्धाध्वा, 'अहं'-अहमस्मि'-'अहमिदम्'-'इदमहम्', काश्मीरीयत्रिक दर्शन की दृष्टि (7)अहं-'अहमस्मि'- परिमितापरिमि अहं-अहं और सामरस्यावस्था-प्रमेय (शुद्धध्वा) (8)व्यूहत्रय और देवत्रय-जाग्रत, स्वप्न -सुषुप्ति-तुरीय-(वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध)'महामाया'– लक्ष्मी-महालक्ष्मी।

(ख)
साधना—पक्ष 209
वैष्णव तांत्रिक दर्शन का साधना-पक्ष
षष्ठ अध्याय 210-236
मुक्ति और मुक्ति के साधन-मार्ग
(1) ज्ञान मार्ग-भक्तिसूत्रकार नारद की दृष्टि—वेदों का त्याग-कर्म-ज्ञान-योग तीनों का त्याग-शाण्डिल्य (ऋषि) की दृष्टि—गीताकार की दृष्टि मुक्ति के साधन-मार्ग (शास्त्रीय स्वरूप), मधुसूदन सरस्वती की दृष्टि, रूपगोस्वामी की दृष्टि, आचार्य शंकर की दृष्टि, कर्म मार्ग का प्रतिषेध, भागवतकार की दृष्टि, योग के भेद, मुक्ति के मुख्य साधन-मार्ग (2) अहिर्बुध्न्य संहिताकार की दृष्टि, विष्णु पुराणोक्त दृष्टि, सुरेश्वराचार्य की दृष्टि—महाभिषेक (3) कर्मकाण्ड-अग्निकुण्ड-होम-अभिषेक-आचार्यशंकर की दृष्टि, रूप गोस्वामी की दृष्टि, भक्ति के लक्षण (रूप गोस्वामी की दृष्टि), नारदपाञ्चरात्रकार की दृष्टि— मधुसूदन सरस्वती की दृष्टि-कर्म-पञ्चांगोपासना-रूपगोस्वामी की दृष्टि—'भक्तिरस'—'अह्लादिनी शक्ति', महाभाव (९)राधा तत्त्व, मधुर रस—मुख्य भक्ति रस, भगवती की आराधना के उपाय चतुष्टय, अहिर्बुध्न्यसंहिताकार की दृष्टि, ज्ञान के भेद, परोक्ष ज्ञान-अपरोक्ष ज्ञान योग-मार्ग, धर्म और पुरुषार्थ चतुष्टय, विष्णुपुराणोक्त दृष्टि, बन्धन और मुक्ति के कारण-समाधि एवं योगियों के भेद, विनिष्पन्न समाधि योगी, योगी का आचार, प्राणायाम, प्रत्याहार-वैष्णवागमभोक्त उपाय, उपाय चतुष्टय, कर्माख्य उपाय, ज्ञान मोमोक्ष का उपाय है, ज्ञान-मार्ग, ज्ञानोदय की प्रक्रिया (सांख्य-दृष्टि), 'अस्मि' 'न मे' 'नाऽहम- के रूप में ज्ञान के त्रिविधरूप, काश्मीरिक दर्शन की दृष्टि, विष्णु पुराणोक्त ज्ञान विषयक दृष्टि, मनोनिग्रह, बौद्ध दर्शन में मुक्ति के साधन ('अष्टांग मार्ग'), शांकर मार्ग, जैन दर्शन में मोक्ष के साधन, भावनात्रय-कर्म-ब्रह्म-उभयात्मिककाभावनाएं, वैष्णवागम का ज्ञानपाद -पञ्चरात्र ज्ञान, धर्म-मोक्ष-कर्मसाम्य के रूप में, मुक्तिक्रम, जीव का कर्म साम्य।

सप्तम अध्याय 238-266

वर्ण-विज्ञान एवं मन्त्र तत्त्व

(1) वैष्णवागम का वर्ण-विज्ञान एवं मन्त्र तत्त्व, वैष्णवागम की दृष्टि– भर्तृहरि की दृष्टि– वाक्य पदीय (2) वर्णविज्ञान एवं मन्त्र तत्त्व– वेद की दृष्टि– वैष्णवागम का वर्ण विज्ञान एवं मंत्र तत्त्व, मातृका-वर्ण एवं मंत्र तत्त्व, वाक्तत्त्व के तीन भेद, वाच्य-वैष्णवागम में वाक्तत्त्व का स्वरूप, लक्ष्मीतंत्रकार की दृष्टि (3) शक्ति के भेद चतुष्टय, अर्थोन्मेष के चार रूप, वाक्तत्त्व के भेद– शान्ता-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीवाक् (4) 'अहिर्बुध्न्य संहिता एवं 'लक्ष्मीतंत्र' ऐकमत्य वर्ण और मातृका, स्वर वर्णों का स्वरूप (5)भगवती लक्ष्मी, श्री– ॐ– श्रीं लक्ष्मी (6) वैष्णवागम का वर्ण विज्ञान, वर्ण-शिव-शक्ति- नाद-शाब्दी-अर्थी सृष्टि, शब्द ब्रह्म-शांकर दृष्टि, मंत्र और मातृका, (7)मातृका, शब्दब्रह्म, शांकर दृष्टि (8) पद्मपादाचार्य की दृष्टि, वाक्चतुष्टय, आचार्य भास्करराय की दृष्टि– वाक्चतुष्टय, मातृका के दो स्वरूप-वाणी एवं अर्थों की उत्पत्ति। (9) 'वाक्चतुष्टयः-शास्त्रीय स्वरूप, अभिनव गुप्तपादाचार्य की दृष्टि, वैखरी वाक् के भेदत्रय (अभिनव गुप्त की दृष्टि) 'वैखरी वाक् के प्रकार-'मध्यमा वाक्', मंत्र तत्त्व-कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि, मंत्र साधना का वैज्ञानिक रहस्य।

अष्टम अध्याय 268-299

प्रतिपाद्य विषय. मान्त्री साधना और उसका रहस्य

(1) मंत्र 'शब्द ब्रह्म' का विवर्त है (2) मंत्रों के प्रकार-देव मंत्र तादात्म्य, मांत्री साधना और उसका रहस्य, लक्ष्मी, मातृका, मंत्र और ओम्-वर्ण-जप-पराशक्ति का मंत्रात्मक स्वरूप योग शास्त्र की दृष्टि, वर्ण या अक्षर तथा लक्ष्मी, विष्णु के 12 रूप-मंत्र-मातृका और मातृकोपासना-मंत्रों की माता (3) जयाख्य संहिताकार की दृष्टि, श्री कृष्ण का (ना.पं. में प्रोक्त) मंत्र, देवता-मंत्रांग, अंतरंग-बहिरंग, विद्या के अन्तरंग विद्योपासना के बहिरंग, वैष्णवागम में 'साध्य' और 'साधन' देवता और उसका स्वरूप, मंत्र एवं राधोपासना तथा कृष्णोपासना (4) श्री कृष्ण के मंत्र, कवच-कवच की महत्ता-विष्णु सहस्त्रनाम-राधा स्तोम(5) भक्ति एवं दास्य भक्ति, मंत्र का प्रयोजन, मंत्राङ्ग, उदय,

शब्द ब्रह्म का स्वरूप, (6) आचार्य शङ्कर की शब्द ब्रह्म संबंधिनी दृष्टि, परम बिन्दु का आत्म-विभाजन, आत्म-विभाजन से सृष्टि, लक्ष्मण देशिकेन्द्र की दृष्टि, 'प्रयोगसार' की दृष्टि, भर्तृहरि की दृष्टि, शंकराचार्य की दृष्टि, शब्द ब्रह्म का स्वरूप, शब्दब्रह्मोत्पत्तिवाद- ब्रह्म, लक्ष्मणदेशिकेन्द्र की दृष्टि, भर्तृहरि की दृष्टि, लक्ष्मी तन्त्र की दृष्टि, मंत्राध्व, शब्दब्रह्म का विवर्त है, शक्ति का स्वरूप, शान्तोन्मेष एवं बिन्दु, शक्ति के स्तर-भेद, भगवती की नादात्मिका चार शक्तियाँ, वर्ण, भगवती, भगवती का वर्णात्मक स्वरूप, मंत्रों का वैष्णवरूप, मंत्र, तारिका, विष्ण्वार्चन, अर्चन के मंत्र, पुरुष सूक्त-लक्ष्मी सूक्त, उपचार प्रणव का सागर, पुरुषसूक्त, लक्ष्मी सूक्त, तारिका विद्या की मांत्री साधना, तारिका और अनुतारिका का स्वरूप, 'ह्रीं' का विलक्षण स्वरूप, मंत्र और क्षेत्रज्ञ सचाव, षडध्व मंत्रों का स्वरूप।

नवम अध्याय 301-327

साध्य तत्त्व और भक्ति मार्ग-साधना

(1) साध्यतत्त्व-भक्ति तत्त्व-साधना और साध्य-विष्णु-वासुदेव, वासुदेव, श्री कृष्ण और राधा की उपासना, वैष्णवागम में साध्य तत्त्व, व्यूह चतुष्टय, भगवान के अवतार, भगवती लक्ष्मी, भगवती राधा (2) विश्व-सृष्टि और भगवती राधा, साधना का भक्ति-मार्ग-भक्ति का स्वरूप-नारद की दृष्टि, व्यक्ति भाव सम्बंध, नवधा भक्ति, प्रेम रुपा भक्ति, परमात्मा के विभिन्न स्वरूप, भक्ति और प्रपत्ति, यौगिक सिद्धियाँ और भक्ति, वैष्णवों के ज्ञान की सर्वोच्चता, नारद पञ्चरात्र का मत, भक्त का विशेष महत्त्व (3) भक्ति, मुक्ति से श्रेष्ठतर है, भक्ति के 9 भेद, 'ज्ञानोत्तरा भक्ति', ब्रह्म ज्ञान और 'भक्ति'-'नारदीया भक्ति' के एकादश अंग, श्री कृष्ण की स्तोत्र पाठात्मक साधना, ध्यान, एकादशीव्रत का पालन, वैष्णवागम में स्वीकृत भक्ति का आदर्श-प्रेमाभक्ति-भावभक्ति गोपियों के प्रेम का स्वरूप (4) षड्विधा शरणागति, साधना के अन्य उपाय-आनुकूल्यस्य-संकल्प के अंग, प्रतिकूल्यस्य वर्जनम् के अंग, कार्पण्य, आत्मनिक्षेप, गोप्तृत्वरण-न्यास-उपाय-अपाय (5) अपायोपाय दोनों का त्याग, कर्म के प्रकारत्रय, वैदिकी निष्ठा, कर्मवाद-प्रसाद, वैदिक मर्यादा में निष्ठा, मात्र शरणागति की ग्राह्यता, नवध भक्ति-निर्गुण-सगुण में समन्वय-विष्णु निराकार भी हैं।

दशम अध्याय 329-354

पूजा तत्त्व, पूजाङ्ग और वैष्णवागम

(1) पूजा तत्त्व, पूजाङ्ग एवं वैष्णवागम, पूजा एवं आराधना विषयक शांकर दृष्टि, अभिनव गुप्त की दृष्टि, पूजा तत्त्व, पूजा (2) आदर्श पूजा का स्वरूप (विज्ञान भैरव की दृष्टि)-संकेत पद्धतिकार की दृष्टि-अभिनवगुप्त की दृष्टि, जप और पूजा, जप का स्वरूप, साधक और पूजा, पूजा तथा भक्त, अद्वैतभाव और पूजा-वाणी, मन एवं शरीर का पावित्र्य और पूजा, उत्पल भट्ट की पूजा-दृष्टि, आदर्श पूजा, भट्ट नारायण एवं योगिनी हृदय की पूजा-दृष्टि-पूजा के भेद, परा पूजा-अपरा पूजा-परापरा पूजा (3) पूजा तत्त्व, पञ्चप्रकारार्चा-तादात्म्यभाव-आराधना के प्रकार चतुष्टय-पूजा के पञ्च प्रकार-अभिगमन-उपादान-योग-स्वाध्याय-इज्या के रूप में पूजा-भेद, ज्ञानामृतसार संहिता की दृष्टि-सेवा की षडात्मक विधियाँ, श्रीमद्भागवत की नवधा भक्ति। (4) शांकर पूजर (मानस पूजा), वैष्णव पूजा (स्वाध्याय, अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय ईज्या), पञ्च प्रकारार्चा एवं उपचार-विधान, मंत्र, वैष्णवागम की दृष्टि, पूजा-क्रम, माला-जप-मंत्र-लक्ष्मी, पारस्परिक तादात्म्यभाव, तादात्म्यत्रय, धूप, दीप, अर्घ्य, घण्टानाद। (5) ब्रह्माण्ड का अधोमुखी पद्म के रूप में ध्यान, पूजन का फल, उपचार, पूजा, मानसोपचार, पूजा, पूजा-द्रव्य, षोडशोपचार के अंग (6) विष्णु-ध्यान, अर्चन, स्मरण, कीर्तन, जप, शालग्राम के प्रति निष्ठा-अर्चन, नारद, पां. कुलार्णवतंत्रकार एवं उपनिषदों की दृष्टि, भावनोपनिषद की दृष्टि, षोडशोपचार-वैष्णवागमोक्त विधान, नारद पाञ्चरात्र एवं कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि।

एकादश अध्याय 356-375

दीक्षा, भाव तत्त्व एवं वैष्णवागम

(1) दीक्षा-भावतत्त्व-वैष्णवागम, दीक्षा, दीक्षा-भेद, दीक्षार्हता का निकष, दीक्षा और वैष्णवागम-दीक्षा (कुलार्णवतंत्र की दृष्टि) वैष्णवभागवत मत, दीक्षा-भेद-दीक्षा-पद्धति, दीक्षार्ह शिष्य (लक्ष्मी तंत्र की दृष्टि), देह का छेदन, भोगो का निर्मूलीकरण, ध्यान, अद्वैतभाव,

मांत्री दीक्षा (2) अहिर्बुध्न्य संहिता की दृष्टि, दीक्षित शिष्य के कर्तव्य-तत्त्वदीक्षा, चाक्षुषी दीक्षा, शिष्य का लक्ष्मीमयत्व, अभिषेक और मुक्ति, गुरु-पूजन, मंत्र-जप, दीक्षा और उसका सामान्य परिचय, दीक्षा का फल, दीक्षा-काल, दीक्षा के प्रमुख कार्य, पाञ्चरात्र भक्त को विशेषता (3) न्यास-विधान और दीक्षा, ऋष्यादि न्यास, शरीर के भेद, शिष्य का गुरु द्वारा अवेक्षण, शरीर-दहन, नव्य शरीर-निर्माण, गुरु को सर्वात्म समर्पण, भोजन-विधान (4) परशुराम कल्प सूत्रकार की दृष्टि-भाव तत्त्व, महाभाव और भाव, लक्ष्मी नारायणात्मक सामरस्य, भावज्ञोपानारूढ़ सन्तों की भावानुभूतियाँ-कौलावली तंत्रकार की दृष्टि, भावत्रय, भावों में श्रेष्ठता का क्रम, साधक और भाव, रुद्रयामल तंत्र की दृष्टि।

द्वादश अध्याय 377-403

साधना एवं पूजा के अन्य अंग एवं वैष्णवागम

(1) साधना का क्षेत्र, वैष्णवागम द्वारा साधना के स्वीकृत क्षेत्र एवं साधनाधिकार, वैष्णवागम की विशेषताएं, ध्यान तत्त्व, ध्यान की परिभाषा, ॐकार का ध्यान, ध्यान का स्वरूप, ध्यान का यौगिक स्वरूप, ध्यान के प्रभाव, ध्यान वृत्तियों का निरोध, 'ध्यान'-मनः स्थैर्य, एकातानता, मन की निर्विषयता आदि। आचार्य जयरथ की दृष्टि, अभिनव गुप्तपाद की दृष्टि मुद्रा (कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि) मुद्राओं के फल- न्यास, न्यास की महिमा, न्यासों के प्रकार, न्यास की आवश्यकता, अक्षमाला (2) भगवान का अर्चन, भोग-विधान, भास्कराय के अनुसार जप के अवयव- जपाङ्ग, लक्ष्मीतंत्रकार की दृष्टि, मंत्र-चैतन्य की आवश्यकता, जप और मंत्र -चैतन्य, मंत्रार्थ, मंत्र चैतन्य एवं योनिमुद्रा-जपावयव, जप में मंत्रोच्चारण-प्रक्रिया, जप-लक्ष्मीतंत्र की दृष्टि, जप सिद्धि में तारतम्य, ॐकार का जप, पुरश्चरण के पञ्चांग- लक्ष्मीतंत्र की दृष्टि (3) पुरश्चरण, जप-प्रक्रिया, नारण पांच. को दृष्टि, पूजा के प्रकार, पूजा के 5 प्रकार, अभिषेक, नैवेद्य, तर्पण, जप, होम, तर्पण, मंत्रदीक्षा, न्यास, विनियोग आदि (4) भगवन्नाम, श्रवण, कीर्तन, नृत्य, गायन आदि वैष्णवों का महत्व, भक्त और वैष्णव, शालग्राम का महत्व, पादोदकपान का महत्व, शालग्राम, पूजन, नदियों की महत्ता, एकादशी व्रत एवं विष्णु का महत्व, वर्णाश्रम (5) द्वादश शुद्धि और अपराध।

त्रयोदश अध्याय 405-460
'योग और योग-साधना'

(1) योग का स्वरूप, वाचस्पति मिश्र की दृष्टि, योग सूत्रकार की दृष्टि, अहिर्बुध्न्य संहिताकार की दृष्टि, योग के लक्षण, अष्टांग-यम,नियम,आसन,प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि, नाड़ी-शोधन, शरीर तत्त्व-नाड़ी कन्द-नाड़ी मण्डल, मुख्य नाड़ियाँ, वायु मण्डल, प्राण (वायु) के कार्य, नाड़ी शोधन की विधि, वायु पर विजय, षडक्षर मंत्र, प्राणायाम के प्रकार, पञ्चाङ्गी प्रत्याहार (2) धारणा का स्वरूप, प्रत्याहार, ध्यान, आसन, ध्यानालम्बन, समाधि, समाधिस्थ पुरुष, योग और योग-साधना, योग का अर्थ, पतञ्जलि की दृष्टि, भोजराज की दृष्टि, मणि प्रभाकार की दृष्टि, भावागणेश की दृष्टि, विष्णु पुराण की दृष्टि, वैष्णवागम की दृष्टि। (3) योग की नाथ पंथीय दृष्टि, योग, मोक्ष, (न्याय शास्त्र) योग की दृष्टि एवं लक्ष्य, हेय-हेय हेतु-हान-हानोपाय, राजमार्तण्डकार की दृष्टि—महर्षि पतञ्जलि की दृष्टि, चित्तवृत्तियाँ (4) चित्त की पञ्च भूमियाँ, योग के भेद, योग का अन्तिम फल-नाड़ी योग, योग के अष्टांग योग के प्रतिपाद्य शिष्य, 'क्रिया योग', शरीर तत्त्व, लक्ष्मी वैष्णवों का शरीर है, शरीर के प्रकार, शरीर में शिव-शक्ति तत्त्व, नाड़ी केन्द्र (शरीर) अहिर्बुध्न्य संहिता की दृष्टि (शरीर तत्त्व), शरीर का महत्व-संप्रज्ञात योगी का भूमि चतुष्टय—आरुरुक्ष- युञ्जान-योग का अन्तिम लक्ष्य आसन। (5) कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि, वृत्तिनिरो के साधन, संप्रज्ञात योग के भेद-भव प्रत्यय योग, साधना के सोपान-चित्त वृत्ति का स्वरूप- पुरुष का संबंध-विच्छेद रुप 'योग', योग की अन्तिमावस्था, योग के प्रतिपाद्य तत्त्व, हेय, हेय हेतु, हान, हानोपाय, योग में प्रतिपाद्य, 26 तत्त्व-गुरु का महत्व, गुरु और शिव। (6) यथार्थ गुरु, शिव, गुरुरूप ईश्वर-वैष्णवागम में गुरु-महत्व, गुरु का अर्थ-ना.पां. की दृष्टि, नारद पाञ्चरात्र का योग मार्ग। (7) यौगिक सिद्धियाँ (ना.प.), पञ्चरात्र और योग, सिद्धियाँ-यौगिक सिद्धियाँ, सप्तविध पञ्चरात्र, षट्चक्रात्मक तांत्रिक योग- (नारद पञ्चरात्र की दृष्टि), नाड़ी योग-चक्रों का ध्यान, नाड़ी, चक्र का अवस्थान, धारणा और स्तंभ, गुरुवाद, सहस्त्रदल पद्म। (8) भक्ति योग, नाड़ी योग, नाड़ियों

का स्वरूप एवं उनका अवस्थान, चक्र-चक्र-साधना, मूलाधार चक्र-स्वाधिष्ठान-मणिपूक, अनाहत विशुद्ध-आज्ञा चक्र एवं कैलास-बिन्दु-स्थान, साधनाक्रम, धारणा और ध्यान, ध्यान, मंत्र, जप योगाभ्यास-कुण्डलिनी शक्ति। (9) नाद-ध्वनि, बिन्दु-विसर्ग, अजपा- जप, मूल बीज तार (ॐ) तारक बीज, योगी और सात्वत जप और योग, पादचतुष्टय और योग-पाद चतुष्टय ज्ञान, योग, क्रिया, चर्या, उपाय चतुष्टय, उपाय चतुष्टय, भगवती को प्रसन्न करने के उपाय, समाधि योग के अंग (10) संयम रूप योग, पादचतुष्टय एवं योग, मध्यमार्ग और लक्ष्मी, तारिका का योजन, योगी और उसकी ध्यान, पद्धति, शब्द, ब्रह्म का ध्यान, चक्र, ध्यान, भ्रूमध्य में ध्यान, भ्रूमध्य में ध्यान के प्रकार, (भगवती का नारी स्वरूप) प्रत्येक जड़ चेतन नारी में लक्ष्मी का निवास-नारी को ब्रह्म मानकर उसका ध्यान- तारिकाराधना, 'ह्रीं स्वाहा' शब्द ब्रह्म। (11) शब्द ब्रह्म का वैलक्षण्य, शब्द ब्रह्म की साधना-पद्धति, शब्द ब्रह्म के ध्यान की पद्धति, शब्द ब्रह्म (वैष्णवागम की दृष्टि) ओम—'अ' = अनिरुद्ध, 'उ'=प्रद्युम्न, 'म'=संकर्षण, बिन्दु=वासुदेव, ॐ (शब्द ब्रह्म) में अग्नि-लोक-वेद-गुण का त्रयात्मक संपूर्ण स्वरूप स्थित है-ॐ--समस्त वर्ण, तेजत्रय (सूर्य/अग्नि/सोम) ॐ में स्थित हैं, ज्योतिर्मयी अर्धमात्रा, पुरश्चरण पञ्चाङ्ग, कुलार्णवतंत्र की दृष्टि, यंत्र और चक्र, अहिर्बुध्न्य संहिता की दृष्टि, कुण्डलिनी तत्त्व और वैष्णवागम।

चतुर्दश अध्याय — 462-508
बन्धन और मुक्ति

(1) वैष्णवपद या मुक्ति, वैष्णव पद की प्राप्ति, शुद्धविद्या, बन्धन और मुक्ति, कर्म, बन्धन का प्रधान कारण है, 'पञ्चमी शक्ति', जीव या पुरुष का तिरोधान, काल शक्ति-क्रीड़ावाद, आकार-ऐश्वर्य एवं विज्ञान का तिरोधान (मल),) पञ्चमी शक्ति। (2) अनुग्रहात्मिका शक्ति और मुक्ति, भगवान की जीव सम्बंधी दो शक्तियाँ, पञ्चमी-निग्रह शक्ति, कर्म-साम्य, शक्तिपात, मुमुक्षा-वैराग्य-विवेक, पेप्सा-जिहासा, वैष्णवपद की प्राप्ति, सांख्य दर्शन की दृष्टि, सांख्य की बंधन मुक्ति विषयक दृष्टि। (3) बन्धन जीव का या प्रकृति का? प्रकृति की सप्त बंधन-श्रृंखलायें-काश्मीरीय

तांत्रिक शैव दर्शन, शिव सूत्रवार्तिककार की दृष्टि-वरदराज की दृष्टि, मल-कल्पना और बन्धन-मल और उसके प्रकार। (4) मलत्रय ही बन्धन है-सुदर्शन नामक संकल्प, संकल्प और बन्धन, संकल्प के भेद, सृष्टि-स्थिति-प्रलय-निग्रह-अनुग्रह-पञ्चकृत्य, तिरोधायिका शक्ति, तिरोधान के भेद, मल और बन्धन, कर्म और बन्धन, भोगवासना। (5) मुक्ति और पञ्चमीशक्ति, कर्मसाम्य, जीव द्वारा संचित कर्मों की स्थिति, वैष्णवपद, मोक्षोपाय एवं योग, मोक्ष के उपाय चतुष्टय। (6) ज्ञान योग, सांख्य में प्रकृति तत्त्व, प्रसूति और परा प्रकृति, माया का स्वभाव, सांख्य दर्शन में निहित तत्त्व विज्ञान, 24 तत्त्व, चित् तत्त्व, ईश्वर-जीव, 27 तत्त्व। 'षोडशक' विकार, सप्त कार्य कारण तत्त्व, वैष्णवागम की मुक्ति संबंधिनी दृष्टि, गुणत्रय, योग-समाधि-संयम, समाधि का स्वरूप-ब्रह्मवेत्ताओं की स्थिति—'संयम' का स्वरूप। (7) सर्वपरित्याग रूप उपाय, चतुर्थोपाय, शरणागति, मोक्ष, उपाय-अभ्यास एवं उसका प्रत्यूह 'काल तत्त्व' शरणागति मार्ग-साधना के मार्गद्वय, उपाय मार्ग-शरणागति मार्ग, परमपद का स्वरूप, वैष्णव पद। (8) 'पूर्णाहन्ता' संकुचित अहन्ता, विराट अहन्ता (विश्वदेहत्व) अहन्ता काश्मीरीय त्रिक दर्शन और अहन्ता, अष्टवर्गात्मक अधिष्ठात्रियाँ, खेचरी-भूचरी-दिग्चरी-गोचरी शक्तियाँ-अहंविमर्श (शुद्धाशुद्ध) भगवती की विश्वाहन्तात्मक अनुभूति और उसका स्वरूप। (9) पूर्णाहन्ता, विश्वाहन्ता (विरूपाक्षपञ्चशिका) 'विश्वोऽहं', 'वैश्वात्म्य', अहं का स्वरूप शक्ति ही शिव की अहन्ता है, काश्मीरीय शैव तांत्रिकों की दृष्टि, विष्णु की अहन्ता-पूर्णाहन्ता सिसृक्षा। (10) मुक्ति के भेद, सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य-सायुज्य-मुक्ति चतुष्टय भक्ति एवं दास्य निर्वाणप्रद है, यथार्थ मुक्ति-वैकुण्ठ-परम व्योम, पाप-पुण्य एवं वासना के क्षय से मुक्ति, त्रिगुणोपरति से ब्रह्म-साक्षात्कार (11) सामरस्यावस्था-शिव और शक्ति का सामरस्य, शिव, शक्ति एवं जीव का सामरस्य, विश्व के साथ जीव-शिव-शक्ति का सामरस्य। (12) मुक्तों का स्वरूप, मुक्तों के लक्षण, परम व्योम, शाश्वतिक मुक्ति का साधक मंत्र, 'ॐ रां रामाय स्वाहा', राधा की पूजा (कार्तिक पूर्णिमा को राधा की अर्चा-पूजा-दर्शन निर्वाण का कारक है, शिव चतुर्दशी को शिव-स्थापना एवं उनकी पूजा निर्वाणप्रद है, वामन का दर्शन निर्वाण प्रद है, मञ्चासीन मधुसूदन के दर्शन मात्र से निर्वाण-प्राप्ति, रथस्थ वामन का साक्षात्कार निर्वाण प्रद है, चतुर्दशी तिथि पर शिव मूर्ति की स्थापना, उनका पूजन एवं व्रत निर्वाणप्रद है। कृष्णभक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।

पञ्चदश अध्याय 510-522
सारांश एवं विहंगमावलोकन

(1) पञ्चरात्र का स्वरूप, पञ्चरात्र, नामकरण का रहस्य, पञ्चविध रात्र-उक्तरात्रों का वर्गीकरण, सप्तविध रात्र, नारदीय पञ्चरात्र, 'पञ्चरात्रं सप्तविधं', मंत्र, जप एवं योग का महत्व, वैष्णवों का महत्व, विष्णु की महिमा, दास्य भक्ति की सर्वश्रेष्ठता, मोक्ष का सर्वोच्च साधन-भक्ति है, पाद चतुष्टय-वेद मंत्रों की ग्राह्यता-पाञ्चरात्र ज्ञान का महत्व, पाञ्चरात्रात्मक कृष्णमत वेदों का सार है, पाञ्चरात्र दर्शन की विशेषता। (2) पाञ्चरात्र के उपास्य, साधन मार्ग, सर्वोच्च ज्ञान, कृष्ण -भक्ति है-प्रपत्ति के छः अंग, वैष्णव-विष्णु का अर्थ, राधा का महत्त्व, कृष्ण भक्ति की महत्ता, ब्राह्मण-धर्म, हरिभक्ति एवं गुरु-हरिभक्ति नौका है, (3) वैष्णव सम्प्रदाय और उनके भेद, वैष्णव सम्प्रदाय।

......

वैष्णव तन्त्र और वैष्णव सम्प्रदाय

(सिद्धान्त और साधना)

प्रथम खण्ड

प्रथम भाग

वैष्णवागम के मूल उपदेष्टा— भगवान शिव

डा. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

एम.ए., पी-एच.डी.,डी.लिट, व्याकरणाचार्य उ.प्र. के 'संस्कृत संस्थान द्वारा 'शंकर' एवं 'विविध' पुरस्कार, म.प्र. सरकार के 'कालीदास संस्कृत एकेडमी' द्वारा 'भोज पुरस्कार' एवं देशबंधु (समाचार पत्र) द्वारा भागीरथ सम्मान एवं पुरस्कार से सम्मानित एवं पुरस्कृत।

वक्तव्य

यदि हम समस्त हिन्दू-साधना को सम्प्रदायों में विभाजित करके उनके स्वरूप को देखना चाहें तो उनके निम्नाङ्कित भेद होंगे (1)**'शैव सम्प्रदाय'** (2)**'शाक्त सम्प्रदाय'** (3)**'वैष्णव सम्प्रदाय'** (4)**'गाणपत्य सम्प्रदाय'** (5)**सौर सम्प्रदाय।**

'शैव' और 'शाक्त' सम्प्रदाय के प्राचीनतम साहित्य से लेकर उद्यतन साहित्य पर्यन्त समस्त वाङ्मय-विस्तार स्वल्पाधिक मात्रा में अद्यापि उपलब्ध 1 है किन्तु 'वैष्णवागम' का प्राचीन साहित्य और उस पर शोधात्मक चिन्तन सम्बंधी ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। ओटो श्रेडर महोदय ने **'कपिञ्जल', 'पाद्म', 'विष्णु', 'हयशीर्ष'** संहिता एवं **'अग्नि पुराण'** के आधार पर 215 वैष्णव संहिताओं की सूची प्रस्तुत करते हुए अन्य संहिताओं के होने की भी संभावना व्यक्त की है। (1) इन संहिताओं में से अधिकाधिक एक दर्जन संहिताओं का ही विभिन्न लिपियों में प्रकाशन हुआ है। देव नागरी लिपि में (1)**'नारद पञ्चरात्र'** (2)**अहिर्बुध्न्य संहिता** (3)**सात्वत संहिता** (4)**'सात्वत तंत्र'** (5)**'लक्ष्मी तंत्र'** (6)**'जयाख्य संहिता'** (7)**'शाण्डिल्य संहिता'** आदि कतिपय अत्यल्प ग्रंथ ही अवलोकनार्थ उपलब्ध हैं। वैष्णवागम (वैष्णव तंत्र) दर्शन पर नगण्य कार्य हुआ है। यदि शासन चाहता तो समस्त वैष्णवागम की तेलगू, तमिल आदि प्रतियों को तथा अन्य लिपियों में हस्त लिखित एवं प्रकाशित (किन्तु इस समय अनुपलब्ध) पुस्तकों को खोजकर उनका बृहत संग्रह-ग्रंथ प्रकाशित करा सकता था। किन्तु दुर्भाग्यवश इन कार्यों में शासन अपनी कोई रूचि नहीं दिखाता। प्रकाशकों के व्यक्तिगत श्रम से जो संहिताएं प्रकाशित हुई हैं उन्हीं से संतोष करना पड़ता है किन्तु इनकी संख्या नगण्य है।

पाञ्चरात्र-साहित्य की अपनी कतिपय विशेषताएं हैं जो कि इससे पृथक वैष्णव, शैव, शाक्त सम्प्रदाय और उनके साहित्य में उपलब्ध नहीं होतीं। **'पाञ्चरात्रागम'** के बाद जो भी वैष्णव-साहित्य लिखा गया एवं जिन वैष्णव सम्प्रदायों का उदय हुआ उनका वैचारिक क्षितिज एवं मनन-चिन्तन का आयाम उत्तरोत्तर अधिकाधिक सङ्कुचित एवं साम्प्रदायिक होता गया। हिमालय के उत्तुंग

---

(1) ओटो श्रेडर : इंट्रोडक्शन टू दि पाञ्चरात्र एण्ड दि अहिर्बुध्न्य संहिता'

शिखरों पर गंगा, यमुना, सरस्वती, ब्रह्मपुत्र आदि पयस्विनियां एक ही मां की गोद में पलती हुई दिखाई पड़ती हैं और सभी का पितृगृह एक ही है किन्तु उससे पृथक होते ही उनका नाम, रूप, यात्रापथ, गन्तव्य आदि सभी कुछ बदल जाता है। 'वैष्णवागम' से निःसृत पयस्विनी की पुत्रियां तो सभी वैष्णव-शाखायें हैं किन्तु देश, काल, परिस्थिति, अभिरूचि, पात्रता आदि विभिन्न कारणों से इनमें यथेष्ट परिवर्तन भी आ गया है। **'पाञ्चरात्र' के मूल सिद्धान्त और साधना का स्वरूप क्या है?** पाञ्चरात्र और उत्तरोत्तर उदित वैष्णव सम्प्रदायों में साम्य-वैषम्य के बिन्दु क्या हैं? वेदकालिक भक्ति-साधना एवं पाञ्चरात्रिक भक्ति-साधना या उपासना में साम्य-वैषम्य के बिन्दु क्या हैं? परवर्ती वैष्णव सम्प्रदायों की ('पाञ्चरात्र मत' से पृथग्भूत) नव्या स्थापनायें, मौलिकताएं और मौलिक उद्भावनायें क्या हैं? —इन सभी बिन्दुओं पर सविस्तार चिन्तन-मनन की आवश्यकता है —किन्तु इस दिशा में चिन्तन-मनन पर ग्रहण लग गया है। यह अशुभ संकेत है।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने कहा है कि जिस प्रकार काश्मीरीय शैव दर्शन में भेद, अभेद एवं भेदाभेद दृष्टियां हैं संभव है कि पाञ्चरात्र दर्शन में भी वही दृष्टियां हों। जब तक संपूर्ण वैष्णव संहिताओं का प्रकाशन नहीं हो जाता तब तक इस विषय में स्पष्टतः तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह भी कहा जा सकता है कि प्राप्त संहिताओं में सम्प्राप्त समन्वयवादी दृष्टिकोण ही समस्त वैष्णव-वाङ्मय में निहित हो और उनमें साम्प्रदायिक दीवारें न हों।

चूँकि वैष्णवागम एवं संपूर्ण भारत में प्रसृत सारे वैष्णव सम्प्रदायों को हस्तामलकवत देखकर सभी पर एक ही जगह चिन्तन-मनन एवं शोध अत्यावश्यक था इसीलिए मैं वैष्णवागम एवं (संपूर्ण भारत में प्रसृत) वैष्णव संप्रदायों पर चिन्तन-मनन एवं शोध करने हेतु समुत्कण्ठित हुआ और प्रस्तुत पुस्तक लिखा। इसके प्रकाशन का समस्त दायित्व लेकर **चौखम्भा ओरियन्टालिया दिल्ली** ने प्रकाशन का जो महनीय कार्य किया है उसके लिए मैं उसके व्यवस्थापक/सञ्चालक **श्री ब्रजपाल दास गुप्त** के प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूं।

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

दीपावली 2010 सिंगरौली

प्रस्तावना

वैदिक काल से ही भारतीय ज्ञान एवं साधना की एक गुप्त धारा निरन्तर प्रवाहित होती चली आ रही है और उसने भारतीय दर्शन, भारतीय जीवन एवं भारतीय चिन्तन को इस तरह आप्लावित, रसार्द्र, आक्रीडित एवं समाच्छादित किया है कि उसे अपने से पृथक करके किसी भी भारतीय दर्शन एवं भारतीय चिन्तन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वही निरन्तर प्रवाहित गुप्तधारा है—तंत्र-धारा।

मैंने **शैव-शाक्त तंत्र** के ज्ञान-रत्नाकर के अन्तस्तल में निमज्जित एवं तिरोहित रत्नों का अनुसन्धान करके उन्हें ऊर्ध्वतल पर प्रत्यक्षीकृत कराने की दिशा में अथक प्रयास किया किन्तु **वैष्णवागम** की गुप्त अमूल्य निधि या उसके गुप्त रत्नागार की खोज में कोई प्रयास नहीं किया था। समस्त वैष्णव दर्शन में भी अनुसंधान करने का प्रयास किया और फलस्वरूप—(1)'**वैष्णव तन्त्र-सिद्धान्त और साधना**' एवं (2) **वैष्णवागम-सिद्धान्त और साधना**'—लिखकर प्रकाशनार्थ—'चौ.सुर भारती' एवं 'चौ. संस्कृत संस्थान' वाराणसी के पास भेज दिया किन्तु '**वैष्णवागम एवं वैष्णव सम्प्रदाय**' पर कुछ भी नहीं लिख सका था अतः अब उस अपूर्ण कार्य को भी पूर्ण करके विद्वानों की सेवा में उसे भी प्रस्तुत कर रहा हूं।

(1) *वैष्णवागम का रचना-काल* —

'**वैष्णवागम**' महाभारत-काल में तो प्रचलित था ही किन्तु इसके पूर्व श्वेतद्वीप में भी यह प्रचलित था। चूंकि वैष्णवागम, अहि.सं.(33वे. अध्याय), में कहा गया है कि 'वे ही रुद्र भगवान सारे संसार के संहारकर्ता हैं और बौद्धों के लिए बुद्ध बनकर इस जगत में स्थित रहते हैं। 'बुद्धात्मना च बौद्धानाप स एव जगति स्थितः (33/17) और वे ही चार्वाकों के मत से जिनेश्वर का रूप धारण करके स्थित हैं—अतः सुस्पष्ट है कि 'अहिर्बुध्न्य संहिता' बौद्धधर्म एवं बुद्ध का परवर्ती है। बुद्ध ईसा से लगभग 600 वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए थे अतः यह वैष्णवागम

छठवीं सदी के बाद का और चार्वाकों (उनका उल्लेख होने के कारण) के बाद का प्रतीत होता है। संभव है कि **'अहिर्बुध्न्य संहिता'** के पूर्व-प्रणीत रचनायें बुद्ध के काल से सैकड़ों वर्ष पूर्व की भी हों। चूँकि वैष्णवागम में **'सात्वत संहिता'** को प्राचीनतम कृति माना जाता है अतः सुस्पष्ट है कि ऋषि प्रणीत वैष्णव संहिताओं में अनेक महाभारत-काल के पूर्व की भी हैं। **'अहिर्बुध्न्य संहिता'** सात्वत संहिता के बाद की रचना है अतः वैष्णवागम की आदिकालिक रचनायें इससे अत्यन्त पूर्व काल की ही होंगी।

'पाञ्चरात्रमत' एवं वैरवानस, भागवत सम्प्रदाय एवं गौड़ीयमत

'पाञ्चरात्रमत' के अन्तर्गत 'वैरवानसागम' एवं 'गौड़ीय मत' दोनों हैं। 'पाञ्चरात्र' के अन्तर्गत **'भागवत सम्प्रदाय'** भी है। प्राचीन काल में **'भागवत मत'** और **'पाञ्चरात्र'** मतों में वैलक्षण्य अवश्य था, किन्तु काल-क्रम से यह दूरी की खाई पट गई और दोनों एक हो गए। **'भागवत सम्प्रदाय'** मुख्यतः श्रीमद्भागवत पुराण पर आश्रित ๖। जीव गोस्वामी ने **'पाञ्चरात्रमत'** एवं **'भागवत सम्प्रदाय'** में समन्वय भी स्थापित किया है। **लेवी के अनुसार** श्रीमद्भागवत का रचनाकाल (लिपि की दृष्टि से)12हवीं सदी के बाद का प्रतीत होता है। (1) क्या 'भागवत सम्प्रदाय' 'पाञ्चरात्रमत' से पृथक है?

(2) *पाञ्चरात्रमत तथा भागवत सम्प्रदाय एवं पाञ्चरात्र का वैदिकत्व* —

'हर्षचरित' में 'पाञ्चरात्र' एवं 'भागवत सम्प्रदाय' को पृथक-पृथक रूप में दिखाया गया है। 'पाञ्चरात्रमत' को वैदिक सिद्ध करने हेतु **यामुनाचार्य** ने **'आगम प्रामाण्य'** नामक ग्रंथ ही लिख डाला। **आचार्य रामानुज** ने कहा है कि बादरायणा व्यास (ब्रह्मसूत्रकार) पाञ्चरात्र दर्शन के विरोधी नहीं थे तथापि आचार्य शंङ्कर ने **'शारीरक भाष्य'** (सूत्र 2-2-42;43) में कहा है कि उपर्युक्त सूत्र 'भागवतमत' के विरुद्ध हैं। **आचार्य रामानुज की दृष्टि** से यह अधिकरण पाञ्चरात्र सिद्धान्त का समर्थक है अतः ब्रह्मसूत्रकार के मतानुकूल है और सारा पाञ्चरात्र सिद्धान्त वैदिकमतानुवर्ती है।

(3) *भक्ति तत्व और पाञ्चरात्रमत पाञ्चरात्र सिद्धान्त और भक्ति* –

'भागवतमत' एवं 'पाञ्चरात्र' दोनों भक्ति-प्रधान हैं। यदि वैदिक-वाङ्मय को देखा जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उसमें प्रतिपादित उपासना में 'भक्ति' कहीं भी उदग्र रूप में प्राप्त नहीं होती। तंत्र में वैदिक-साहित्य की अधिक चर्चा नहीं है। यदि हम वैदिक उपासना को भक्ति-साधना के अर्थ में ग्रहण करने का प्रयास करते हैं तो वह वेदों के कर्मकाण्ड, ज्ञान-काण्ड एवं उपासना-काण्ड में कहीं भी अपने यथार्थ अर्थ में परिलक्षित नहीं होती। वेद का **'एकायन मार्ग'** भक्ति को इङ्गित अवश्य करता है तथापि वैदिक काल में उसके **विफल** प्रचार-प्रसार एवं उसके प्रति आकर्षण तथा प्रेम का निदर्शन प्राप्त नहीं होता।

(4) *पाञ्चरात्रमत या भागवत सम्प्रदाय*–

'वैष्णवमत', वासुदेव-मत, नारायण-मत, सात्वत धर्म, पाञ्चरात्र भक्तिमार्ग आदि अनेकों नामों से प्रसिद्ध है।

***'वैष्णव' शब्द का प्रयोग**–'वैष्णव' शब्द का प्रयोग 'तैत्तिरीय संहिता' (1) 'वाजसनेयी संहिता' (2) 'ऐतरेय ब्राह्मण' (3) एवं 'शत पथ ब्राह्मण' (4) आदि प्राचीनतम ग्रंथों में उपलब्ध होता है।

***'भागवत' शब्द का प्रयोग**–**'भागवत'** शब्द का पयोग 'ऋग्वेद' (5)'अथर्ववेद' (6)आदि में भी प्राप्त होता है।

*** 'वासुदेव' शब्द का प्रयोग**–'वासुदेव' शब्द का प्रयोग 'घटक में जातक' 'महाभारत' एवं 'पाणिनि' पतञ्जलि, 'विष्णु पुराण' 'भागवत पुराण' द्वारा तथा 'नारद पंचरात्र' शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र' (7)आदि में किया गया है।

*** 'पाञ्चरात्र' शब्द का उल्लेख**–इसका उल्लेख 'शतपथब्राह्मण' आदि ग्रंथों में प्राप्त होता है। 'महाभारत' और वैष्णवागम-साहित्य में तो इस शब्द का भूरिशः उल्लेख किया गया है।

*** 'नारायण' शब्द का उल्लेख**–'तैत्तिरीय आरण्यक' (8)'महाभारत'

(9) 'मनुस्मृति'(10) 'अष्टाध्यायी(11) आदि ग्रंथों में 'नारायण' शब्द का बार-बार उल्लेख किया गया है।

'वैष्णव' 'नारायण' 'पाञ्चरात्र' 'वासुदेव' आदि शब्दों के उल्लेख के विषय में **पाश्चात्य विद्वानों का कथन** है कि ये शब्द स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त हुए हैं अतः इनका प्राचीन साहित्य में कहीं भी धर्म या सम्प्रदाय के अर्थ में प्रयोग नहीं किया गया है। इतना होने पर भी **घोशुण्डी** और **वेसनगर** के शिलालेखों में एवं पतञ्जलि एवं कैयट द्वारा की गई 'वासुदेव' शब्द की व्याख्या एवं पाली ग्रंथ 'निद्देस' में इस शब्द के उल्लेख के कारण 'पाञ्चरात्रमत' की प्राचीनता निःसन्देह सिद्ध हो जाती है। वैष्णव धर्म अत्यन्त प्राचीन है। इन ग्रंथों में देखें—

(1) तैत्तिरीय संहिता (5/6/9) (2) वाजसनेयी संहिता (5/21)
(3) ऐतरेय ब्राह्मण' (3/38) (4) शतपथ ब्राह्मण (1/1/4)
(5) ऋग्वेद (1/164/40) (6) अथर्ववेद (2/10/2)
(7) वासुदेवेऽपीति चेन्नाकार मात्रत्वात् (शा.म.सूत्र 9/52)
(8) तैत्तिरीय आरण्यक (10/1/6) (9) महाभारत (5/25/68)
(10) मनुस्मृति (1/10) (11) अष्टाध्यायी (4/1/99)

***(12) वैष्णव धर्म उतना ही प्राचीन है जितना कि विश्व-साहित्य का प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद'।** ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का सूक्त क्र.154 एवं अन्य अनेक सूक्त विष्णु की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। ऋग्वेद में 'विष्णु' प्रधान देवता की कोटि में नहीं आ सके थे। उनका स्थान 'अग्नि' एवं 'इन्द्र' देवों ने ले लिया था। 'तैत्तिरीय संहिता (1)'वाजसनेयी संहिता' (2)अथर्ववेद (3)ऐतरेय ब्राह्मण (4)आदि के अनेक स्थलों में भगवान विष्णु श्रेष्ठतम देव के रूप में स्थापित परिलक्षित होते हैं। **'ऐतरेय ब्राह्मण'** में कहा गया है कि (1)अग्नि उत्तम देवता हैं (2)विष्णु परम देव हैं एवं (3)अन्य देव इनके मध्यवर्ती देवता हैं—

'अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमं तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः' (ऐतरेय ब्राह्मण 1/1)

---

(1) फांसीसी विद्वान सिलवन लेवी।

वैदिक काल में तो वैष्णव धर्म विष्णु–प्रधान था किन्तु कालान्तर में विष्णु के स्थान पर **'नारायण' 'वासुदेव' 'भगवत' 'कृष्ण' 'हरि'** नाम की प्रतिष्ठा अधिक स्थापित होने लगी।

'वासुदेव' शब्द विष्णु पुराण में भगवान विष्णु के लिए प्रयुक्त हुआ। सारा संसार उनमें वास करता है और भगवान सारे विश्व में वास करते हैं। इसी (व्यापकता) गुण के आधार पर विष्णु को **'वासुदेव'** कहा जाने लगा–

> **'सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।**
> **ततः स 'वासुदेवेति' विद्वद्भिः परि पठ्यते।।**
> **नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च।**
> **वासुदेवाय ताराय सर्ग स्थित्यन्तकारिणे।** 2/2
> **एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।**
> **अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे।।** 2/3

'वासुदेव' यादव जाति के उपास्य देवता थे। जब यह जाति ब्राह्मण धर्म में दीक्षित हुई तब ब्राह्मणों को उस जाति के देवता को भी विष्णु या नारायण के समकक्ष स्थान देना पड़ा। यदि हम तैत्तिरीय आरण्यक का आडोलन विडोलन करें तो उसमें **'विष्णु' 'नारायण'** एवं **वासुदेव** को अभिन्न कहा गया है:

'नारायणं विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।'
कालान्तर में यादव जाति के उपास्य **कृष्ण और वासुदेव** एकीकृत हो गए। परिणामतः **वासुदेव कृष्ण 'विष्णु'** के अवतार माने जाने लगे। **सात्वत जाति द्वारा उपासित वैष्णव धर्म 'सात्वत धर्म'** था। **'सात्वत'** एक जाति का नाम था। शतपथ ब्राह्मण एवं ऐतरेय ब्राह्मण में इसका उल्लेख भी किया गया है। **यामुनाचार्य** का कथन है कि जो लोग सात्विक विधि से भगवत्पूजा करते हैं उन्हें **'सात्वत'** या **'भागवत'** कहते हैं। **'पद्मसंहिता'** में सात्वत धर्म को वैष्णव धर्म का एक प्रकार कहा गया है। **महाभारत** के अनुसार संकर्षण ने वासुदेव की पूजा सात्वत विधि से की अतः वासुदेवधर्म **'सात्वत धर्म'** के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

(5) *भक्ति तत्त्व और पाञ्चरात्र दर्शन*—

वैदिक साधना-पद्धति में 'भक्ति' का स्पष्ट स्थान परिलक्षित नहीं होता। **शाण्डिल्य और नारद के भक्ति सूत्रों** में आकर **'भक्ति'** अपना यथार्थ स्वरूप अवश्य प्राप्त कर लेता है।

'पाञ्चरात्रमत' और 'भक्तिसूत्र'—नारद और शाण्डिल्य **ऋषि** ने क्रमशः 'नारद पाञ्चरात्र' एवं **'शाण्डिल्य संहिता'** लिखकर **'पाञ्चरात्रमत'** से अपना अत्यन्त निकट का सम्बंध तो प्रमाणित ही कर दिया साथ ही उनके **भक्तिसूत्रों** को देखकर यह भी सिद्ध होता है कि इन दोनों का पाञ्चरात्रमत से **सम्बंध** था।

नारद और शाण्डिल्य एवं 'पाञ्चरात्रमत'— कहा जाता है कि जब **ऋषि शाण्डिल्य** को चारों वेदों में **भी परम श्रेय** का **साक्षात्कार** नहीं हुआ तब उन्होंने **'पाञ्चरात्र'** की शरण ली और उससे उन्हें **अनिर्वचनीय तृप्ति प्राप्त** हुई। उन्होंने पाञ्चरात्रागमान्तर्गत **'शाण्डिल्य संहिता'** का भी प्रणयन किया। शाण्डिल्य की भांति नारद भी पाञ्चरात्रमत के अनुवर्ती थे और दोनों भक्तिसूत्रकार भी थे।

निःश्रेयसाप्ति के मार्ग— निःश्रेयस-प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं—

(1) **'कर्ममार्ग' 'कर्म' से निःश्रेयस की प्राप्ति** मानता है।

(2) **'ज्ञानमार्ग' 'ज्ञान' से निःश्रेयस की प्राप्ति** मानता है।

(3) **न्याय वैशेषिक आदि दर्शन ज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति** मानते हैं।

(4) **'भक्तिमार्ग' निःश्रेयस प्राप्ति का मार्ग भक्ति** को मानता है।

ऋषि शाण्डिल्य एवं नारद भी भक्ति की ही महिमा के प्रख्यापक हैं। भक्तिमार्गी कभी तो भक्ति को मोक्षाप्ति का साक्षात कारण मानते हैं और कभी **'भक्ति'** (अपरा भक्ति) को भक्ति (पराभक्ति) का साधन मानते हैं।

*** पाञ्चरात्र शास्त्र के मूल ग्रंथ**—पाञ्चरात्र संहितायें या तत्सम्बद्ध तंत्र इनके मूल ग्रंथ हैं यथा—**'सात्वत संहिता'** एवं **'लक्ष्मी तंत्र'**। विष्णु पुराण श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथ के उपजीव्य हैं।

* **पाञ्चरात्र ग्रंथों की संख्या**—सामान्यतया तो इनकी संख्या 108 मानी जाती रही है किन्तु **ओट्टो श्रेडर नामक पाश्चात्य विद्वान** ने **'इंट्रो. टू दि पाञ्चरात्र ऐण्ड दि अहिर्बुध्न्य संहिता'** में पाञ्चरात्र संहिताओं की संख्या 210 लिखी है। **'कपिञ्जल'**, **'पाद्म'**, **'विष्णु'** एवं **'हयशीर्ष'** संहिताओं तथा अग्नि पुराण से संहिताओं की नामावली संकलित करके उन्होंने इस संख्या को 108 के स्थान पर 210 बताया। इनके अतिरिक्त भी उन्होंने अन्य संहिताओं का नामोल्लेख किया है। इनकी संख्या 210 से भी अधिक बढ़ सकती है।

पाञ्चरात्रागम के सिद्धान्तों में पारस्परिक दृष्टि-भेद—

चूँकि संहिताओं की संख्या विपुल है और वे सभी प्राप्त भी नहीं हैं अतः उनमें **वैचारिक दृष्टिभेद भी संभव है**। काश्मीरीय आगम को ही लीजिए। उसमें **'अद्वैतवाद'**, **'द्वैतवाद'**, **'द्वैताद्वैतवाद'** तीन दृष्टियां है।

(6) * पाञ्चरात्र का अद्वैतवाद* —

पाञ्चरात्रागम का अद्वैतवाद आचार्य शङ्कर के **'निर्विशेष अद्वैतवाद'** से पृथक है। काश्मीरीय शैवागम में **'स्पन्द'** **'क्रम'** **'कौल'** एवं **'प्रत्यभिक्षा'** दर्शनों में 'अद्वय' (अद्वैत) शब्द शिवशक्ति के सामरस्य (द्वयात्मक अद्वयवाद) का बोधक है। शिव और शक्ति का द्वैत ही षट्त्रिंशत् तत्वात्मक द्वैत है और दोनों का साम्य ही **'अद्वैत'** है। पाञ्चरात्रागम में भी प्रायः यही दृष्टि स्थापित है।

जब पराशक्ति (भगवती लक्ष्मी) परमात्मा (लक्ष्मीनारायण) में विलीन रहती हैं तब वह 'प्रलयावस्था' की दशा कहा जाता है (अर्थात प्रलय है) प्रलयावस्था में भगवती लक्ष्मी निष्क्रिय रहती हैं। हम इस अवस्था को अद्वयावस्था के रूप में मान सकते हैं।

यदि हम शाङ्कर दर्शन की शक्ति (माया) पर विचार करें तो वस्तुतः यहां शक्ति की सत्ता ही नहीं है। यहां 'शक्ति' —

(1) **पारमार्थिक दृष्टि** से तुच्छ है किंतु
(2) **व्यावहारिक दृष्टि** से सत्य है और
(3) **विचार की दृष्टि** से अनिर्वचनीय या मिथ्या है। } 'शक्ति' का स्वरूप

चूँकि शाङ्कर-दर्शन में पारमार्थिक सत्ता मात्र ब्रह्म है अतः वहां 'शक्ति' के लिए कोई स्थान नहीं है। 'शक्ति' की पारमार्थिक सत्ता अस्वीकृत होने के कारण 'जीव' और 'जगत' की स्वतंत्र सत्ता भी अस्वीकृत है और इस प्रकार जीव-जगत दोनों मिथ्या माने गए हैं। इसके कारण (1) कर्म (2) उपासना एवं (3) भक्ति तीनों उपेक्षित होने के कारण इनकी सत्ता भी मानना संभव नहीं है। जब इनमें प्रतिभासित सम्बंध मायिक हैं तो फिर ये सम्बंध मिथ्या ही तो सिद्ध हुए।

भक्ति के पथ में शक्ति की स्वीकृति अनिवार्य है। यदि शक्ति का निर्मल स्वरूप अस्वीकृत हुआ तो ईश्वर, जीव एवं जगत तथा उनके पारस्परिक सम्बंध अज्ञानजन्य होने के कारण हेय मानने पड़ेंगे। इस स्थिति में—करूणा, शक्तिपात, कृपा, प्रेम, कर्म, उपासना एवं भक्ति के लिए क्या स्थान रह जाएगा?

अद्वयवाद और पाञ्चरात्र

शैव, वैष्णव, शाक्त एवं बौद्ध आगमों में स्वीकृत **'अद्वैतवाद'** शक्तिग्रहणात्मक है शक्तित्यागमूलक नहीं। यही कारण है कि **यहां रसोपासना, भक्ति-साधना एवं अद्वैतवाद में विरोध नहीं है।** बौद्धागमों में **'प्रज्ञा पारमिता'** को स्वीकार करके **'बोधिसत्त्ववाद'** की स्थापना की गई है।

पाञ्चरात्रागम में जिस 'अद्वैतवाद' की दृष्टि स्थापित है उसमें भी शक्ति एवं शक्तिमान में समन्वय है। प्राचीन वैष्णव आचार्यों ने शक्ति एवं शक्तिमान **में समवाय या अविनाभाव सम्बंध** मानकर **शक्ति की निष्क्रियावस्था में भी 'शक्ति' की विद्यमानता** स्वीकार तो किया ही है।*

***संकल्पवाद की पाञ्चरात्रिक कल्पना** इस प्रकार है कि नारायण के संकल्प से उनमें विलीन शक्तियों का उन्मीलन उसी प्रकार होता है जैसे कि मेघाच्छादित आकाश में अकस्मात विद्युत रश्मियां छिटकती हैं। [1]

अव्यक्तावस्था में शक्ति और शक्तिमान में भेद तो रहता है किन्तु इस भेद की प्रतीति नहीं होती। यह निर्वात/स्पन्दन-शून्य निर्वाणावस्था के समान है।

*** 'स्वातंत्र्यवाद'**— शैव-शाक्त आगम की भांति वैष्णवागम में भी **स्वातंत्र्य शक्ति** स्वीकृत है। जिस पारमात्मिक संकल्प के द्वारा प्रसुप्त महाशक्ति उद्बुद्ध (जाग्रत) होती है वह परमात्मा की **'स्वातंत्र्य शक्ति'** या **'स्वातंत्र्य'** है। यह अनिर्वचनीय है। **'स्वातंत्र्य'** नारायण का स्वभाव है—शक्तिमान की अपनी प्रकृति है।

(7) *सृष्टि के आरंभ में शक्ति के लेश मात्र जागृत होने की अवस्था*—

सृष्टि की इस आरंभावस्था में जब महाशक्ति प्रारंभ में जागती है तो पूर्णतया नहीं, लेश मात्र जागती है और शेष समग्र शक्ति अव्यक्त ही रहती है।

*** शक्ति की अभिव्यक्ति का स्वरूप ***

'क्रिया शक्ति'	'भूति शक्ति'
(सौदर्शिनी कला) निष्कल/प्राणात्मक शक्ति।	सकल शक्ति। नाना प्रकार के भेदों से युक्त

'भूतिशक्ति' तो 'क्रिया शक्ति' की तुलना में निकृष्ट है या निम्न श्रेणी की शक्ति है। **'भूतिशक्ति'** क्रिया सापेक्ष है, परिवर्धन-परिवर्तन आदि क्रियाओं से युक्त है।

'क्रियाशक्ति' के व्यापार

(1)	(2)	(3)	(4)
सृष्टिकाल में प्रकृति में परिणाम-सामर्थ्य का सञ्चार	काल-तत्त्व में कलन-सामर्थ्य का सञ्चार	आत्मा में भोग-सामर्थ्य का सञ्चार करती है	संहार-काल में समस्त सामर्थ्यों को आत्म संहृत कर लेती है।

शाश्वत नियम— 'शक्ति' का विकास-संकोच निरन्तर होता रहता है। इसी कारण सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि का तारतम्य अनवरत चलता रहता हैं। ये स्वभावगत नियम हैं।

(8) *सृष्टि के प्रकार (कोटियाँ)* —

काश्मीर-आगम तथा त्रिपुरा-साहित्य की ही भांति वैष्णवागम में सृष्टि त्रिविध है—(1)'**शुद्ध सृष्टि**' (2)'**मिश्र सृष्टि**' (3)'**अशुद्ध सृष्टि**'। शुद्धसृष्टि को ही '**गुणोन्मेष दशा**' कहते हैं।

'**गुणोन्मेष दशा**' में भगवान के अप्राकृत षड्गुणों का प्रादुर्भाव हुआ करता है।

(9) *निर्गुणत्व में भी सगुणत्व* —

इन प्रकृत्यातीत षड्गुणों के कारण परमात्मा प्राकृतिक गुणों (चिद्गुणात्मक स्वरूप) से विरहित रहने पर भी (**निर्गुणावस्था में भी**) निरन्तर '**सगुण**' **ही रहते हैं**। '**ज्ञान**', '**ऐश्वर्य**', '**शक्ति**', '**बल**', '**वीर्य**' एवं '**तेज**' उनमें विद्यमान ही रहते हैं। यही कारण है कि वैष्णवागम में परमात्मा को '**षाड्गुण्यविग्रह**' कहा गया है।

(10) *ज्ञान का विशेष महत्व* —

'**षाड्गुण्य**' में '**ज्ञान**' परमात्मा का स्वरूप माना गया है। यह परमात्मा का स्वरूप एवं 'धर्म' दोनों है। अन्य 5 गुण भगवान के 'धर्म' मात्र हैं।

(1) भगवान की इच्छाशक्ति ही '**ऐश्वर्य**' है।
(2) निर्बाध इच्छा ही '**इच्छाशक्ति**' है।
(3) जगत का प्रकृतिभाव या उपादान '**शक्ति**' है।
(4) श्रम का अनुभव न करना ही '**बल**' है।
(5) विकार-शून्यता ही '**वीर्य**' है।
(6) भगवान की सृष्टि ('शुद्ध सृष्टि') में बाह्योपादान इसलिए अनावश्यक है क्योंकि भगवान जगत के **अभिन्ननिमित्तोपादान** कारण हैं।
(7) प्रकृति जगत की उत्पत्ति के समय सविकार होती है क्योंकि वह **परिणामिनी** होती है किन्तु परमात्मा जगत की सृष्टि करने पर **भी निर्विकार** रहते हैं।
(8) ज्ञानादिक गुणत्रय '**विश्रामभूमि**' एवं बलादि गुणत्रय '**श्रमभूमि**' माना जाता है।

(9) भगवान एवं लक्ष्मी की मूर्ति (विग्रह)—इन 6 दैवीय गुणों की समष्टि ही भगवान एवं लक्ष्मी की मूर्ति है।

(10) 'वैकुण्ठ' या 'परमव्योम' के निवासी मुक्त पुरुष इस स्वरूप का निरन्तर साक्षात्कार करते हैं।

(11) *वासुदेव*—षाड्गुण्ययुक्त (शक्ति से पृथग्भूत) भगवान का नाम ही 'वासुदेव' है। 'वासुदेव'→ संकर्षण आदि व्यूह त्रय का आविर्भाव। यह आविर्भाव एक प्रदीप से दूसरे प्रदीप के जलने के समान है। एक व्यूह से दूसरे व्यूह के आविर्भाव की प्रक्रिया यही है।

* व्यूह और उनमें निहित प्रधान एवं गौणगुण*—

'संकर्षण' में ज्ञान-बल; 'प्रद्युम्न' में—ऐश्वर्य-वीर्य; 'अनिरुद्ध' में शक्ति और तेज गुणों का प्राधान्य है। उनमें अन्य गुण भी हैं किन्तु गौण रूप में।

'शुद्ध सृष्टि' है—संकर्षण से अनिरुद्ध पर्यन्त व्यूहों का आविर्भाव।

'संकर्षण' से ही निखिल विश्व का उद्भव होता है और 'संकर्षण' के शरीर में यह विराट विश्व तिलकालक की भाँति (बीज रूप में) स्थित है। जो अनन्त भुवनावली है उसका आधार 'बलदेव' के रूप में स्थित 'संकर्षण' हैं।

शक्ति के दो रूप (1) **'क्रियाशक्ति'** (2) **'भूति शक्ति'** तो हैं ही साथ ही **श्री, भू एवं लीला (या नीला)** (विहगेन्द्र संहिता) के कथनानुसार) भी हैं। **'श्री'**-कल्याण वाचक एवं इच्छा शक्ति है। **'भू'**—प्रभावकार व्यापक एवं क्रिया शक्तिस्वरूप है। **'लीला'**- सूर्य-चन्द्र-अग्निस्वरूपा एवं साक्षात शक्तिस्वरूप है।

वैष्णवागम में मुक्ति की कल्पना **'परमेव्योमन'** में नित्य स्थित है। इस 'परम पद' में (1) 'नित्य' एवं (2) 'मुक्त' दो प्रकार की मुक्तात्माओं का निवास है। ये दोनों विश्वास्पृष्ट हैं। वेदों में इन्हीं संसारातीत मुक्तात्माओं को **'सूरि'** कहा गया है। इनका कार्य है भगवत्सेवा।

भगवान के 'पार्षद' 'नित्य' जीव हैं। ***मुक्त जीव ज्ञानानन्दपूर्ण**

हैं। ये देखने में करोड़ों प्रकाश-किरणों से अलंकृत त्रसरेणु के सदृश परमव्योम में परिभ्रमण करते रहते हैं। ये न तो भगवान के पार्षद हैं और न तो अधिकारी। यद्यपि प्राकृत शरीर धारण तो कर सकते हैं किन्तु इनकी स्वतः की कोई भौतिक देह नहीं होती।

'पाञ्चरात्रमत' में विष्णु एवं लक्ष्मी या उनके अवतार श्री कृष्ण एवं राधा की उपासना प्रचलित है। यह संप्रदाय वैष्णव सम्प्रदाय कहा जाता है-तथापि यहां विष्णु के अवतार **राम और भगवती सीता** उपेक्षित रहे हैं। **'भागवत सम्प्रदाय' ने राधा कृष्ण एवं वृन्दावन की महिमा** का विशेषतया उल्लेख किया है।

ईसाई आदर्शवाद और पाञ्चरात्र मत–

'तन्मयतासक्ति' के द्वारा पूर्ण तद्रूपता एवं पूर्णतादात्म्यभाव की वह दृष्टि जो **'यूरोपीय सन्त थेरेसा'** की इस अनुभूमि में पाई जाती है कि–

'अब संसार में तुम्हारा शरीर ही ईसा का शरीर है, तुम्हारे हाथ ही ईसा के हाथ, तुम्हारे पांव ही ईसा के पांव और तुम्हारी आंखें ही ईसा की आंखें हैं जिनसे वह चलकर इध र-उधर जाते हैं और सब को देखते हैं और तुम्हारे हाथों द्वारा ही जनगण को आशीर्वाद देते हैं।।'

वैदिक उपासना एवं पाञ्चरात्र दर्शन में उपलब्ध नहीं होती तथापि परवर्ती वैष्णव सम्प्रदाय की **'प्रेमा भक्ति'**, **'भाव भाव'**, **'नारदीया भक्ति'** एवं **'तन्मयतासक्ति'** आदि में प्रकारान्तर से अवश्य उपलब्ध होती है।

(12) *भक्ति सूत्र और पाञ्चरात्र*–(मतभेद)

नारद, शाण्डिल्य एवं पाञ्चरात्र-दर्शन कभी वेदों का विरोध, निरस्कार एवं उपेक्षा नहीं करते प्रत्युत् इसके विरूद्ध वे वेदों को उपजीव्य मानकर अपने को वेदानुवर्ती सिद्ध करते हैं। आगे **'आगमप्रामाण्य'** आदि ग्रंथ इसी दिशा में लिखे गए हैं किन्तु भक्तिसूत्रकार नारद, पञ्चरात्र-रचनाकार नारद से यत्किंचित् (वैचारिक दृष्टि से) पृथक दिखाई पड़ते हैं क्योंकि नारद अपने भक्तिसूत्रों में वेदों के प्रति अत्यधिक श्रद्धा दिखाते हुए दृष्टिगोचर नहीं होते क्योंकि वे कहते हैं–(1) **'वेदानपि संन्यस्यति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते।।'** (49)

(नारद) शाण्डिल्य कहते हैं।[1] (2) **'तदेव कर्मिज्ञानियोगिभ्य आधिक्य शब्दात्'** (शाण्डिल्य भक्ति सूत्र 2/22) (कर्मप्रधान वेद के कर्मकाण्डियों एवं ज्ञानमार्गियों से भक्त श्रेष्ठतर हैं। (3) **नारद** कहते हैं कि भक्ति में निरोध आवश्यक है और निरोध है—**'निरोधस्तु लोकवेद व्यापार न्यासः'** (8) (नारद) अर्थात लोक एवं वेद दोनों का त्याग आवश्यक है।

(13) * पाञ्चरात्र की विकास-यात्रा* —

यदि पाञ्चरात्र-दर्शन को पौराणिक दृष्टि से देखा जाए तो—**'कूर्मपुराण'** में पाञ्चरात्र-दर्शन पूर्णतः विकसित अवस्था में उपलब्ध होता है—

'प्रद्युम्नभेव अनिरुद्ध सहानिरुद्धा
संकर्षणाभयाद शान्तिकर प्रसीद।।[1]

*** वैष्णव पुराणों में पाञ्चरात्र परम्परा** धार्मिक विकास की रुपरेखा प्रस्तुत करती हुई परिलक्षित होती है। यही पाञ्चरात्रमत एक स्वतंत्र दर्शन के रूप में आगमों का मुख्य विषय भी है। शान्तिपर्व के **'नारायणीयोपाख्यान'** में तो इस दर्शन की पूर्ण रूपरेखा प्रस्तुत कर दी गई है। **'पाञ्चरात्रागम'** के सिद्धान्त अनेक पुराणों में उपलब्ध होते हैं।

पाञ्चरात्र में 'योग'—'योग' परवर्ती वैष्णव सम्प्रदायों में ही नहीं प्रत्युत भक्ति-सूत्रों में भी अनादृत रूप में दृष्टिगत होता है—

'सा तु कर्म-ज्ञान-योगेभ्योऽत्यधिकतरा' (ना.भ.सू.25)

—किन्तु **'श्रीमद्भगवदगीता'** में भक्ति के साथ योग को भी समन्वित कर लिया गया है। इसे देखते हुए यह कहना पड़ेगा कि भक्ति के क्षेत्र में जो 'योग' आया उसका कारण 'गीता' और पाञ्चरात्र दर्शन हैं। क्या पाञ्चरात्र दर्शन के **प्राचीन परम्परानुशासन के आधार पर गीता' में योग आया—यह अनुसन्धेय विषय है।** यह सुस्पष्ट है कि महाभारतकाल में पाञ्चरात्र दर्शन विद्यमान था। चूँकि नारद ने **'श्वेतद्वीप'** में नारायण द्वारा इसे प्राप्त किया अतः यह भी स्पष्ट है कि महाभारत काल से भी पहले यह दर्शन **'श्वेत द्वीप'** में रहा होगा। समस्त पाञ्चरात्र संहिताएँ एवं पाञ्चरात्र-साहित्य उपलब्ध होने पर ही इसका निर्णय हो सकता है।

---

(1) कूर्म पुराण (41-95)

पाञ्चरात्र के सिद्धान्त अनेक पुराणों में मिलते हैं। **'ब्रह्मपुराण'** से लेकर **'पद्मपुराण'** पर्यन्त पाञ्चरात्र दर्शन की **'चतुर्व्यूह परम्परा'** का पालन भी उपलब्ध होता है। **'देवी भागवत पुराण'**, **'अग्नि पुराण'** एवं **'ब्रह्मवैवर्त पुराण'** को छोड़कर अन्य सभी वैष्णव पुराणों में अक्रूर के द्वारा स्तुति के प्रसंग में **'चतुर्व्यूह'** का उल्लेख किया गया है।[1] 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' एवं 'देवी भागवत पुराण' में **'चतुर्व्यूह सिद्धान्त'** के उल्लिखित न होने का कारण इन दोनों पुराणों में कृष्ण-कथा की भिन्न परम्परा है। 'अग्निपुराण' में **'चतुर्व्यूह' का अभाव 'हरिवंश पुराण'** के कृष्ण-चरित्र के अनुकरण मात्र का परिचय देता है।

(14) *सर्वोच्चमत=वैष्णवमत*—'नारद पाञ्चरात्र' (2/8/37) में वैष्णव मत को सर्वोच्चमत कहा गया है—

'वैष्णवानांमतं शस्तं सर्वेभ्योऽपि च नारद।
न वैष्णवात् परो ज्ञानी ब्रह्माण्डेषु च ब्रह्मणः।।'

'वैष्णवागम की पराशक्ति— वैष्णवागम की परा शक्ति भगवती **'नारायणी'** या लक्ष्मी हैं। भगवान विष्णु स्वयंमेव कहते हैं— **विष्णोहं पराशक्तिर्विष्णुमाया च वैष्णवी** (ना.पं. 1/12/59) वही पराशक्ति (1)श्री कृष्ण की **'राधा'** (वृन्दावन की राधा) (2) वैकुण्ठ की **'महालक्ष्मी'**(3)श्वेतद्वीप में विष्णु के वक्षस्थल पर **'सिन्धुकन्या'**(4) ब्रह्मलोक में **'वेदमाता'** एवं **'भारती'** एवं (5) नारायण की **'नारायणी'** है। (ना.पं. 1/12/55-56)

(15) *वैष्णवागम का परमतत्व* —

वैष्णवागम के परमतत्व का स्वरूप इस प्रकार है- 'ॐ वासुदेवः परंब्रह्म परमात्मा परात्परम्।

परं धाम परं ज्योतिः परं तत्त्वं परं पदम्।
परं शिवं परोध्येयः परं ज्ञानं परा गतिः।
परमार्थः परंश्रेयः परानन्दः परोदयः।।

* * * * * * * * * * *

---

(1) ब्र.पु.-192 भागवत पु. 10.40.21 विष्णु पुराण 5.18.58, पद्म पुराण उत्तर. 272. 313-314

सर्वज्ञः सर्वगः सर्वः सर्वदः सर्वभावनः।
सर्वः शंभुः सर्वसाक्षी पूज्यः सर्वस्य सर्वदृक्।।
सर्वशक्तिः सर्वसारः सर्वात्मा सर्वतोमुखः।
सर्वावासः सर्वरूपः सर्वादिः सर्वदुःखहा।
सर्वार्थः सर्वतोभद्रः सर्वकारण कारणम्।
सर्वालिशायकः सर्वाध्यक्षः सर्वेश्वरेश्वरः।।
षडविंशको महाविष्णुर्महागुह्यो महाहरिः।। (1)

(16) * अद्वैतवाद और पाञ्चरात्र* —

'सर्वखल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन'— के कथन में 'न इह नाना अस्ति किञ्चन' का अंश नानात्व (द्वैत) का प्रतिषेध करके अद्वैत की स्थापना करता है।

'एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का प्रचलित कथन भी इसी का समर्थक है।

* **'एकेश्वरवाद'** और **'अद्वैतवाद'** में भेद यह है कि **'एकेश्वरवाद'** स्थूल देववाद है और **'अद्वैतवाद'** सूक्ष्म आत्मवाद या ब्रह्मवाद। **'एकेश्वरवाद'** का अर्थ है कि एक सर्व शक्तिमान सबसे बड़ा देवता है जो कि सृष्टि-कर्ता, पालन-कर्ता, एवं संहारकर्ता है। सभी देवी देवताओं को मानते हुए सबके दादा (तानाशाह) एक बड़े देवता (ईश्वर) को मानना ही **'एकेश्वरवाद'** है। **'अद्वैतवाद'** एकेश्वरवाद से पृथक है। **'अद्वैतवाद'** का मतलब है कि दृश्य जगत की तह में उसका आधारभूत एक ही अखण्ड नित्य तत्त्व है और वही सत्य है। उससे स्वतंत्र अन्य कोई भी पृथक सत्ता नहीं है। **'अद्वैतवाद'** परमात्मा और आत्मा में भी कोई भेद नहीं स्वीकार करता। **'एकेश्वरवाद'** में बाह्यार्थवाद छिपा हुआ है।

(17) * 'स्थूल एकेश्वर' की मान्यता में निहित सिद्धान्त—

(1)	(2)	(3)	(4)	
'जीवात्मा परमात्मा से एकीभूत नहीं है। (अंश होने के कारण)	'परमात्मा' जीव से पृथक है।	प्रत्येक 'जीव' अन्य जीवों, परमात्मा एवं जगत से पृथक है।	जगत— 'जीव' एवं परमात्मा से पृथक है।	ये चारों पृथक-पृथक सत्तायें हैं।

(1) नारद पञ्चरात्र (4/3/14-17)

(18) *अद्वैतवाद (ब्रह्मवाद) की मान्यता*

'ब्रह्म' के अतिरिक्त 'जीव', 'जगत' तथा 'माया' की पृथक एवं स्वतंत्र कोई सत्ता है ही नहीं—

'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरः।। (शङ्कराचार्य) **'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्त्वमसि' 'अयमात्मा ब्रह्म'** तथा **'विश्वोऽहं विश्वयपोऽहं' 'अहमस्मि' 'अहमिदम्' 'इदमहम्'** एवं सामरस्यात्मक एकीभाव आदि **'अद्वैतवाद'** के विविध पक्ष हैं जो कि जीव-जगत-एवं विश्व में ऐकात्म्य (अभिन्नत्व) स्वीकार करते हैं।

शाङ्कर वेदान्त 'जीव' एवं 'जगत' को (व्यावहारिक एवं प्रातिभासिक सत्ता के रूप में) स्वीकार तो करता है किन्तु उसे ब्रह्म से पृथक सत्ता, या दूध से निर्मित दही के रूप में नहीं प्रत्युत **(विवर्तवादसम्मत)** जल की तरंग या बुलबुले के रूप में स्वीकार करता है, जिनकी जल के बिना कोई स्वतंत्र सत्ता ही नहीं है।

शाङ्कर वेदान्त **(निर्विशेष या केवलाद्वैतवाद)** के अद्वैत सिद्धान्त की कसौटी पर (1) **शैव** (2) **शाक्त** एवं (3)**वैष्णव** आगम खरे नहीं उतरते। तीनों **'द्वयात्मक अद्वयवाद'** मानते हैं। शैव-शाक्त-अद्वैतवाद **'द्वयात्मक अद्वयवाद'** स्वीकार करते हुए भी ब्रह्म एवं उसकी शक्ति में पूर्ण अभेद मानता है किन्तु **वैष्णव अद्वैतवाद** यत्किञ्चित पृथक दृष्टि प्रतिपादित करता हुआ शक्ति और शक्तिमान में भी भेद मानता है-

*देवाच्छक्तिमतोभिन्ना ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
एष चैषा च शास्त्रेषु धर्मधर्मि स्वभावतः।। (अहि.सं.अ.3/25)

यद्यपि वैष्णवागम में अद्वैतवाद के प्रतिपादन का भी आभास मिलता है— ***तादात्म्य सम्बंध*—'तादात्म्य' विद्धिसम्बंध मम नाथस्य चोभयोः।।** (ल.तं. 2/18)

(1) **विष्णु की पूर्णाहन्ता के रूप में—**
निस्तरङ्गोदयोऽनन्तो वासुदेवः 'प्रकाशते'।
पूर्णहन्तास्मि तस्यैका शक्तिरीश्वरतामयी।। [1]

(2) **सामरस्य**—'लालितातेन चात्यन्त सामरस्यभुपेयुषी।। [2]

---

(1) ल०तं० (18/14 (2) ल०तं० (17/37)

(3) **शक्तिस्वरूप**– 'एकाहं परमाशक्तिस्तस्या देवी सनातनी।। [1]

(4) **देवी की नारायणात्मकता**–

'सैषा नारायणी देवी स्थिता नारायणत्मना।। [2]

(5) **'साहमस्मि' के रूप में**– एवं ब्रह्म की अहन्ता के रूप में– अहन्ता ब्रह्मस्तस्य साहमभस्मि सनातनी'।। [3]

(6) **समस्त प्राणियों की अहन्ता**–

अहन्ता सर्वभूतानामहमस्मि सनातनी।। [4]

(7) **अद्वैत की दृष्टि**–

'अपृथग्भूत शक्तित्वाद **ब्रह्माद्वैतं** तदुच्यते।।

(8) (परमा शक्ति की) **चन्द्रमा की ज्योत्सना के स्वरूप में स्थिति** तस्य या परमाशक्ति ज्योंत्स्नेव हिम दीधितेः।। [5]

(9) **अन्योन्याभाव की स्थिति**–

'अन्योन्येनाविनाभावादन्योन्येन समन्वयात्'

अहमर्थसमुत्था च साहन्ता परिकीर्तिता।। [6]

(10) **लक्ष्मीनारायण ब्रह्म की अहन्ता**–

'लक्ष्मी नारायणाख्यातमतो ब्रह्म सनातनम्।

अहन्तया समाक्रान्तो ह्यहमर्थः प्रसिध्यति।।' [7]

(11) **'अहन्तया** विनाहं हि निरुपारव्यो न सिध्यति' (ल.तं. 2/18)

'अहमर्थं विनाहन्ता निराधारा न सिध्यति।। (ल.तं. 2/19)

(12) **अहं** 'परमात्मा। **अहन्ता** = 'शक्ति'

ब्रह्म-अहं–**'अहं नाम स्मृतो योऽर्थः स आत्मा समुदीर्यते।।**

(तत्रैवः 2/3)

'आत्मा स सर्वभूतानामहम्भूतो हरि स्मृतः।। (2/13)

शक्ति=अहन्ता– अहन्ता ब्रह्मणस्तस्य साहमस्मि सनातनी। (2/12)

इन सारे अद्वैतवादी साक्ष्यों के बाद भी शक्ति एवं शक्तिमान में अद्वैत सम्बंध नहीं है।

(19) *अंशांशिवाद* –शाङ्कर केवलाद्वैत के विपरीत **'अंशांशिभाव'**

---

(1) ल०तं० (17/4) (2) ल०तं० (1/43) (3) ल०तं०(2/12) (4) ल०तं०(2/13)
(5) ल०तं० (2/11) (6) ल०तं० (2/17) (7) ल०तं० (2/16)

के सिद्धान्त को भी **'वैष्णवागम'** ने स्वीकार किया है। **'अंशतः प्रसरन्त्य स्मात्सर्वे जीवाः सनातनाः।।**[1] वैष्णवागम **'अपृग्भूतशक्तिवाद ब्रह्माद्वैतं तदुच्यते'** (ल.तं.) के द्वारा वैष्णवागम **शक्ति-शक्तिमान में 'ब्रह्माद्वैतवाद'** एवं **'तादात्म्य सम्बंध'** को स्वीकार करता हुआ भी न तो शक्ति-शक्तिमान और न तो शक्तिमान और जीव अर्थात् दोनों में से किसी के साथ भी अद्वैत सम्बंध नहीं स्वीकार करता। **'अहिर्बुध्न्य संहिता'** (5/36) में **'अंशांशिवाद'** की पुष्टि में कहा गया है कि—**'अंशाशेनोदिता शक्तिः प्राद्युम्नी भगवत्प्रभा'** (अर्थात् यह प्राद्युम्नी प्रभा विष्णु के अंश के अंश से प्रकट होती है अर्थात् वासुदेव के अंश—**'संकर्षण'** एवं संकर्षण के अंश प्रद्युम्न से प्रकट हुई है।)

'अंशांशिवाद' का यही सिद्धान्त रामानुज के **'विशिष्टाद्वैतवाद'** में स्वीकार कर लिया है। **गीता में भी अंशांशिवाद के सिद्धान्त** को स्वीकार किया गया है—

'ममैवांशो हि जीवलोके जीव भूतः सनातनः।।'

(20) * वेदों के प्रति वैष्णवागम की दृष्टि—

'अहिर्बुध्न्य संहिता (20/22-25) में कहा गया है कि भगवान अहिर्बुध्न्य ने त्रेतायुग में 10 हजार वर्षों तक तपस्या करके अथर्ववेद का मन्थन किया और **'सुदर्शन मंत्र'** को अथर्ववेद से (दही से मक्खन की भांति) निकाला—

'सर्वं आथर्वणो वेदो मथितस्तु शनैः शनैः।
मथ्यमानात् ततस्तस्माद दध्नो घृतमिवोद्धतः।। (20/24)

—इसी प्रकार के अनेक प्रमाण हैं जो **वैष्णवागम** को **वेदानुवर्ती** सिद्ध करते हैं किन्तु वेद-प्रेम नारद **के भक्तिसूत्र में तो नहीं है।।**

(21) *पाञ्चरात्र दर्शन—एक विहंगमावलोकन *—

नमः शिवाय शान्ताय नारदाय महर्षये।
नमः सुदर्शनाथाय विष्णोः सङ्कल्परूपिणो।।

—अहिर्बुध्न्य संहिता

नमो नित्यानवद्याय जगतः सर्वहेतवे।
ज्ञानाय निस्तराङ्गाय लक्ष्मीनारायणात्मने।
खगासनं घृणाधारमीदृशं सोमभूषितम्।
अकलङ्केन्दुसूर्याग्निं लक्ष्मीरूपभुपास्महे।।

—लक्ष्मी तन्त्र

ॐ नमो विष्णुपत्न्यै च यस्या नारायणः प्रियः।
नमो नित्यानवद्याय जगतः सर्वहेतवे।
ज्ञानाय निस्तरङ्गाय लक्ष्मीनारायणात्मने।।

—लक्ष्मी तन्त्र

अक्षरत्रितया व्यक्त विकाराक्षादि रूपिणे।
पर व्यूहादितत्त्वाय नमश्चक्राय चक्रिणे।।

—अहिर्बुध्न्य संहिता

स्तुवन्ति वेदा यं शश्वन्नान्तं जानन्ति यस्य ते।
तं स्तौमि परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम्।
भक्तप्रियं च भक्तेशं भक्तानुग्रहविग्रहम्।
श्रीदं श्रीशं श्रीनिवासं श्रीकृष्णं राधिकेशवरम्।।
ज्ञानामृतं ज्ञानसिन्धोः संप्राप्य शंकराद्गुरोः।
परावराच्च परमाद्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरोः।।
वेदेभ्यो दधिसिन्धुभ्यश्चतुर्भ्यः सुमनोहरम्।
तज्ज्ञान मन्थदण्डेन संनिर्मथ्य नवं नवम्।।
नवनीतं समुदधृत्य नत्वा शम्भोः पदाम्बुजम्।
विधिपुत्रो नारदोऽहं पञ्चरात्रं समारभे।।

पुरा कृष्णो हि गोलोके शतशृङ्गे च पर्वते।
सुपुण्ये विरजातीरे वटमूले मनोहरे।
पुरतो राधिकायाश्च ब्रह्माणं कमलोद्भवम्।
तमुवाच महाभक्तं स्तुवन्तं प्रणतं सुत।
पञ्चरामिदं पुण्यं श्रुत्वा च जगतां विधि।
प्रणम्य राधिकां कृष्णं प्रययो शिवमन्दिरम्।।

—नारद पञ्चरात्र

(22) *भक्ति-आन्दोलन और पाञ्चरात्र*

यदि हम भक्ति-आन्दोलन की दृष्टि से काल-विभाजन करें तो उसके इस प्रकार विभाजन किए जा सकते हैं—

(1) प्रथम काल: 1500 ई. पूर्व से लेकर 500 ई. तक
(2) द्वितीय काल: 700 ई. —1400 ई.
(3) तृतीय काल: 1400 ई. —1900 ई.

(क) *भक्ति-आन्दोलन का प्राथमिक चरण*

***प्रथम चरण का आयाम**— सात्वतों के उदय से लेकर गुप्त नरेशों के उदय काल पर्यन्त का काल भक्ति-आन्दोलन का प्रथम चरण है।

***भागवत धर्म के इष्टदेव**— नारायण, विष्णु या वासुदेव श्री कृष्ण ही इस धर्म के परमोपास्य इष्ट देव हैं।

***'भागवत धर्म' के उदय का मूलस्थान**— श्री कृष्ण चन्द्र की लीलास्थली वृन्दावन एवं मथुरामण्डल ही इस धर्म की उदय स्थली हैं।

***श्री कृष्ण और सात्वतवंश**— भागवत धर्म के इष्ट देव श्री कृष्ण यादववंशी या सात्वतवंशी क्षत्रिय थे। इसी सात्वत क्षत्रिय वंश में भागवत धर्म या सात्वत मत का जन्म हुआ था।

*** सात्वतवंश की महत्ता**— इसी सात्वतवंश के क्षत्रिय कुल में उत्पन्न (1)'वासुदेव' श्री कृष्ण (2)'बलदेव' (3)'प्रद्युम्न' एवं (4)'अनिरूद्ध' **'चतुर्व्यूह'** (चातुरात्म्य) बने। (परमोपास्य भगवान श्री कृष्ण, उनके अग्रज भ्राता— बलदेव, पुत्र— प्रद्यम्न एवं **पौत्र**— श्री अनिरूद्ध) ही **चारों व्यूह बने और 'परमात्मा' कहलाये।**

*** सात्वतमत का विस्तार**— कालान्तर में **'सात्वत वंश'** शूरसेन मण्डल से पलायन करके, दक्षिण एवं पश्चिम दिशा में स्थानान्तरित होकर, वहां अपना उपनिवेश बनाकर वहीं रहने लगा। इसी कारण **'सात्वतमत'** दक्षिण भारत में भी प्रतिष्ठित हो गया। हम कह सकते हैं कि **'सात्वत वंश'** ने दक्षिण एवं उत्तर भारत को एक सूत्र में बांधने का भी श्लाघ्य

कार्य किया। इसी कारण **'ऐतरेय ब्राह्मण'** के **'ऐन्द्र महाभिषेक'** पर्व में **'सात्वतगण'** को दक्षिण का निवासी कहा गया है अन्यथा तो ये मूलतः उत्तर भारत के निवासी थे।

प्राचीन काल में सात्वतों ने ही **'सात्वतमत'—'पाञ्चरात्रमत'—'भागवतमत'** का आद्य प्रचार-प्रसार दक्षिण भारत में करने का गौरव प्राप्त किया।

***भक्ति-आन्दोलन के प्रथमचरण** (1500ई.पूर्व से 500ई. पर्यन्त) **की ऐतिहासिक विशेषता** (भक्ति-आन्दोलन के आलोक में)*

इसकी विशेषताएं इस प्रकार हैं—

(1) यही चरण भागवत धर्म(पाञ्चरात्रमत)के उदय का काल है।

(2) इसी युग में यह मत पश्चिम और दक्षिण भारत में पहुंच गया।

(3) (शैशुनाग एवं मौर्य वंश के उपरान्त) शुंगवंशी राजवंश ने वैष्णव धर्म को राज-धर्म स्वीकार करके इसको राष्ट्रीय प्रतिष्ठा देने का कार्य इसी चरण में हुआ।

(4) **बेस नगर (मिलसा) में स्थित 'गरुडस्तंभ' का संस्थापक यूनानी राजदूत हेलियोडोरस 'परम भागवत' तो था** ही साथ ही वह शुंगवंश के राजा मद्रक या भाग मद्र के शासन काल में राजदूत बनकर भारत आया था और **'भागवत धर्म'** अपनाया था।

(5) चित्तौरगढ़ के निकटस्थ 'नगरी' के पास में स्थित घोशुण्डी का शिलालेख भी इसी चरण का था।

(6) इसी चरण में (ईस्वी सन् के चतुर्थ एवं पंचम शतक में) **वैष्णव धर्म 'स्वर्ण युग' में पहुंचा था और परम भागवत गुप्त राजाओं ने इस धर्म को स्वीकार करके, 'परमभागवत'** की उपाधि धारण करके वैष्णव धर्म को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया था।

(7) इसी काल में **'अहिर्बुध्न्य संहिता'** सात्वत संहिता' एवं **'परम संहिता' का प्रणयन** हुआ तथा और इसी काल में अन्य अनेक संहिताओं के प्रणयन का आरंभ हुआ।

वस्तुतः यही चरण (या युग) **यथार्थ वैष्णव युग** था क्योंकि इसी युग में **पाञ्चरात्र संहिताओं की भी रचना हुई।**

(22) *भक्ति-आन्दोलन और पाञ्चरात्र*

यदि हम भक्ति-आन्दोलन की दृष्टि से काल-विभाजन करें तो उसके इस प्रकार विभाजन किए जा सकते हैं—

(1) प्रथम काल: 1500 ई. पूर्व से लेकर 500 ई. तक

(2) द्वितीय काल: 700 ई. —1400 ई.

(3) तृतीय काल: 1400 ई. —1900 ई.

(क) *भक्ति-आन्दोलन का प्राथमिक चरण*

***प्रथम चरण का आयाम**—सात्वतों के उदय से लेकर गुप्त नरेशों के उदय काल पर्यन्त का काल भक्ति-आन्दोलन का प्रथम चरण है।

***भागवत धर्म के इष्टदेव**—नारायण, विष्णु या वासुदेव श्री कृष्ण ही इस धर्म के परमोपास्य इष्ट देव हैं।

***'भागवत धर्म' के उदय का मूलस्थान**—श्री कृष्ण चन्द्र की लीलास्थली वृन्दावन एवं मथुरामण्डल ही इस धर्म की उदय स्थली हैं।

***श्री कृष्ण और सात्वतवंश**—भागवत धर्म के इष्ट देव श्री कृष्ण यादववंशी या सात्वतवंशी क्षत्रिय थे। इसी सात्वत क्षत्रिय वंश में भागवत धर्म या सात्वत मत का जन्म हुआ था।

*** सात्वतवंश की महत्ता**—इसी सात्वतवंश के क्षत्रिय कुल में उत्पन्न (1)'वासुदेव' श्री कृष्ण (2)'बलदेव' (3)'प्रद्युम्न' एवं (4)'अनिरूद्ध' **'चतुर्व्यूह'** (चातुरात्म्य) बने। (परमोपास्य भगवान श्री कृष्ण, उनके अग्रज भ्राता—बलदेव, **पुत्र**—प्रद्यम्न एवं **पौत्र**—श्री अनिरूद्ध) ही **चारों व्यूह बने और 'परमात्मा' कहलाये।**

*** सात्वतमत का विस्तार**—कालान्तर में **'सात्वत वंश'** शूरसेन मण्डल से पलायन करके, दक्षिण एवं पश्चिम दिशा में स्थानान्तरित होकर, वहां अपना उपनिवेश बनाकर वहीं रहने लगा। इसी कारण **'सात्वतमत'** दक्षिण भारत में भी प्रतिष्ठित हो गया। हम कह सकते हैं कि **'सात्वत वंश'** ने दक्षिण एवं उत्तर भारत को एक सूत्र में बांधने का भी श्लाघ्य

कार्य किया। इसी कारण **'ऐतरेय ब्राह्मण'** के **'ऐन्द्र महाभिषेक'** पर्व में **'सात्वतगण'** को दक्षिण का निवासी कहा गया है अन्यथा तो ये मूलतः उत्तर भारत के निवासी थे।

प्राचीन काल में सात्वतों ने ही **'सात्वतमत'—'पाञ्चरात्रमत'—'भागवतमत'** का आद्य प्रचार-प्रसार दक्षिण भारत में करने का गौरव प्राप्त किया।

***भक्ति-आन्दोलन के प्रथमचरण** (1500ई.पूर्व से 500ई. पर्यन्त) **की ऐतिहासिक विशेषता** (भक्ति-आन्दोलन के आलोक में)*

इसकी विशेषताएं इस प्रकार हैं—

(1) यही चरण भागवत धर्म(पाञ्चरात्रमत)**के उदय का काल है।**

(2) इसी युग में यह मत पश्चिम और दक्षिण भारत में पहुंच गया।

(3) (शैशुनाग एवं मौर्य वंश के उपरान्त) **शुंगवंशी** राजवंश ने वैष्णव धर्म को राज-धर्म स्वीकार करके इसको राष्ट्रीय प्रतिष्ठा देने का कार्य इसी चरण में हुआ।

(4) **बेस नगर (मिलसा) में स्थित 'गरुडस्तंभ' का संस्थापक यूनानी राजदूत हेलियोडोरस 'परम भागवत' तो था** ही साथ ही वह शुंगवंश के राजा मद्रक या भाग मद्र के शासन काल में राजदूत बनकर भारत आया था और **'भागवत धर्म'** अपनाया था।

(5) चित्तौरगढ़ के निकटस्थ 'नगरी' के पास में स्थित घोशुण्डी का शिलालेख भी इसी चरण का था।

(6) इसी चरण में (ईस्वी सन् के चतुर्थ एवं पंचम शतक में) **वैष्णव धर्म 'स्वर्ण युग' में पहुंचा था** और परम **भागवत गुप्त राजाओं** ने इस धर्म को स्वीकार करके, **'परमभागवत'** की उपाधि धारण करके वैष्णव धर्म को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया था।

(7) इसी काल में **'अहिर्बुध्न्य संहिता'** सात्वत संहिता' एवं **'परम संहिता' का प्रणयन** हुआ तथा और इसी काल में अन्य अनेक संहिताओं के प्रणयन का आरंभ हुआ।

वस्तुतः यही चरण (या युग) **यथार्थ वैष्णव युग** था क्योंकि इसी युग में **पाञ्चरात्र संहिताओं की भी रचना हुई।**

(ख) भक्ति-आन्दोलन का द्वितीय चरण:(700ई.-1400ई.)

इसमें दक्षिण भारत के 'आलवार', श्री रामानुज 'माध्वाचार्य' कर्नाटक का दास कूट, महानुभाव पंथ, वारकरी पंथ, रामदासी पंथ, गुजरात के वैष्णव पन्थ आते हैं।

(ग) भक्ति-आन्दोलन का तृतीय चरण:(1400ई.-1900ई.)

इस चरण में स्वामी राघवानन्द 'रामानन्द' स्वामी रामानन्द, सेन नाई, पीपा जी, संत रैदास, कबीर—'वैरागी सम्प्रदाय'—कृष्णदास पयहारी, कील्हदास, तुलसीदास, 'निम्बार्क सम्प्रदाय'—पुरुषोत्तमाचार्य, श्री भट्ट, हरि व्यास, परशु रामाचार्य, 'सरनी सम्प्रदाय', (हरिदासीमत) 'रुद्र सम्प्रदाय' विष्णु स्वामी-वल्लभाचार्य, 'पुष्टि मत', 'अष्ट छाप', राधा वल्लभी सम्प्रदाय, सद्धजिया वैष्णव सम्प्रदाय, चैतन्यमत-गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय, षट् गोस्वामी, उत्कल के वैष्णवमत, 'पंचसखा धर्म', असम का वैष्णव मत-शंकर देव, एकशरण मत-माधवदेव आदि का प्रचार-प्रसार हुआ।

* पाञ्चरात्र और श्वेतद्वीप—नारद ने 'श्वेत द्वीप' जाकर पाञ्चरात्र दर्शन का नारायण से ज्ञान प्राप्त किया था।

* वैष्णव धर्म की प्राचीनतम आरव्या-'भागवत धर्म' एवं पाञ्चरात्र मत' है।

*** भागवत सम्प्रदाय के उपास्य देव 'वासुदेव' का आद्योल्लेख** (पाणिनि काल)* (ईसा पूर्व षष्ठ शतक) वेदों में (तैत्तिरीय आरण्यक में) भी है—

'नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।। (विष्णु गायत्री)

*** भागवत धर्म या पाञ्चरात्र के अनुयायी *-**

'सूरिः सुहृद् भागवतः सात्वतः पञ्चकालवित्।
ऐकानितकस्तन्मयश्च पाञ्चरात्रिक इत्यपि।।

*** 'एकायन विद्या' और नारद ***—महाभारत में नारद, 'पाद्म तंत्र' 4/2/88 पाञ्चरात्र विद्या के उपासक एवं प्रचारक कहे गए हैं।

* 'एकायन विद्या' का सम्बंध नारद के साथ है।

* **वैष्णव सम्प्रदाय और एकायन** —वैष्णव सम्प्रदाय को '**एकायन**' कहने का कारण यह है कि मोक्ष प्राप्ति का मात्र यही (पाञ्चरात्र) अयन (उपाय) या साधन है। (विष्णु संहिता)

(1) **पाञ्चरात्र में अंशाशिवाद एवं द्वैत का भी प्रतिपादन** मिलता है।

(2) पाञ्चरात्र में भी अद्वैत का प्रतिपादन किया गया है। (वेदों में भी अद्वैत का प्रतिपाद। किया गया है।

'इन्द्रं मित्रं वरुण मग्निमाहु
रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'
अग्निं यमं मातरिश्वानभाहुः।।

ऋ. 1/164/46 अथर्व. 9/10/28

(23) * **संहिताओं की संख्या*** —इनकी संख्या मुख्यतः 108 है किन्तु श्रेडर 210 एवं इससे भी अधिक संख्या की संभावना मानते हैं।

* **मुख्य संहिताओं का नाम**—श्रेडर के अनुसार (1) '**पौष्कर संहिता**' (2) '**सात्वत संहिता**' एवं (3) '**जयाख्य संहिता**' प्रमुख संहिताएं हैं किन्तु अन्य विद्वानों के अनुसार '**सात्वत संहिता**' ही मुख्य संहिता है और यही प्राचीनतम संहिता है। (1) अन्य संहिताएं इसकी अनुवर्ती हैं।

* **दार्शनिक सामग्री की दृष्टि से प्रमुख संहिता**—इस कोटि में '**अहिर्बुध्न्य संहिता**' का नामकरण भी इसी संहिता को आधार मानकर 'पञ्चरात्र ऐण्ड दि अहिर्बुध्न्य संहिता' किया है।

* **अन्य संहिताएं—'ईश्वर संहिता' 'काण्व संहिता' 'पद्म संहिता' 'मोहन्द्र संहिता' 'परम संहिता' 'पद्मोद्भव संहिता' 'सनत्कुमार संहिता, 'पारमेश्वर संहिता' ब्रह्म संहिता' एवं 'वराह संहिता'** आदि।

* **नारद पञ्चरात्र'**—डॉ. भण्डारकर, डॉ. शशि भूषणदास गुप्त एवं श्रेडर इसे अपेक्षाकृत नवीन एवं अप्रामाणिक मानते हैं।

* **संहिताओं का रचना काल**—सामन्यतया इनका रचना-काल ईस्वी चतुर्थ शतक से अष्टम शतक तक है।

* **अहिर्बुध्न्य संहिता' का उद्भव स्थान**—इस संहिता की रचना काश्मीर में हुई थी। इसका उल्लेख उत्पल **वैष्णव की 'स्पन्द प्रदीपिका'** में भी है।

* **काश्मीरीय शैव दर्शन एवं पाञ्चरात्र दर्शन**—इन दर्शनों में यथेष्ट साम्य एवं आधारभूत एकता विद्यमान है।

* **पाञ्चरात्र का स्त्रोत**—इसका स्रोत प्राचीनतम है क्योंकि **डॉ. दास गुप्त** इसका **स्रोत ऋग्वेद का पुरुष सूक्त** स्वीकार करते हैं। (2) **'ईश्वर संहिता'** में इसे **वेद की एकायन शाखा से सम्बद्ध** माना जाता है तथा **'लक्ष्मी तंत्र'** में देवी ने वासुदेव की **पूजा वेद के 'पुरुष सूक्त'** से करने का विधान किया है।

* **शतपथ ब्राह्मण'** (13, 6-1) में कहा गया है कि नारायण **'पाञ्चरात्र'** नामक यज्ञ करके सभी में श्रेष्ठ रूप में प्रतिष्ठित हुए थे। **'शतपथ ब्राह्मण'** में **'पाञ्चरात्र'** शब्द यज्ञ विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है।

* **पाञ्चरात्र का द्वितीय स्रोत**—**'महाभारत'** के शान्ति पर्व में **'श्वेतद्वीप'** का उल्लेख आता है जहां जाकर नारद ने नारायण से पाञ्चरात्र की शिक्षा प्राप्त की थी। यहां उन्हें भक्ति-साधना का भी उपदेश प्राप्त हुआ।

* **पाञ्चरात्र संहिताओं का सर्वप्रथम निर्माण स्थान**—इस दृष्टि से तो उत्तरी भारत को ही इसका गौरव प्राप्त हुआ हैं किन्तु इनका निर्माण दक्षिण भारत में भी हुआ था।

---

(1) डॉ ब्रज बल्लभ द्विवेदी : 'सात्वत संहिता' की भूमिका।
(2) हिस्ट्री ऑफ इण्डियन : फिलॉसफी (भाग-3)

(2) ***महाभारत और पाञ्चरात्र**—यदि पाञ्चरात्र का मूल स्रोत महाभारत को स्वीकार कर भी लिया जाए तो भी दोनों के मतों में पार्थक्य भी है क्योंकि 'महाभारत' के शान्तिपर्व में पाञ्चरात्र संहिताओं की भाँति तांत्रिक तत्त्व नहीं है। (1) **श्रेडर महोदय** महाभारत में भी तांत्रिक तत्त्व होना स्वीकार करते हैं किन्तु अत्यल्प मात्रा में। 'महाभारत' में **'पाञ्चरात्रमत'** के अनुसार पूजा-विधान एवं आचारों का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। **'पाञ्चरात्र' महाभारत से भी प्राचीन है** क्योंकि महाभारत काल में यह प्रतिष्ठित हो चुका था। **डॉ. दास गुप्त की धारणा**—डॉ. एस.एन.दास गुप्त पाञ्चरात्रमत को वैदिक या अवैदिक कोटि में स्पष्टतः रखना स्वीकार नहीं करते। उनका तर्क है कि यदि पाञ्चरात्र वैदिक हैं तो **स्मृतियों में इनकी निन्दा क्यों की गई है?** इतना ही नहीं पाञ्चरात्र या **भागवतों को ब्राह्मणों के साथ भोजन में बैठने क्यों नहीं दिया जाता था?** डॉ. दास गुप्त यह भी कहते हैं कि इसको **'सात्वत मत'** कहा जाता है किन्तु 'सात्वत' का **अर्थ है निम्न जाति।** व्यवसाय की दृष्टि से सात्वत मूर्ति पर चढ़ी भेंट, दान एवं दीक्षा पर आश्रित रहा करते थे। वे वैदिक यज्ञ नहीं करते। चूंकि ये पूजा को ही अपना व्यवसाय बना लिए थे। अतः उन्हें समाज में निम्न स्थान देकर हेय माना जाता था। **डॉ. दास गुप्त** यह भी कहते हैं कि मेरा अनुमान है कि संभवतः बादरायण ने इसी कारण पाञ्चरात्रों का खण्डन किया था।

(25) *** पाञ्चरात्रमत और वैदिक मत**— वेदज्ञ विद्वानों के मतानुसार **'पाशुपतमत'** एवं **'सांख्य' अवैदिक मत हैं** किन्तु पाञ्चरात्र इन्हें वरेण्य मानता है। पाञ्चरात्रमत में वैदिक कर्म काण्ड के स्थान पर उपासना (भक्ति) पर अधिक बल दिया गया है। **श्रेडर कहते हैं** कि वैदिक विद्वान 'पाञ्चरात्र' को अवैदिक कहते रहे हैं।

श्रेडर ने एक बात और कही है कि पाञ्चरात्र-संहिताओं में 'पाशुपतमत' के उस गर्हित स्वरूप को अङ्गीकृत नहीं किया गया है जिसके आधार पर पाशुपतों को बर्बर और वेदनिन्दक कहा जाता रहा

---

(1) डॉ. दास गुप्तः हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी

है। पाञ्चरात्र उस **'पाशुपतमत'** का अनुयायी है जो आगमिक शैव मत है और जिसके ऊपर काश्मीर का शैवमत अवलम्बित है। यह भी सत्य है कि आगमिक शैवमत को भी अपनी वैदिक प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए यथेष्ट प्रयास करना पड़ा है। वे **पूर्णतया वैदिक नहीं माने गए। श्रेडर** कहते हैं कि पाञ्चरात्रमत को पूर्णतया वैदिकमत सिद्ध नहीं किया जा सकता।

'अहिर्बुध्न्य संहिता' पाशुपतों को बर्बर एवं वाममार्गी तो नहीं मानती फिर भी पाशुपतों को **'उग्रव्रतधर'** कहती है और कहती है कि पाशुपतमतावलम्बी—वैदिक कर्मकाण्ड एवं वैदिक संस्कार वाले 'ब्राह्मण धर्म' का अनुगमन करने के अधिकारी नहीं हैं।

सब कुछ होने के बाद भी 'पाञ्चरात्रमत' पाशुपतमत को **अङ्गीकृत तो अवश्य करता है**—यथा—

1. **प्राप्ताः पाशुपतं ये हि धर्मं ब्राह्मणपूर्वकाः।**
   पञ्चरात्रं प्रविश्येव नान्यं धर्म वितन्वते।।

2. पाञ्चरात्र सांख्य एवं वेदान्त के दर्शन को भी स्वीकार करता है—

क. **परोक्षं तत् प्रसंख्यानं ज्ञानं सांख्येन चिन्त्यते।।**
ख. **(वेदान्त) त्र्यन्तै ब्रह्म विज्ञानमपरोक्षं विभाव्यते।।**

—अहि.सं.(13/25/26)

* यह योग दर्शन को भी स्वीकार करता है—

ग. **चित्तवृत्तिनिरोधात्मा योगा योगानुशासने।**
साक्षात्कारावभा सांख्य सिद्ध शुद्धापवर्गदः।।

—अहि.सं. (13/28)

यदि 'पाञ्चरात्र' सर्वसम्मति से वैदिक होता तो **'यामुनाचार्य'** को वैदिक सिद्ध करने के लिए **'आगम प्रामाण्य'** क्यों लिखना पड़ता?

आचार्य रामानुज के भी पूर्व यामुनाचार्य ने 'पाञ्चरात्रमत' को वैदिक सिद्ध करने हेतु **'आगम प्रामाण्य'** नामक ग्रंथ लिखा और **'कापालिक' 'कालामुख'** तथा **'पाशुपतमत'** को अवैदिक कहा। इस **यामुनाचार्योक्त अवैदिक** मत **'पाशुमतमत'** को पाञ्चरात्र **अङ्गीकृत**

किए हुए है तथा 'पाञ्चरात्रमत' में वे अवैदिक तत्त्व भी अङ्गीकृत हैं जिसके कारण यामुनाचार्य ने शैवशाक्तादि मतों को अवैदिक कहा था। यामुनाचार्य ने कहा है कि पाञ्चरात्रमत के भी आदि प्रवर्तक नारायण हैं जो कि वैदिक देवता हैं और नारायण का वर्णन तो उपनिषदों में भी उपलब्ध है अतः 'पाञ्चरात्रमत' वैदिक है।

* डॉ. दास गुप्त यह भी स्वीकार करते हैं कि यह मत इतना प्राचीन है कि यह अवैदिक पूजा-पद्धति ईसापूर्व छठवीं सदी में भी प्रचलित थी।
* बेसनगर के गरुड स्तंभ के लेख से यह प्रमाणित है कि 'भागवतमत' (पाञ्चरात्र मत) ईसा पूर्व द्वितीय शतक में प्रचलित एवं प्रतिष्ठित मत था।

(26) * 'पाञ्चरात्रमत' प्रश्नवाचक चिह्न के घेरे में— *

'यम संहिता' 'बोधायन संहिता' 'हारीति संहिता' 'विष्णु संहिता' 'साम्ब संहिता' 'सूत संहिता' 'आश्वलायन स्मृति' 'बृहन्नारदीय पुराण' 'वायु पुराण' 'लिङ्ग पुराण' 'कूर्म पुराण' 'स्कन्द पुराण' आदि में 'पाञ्चरात्रमत' की निन्दा की गई है।

'स्कन्द पुराण' में पाञ्चरात्रिको को 'ब्राह्मणाधम' एवं 'गर्हित' कहा गया है—

'पाञ्चरात्रे च कापाले तथा कालमुखेऽपि च।
शाक्ते च दीक्षिता व्यूहम्' भवेत् ब्राह्मणाधमः।।

द्वितीयम् पाञ्चरात्रे च तंत्रे भागवते तथा।
दीक्षिताः च द्विजा नित्यम्, भवेद्गर्हिता हरेः।।

'कूर्म पुराण' में तो यहां तक कहा गया है कि पूर्व जन्म में गो वध करने के पाप कर्म से व्यक्ति इस जन्म में 'पाञ्चरात्री' होता है।

इन सबके होते हुए भी—'विष्णु पुराण', 'श्रीमद्भागवत पुराण', 'महाभारत' आदि ग्रंथों में पाञ्चरात्रिकों की प्रशंसा भी की गई है। नारद पुराण, गरुड़ पुराण, 'पद्म पुराण' 'वाराह पुराण' आदि ग्रंथो में पाञ्चरात्रिकों की प्रशंसा भी की गई है।

***'ईश्वर संहिता'-प्रतिपादित दृष्टि*—'पाञ्चरात्रमत' तो वेदों से भी प्राचीनतर है।**

'ईश्वर संहिता' में कहा गया है कि —

*1. पाञ्चरात्रमत का नाम है—**'एकायन वेद'**

*2. यह **'एकायन वेद'** (पाञ्चरात्रमत) **वेदों से भी प्राचीनतर है।**

*3. वासुदेव ने **सनक, सनातन, सनत्सुजाति, सनत्कुमार** एवं **कपिल** के सम्मुख इस परम गोप्य शास्त्र का उपदेश दिया था।

*4. इस शास्त्र का उद्घाटन इसलिए किया गया क्योंकि वेदों के अध्येता परमार्थ तत्त्व को भूल कर वैषयिक भोग, तृष्णा एवं भोगविलास में लीन हो गए थे।

*5. आगे चलकर इस मत में **मिश्रित तत्त्व** आ गए। अत:इस दृष्टि से—

क. **'एकायन वेद'** सात्विक शास्त्र है

ख. (आगे ऋषि-सिद्धान्त-मिश्रित इसका स्वरूप **'राजस शास्त्र'** कहा गया।

ग. और आगे इसमें **मानवों ने भी अपने सिद्धान्त मिला दिए** अत: उसका यह स्वरूप **'तामसशास्त्र'** कहा गया।

श्रेडर कहते हैं कि —'The general trend of the PANCHARATRA is clearly non-vedic" उनकी दृष्टि में **'पाञ्चरात्र' अवैदिक** है।

(27) *** एक अनावश्यक और अप्रामाणिक दृष्टिकोण**— कुछ लोगों की दृष्टि यह है कि—(1) उपनिषद् (2) गीता एवं (3) महाभारत में वैदिक **यज्ञवाद** तथा **अनेक सम्प्रदायों की दृष्टियों को वैदिक धर्म मानकर स्वीकार** लिया गया तथा (1) महाभारत-काल में 'पाञ्चरात्र' एवं 'भागवतमत' ने अवैदिक सिद्धान्तों-साधनाओं-आस्थाओं को अङ्गीकृत कर लिया अत: पाञ्चरात्र में— भक्ति, मूर्तिपूजा, गुह्य योग एवं शक्तिवाद प्रभृति **आर्येतर-अवैदिक-तत्त्व स्वीकार कर लिए गए। परवर्ती काल में इन्हें वैदिक सिद्ध करने की होड़ लग गई।** (3)**'भागवतमत'** द्रविड़ या अनार्य जातियों से गृहीत किया गया और कालान्तर में इसे वैदिक सिद्ध करने का प्रयास किया गया।

(28) * वैष्णवागम की प्राचीनतम शाखायें— प्राचीनकाल में वैष्णवागम की दो शाखायें थीं (1) **'पाञ्चरात्र'** (2) **'वैखानस'** वेंकटेश द्वारा प्रणीत **'वैखानस श्रौत सूत्र'** के भाष्य के अनुसार इस वैखानस शाखा का विकास कृष्ण यजुर्वेद की **'औरवेय शाखा'** से हुआ।

श्री नरसिंह यज्वा द्वारा प्रणीत **'प्रतिष्ठाविधिदर्पण'** के अनुसार इस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक एवं संवर्धक नारायण, विखनस, काश्यप एवं मरीचि आदि हैं। इस सम्प्रदाय के पांच ग्रन्थ अद्यापि उपलब्ध है।।

(1)**मंत्र संहिता** (2)**गृह्य सूत्र** (3)**धर्म सूत्र** (4)**श्रौत सूत्र** (5)**वैखानस आगम**। इन ग्रंथों के अनुसार **वैष्णवागम के दार्शनिक सिद्धान्त** इस प्रकार हैं—

क. 1) **'नारायण'** जगत के मूल कारण हैं। उनकी चार मूर्तियां हैं (1)**'विष्णु'** (2)**'महाविष्णु'** (3)**'सदाविष्णु'** (4)**'सर्वव्यापी'**

(क) **'विष्णु'** के अंश से धर्मप्रधान पुरुष का प्रादुर्भाव हुआ।

(ख) **'महाविष्णु'** के अंश से ज्ञानात्मक शिव का प्रादुर्भाव हुआ।

(ग) **'सदाविष्णु** के अंश से **वैराग्यप्रधान 'अनिरूद्ध'** का आविर्भाव हुआ।

ख. भगवान की माया से ही जीव बंधन-ग्रस्त है। जीव भगवत्कृपा से ही मुक्त हो पाता है। भगवान की कृपा प्राप्त करने का साधन चतुर्विध है—1. **'जप'** 2. **'हवन'** 3. **'ध्यान'** 4. **'अर्चन'**।

ग. भगवदाराधना से (अर्चना से) जीव मुक्ति प्राप्त करता है।

(29) *भगवान की अर्चना*— (मुक्ति के प्रकार और उनके लोक)— पञ्चरात्रमत में ही वैखानस भी अंतर्भुक्त है तथापि दोनों में भेद-दृष्टि भी है।

लोक/मुक्ति	लोक/मुक्ति	लोक/मुक्ति	लोक/मुक्ति
'आमोद' नामक विष्णु लोक में 'सालोक्य मुक्ति' की प्राप्ति	'प्रमोद' नामक महाविष्णु लोक में 'सामीप्य मुक्ति' की प्राप्ति	'सम्मोद नामक सदाविष्णु लोक में 'सारुप्य मुक्ति' की प्राप्ति	'वैकुण्ठ नामक सर्वव्यापी लोक में 'सायुज्य मुक्ति' (श्रेष्ठतम मुक्ति) की प्राप्ति

(30) * वैखानस एवं पाञ्चरात्रमत में दृष्टि–भेद–

इन दोनों शाखाओं में अनेक विषयों में दृष्टि-भेद था।

मन्दिरो एवं मूर्तियों के निर्माण को लेकर तो इन दोनों शाखाओं में गंभीर मतभेद था।

मंदिरो में, मंदिर के मध्य भाग में, **'श्रीदेवी'** एवं **'भूमि देवी'** के साथ **विष्णु की मूर्ति की स्थापना** की जाती थी तथा उनके **दक्षिण भाग में पुरुष** तथा सत्य एवं **वामभाग में अच्युत और अनिरुद्ध** की मूर्ति स्थापित की जाती थी। इस प्रकार स्थापित श्रीविग्रहों का यथाविधि पूजन ही **भगवदाराधना की श्रेष्ठतम विधि** थी।

जहाँ तक **पाञ्चरात्र शाखा** की बात है यह वैष्णव शाखा भी अत्यंत प्राचीन है इसके **नामकरण** (पाञ्चरात्र' नाम) **को लेकर भी भिन्न-भिन्न दृष्टियां हैं यथा–**

(1) **'महाभारत' के अनुसार**–वेदचतुष्टयी एवं सांख्य योग के समावेश के कारण इस सम्प्रदाय का नाम 'पाञ्चरात्र' हुआ।

(2) **'ईश्वर संहिता' के अनुसार**–शाण्डिल्य, औपगायन, मौञ्जायन कौशिक और भारद्वाज नामक पांच ऋषियों द्वारा प्रचारित-प्रसारित होने के कारण एवं पांच रात्रियों में उपदिष्ट होने के कारण इसका नाम 'पाञ्चरात्र' पड़ा।

(3) नारद पाञ्चरात्र के अनुसार–**'पाञ्चरात्र'** नामकरण पांच विषयों के प्रतिपादन के कारण हुआ। **'रात्र'** ज्ञान का वाचक है। **'पाञ्चरात्र'** में मुख्यतः पांच रात्रों या पांच विषयों का प्रतिपादन किया गया है जो निम्नाङ्कित है–परम तत्त्व, मुक्ति, भुक्ति, योग, संसार।

(31) * वैष्णवागम की ऐतिहासिक परम्परा–'महाभारत' के अनुसार महर्षि नारायण ने ऋषि नारद को इस दर्शन का सर्वप्रथम उपदेश दिया था। परवर्तीकाल में देवर्षि नारद अन्य ऋषियों मुनियों को

इसका उपदेश देकर इस मत का प्रचार-प्रसार किया। **'पाञ्चरात्र'** का **नामान्तर 'भागवत' एवं 'सात्वत' भी है।**

(32) * **'चतुर्व्यूह सिद्धान्त और शङ्कराचार्य**— आचार्य शङ्कर ने वैष्णवागम के इस सिद्धान्त का प्रत्याख्यान करते हुए इस अवैदिक मत घोषित किन्तु परवर्ती वैष्णव आचार्य **श्री रामानुज** आदि ने इसे वैदिक ही सिद्ध नहीं किया प्रत्युत् वेदां की ही भांति प्रामाणिक भी माना।

(33) * **वैष्णवागम-साहित्य**— इसका साहितय अत्यन्त विपुल है। **'कापिञ्जल संहिता'** के अनुसार पांचरात्र-संहिताओं की संख्या दो सौ से भी अधिक है। संहिताओं का मूल आकार अत्यधिक बड़ा था किंतु बाद में इसे ऋषियों ने ही घटा दिया।

(34) * **वैष्णवागम की दार्शनिक दृष्टि—**

* **दार्शनिक दृष्टि**— **नारायण** (विष्णु, वासुदेव या श्रीकृष्ण) **ही जगत के मूल कारण हैं** किन्तु **सृष्टि**-पालन-**संहार का कार्य** उनकी शक्ति **'लक्ष्मी'** करती एवं व्यूहों से कराती हैं।

परमात्मा प्राकृत गुणों से परे हैं अतः वे **'निर्गुण'** कहे गए हैं किन्तु —'ज्ञान', 'शक्ति', 'बल', 'ऐश्वर्य', 'वीर्य', 'तेज' नामक दिव्य गुणों से युक्त—**'षाड्गुण्योपेत'** होने के कारण **'सगुण'** भी है।।

भगवती लक्ष्मी उनकी **आत्मभूता शक्ति** है। वे सृष्टि के उद्देश्य से सर्वप्रथम (1) **'क्रिया शक्ति'** एवं (2) **'भूति शक्ति'** के रूप में प्रकट होती है—

'स्वातन्त्र्यादेव कस्माच्चित् कंचित् स्वोन्मेषमृच्छति
आत्मभूता हि या शक्तिः परस्य ब्रह्मणो हरेः।
क्रियाख्यो योऽयमुन्मेषः स भूत परिवर्तकः।
लक्ष्मीमयः प्राणरूपो विष्णोः संकल्प उच्यते।।[1]

सृष्टि प्रक्रिया— भगवती लक्ष्मी (क)**'क्रियात्मिका शक्ति'** एवं (ख) **'भूति शक्ति'** का आश्रय लेकर **दो प्रकार की सृष्टि** करती

है—(1) 'शुद्ध सृष्टि' (2) 'शुद्धेतर सृष्टि'

(क) 'शुद्ध सृष्टि'—'शुद्ध सृष्टि' के स्तर पर वासुदेव (नारायण) अपने को चार रूपों में प्रकट करते हैं।

वासुदेव की चतुर्धाभिव्यक्ति

↓

1 'व्यूह'

↓

वासुदेव	संकर्षण	प्रद्युम्न	अनिरुद्ध
6 गुण ज्ञान, शक्ति ऐश्वर्य, बल, वीर्य, तेज	2 गुण ज्ञान बल प्रधान गुण	2 गुण ऐश्वर्य वीर्य प्रधान गुण	2 गुण शक्ति तेज प्रधान गुण

2 'विभव'

↓

प्रधान	गौण
(इनकी उपासना का फल= मुक्ति	इनकी उपासना का फल= मुक्ति

3 'अर्चावतार'

↓

इनकी उपसना का फल
(1) मुक्ति
(2) मुक्ति

4 'अन्तर्यामी'

↓

समस्त प्राणियों के द्वारा निष्पादित समस्त क्रियाओं के नियमन हेतु उनके हृत्पद्म में अवस्थित भगवान ही अन्तर्यामी हैं।

इनकी उपासना का फल= कर्तृत्वाभिमान का त्याग

(ख) 'शुद्धेतर सृष्टि'—

त्रिगुणात्मक प्रकृति 'शुद्धेतर सृष्टि का आविर्भाव करती है। **'प्रद्युम्न', 'कूटस्थ', 'पुरुष', 'माया', 'नियति,' 'काल', 'सत्व-रज-तम', 'बुद्धि'** और **'अहंकार'** इसी सृष्टि से सम्बद्ध हैं। अहंकार—

(1) **'वैकारिक सृष्टि'** : **'सात्विक सृष्टि'** (2) **'तेजस सृष्टि'** **'राजस सृष्टि'** (3) **'मूतादि'** **(तामस सृष्टि)**।

(35) *जीव और उसका तिरोधन*—वैष्णवागम के अनुसार जीव परमेश्वरवत **विभु, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ एवं नित्य है।**

जब परमात्मा लीला के लिए विश्व-संरचना (सिसृक्षा) से युक्त होते हैं तब अपनी **'तिरोधान शक्ति'** द्वारा जीव की विभुता, सर्वशक्तिमत्ता एवं सर्वज्ञता पर आवरण डालकर जीव को यथाक्रम **'अणु' अल्पशक्तिमान एवं अल्पज्ञ** बना देते हैं।

जीव अणुता, अल्पकर्तृत्व, अल्पज्ञातृत्व आदि मलात्मक बन्धनों से परिबद्ध होकर अपने पूर्वकृत कर्मों के अनुसार—(1)जन्म (2)आयु एवं (3)भोगों को प्राप्त करके भवसागर में संसरण करता रहता है।

जीवों को क्लेशों से परिदग्ध एवं प्रतप्त, दुःखार्त एवं व्याकुल देखकर परमात्मा अपनी अहेतुकी करुणा के कारण जीव को कृपापूर्ण दृष्टि से देखता हुआ उस पर शक्तिपात करता है या अपनी **'पञ्चमी शक्ति'** के प्रभाव से उसे अनुग्रहीत करके (अपनी प्रापंचिक लीला समाप्त करने की इच्छा से) जीवों में वैराग्य-विवेक उद्‌बुद्ध करके उनमें मुमुक्षा का आविर्भाव करता है और उससे जीव भगवान की शरण में जाकर उनसे उनकी सेवा करने के सौभाग्य को प्राप्त करके मुक्त हो जाता है।

(36) * अवतारवाद और पाञ्चरात्र-दर्शन—'पाञ्चरात्र' अवतारवाद का प्रतिपादन करता है। निर्गुणपंथी अवतारवाद नहीं मानते किंतु सगुणवादी चिन्तन में यह स्वीकृत है। श्री कृष्ण गीता में कहते हैं—'संभवामि युगे युगे।।' **'पुरुष सूक्त'** में पुरुष का वर्णन संभवतः **'पुरुषावतार'** के रूप में ही किया गया है। ब्राह्मण ग्रंथों में **वराह, मत्स्य, कूर्मावतार** का उल्लेख है। **'तैत्तिरीय संहिता'** में **वराहावतार** का संकेत प्राप्त होता है। **'जैमिनीय ब्राह्मण'** में **कूर्मावतार** का भी उल्लेख है। ब्राह्मण ग्रंथों के बाद अवतारवाद महाभारत एवं गीता में प्राप्त होता है। पाञ्चरात्र मानता

---

(1) अहिर्बुध्न्य संहिता (2) जानामि धर्मं न च में प्रवृति : जानाम्य धर्मं न च में नितृतिः। केनापि देवेन हृदिस्थिलेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।

है कि भगवान अधर्म के विनाशार्थ चार **रूपों में अवतार ग्रहण** हैं—(1)**'व्यूह'** (2)**'विभव'** (3)**'अर्चावतार'** एवं (4)**'अंतर्यामी'**। 'व्यूहावतार' में 3 व्यूह हैं—(1)**'संकर्षण'** (2)**'प्रद्युम्न'** (3)**'अनिरुद्ध'**। 'विभवावतार' में 39 विभव हैं। **'अर्चावतार'** तो मूर्तियां हैं। **'अंतर्यामी'** जीवों के हृदय में निवास करते हैं। भागवत में—(1)**'पुरुषावतार'** (2) **'गुणावतार'** (3)**'मन्वन्तारावतार'** (4)**'कल्पावतार'** (5)**'युवावतार'** आदि का उल्लेख किया गया है।

(37) * वैष्णव सम्प्रदाय और पाञ्चरात्रमत* —

चार **वैष्णव सम्प्रदाय** हुए और सभी ने पृथक-पृथक धाराओं में **वैष्णव धर्म का प्रचार** किया। इन चारों सम्प्रदायों के **मूल प्रवर्तक भगवान नारायण** या नारायणी (विष्णु एवं वैष्णवी) हैं। मूल प्रवर्तक विष्णु के होने के कारण इन सभी भिन्न-भिन्न धाराओं को **'वैष्णव'** एवं सम्प्रदायों को **'वैष्णव सम्प्रदाय'** कहा गया है। ये **पाञ्चरात्रानुयायी** हैं।

'वैष्णव सम्प्रदायों के सर्वाद्य प्रवर्तक भले ही विष्णु रहे हों किन्तु व्यवहारत: इनके प्रवर्तक विष्णु के भक्त थे।

(38) * वैष्णव सम्प्रदाय एवं इनके प्रवर्तक *

1	2	3	4
'श्री सम्प्रदाय' (विष्णु भक्त भगवती महालक्ष्मी	'हंस सम्प्रदाय' सनकादिपरमहंसो द्वारा प्रवर्तित	'ब्रह्म सम्पदाय' (ब्रह्मा द्वारा प्रवर्तित	'रुद्रसम्प्रदाय' (भगवान रुद्र द्वारा प्रवर्तित)
(1)प्रधान प्रचारक- आचार्य रामानुज (2) सिद्धान्त- 'विशिष्टाद्वैतवाद'	(1)प्रधान प्रचारक- निम्बार्काचार्य (2) सिद्धान्त- द्वैताद्वैतवाद'	(1)प्रधान प्रचारक- मध्वाचार्य (2) सिद्धान्त- 'द्वैतवाद'	(1)प्रधान प्रचारक- क. विष्णु स्वामी ख. वल्लभाचार्य (2) सिद्धान्त- 'शुद्धाद्वैतवाद'

(39) * **'गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय'**—यह सम्प्रदाय भी एक वैष्णव सम्प्रदाय ही है और इसे **'माध्व सम्प्रदाय'** में उसकी एक शाखा के रूप में अंतर्भुक्त मान लिया गया है। चैतन्यमहाप्रभु-प्रवर्तित (चैतन्यदेव

का) यह 'गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय' एक स्वतंत्र (पृथक) वैष्णव सम्प्रदाय की अभिज्ञा नहीं प्राप्त कर सका।

चैतन्य देव का परिचय

(क) चैतन्यदेव के सन्यास गुरु 'केशव भारती' थे और वे माध्व सम्प्रदाय के सन्यासी थे।

(ख) चैतन्य देव के दीक्षा-गुरु 'ईश्वरपुरी' थे।

(क) दीक्षा गुरु— ईश्वरपुरी के गुरु } ('माधवेन्द्र पुरी')
(ख) सन्यास गुरु— केशव भारती के गुरु }

***चैतन्यदेव एवं मध्वाचार्य**—इन दोनों के सिद्धान्तों में ऐक्य नहीं है। केवल सिद्धान्त ही नहीं प्रत्युत दोनों की उपासना-पद्धति एंव आदर्शों में भी भेद लक्षित होता है।

गौड़ीय वैष्णवमत—

(1) **'गौड़ीय वैष्णवमत'** में आगमिक तत्वों का प्राधान्य है।

(2) एक समय यह भी था जबकि आगम की सर्वोच्च प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए वेदों की अप्रमाणिकता एवं हेयता सिद्ध करने का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। किन्तु गौड़ीय आचार्यों ने अपने मत को वैदिक मत सिद्ध करने का पूर्ण प्रयास किया। कहीं कहीं वैष्णवमत को पाशुमत आदि शैवमतों के समान अवैदिक कहकर स्मार्तों ने इनकी उपेक्षा की थी।

* 'पाञ्चरात्रमत' और भागवतमत *

(3) **'गौड़ीय सम्प्रदाय'** पाञ्चरात्रमत के अन्तर्गत है।

(4) यद्यपि **'पाञ्चरात्रमत'** एवं **'भागवतमत'** दोनों अभिन्न हैं तथापि प्राचीन काल में दोनों मतों में भिन्नता थी किन्तु कालान्तर में दोनों सम्प्रदाय मिलकर अभिन्न हो गए।

(4) **गौड़ीयमत,** शाक्त तन्त्र, पाञ्चरात्रमत, महायानी बौद्ध साधना से प्रभावित है। गौड़ीय सम्प्रदाय के मूल में आगम का प्राधान्य है।

(5) **'भागवतमत'** मुख्यतया श्रीमद्भागवत पुराण पर आधृत था। **जीव गोस्वामी** ने भागवत की अपनी टीका एवं अपने **'षट्सन्दर्भ'** की टीका में **'भागवतमत'** पर प्रकाश डालते हुए उसका पाञ्चरात्रमत के साथ समन्वय किया है।

(6) **पाञ्चरात्रमत का प्रारंभिक उल्लेख 'महाभारत'** के शान्तिपर्व के मोक्षधर्म पर्व के नारायणीय खण्ड (अध्याय: 350) में प्राप्त होता है। इसमें **वक्ता नारायण** एवं **श्रोता नारद** हैं।

(7) **'हर्षचरितम्'** में **'पाञ्चरात्र'** और **'भागवत सम्प्रदाय'** का पृथक-पृथक उल्लेख है।

(40) *आचार्य शङ्कर के द्वारा पाञ्चरात्रमत का खण्डन (पूर्व पक्ष)*

(8) आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र (2-2-42;43) के भाष्य में 'भागवतमत' का खण्डन किया है अत: 'भागवतमत' और 'शाङ्कर अद्वैतमत' भिन्न-भिन्न एवं विरोधीमत हैं।

(9) **आचार्य शङ्कर** ब्रह्म सूत्र (2/2/42) के भाष्य में कहते हैं कि **'उत्पत्य सम्भवात्'** (2/2/42) का अर्थ यह है कि * **वासुदेव से सङ्कर्षण** की उत्पत्ति मानना वेदविरुद्ध है क्योंकि 'उत्पत्यसम्भवात्' सूत्र के अनुसार **'जीव की उत्पत्ति संभव नहीं है।।'**— किन्तु **पाञ्चरात्र 'जीवोत्पत्तिवाद'** मानता है ।

भागवत शास्त्र या पाञ्चरात्रागम का सिद्धान्त यह है कि जगत के परमकारण **परब्रह्म श्री 'वासुदेव'** हैं। वे ही विश्व के **निमित्तोपादान कारण** हैं।

—यह कथन तो वेद विरुद्ध नही है किन्तु—यह कहना वेद-विरुद्ध है कि **वासुदेव से सङ्कर्षण की उत्पत्ति होती है क्योंकि जीवोत्पत्ति की मान्यता वेद में नहीं है।** जीव तो जन्म-मरण से मुक्त एवं नित्य है—**'न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।**[1]

(1) कठोपनिषद (1/2/18)

* उत्पन्न होने वाली वस्तु कभी नित्य नहीं हो सकती अतः **जीवोत्पत्ति की दृष्टि असंभव** है क्योंकि तब तो (जीव को उत्पन्न एवं मरणशील तथा अनित्य मान लेने पर) जीव के बंधन-मुक्ति का सिद्धान्त भी अप्रमाणित हो जाएगा।

आचार्य शङ्कर 'पाञ्चरात्रमत' का यह कहकर भी खण्डन करते हैं कि—(1) परब्रह्म भगवान **वासुदेव से जीव की उत्पत्ति** के ही समान **'संकर्षण'** नामक चेतन जीवात्मा से **'प्रद्युम्न' नामक मनस्तत्त्व** को तथा (2) **'प्रद्युम्न' नामक मनस्तत्त्व** से **'अनिरुद्ध' नामक अहङ्कार तत्त्व की उत्पत्ति** मानना भी संभव नहीं है। कारण यह है कि—जीवात्मा 'कर्ता' और चेतन है और मन 'करण' है। 'कर्ता' से 'करण' की उत्पत्ति संभव नहीं है।

ब्रह्मसूत्र : (1) **'उत्पत्त्यसंभवात्'** (2/2/42)
(2) **न च कर्तुः करणम्।** (2///43) (पूर्व पक्ष)

ब्रह्मसूत्र : (1) **विज्ञानादिभावे वा तद्प्रतिषेधः** (2/2/44)
(2) **उत्पत्त्यसम्भवात्।।** (2/2/45) (उत्तर पक्ष)
(3) ब्र.सू. 2/2/44 एवं 2/2/45—द्वारा*उत्तरपक्ष का प्रस्तुतीकरण*

उत्तर पक्ष (2/2/42)—(ब्रह्मसूत्र)

(1) **'विश्ज्ञानादिभावे वा तद प्रतिषेधः।।** (2/2/44)।
नि:सन्देह ('विज्ञानादिभावे') पाञ्चरात्रशास्त्र के द्वारा भगवान के विज्ञानादि षड्विध गुणों का संङ्कर्षण आदि में भाव (होना) सूचित किया गया है। अतः उनकी उत्पत्ति का वेद में निषेध नहीं किया गया है।

सिद्धान्त पक्ष

(1) पूर्वपक्ष का यह कथन कि—'श्रुति में **जीवात्मा की उत्पत्ति का विरोध** है एवं **कर्ता से करण** की उत्पत्ति नहीं हो सकती'। इस विषय में—**सिद्धान्त पक्ष** का उत्तर यह है कि (1)'पाञ्चरात्रदर्शन में *जीवोत्पत्ति एवं कर्ता से करण की उत्पत्ति बताई ही नहीं गई है।।

(2) **'संकर्षण'** (जीव तत्व), **'प्रद्युम्न'** (मनस्तत्वो) और **'अनिरुद्ध'** (अहङ्कार तत्व)— जीव, मन एवं अहङ्कार तत्व के कर्ता नहीं अधिष्ठाता मात्र हैं और ये भगवान वासुदेव के अङ्गभूत तत्व हैं क्योंकि पाञ्चरात्रमत में **'संकर्षण'** को **भगवान का प्राण, 'प्रद्युम्न' को 'मन'** एवं **'अनिरुद्ध'** को अहङ्कार माना गया है। उनकी उत्पत्ति का वर्णन भगवान के ही अंशों का उन-उन रूपों में अभिव्यक्ति है न कि नव्य जन्म।

(3) **'अजायमानो बहुधा विजायते'** (यजुर्वेद 30/19) का उदा. (वैदिक वचन) वासुदेव का **'संकर्षण'** आदि व्यूहों के रूप में प्रकट होना प्रामाणिक बताता है और वेद-विरुद्ध नहीं है। श्री रामादिक अवतारों की भांति भगवान वासुदेव भक्तों पर कृपा करके स्वेच्छा से ही **'चतुर्व्यूह'** रूप में प्रकट होते हैं।

(4) भागवत शास्त्र में इन चारों व्यूहों की **उपासना** भगवान की ही उपासना मानी जाती है। वासुदेव विभिन्न अधिकारियों के लिए विभिन्न रूपों में उपास्य होते हैं अतः **'चतुर्व्यूह'** माने गए हैं। व्यूहों की पूजा परमात्म-पूजा ही है।

(5) संकर्षण आदि का जन्म साधारण जीवों की भांति नहीं है क्योंकि वे चारों भगवद्भावों (चैतन्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य एवं तेज आदि भगवद्भावो एवं लक्षणों) से सम्पन्न माने गए हैं। अतः व्यूहत्रय परब्रह्म परमेश्वर भगवान वासुदेव से भिन्न तत्व नहीं है।

—सारांश यह है कि पाञ्चरात्रमत भी वेदानुकूल ही हैं। (5) ब्र.सू. **'विप्रतिषेधाच्च'**(2/2/45) का अर्थ यह है कि—'इस शास्त्र में जीवोत्पत्ति का निषेध किया गया है।

—इसलिए भी पाञ्चरात्रमत वेद विरुद्ध नहीं है।'

(6) **'पाञ्चरात्र'** का यह कथन कि 'शाण्डिल्य मुनि ने साङ्गवेद चतुष्टय में निष्ठा (निश्चल स्थिति) न पाकर इस भक्तिशास्त्र का अध्ययन किया।।' —वेदों की निन्दा नहीं है प्रत्युत् भक्ति शास्त्र की महिमा का प्रतिपादन मात्र है।

(7) **'छान्दोग्योपनिषद'** (7/1/2-3) में भी नारद द्वारा सनत्कुमार से

यह कहना कि —'मैंने समस्त वेद, वेदाङ्ग इतिहास पुराण आदि पढ़ डाले किन्तु आत्मतत्वानुभूति नहीं हुई।'

वेद-विरोधी नहीं प्रत्युत् आत्मज्ञान की महिमा का प्रतिपादन है। इसी प्रकार **शाण्डिल्य का कथन** वेद-विरोध नहीं प्रत्युत भक्तिशास्त्र की महिमा का प्रतिपादन मात्र है। अतः ये सारे कथन वेद विरोधी नहीं प्रत्युत् वेदानुकूल ही हैं। श्री कृष्ण ने श्री अर्जुन से कहा था कि—

'त्रैगुण्यविषया वेदा निरत्रैगुण्यो भवार्जुन।।'

-तो क्या इस कथन में वेद-विरोध है? नहीं।

'ब्र.सू.' (2-2-42-43) **रामानुजानुसार** पाञ्चरात्र सिद्धान्त के समर्थक हैं किन्तु **शाङ्करमतानुसार** ये सूत्र पाञ्चरात्रमत के विरोधी हैं।

(41) ***रामानुज की दृष्टि**—(1) **बादरायण** (सूत्रकार) पाञ्चरात्र सिद्धान्त के समर्थक थे। (2) पाञ्चरात्रमत अवैदिक नहीं है।

यामुनाचार्य की दृष्टि—यामुनाचार्य ने **'आगम प्रामाण्य'** में पाञ्चरात्र सिद्धान्त को वैदिक मत सिद्ध किया है।

'पाञ्चरात्र' को **'सात्वत धर्म'** भी कहा गया है क्योंकि यह सात्वतगुणों का धर्म है। (महाभारत : नारायणीयोपाख्यान)

* अनेक लोगों ने यह भी कहा है कि-पाशुपत, सांख्य एवं योग आदि की तरह पाञ्चरात्र भी **अवैदिक मत** है किन्तु यह कथन सत्य नहीं है।

(42) ***पाञ्चरात्र और भक्ति**—वेदों में 'भक्ति' का विवरण अधिक प्राप्त नहीं होता।

* **'वैदिक उपासना' भक्ति उपासना नहीं कही जा सकती।** वैदिक 'कर्मकाण्ड', 'ज्ञानकाण्ड' एवं 'उपासना काण्ड' तीनों में **'भक्ति'** का वाच्यार्थ स्पष्टतः उपलब्ध नहीं होता। **'एकायन मार्ग'** वेद में होने पर भी उसका प्रचुर प्रतिपादन वेदों में नहीं पाया जाता।

'भक्ति' क्या है? 'भक्ति है—चित्त की भावात्मक अभिव्यक्ति। **न्याय-वैशेषिक** आदि शास्त्रों का भक्ति के साथ अन्तर्संबंध यथार्थतः दृष्टि गोचर नहीं होता क्योंकि भक्ति यहां अंशी रूप में उपेक्षित है।

यही स्थिति वेदों में भी है।

(43) **शाण्डिल्य, नारद एवं पाञ्चरात्रमत**—नारद् एवं शाण्डिल्य दोनों पाञ्चरात्रमत से सम्बद्ध थे। **नारद ने नारायण से पाञ्चरात्रदर्शन का ज्ञान** प्राप्त किया था। शाण्डिल्य के नाम से **'शाण्डिल्य संहिता'** नामक ग्रंथ **पाञ्चरात्रान्तर्गत** ही है। यह पाञ्चरात्र संहिता ही है। **नारद** पाञ्चरात्रमतावलम्बी थे। सभी दर्शन शास्त्र यही मानते हैं कि आत्म ज्ञान के बिना मुक्ति की संभावना नहीं है। **'नारद भक्ति सूत्र'** एवं **'शाण्डिल्य भक्ति सूत्र'** मानते हैं कि भक्ति ही मुक्ति का साधन है। 'अपरा भक्ति' 'परा भक्ति' का साधन है अतः **'भक्ति' भक्ति का साधन** है।

पाञ्चरात्र संहिताओं की संख्या—सामान्यतः इनकी संख्या 108 मानी जाती रही है किन्तु **श्रेडर महोदय** ने **210 संहितायें बताई** है। किन्तु इनसे भी अधिक अन्य संहिताओं का उल्लेख मिलता है।

(44) ***पाञ्चरात्र का दार्शनिक सिद्धान्त**—इतने विशाल पाञ्चरात्र साहित्य में एक ही दृष्टि का प्रतिपादन संभव नहीं है। **काश्मीरीय आगम** को ही ले लीजिए! इसमें **'द्वैतवाद'** एवं **'अद्वैतवाद'** दोनों का प्रतिपादन किया गया है—

*** काश्मीरीय त्रिक मत ***

↓

	1	2	3
1. आचार्य-	त्र्यम्बक	आमर्दक	श्रीनाथ
2. सिद्धान्त-	अद्वैतवाद	द्वैताद्वैतवाद	द्वैतवाद

*पाञ्चरात्रागम में भी (1) अद्वैतवाद एवं (2) द्वैतवाद दोनों दृष्टियों का संनिवेश है।

शाङ्कर 'अद्वैतवाद' (निर्विशेष अद्वैतवादः केवला द्वैतवाद) पाञ्चरात्र में नहीं है।

(45) 'स्पन्द', 'प्रत्यभिज्ञा', 'क्रम' एवं 'कौल' मत तथा पाञ्चरात्र–

* अद्वैतवाद

'स्पन्द', 'प्रत्यभिज्ञा', 'क्रम' एवं 'कौल' मत में '**द्वयात्मक अद्वयवाद**' है। यह **शिवशक्ति का सामरस्य** है। यह '**द्वयात्मक अद्वैत**' ही काश्मीरियों का '**अद्वैतवाद**' है किन्तु **शङ्कर** का '**अद्वैत**' शक्ति विहीन, एकात्मक, '**केवलाद्वैतवाद**' (निर्विशेष अद्वैतवाद) है। इनके '**अद्वैतवाद**' में ब्रह्म मात्र सत्य है–'**ब्रह्म सत्यं**' अतः जीव-जगत दोनों मिथ्या हैं।

'पारमार्थिक सत्य' मात्र ब्रह्म है-'**ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या; जीव ब्रह्मैव नापरः।**' (यह शक्तित्यागात्मक अद्वैत है)

शैव-वैष्णव-शाक्त आगमों में प्रतिपादित अद्वैतवाद में (1) शक्ति-ग्रहणमूलक एवं रस-भक्ति-सिक्त अद्वैत है। बौद्ध महायान सम्प्रदाय में भी शक्ति गृहीत है। शक्ति है '**प्रज्ञापारमिता**'। **बोधिसत्त्ववाद** की नींव यही शक्ति-स्वीकृति है। पाञ्चरात्र सम्प्रदाय भी '**शक्तिमूलक अद्वैतवाद**' का पोषक है।

(46) तंत्र के प्रतिपाद्य विषय एवं पादचतुष्टय*–

पूर्ण तंत्र के चार खण्ड होते हैं, जो चार मुख्य विषयों का प्रतिपादन करते हैं। प्रत्येक तंत्र में सभी पाद या खण्ड नहीं मिलते।

तंत्र के प्रतिपाद्य विषयों का पादात्मक वर्गीकरण

1	2	3	4
प्रथम खण्ड 'ज्ञान खण्ड' ज्ञान पाद	द्वितीय खण्ड 'योग खण्ड' योग पाद	तृतीय खण्ड 'क्रिया खण्ड' क्रिया पाद	चतुर्थ खण्ड 'चर्या खण्ड' चर्यापाद
दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैतवाद एक देववाद, रहस्यवाद मंत्र शास्त्र एवं यंत्र शास्त्र	सिद्धि-प्राप्ति एवं माया	मूर्ति, मन्दिर आदि के निर्माण की प्रक्रिया	विभिन्न उत्सवों एवं सामयिक कर्तव्यों का वर्णन

यद्यपि हर तंत्र में ये चार खण्ड (पाद चतुष्टय) नहीं मिलते तथापि

उसमें दर्शन, रहस्यवाद, माया, क्रिया एवं धर्माचरण का सम्मिश्रण प्राप्त है। [1]

(47) अद्वैतभाव की पुष्टि—"सामुद्रो वै तरंगः न तु तारंगो वै समुद्रः" की द्वैतमूलक शाङ्कर दृष्टि सर्वतोभावेन वैष्णवागम को स्वीकार नहीं है। यहां अद्वैत की अभीप्सा कम नहीं है। भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि-'विषयेच्छा से निवृत्त, मेरी भक्ति से जो उल्लासित आत्मा 'मैं' और 'तुम' के भाव से पृथक होती है उन्हीं का शरीर **'मेरा शरीर'** होता है।'

निवृत्तविषयेच्छस्य मद्भक्त्युल्लसितात्मः।
आन्तरं यदनालम्बमंहत्वं तद्वपुर्मम।। [2]

*** वैष्णवागम के पाद चतुष्टयः—इन्हीं चार पादों के भीतर वैष्णवागम के सारे प्रतिपाद्य विषय आ जाते है। यथा**

(1) **'ज्ञानपाद'**—इसमें ब्रह्म, जीव और जगत सम्बंधी दार्शनिक सिद्धान्तों का निरुपण किया गया है।

(2) **'योगपाद'**—इसमें यौगिक क्रियाओं का निरुपण किया गया है।

(3) **'क्रियापाद'**—इसमें मंदिरों और मूर्तियों के निर्माण की विधि, मूर्ति-स्थापन, पूजन आदि का वर्णन मिलता है।

(4) **'चर्यापाद'**—यह आचार, नियमादिक की आचार-संहिता है

(48) *वैष्णवागम के 'ज्ञानपाद' में साधना के ज्ञान मार्ग पर प्रकाश डाला गया है।*

'ज्ञान' का स्वरूप—

'विष्णुपुराण' वैष्णवागम का उपजीव्य है। **'विष्णुपुराण'** में कहा गया है कि—

(1) 'कोई भी पदार्थ न दुखमय है और सुखमय। (सारे दर्शन दुःखों को दूर करने एवं सुखों की प्राप्ति करने के उद्देश्य से अपने चिन्तन का ताना-बाना बुनते हैं किन्तु विष्णुपुराण में दोनों की सत्ता का ही निषेध कर दिया गया)

---

(1) विण्टरनिट्ज़ः प्राचीन भारतीय साहित्य (2) ल.तं. (14/32)

(2) 'ये सुखः दुःख तो मन के विकार मात्र हैं।
(3) 'परमार्थतः **'ज्ञान ही पर ब्रह्म है'** किन्तु अविद्या की उपाधि से वही बंधन का कारण भी है।'
तभी तो **'त्रिक दर्शन'** में कहा गया है कि 'ज्ञानं बन्धः'।
(4) यह सम्पूर्ण विश्व ज्ञानमय ही है। **ज्ञान से भिन्न अन्य कोई वस्तु है ही नहीं।** 'विद्या' और 'अविद्या' भी 'ज्ञान' ही है—

'तस्माद दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुखात्मकम्।
मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादि लक्षणः।
ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं बन्धाय चेष्टयते।
ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम्।।
विद्या विद्येति मैत्रैय ज्ञानमेवोपधारय।। (1)

वे ही ईश्वर समष्टि और व्यष्टिरूप हैं, वे ही व्यक्त, अव्यक्त स्वरूप हैं, वे ही सबके स्वामी, सबके साक्षी और सर्वज्ञ है।। उन्हें 'परमेश्वर' कहते हैं। जिसके द्वारा वे निर्दोष, विशुद्ध, निर्मल एवं एकरूप परमात्मा देखे या जाने जाते हैं। उसी का नाम है- **'ज्ञान'** और उसके विपरीत जो है वह है—**'अज्ञान'**—

'संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम्।
संदृश्यते वाप्यवगम्यते वा, तज्ज्ञानम ज्ञानमतोऽन्यदुक्तम्।। (2)
भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत्।
धाता विधाता जगतां 'वासुदेव' स्ततः प्रभुः। (5/6/82)
'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (वेद)

* 'नारद पञ्चरात्र' (1/1/54-55) में 'ज्ञान' के (1) **'सात्विक'** (2) **'राजस'** एवं (3) **'तामस'** भेद तो बताये ही गए हैं साथ ही इसे पांच प्रकार का कहा गया है—

'ज्ञानं पञ्चविधं प्रोक्तं पञ्चरात्रं विदुर्बुधाः।।

पाञ्चरात्र को 7 प्रकार का कहा गया है **'पाञ्चरात्रं सप्तविधंज्ञानिनां ज्ञानदेपरम।।**

---

(1) विष्णुपुराण अ. (6/2/49/51) (2) वि.पु. (5/6/87)

वैष्णवागम का 'ज्ञानपाद'—

(49) वैष्णवागमोक्त ज्ञान का स्वरूप:

'ज्ञान' के पांच प्रकार-

प्रथम ज्ञान	द्वितीय ज्ञान	तृतीय ज्ञान	चतुर्थ ज्ञान	पञ्चम ज्ञान
यह जन्म, जरा, वार्धक्य मृत्यु का नाशक ज्ञान है।	यह मुमुक्षुओं के लिए उपदिष्ट ज्ञान है। यह मुक्ति प्रद एवं हरि के श्री चरणों में लीन करने वाला ज्ञान है।	यह परम पवित्र ज्ञान मंगलमय एवं श्री कृष्ण की भक्ति प्रदान करने वाला है। यह दास्य ज्ञान है।	समस्त यौगिक सिद्धियों को प्रदान करने वाला यौगिक ज्ञान है	मानवों का वैषयिक सांसारिक ज्ञान है
सात्विक ज्ञान	सात्विक ज्ञान	त्रिगुणातीत निर्गुण परम ज्ञान है।	राजसिक ज्ञान	तामसिक ज्ञान

*'पञ्चरात्र' मत के नाम में ही ज्ञानोल्लेख कर दिया गया हैं क्योंकि 'रात्र' का अर्थ है-'ज्ञान'।

* **ज्ञानमार्ग का प्रथम सिद्धान्त**—कर्ममार्ग का परित्याग।

'यथामृतेन तृप्तस्य नाहरेण प्रयोजनम्।
स्वात्मानन्दोदये तद्वत्कर्मभिर्न प्रयोजनम्।।

(माहेश्वर तंत्र-ज्ञानखण्ड 17/6)

* **ज्ञान मार्ग का द्वितीय सिद्धान्त**—परोक्ष ज्ञान की सर्व व्याप्ति से भी ज्ञानोदय असंभव।

ब्रह्मवाद: कलियुगे गेहे गेहे जने जने
धर्म कर्म विलोपार्थं भविष्यति न संशय:।।

* **ज्ञान मार्ग तृतीय सिद्धान्त**—

'ज्ञानं तत्तु विजानीयात् येनात्मा भासतेस्फुट:
'ब्रह्मवादेन सदृशं पवित्रं नहि किञ्चन। (17/10)

'स ए वेदं जगत्सर्वं स्थूलसूक्ष्मणयं च यत्।
अज्ञाना द्रजत भाति शुक्तिकायां यथा प्रिये।। (मा.तं./ज्ञान.1/32)

(1) देवर्षि नारद ने 'नारद पञ्चरात्र' में ज्ञान के पांच रूपों का वर्णन इस प्रकार किया है-

'रात्रं' च ज्ञान वचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम्।
तेनेदं पञ्चरात्रं च प्रवदन्ति मनीषिण:।।

(1) **प्रथम ज्ञान**— ज्ञानं परम तत्वं च जन्ममृत्युजरापहम्।
ततो मृत्युञ्जय: शंभु: संप्राप्त कृष्णवक्त्रत:।।

(2) **द्वितीय ज्ञान**— ज्ञानं द्वितीयं परमं मुमुक्षूणां च वाञ्छितम्।
परं भुक्तिपदं शुद्धं यतो लीनं हरे: पदे।।

(3) **तृतीय ज्ञान**— ज्ञानं शुद्धं तृतीयं च मङ्गलं कृष्णभक्तिदम्।
तद्दास्यदमभीष्टं च यतो दास्यं लभेद्धरे:।

(4) **चतुर्थ ज्ञान**— चतुर्थं योगिकं ज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदं परम्।
सर्वस्वं योगिनां पुत्र सिद्धानां च सुख प्रदम्।।
अणिमालघिमा व्याप्ति: प्रकाम्यं महिमा तथा
ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता। आदि

(5) **पञ्चम ज्ञानं**— च परमं प्रोक्तं तद्वैषयिकं नृणाम्।
यदिष्ट देवी माया सा परं संमोहकारणम्।
विषये बधचित्तं च सर्वमिन्द्रिय सेवनम्।
पोषणं स्वकुटुम्बानां स्वात्मनश्चं निरन्तरम्।

(50) * वैष्णवागम और योग-साधना—

कतिपय विद्वानों का मत है कि 'पाञ्चरात्रमत में योग-साधना पर भक्ति से अधिक बल दिया गया है। वस्तुत: 'भक्ति', योग के ही एक रूप में यहाँ स्वीकृत है। शैवों एवं शाक्तों के यहाँ भी **'भक्ति'** तथा **'योग'** दोनों को **'योग'** ही माना गया है। परन्तु फिर भी **'पाञ्चरात्रमत'** में भक्ति के लिए अधिक स्थान है। यहाँ **'योग'** को **'आत्म हविष'** कहा गया है। देवता को स्वकीय आत्मा को समर्पण करना ही **'आत्म हविष'** है। यह **'आत्म हविष'** तभी संभव है जब जीव अपने को प्रकृति के आकर्षणों से मुक्त कर लेता है।

-यदा भगवते तस्मै स्वकीयात्म समर्पणम्।
वियुक्तं प्रकृतेः शुद्धं दद्यादात्म हविः स्वयम्।।

—अहिर्बुध्न्य संहिता

योग का अर्थ है जीवात्म-परमात्म-संयोग।।

'योग' में शांतचित्त से किसी वस्तु या देवता पर ध्यान एकाग्र किया जाता है। इस योग द्वारा या सांसारिक कार्य करते हुए 'कर्म योग' के द्वारा विष्णु में चित्त को लय किए रहने से वासुदेव तत्व की प्राप्ति हो जाती है।

'अहिर्बुध्न्य संहिता' में भी **योग-चर्चा एवं योग-साधना के प्रति** निष्ठा दृष्टिगत होती है। इसी प्रकार **'जयारव्य संहिता' 'लक्ष्मी तंत्र' 'सात्वत तंत्र' 'सात्वत संहिता'** एवं **'नारद-'पञ्चरात्र'** आदि ग्रंथों में योग-साधना का उल्लेख एवं साधना-'विधि प्राप्त होती है। यहाँ **साधक को 'योगी' कहा गया है** और (1) सांख्य (2) योग (3) वेदान्त (4) पाशुपतमत (5) भागवत धर्म एवं वैष्णव पुराणों के प्रति गहरी आस्था व्यक्त की गई है।

* भक्ति और योग में समन्वय—

'नारद पञ्चरात्र' में एक ओर तो भक्ति-साधना के अतिरिक्त योग-साधना को भी स्वीकार किया गया है वहीं दूसरी योग दोनों की अभिन्नता का भी प्रतिपादन करते हुए यह कहा गया है कि—

'भक्ति की परिपक्वता से योगी भी वैष्णव हो जाते हैं।'

(सुपक्वभक्त्या कालेन योगी च वैष्णवो भवेत्।।)

ना.पं.2/8/35)* आश्चर्य यह है कि प्राप्त **वैष्णव संहिताओं में कहीं भी वैष्णवों के परमाराध्य भगवान राम की भक्ति का उल्लेख नहीं मिलता क्या अनुपलब्ध संहिताओं में कहीं राम भक्ति का भी उल्लेख है?** यह तो शोध का विषय है।

(51) * **वैष्णवागमानुरूप आचार्य और शिष्य के लक्षण—** वैष्णव आचार्य के लक्षण-**'अहिर्बुध्न्य संहिता'** में वैष्णव आचार्य एवं वैष्णव शिष्य दोनों के लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किए गए हैं—

(क) आचार्य के लक्षण—

1 वेदवेदान्त तत्वज्ञ	2 विद्या स्थान विचक्षण	3 ऊहापोहविधानज्ञ	4 दैवपित्र्यक्रियापर
5 अनिन्दक	6 पाप-ताप न करने वाला	7 अमत्सरी	8 परदुःखकातर
9 दयावान	10 सर्वभूतों पर दया करने वाला	11 पर सुखानन्दी	12 पुण्यात्म-प्रेमी
13 कुबुद्धिवालों से प्रेम न रखने वाला	14 तप-सन्तोष	15 शौच वाला	16 योगास्वाध्यायतत्पर
17 पञ्चरात्रविधानज्ञ	18 तंत्रमत विचक्षण	19 तंत्रान्तर के भेद को जानने वाला	20 मंत्रक्रिया-विशेषज्ञ
21 पदवाक्य-प्रमाणज्ञ	22 हेतुवाद विचक्षण	23 सामान्य एवं अपवाद शास्त्रों का ज्ञाता	24 यंत्रविचक्षण
25 कुण्ड-मण्डल भेदज्ञ	26 क्रियाकार विचक्षण	27 अध्यात्म-ज्ञान-कुशल	28 शान्त
29 दान्त	30 जितेन्द्रिय	31 उत्तम कुलोद्भूत	32 वैष्णव

(ख) शिष्य के लक्षण—

1 आचार्याश्रयी	2 श्रेयोऽर्थी	3 सुसमाहित	4 विनय व्रतशाली	5 द्विजाति
6 संस्कृत (संस्कारवान)	7 पवित्र	8 ब्रह्मचारी	9 बुद्धिमान	10 स्वदारनिरत
11 निष्कपट	12 स्वकृत्याकृत्य निवेदक	13 शरणापन्न सम्प्रपन्न	14 छलहीन	15
16 गुरु द्वारा ली गई धर्मपरीक्षा में उत्तीर्ण या 'शोधितरुप'	17 रहस्याम्नान्य -गोप्ता	18 शाठ्य, असूया, लोभमोह-रहित	19 निष्कम्प	20 संवत्सर तक परीक्षा देने वाला

(1) अहि.सं. (20/1-7) (2) अहि.सं. (20/8-10) (3) अहि.सं.(20/11-13)

(52) *वैष्णवागम के अनुसार वैष्णवतंत्र (सात्वतमत) की गुरु-शिष्य परम्परा*—

'लक्ष्मी तंत्र' के 57हवें अध्याय में इस गुरु शिष्य-परम्परा का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है—'सम्बद्ध उपाख्यान इस प्रकार है— प्राचीन काल में दुर्वासा ऋषि के शाप से इन्द्र अभिशप्त हो गए थे अतः स्वाध्याय एवं वषट्कार से वंचित हो गए थे। तीनों लोक श्री से च्युत हो गए थे। समस्त देवगण, दरिद्र, कृश एवं धर्मरहित हो गए थे। तब वे क्षीर सागर के निकट ब्रह्मा जी के पास गए। वहाँ पर सभी ने अनेक दिव्य वर्षों तक महान तप किया। फिर उन्हें जनार्दन ने दर्शन दिया। भगवान द्वारा तपस्या का उद्देश्य पूछे जाने पर वहाँ ब्रह्मा ने मंथन करने का परामर्श दिया। क्षीर सागर का मंथन किया गया और उससे 14 रत्न निकले और वे सभी रत्न देवताओं को प्राप्त हुए।

कल्पवृक्ष, उच्चैःश्रवा अश्व, गजेन्द्र ऐरावत, अप्सरावृन्दः, कालकूट, वारूणी, अमृत, चन्द्रमा एवं लक्ष्मी आदि।

भगवती लक्ष्मी ने भगवान विष्णु का वरण करके उनके वक्षस्थल में स्थान पाया। और उन्होंने अपनी कृपा-दृष्टि से देववर्ग को श्री-सम्पन्न कर दिया। देवासुर-संग्राम में असुर पराजित हुए और श्री-हीन हो गए। इन्द्र को स्वर्ग का राज्य मिल गया। देवगुरु बृहस्पति इन्द्र के निकट गए और उनसे कहा कि 'लक्ष्मी का पात्र कुपात्र नहीं सुपात्र होता है। जहां लक्ष्मी का निवास होता है वहीं महानता रहती है अतः जिससे कि राज्य श्री पुनः लुप्त न हो जाए अतः आपको उसी प्रकार का आचार करना चाहिए।।

'महत्ता महतां नाथ तस्यामायतते स्थितिः।
न भ्रश्येत यथैवैषा तव राज्यस्थितिः परा।।

तथा यतस्व देवेश शरणं गच्छ पद्मिनीम्।
एषा हि श्रेयसो मूलमेषा हि परमा गतिः।।' [1] अतः

'तपोविशेषैर्विविधैस्तैस्तैश्च नियमैः शुभैः।
आराध्य महिर्षी विष्णोः स्थिरीकुरु निजश्रियम् ।।46।। [2]

---

(1) लक्ष्मीतंत्र (सं. 1/36) (2) लक्ष्मीतंत्र (सं. 1/46)

इन्द्र ने देवताओं के एक हजार वर्ष (मनुष्यों के 36000 वर्ष) काल तक तप किया। जब वे तपस्या समाप्त करके अवभृथ स्नान कर रहे थे उसी समय पद्मसंभवा, प्रसन्नवदना भवगती लक्ष्मी प्रकट हुई। इन्द्र ने **'श्रीसूक्त'** के द्वारा लक्ष्मी की स्तुति की और उन्हें संतुष्ट किया। लक्ष्मी जी के यह कहने पर कि वर मांगो इन्द्र ने कहा—'आप उस तत्व का वर्णन कीजिए जो आप हैं और जिस प्रकार की हैं—

'तत्त्वं कथय देवेशि। यासि त्वं यत्प्रकारिका।। (1/57)

देवी ने अपने स्वरूप का परिचय दिया। **'लक्ष्मी तंत्र'** के 57वें अध्याय में गुरु-शिष्य-परम्परा का वर्णन किया गया है।

लक्ष्मी द्वारा इन्द्र को **'सात्वतमत'** का उपदेश किया गया है। (लक्ष्मी और इन्द्र : गुरु-शिष्य)।

ऋषियों का नारद से प्रश्नः

'भगवंस्त्वच्छ्रुतोऽस्माभिः सात्वतः सत्वसंश्रय।
शुद्धो भागवतो धर्मो मोक्षेकफल लक्षणः।। (ल.त.1/21)

(1) **अनसूया द्वारा अत्रि से प्रश्नः** लक्ष्मी के माहात्म्य से सम्बद्ध प्रश्न।
(2) अत्रि द्वारा अपने पूर्ववर्ती नारद द्वारा मलयाचल के ऋषियों को 'सत्वसंश्रय सात्वत भागवत धर्म' सुनाये जाने का उल्लेख।
(3) भगवती लक्ष्मी द्वारा इन्द्र को **'भागवत धर्म'** सुनाया जाना।

(क) * 'भागवत धर्म' या 'सत्वसंश्रय सात्वत शुद्ध भागवत धर्म की परम्परा* —

(1) **अनसूया के द्वारा अत्रि से** लक्ष्मी-माहात्म्य सुनने की प्रार्थना।
(2) अत्रि द्वारा यह कहा ज़ाना कि पूर्व काल में मलयाचल के ऋषियों ने यही जिज्ञासा नारद के समक्ष व्यक्त की थी। (नारद और मलयाचल के ऋषि)
(3) भगवती **लक्ष्मी द्वारा इन्द्र को 'भागवत धर्म'** का उपदेश। (इस उपदेश का वर्णन नारद ने मलयाचल के ऋषियों के समक्ष किया) **'मुनयो नारदेनाथ श्राविता मलयाचले।।'**

(4) इन्द्र के पुरोहित ब्राह्मण के घर जाकर इस तंत्र के विषय में पूछा तो ब्राह्मण ने इसे इन्द्र को बताया

(5) ब्रह्मा ने इस भागवत धर्म को प्रजापतियों को बताया।

(6) अंगिरा ने अग्नि को भागवत धर्म बताया।

(7) अग्नि द्वारा (गौतम के आश्रम में) कात्यायन को यह धर्म बताया गया।

(8) गौतम द्वारा भारद्वाज को यह धर्म सुनाया गया।

(9) भारद्वाज के द्वारा महामुनि गर्ग को सुनाया गया।

(10) गर्ग ने असित, देवल एवं जैगीषव्य एवं पितरों को सुनाया।

(11) पितरों की पुत्री एकाञ्जना ने इसे पराशर पुत्र वेदव्यास को सुनाया।

(12) वेदव्यास ने इसे शुकदेव को सुनाया।

(13) शुकदेव ने इसे स्वर्भानु नाम प्रजापति को सुनाया।.

(14) वसिष्ठ ने प्राज्ञा अरुन्धती को तथा अरुन्धती ने नारद को सुनाया।

(15) नारद ने इस 'लक्ष्मी तंत्र' को कपिल आदि को सुनाया।

(16) 'चन्द्रशेखर शङ्कर ने इसे पार्वती को सुनाया।

(17) ब्रह्मा ने सरस्वती को सुनाया।

(18) इस प्रकार यह सारा वृत्तान्त श्री अत्रि ने अनसूया को सुनाया। यहीं पर 'लक्ष्मी तंत्र' का उपसंहार (57हवें अध्याय में) हो जाता है।

(ख) पञ्चरात्र-परम्परा (गुरुशिष्य परम्परा)—

(1) श्रीकृष्ण-ब्रह्मा संवाद के रूप में और उपदेश-विधि से) गोलोक के शतश्रृंग पर्वत पर विरजा नदी के तट पर वट वृक्ष के नीचे भगवती राधिका के समक्ष-ब्रह्मा से पञ्चरात्र कहा।

(2) ब्रह्मा-शिव-संवाद के रूप में—(उपदेश विधि से) ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण से पञ्चरात्र सुनकर स्वर्ग में मन्दाकिनी के तट पर, वट वृक्ष के नीचे स्थित तथा योगीन्द्रो, सिद्धों, इन्द्रो, मुनीन्द्रो से सेवित भगवान शिव को पञ्चरात्र का ज्ञानामृत प्रदान किया।

(1) नारद पञ्चरात्र (रात्र 1/1 अ.)

(3) **शंभु-नारद-संवाद के रूप में**–(उपदेश-विधि)–भगवान **शंभु** ने अपने शिष्य नारद को पञ्चरात्र का ज्ञान प्रदान किया

(4) **नारद-मुनिसभा-संवाद के रूप में**–(उपदेश विधि से) देवर्षि नारद ने सूर्य ग्रहण के अवसर पर पुष्कर में मुनियों की सभा में स्थित मुनियों को पञ्चरात्र का उपदेश दिया।

(5) नारद-ब्रह्मा/केदारनाथ के सिद्धनारायण क्षेत्र में नारद द्वारा 1000 वर्ष तक तपस्या। तपस्यान्त में नारद द्वारा आकाशवाणी सुनना। आकाशवाणी–

'आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्?
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्?
व्रज-व्रज द्विज शीघ्रं शङ्करं ज्ञानसिन्धुम्।।
'लभ लभ हरि भक्ति (नारद पञ्चरात्र)

नारद का भगवान शङ्कर के आश्रम में जाना और शिव से प्रार्थना करना कि 'देहि में हरिभक्ति चतन्नामसेवनेरुचिः' भगवान शिव का नारद को उपदेश किया जाना।

* * * * * * * * * * * **

'पञ्चरात्रमिदं ब्रह्मन् पञ्चसंवादमेव च।
यत्र पञ्चविधं ज्ञानं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।। (रात्र 2/1/12)

जो ज्ञान श्री कृष्ण ने गोलोक में विरजा नदी के तट पर ब्रह्मा को दिया उसे ही ब्रह्मलोक में ब्रह्मा ने महादेव जी को दिया और उसे ही भगवान शिव ने नारद को प्रदान किया।

(ग) पञ्चरात्रोपदेश की गुरु-शिष्य-परंपरा–

(1) **सुदर्शन द्वारा अहिर्बुध्न्य को ज्ञान दिया जाना** ('अहिर्बुध्न्य संहिता:) भारद्वाज-दुर्वासा-वार्ता से आरंभ।

अहिर्बुध्न्य कहते हैं कि मैंने **संकर्षण से ज्ञान प्राप्त किया।** वही ज्ञान नारद को प्रदान किया।

(2) अहिर्बुध्न्य द्वारा नारद को ज्ञान दिया जाना

(घ) सात्वतसंहितोक्त (सम्प्रदायिक) गुरु-शिष्य-परंपरा–

(नारद का मलयाचल जाना और वहां परशुराम का साक्षात्कार।) **परशुराम द्वारा** श्री नारद को यह आदेश देना कि इस पाञ्चरात्र

ज्ञान को विष्णु भक्तों को प्रदान कीजिए। नारद द्वारा ऋषियों कों वह ज्ञान दिया जाना जो कि त्रेता युग में वासुदेव ने 'उपदिष्ट किया था। **'अहिर्बुध्न्य संहिता'** में संकर्षण एवं अहिर्बुध्न्य के मध्य होने वाले वार्ता का ही 'पञ्चरात्र' के रुप में वर्णन किया जाना।

(3) **महाभारत के शान्ति पर्व** में एक उपाख्यान आता है जिसमें कहा गया है कि मुनि नारद भारत की उत्तर दिशा में **'श्वेत द्वीप'** गए और वहां पर भगवान विष्णु की आराधना की। भगवान विष्णु ने नारद की प्रार्थना पर उन्हें **'सात्वततंत्र'** या पाञ्चरात्र दर्शन का उपदेश दिया।

(53) 'पुरुष सूक्त' और व्यूह चतुष्टयः पारस्परिक संबंध—

क) भगवान श्री विष्णु → 'पुरुष सूक्त'। (आविर्भाव-क्रम)

ख) भगवती श्री लक्ष्मी → 'श्री सूक्त। (आविर्भाव-क्रम)

ग) **'पुरुष सूक्त'** की चार ऋचायें एवं व्यूह चतुष्टय

'अहिर्बुध्न्य संहिता' के 59हवें अध्याय में **'पुरुष सूक्त'** (वेद) का व्यूह चतुष्टय के साथ तादात्म्य स्थापित किया गया है।

	'पुरुष सूक्त' की ऋचायें		**सम्बद्ध व्यूह**
1.	प्रथम ऋचा का सम्बंध	—	वासुदेव से है।
2)	द्वितीय ऋचा का सम्बंध	—	संकर्षण से है
3)	तृतीय ऋचा का सम्बंध	—	प्रद्युम्न से है
4)	चतुर्थ ऋचा का सम्बंध	—	अनिरुद्ध से है।

(54) सदाचार और अहिंसा—**'वैष्णवजन तो तेणे कहिए जे पीर पराई जाणो रे।।'** —कहकर **नरसी मेहता** ने वैष्णवमत में **सदाचार** (दया)एवं अहिंसा को विशेष रूप से रेखांकित किया है। **'पञ्चरात्रमत'** वैष्णवों के आचार-विधान में इन दोनों तत्वों को सर्वाधिक महत्व प्रदान करता है।

'महाभारत', **'गीता'**, **'श्रीमद्भागवत'** एवं **'विष्णु पुराण'** आदि

---

(1) ना.पं.(रात्र 2/अ.1/14) (2)सा.सं. (प्र.परि.)

पुराणों में सदाचार को अत्यधिक महत्व दिया गया है। **'वैष्णवागम'** का **'योगपाद'** भी यम-नियमों के माध्यम से एवं **'चर्या5.द'** वैष्णवों के लिए निर्धारित आचार-संहिता के माध्यम से, इन दोनों तत्वों को अधिकाधिक महत्व प्रदान करता है। 'अहिंसा' 'सत्य' 'अस्तेय' 'क्षमा' 'अक्रोध' 'ब्रह्मचर्य' 'क्षमा' 'दया' 'शांन्ति' 'जप तथा 'श्रद्धा' 'आस्तिक्य' 'अतिथि सेवा' 'भगवतसेवा' 'भागवत-सेवा' 'तीर्थाटन' 'परार्थहितसाधन, 'संतोष' 'धैर्य' 'शौच' आदि नियमों को पाञ्चरात्रमत ने सभी उपासकों (भागवतों) के लिए 'चर्यापाद' में आवश्यक बताया है। वहां **काम, क्रोध लोभ को तो शत्रु कहा गया है।** इन्द्रिय-निग्रहपूर्वक पवित्र जीवन व्यतीत करना भक्ति-साधना का प्रथम नियम है—

भक्ति सूत्रकार नारद भी 'भक्तिसूत्र' में कहते हैं कि—(1)अहिंसा सत्य शौच दया स्तिक्यादिचारित्र्याणि परिपाल नीयानि। (सूत्र 78 (2)'काम क्रोध मोहस्मृतिभ्रंश बुद्धिनाशसर्व नाश कारणत्वात् (3)तदर्पिताखिलाचारः सन् काम क्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम्। (सूत्र 65) अभिमान दम्भादिकं त्याजम् सूत्र (65) प्रेमैव कार्यम्। (सूत्र 66) आदि।

(55) नारियों के स्वरूप की दिव्य कल्पना और उनका सर्वाधिक सम्मान–

भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि—**'नारियां साक्षात् मेरा स्वरूप हैं'—'मत्नुर्वनिता साक्षात्।** 'मत्तनुर्वनिता साक्षात'— अर्थात् नारी साक्षात् मेरा शरीर या स्वरूप है। भगवाती लक्ष्मी कहती हैं कि **'मैं वनिताओं में रहती हूं। इसी से नारी जगन्मयी है।'**

'लक्ष्मी तंत्र' में कहा गया है कि 'भगवती कहती हैं कि—'जिन्हें मुझे प्रसन्न करने की कामना हो, उन्हें **किसी नारी की निन्दा मन कर्म एवं वचन से कभी नहीं करनी चाहिए क्योंकि** जहाँ मैं हूँ वहाँ पर तत्व है तथा जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ पर देवता रहते हैं। जहां मैं रहती हूँ वहां पुण्य रहते हैं और जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ केशव रहते हैं। **मैं वनिताओं में रहती हूँ, इसी से नारी जगन्मयी है। जो नारी**

की निन्दा करता है वह लक्ष्मी की निन्दा करता है। जो नारी का अभिनन्दन करता है वह लक्ष्मीमय त्रैलोक्य का ही अभिनन्दन करता है। जो किसी नारी से द्वेष करता है वह मुझ हरिवल्लभा से द्वेष करता है और जो लक्ष्मी से द्वेष करता है वह सारे संसार से द्वेष करता है। जो स्त्रियों के प्रति अशोभन (अनुचित) विचार नहीं रखता और जिनका चित्त स्त्रियों को देखकर प्रसन्न हो जाता है वह मुझे सर्वाधिक प्रिय होता है। हे इन्द्र। जिस प्रकार नारायण और मुझमें कोई किल्विप नहीं होता है उसी प्रकार 'गौ' 'विप्र' वेदान्तवादी और नारी में भी कोई दोष नहीं होता।'

'जिस प्रकार गंगा कल्मषो से रहित है, जैसे सरस्वती पावन है, जिस प्रकार अरुणा नदी है उसी प्रकार नारी भी श्रेष्ठ है।' नारी के बल से मैं परम बल वाली हूँ। नारियां साक्षात मेरा स्वरूप हैं। इस स्थिति में योगी किस कारण से उनकी पूजा न करें?

'योग की अभीप्सा रखने वाला पुरुष बिना किसी पाप के उनका प्रिय कार्य करे। नारियों को मेरे ही समान देवता एवं जननी की भांति देखना चाहिए : कतिपय प्रमाण लीजिए–

1)	'वनितायामहं तस्मान्नारी सर्वजगन्मयीं	(नारी की सर्वजगन्मयता)
2)	'जननी मिवतां पश्ये देवतामिव मामिव	(नारीः देवता एवं लक्ष्मी है)
3)	'अनुस्मृत्य गुणन् ब्रह्ममावयेदेव मांधिया	(नारी-लक्ष्मी की भांति ब्रह्म है)
4)	'मत्तुर्वनिता साक्षात्	(नारी की लक्ष्मीस्वरुपता)

●●●

वैष्णव तन्त्र

वैष्णवतन्त्रोपदेष्टा भगवान शिव एवं उपदिष्टा

जगज्जननी भगवती पार्वती

डा. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

एम.ए., पी-एच.डी.,डी.लिट, व्याकरणाचार्य उ.प्र. के 'संस्कृत संस्थान द्वारा
'शंकर' एवं 'विविध' पुरस्कार, म.प्र. सरकार के 'कालीदास संस्कृत एकेडमी' द्वारा
'भोज पुरस्कार' एवं देशबंधु (समाचार पत्र) द्वारा

Vaishnav Tantra Aur Vaishnav Sampradaya

(Siddhanta Aur Sadhanat)

(First Part)

By:

Dr. Shyama Kant Dwivedi 'Ananda'

M.A; M-ED; PH.D; D.LITT. Vyakarnacharya

{Awarde By 'Sanskrit Sansthan' of U.P. Govt.
And By Kalidas Sanskrit Academy of M.P. Govt.
With 'Shankar', 'Vividha' And 'Bhoj Puraskar'}

'Bhagirath Puraskar' by

वैष्णवागम के उपदेष्टा

भगवान शिव

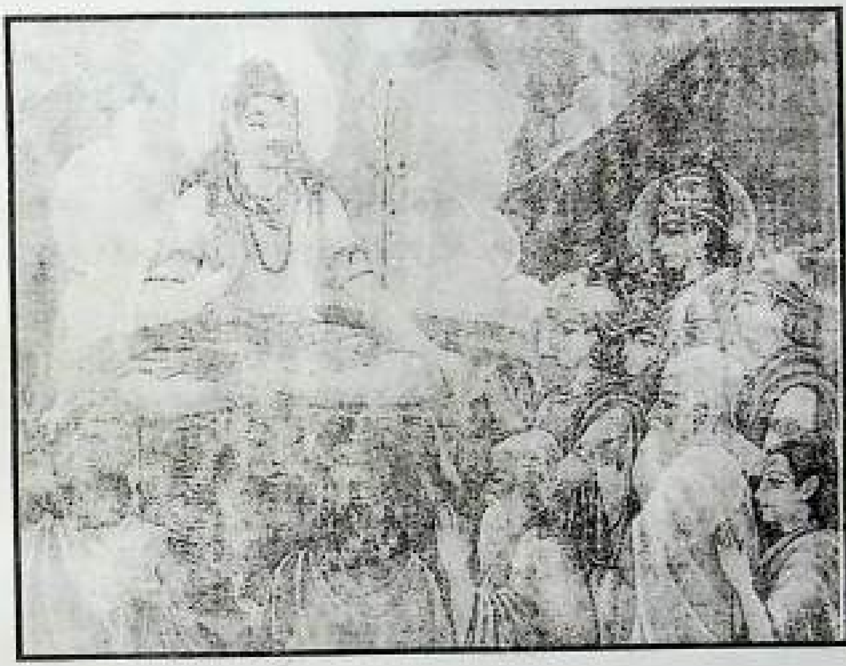

[illegible]

सिद्धान्त-पक्ष

प्रथम अध्याय - परम तत्त्व *
द्वितीय अध्याय - शक्ति तत्त्व और उसका स्वरूप*
तृतीय अध्याय - जीव तत्त्व *
चतुर्थ अध्याय - जगत तत्त्व *
पञ्चम अध्याय - सृष्टि-विज्ञान *

ब्रह्म तत्त्व परमतत्त्व—

'नारायणः परं ब्रह्म सर्वावासमनाहतम्। (अहि.स. 5/2)
अस्ति निर्दुःखनि : सीम सुखानुभव लक्षणः।
परमात्मा परं यस्य पदं पश्यन्ति सूरयः।। (2/1)(ल.तं.)
लक्ष्मी नारायण ख्यातमो ब्रह्म सनातम्। (2/16)(ल.तं.)
ज्ञानस्वरूपो भगवान देशकालाद्यभेदितः ।
वासुदेवः परं ब्रह्म गुण शून्यं निरञ्जनम्।। (14/1)(ल.तं.)

* * * * * * * * * * * * * * * *

नास्ति विष्णोः परं सत्यं नास्ति विष्णोः पर पदम्।
नास्ति विष्णोः परं ज्ञानं नास्ति मोक्षो ह्य वैष्णवः।। (4/3/200)
जपन्तं परमं शुद्धं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्।
निर्लिप्तं निर्गुणं कृष्णं परमं प्रकृतेः परः।
ततो देवास्तदंशाश्च सगुणाः प्राकृताः स्मृताः।। ल.तं.(2/5/14)

* शक्तित्व :

आत्मभूता हि या शक्तिः परस्य ब्रह्मणो हरेः।
देवी विद्युदिव व्योम्नि क्वचिदुद्द्योतते तु सा। -अहि.सं. (5/4-5)

* जीवतत्व (अंशाशिभाव)

पुरुषो भोकत्ट कूटस्थः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः।
अंशतः प्रसन्त्य स्मात्सर्वे जीवाः सनातनाः।। ल.तं.(7/11)

(शक्ति का संकोच):

तदयं मम संकोचः प्रमाता शुद्धचिन्मयः।
स्वान्तःस्फुरित तत्त्वौधः स्थितो दर्पणावत्सदा। ल.तं. (7/18)

* जगत तत्व :

विष्णुनरियणो विश्वो विश्वरूप इतीर्यते।।

* सृष्टि तत्व :

सिसृक्षा नाम तद्रूपा सृष्टि मिष्टां करोम्यहम्।। ल.तं. (4/5)
मम ज्ञान धना द्रूपांच्धृद्धा सृष्टिः प्रवर्तते। ल.तं. (4/7)

* प्रथम अध्याय *

* परम तत्व *

पारं परं विष्णुरपारपारः परः परेभ्यो परमार्थरूपी।
स ब्रह्मपारः परपारभूतः परः पराणामपि पारपारः।।
(वि.पु.15/1/55)

(1) * परम तत्व * —

यस्य लोमसु विश्वानि तेन 'वासुः' प्रकीर्तितः।
तस्य देवोऽपि श्री कृष्णो वासुदेव इतीरितः।। (ना.पं.)
ज्ञानं तत्परमं ब्रह्म सर्वदर्शि निरामयम्।। (ल.तं. 2/24)

परमात्मा का पर रूप —

ज्ञानात्मकं परं रूपं ब्रह्मणो मम चोभयोः।।
(ल.तं. 2/25)

अतः प्रेरयिता देवः समस्तस्य जनार्दनः।
(अहि.सं. 33/13)

सुदर्शनवपुः श्रीमान्नादि प्रभवा व्ययः।।
ज्ञानस्वरूपो भगवान् पूर्णषाऽगुण्य विग्रहः।
स एव सर्वभूतानां स्रष्टा पालयितान्तकः।।
स एव शिव रुपेण शैवैराराध्यते प्रभुः।।
स एव ब्रह्मरूपेण सृजत्येतच्चराचरम्।।
स एव पालयत्येतद् विष्णुर्भूत्वा जनार्दनः।।
स एव रुद्ररूपेण संहरत्यखिलं जगत्।
* बुद्धात्मना च बौद्धानां स एव जगति स्थितः।
स एव शाम्बराणां च निरावरणरूपधृक्।
स एव चर्वाकमते जिनेश्वरवपुर्धरः।
स एव याज्ञिकानां च यज्ञपुरुषसंज्ञकः।
मीमांसकैः स एवायमुपास्यत्वे चोद्यते।

कापिलैः पुरुषत्वेन स एवाख्यायते विभुः।
उपास्यत्वेन ये प्राहुर्यं यं तत्तद द्वपुर्धरः।
तेषां मनीषितं सर्वं स एवाशु प्रयच्छति।।
अहि.सं. (33/13/20)

षाड्गुण्य गुणयोगेन भगवान परिकीर्तितः।
समस्तभूत वासित्वाद् वासुदेवः प्रकीर्तितः।।
आत्नोति जगदित्येवमात्मत्वेन निरुपितः।
रुपात्प्रकारतोऽव्यक्तेर व्यक्तः परिगीयते।
सर्वप्रत्यक्ष दर्शित्वात् सर्वात्मा तत् परं पदम।
अतीतानागते काले मध्यतः प्रतिसंहृते।।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वोपाधि विवर्जितम्।
षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म सर्व कारण कारणम।
-अहि.सं. अ.2)

एक एव परोदेवः श्रीमान् पुरुषसत्तमः।
षाड्गुण्याभ्योनिधिर्दिव्यः सर्वात्मा सर्वतोमुखः।।
(अहि.सं. 21-3)

****

(1) * परम तत्त्व *

* वैष्णवागम का 'साध्य' विष्णु ही वैष्णव दर्शन का परम तत्त्व है। *

* वैष्णव तत्त्व * ('शारदा तिलक') *

↓

1	2	3	4	5	6	7
जीव	प्राण	बुद्धि	चित्त	5 ज्ञानेन्द्रियां	5 कर्मेन्द्रियां	पञ्च-तन्मात्रायें

8	9	10	11	12	13	14
पंचमहाभूत	हृत्पद्म	सूर्य	चन्द्र	अग्नि	वासुदेव	संकर्षण
		तेजस्त्रय				

15	16
प्रद्युम्न	अनिरुद्ध

32 तत्त्व = वैष्णवतत्त्व

सांख्य से उधार लिए गए तत्त्व–

(1)पञ्चभूत-(5); (2) पञ्च तन्मात्रा (5); (3)10 इंद्रियां (10); (4) मन (5) बुद्धि (6) अहङ्कार (7) प्रधान (24 तत्व शारद तिलक: पटल 5

परमात्मा— ना.पं. में कहा गया है—'**सर्वेषां जनकः कृष्णः परमाद्यः परात्परः**। वासुदेव तत्व कौन है?

(2) 'वासुदेव'—

'विष्णु पुराण' की दृष्टि— 'विष्णुपुराण' में कहा गया है कि (1) जो पर (प्रकृति) से भी पर है, परम श्रेष्ठ है' अंतरात्मा में स्थित है, परमात्मा है, रूप-वर्ण-नाम विशेषण आदि से तथा षट्विकारों (जन्म-वृद्धि-परिणाम-क्षय-और नाश) से सर्वथा रहित है

(2) जिसको केवल 'है'— इतना मात्र ही कह सकते हैं तथा जिनके लिए यह प्रख्यात है कि—'**सर्वत्र है** और उनमें समस्त विश्व बसा हुआ है अतः जिसे '**वासुदेव' कहते हैं**— वही नित्या अजन्मा, अक्षय' अव्यय, एकरस एवं हेय गुणो से रहित होने के कारण निर्मल पर **ब्रह्म है**' (1)'**कृष्णास्तु भगवान स्वयं**'— वैष्णवों का मूल मंत्र है।'

(1) * **परमात्मा स्वयं कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः।**
ततो देवास्तदंशाश्च सगुणाः प्राकृताः स्मृताः।

—नारद पञ्चरात्र

(2) **परः पराणां परमः परमात्मात्म संस्थितः।**
रुपवर्णादि-निर्देश-विशेषेण-विवर्जितः।।
अपक्षय विनाशाभ्यां परिणाद्धर्म जन्मभिः।
वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम्।।
सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततः स वासुदेवेति विद्वधिः परिपठ्यते।।
तदब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयम व्ययम्।
एकस्वरूपं तु सदा हेयाभावाच्च निर्मलम्।।

—विष्णु पुराण

* परम तत्व—

सृष्टि के आदि में केवल एक ही तत्व रहता है। वह तत्व है परमात्मा। लक्ष्मी नारायणात्मक एक ही परतत्व है। यह पूर्ण है। यह षड्गुणोपेत, 'स्वच्छ' स्वच्छन्द एवं ज्ञानघन है।

भगवती लक्ष्मी उसकी परमाशक्ति हैं। वे लक्ष्मी उस परम तत्व की सभी अवस्थाओं का अनुसरण करती हैं। वे ही स्थूल सूक्ष्मा एवं पर रूपों में स्थित हैं। तारिका और अनुतारिका शक्तियाँ (ह्रीं श्रीं) भगवती लक्ष्मी का '**सनातन शरीर**' हैं और भगवती के भीतर नित्य निवास करती हैं। ये शक्तियाँ भगवान विष्णु को भी अत्यन्त प्रिय हैं तथा ये दोनों समस्त मनोरथों को पूर्ण करती हैं।

पहले **'पर ब्रह्म'** हैं, फिर **'शान्त'** है और फिर **'नाद'** है। किन्तु भगवती लक्ष्मी सर्वावस्थानुगता हैं।

प्रारंभ में जो **'परम ब्रह्म'** रहता है वह सूक्ष्म और शान्त शक्ति वाला होता है। उस अवस्था में ॐको प्रतिस्थापित करके प्रस्तार की गति का विस्तार किया करता है।

सिसृक्षा के कारण **'शान्त ब्रह्म'** का जो प्रथम अवरोह होता है उस शान्त भाव में अनुतारिका मुख्यतः रहा करती हैं। जिस शक्ति के द्वारा द्वितीयावरोह में भाव ऊर्जस्वित होता है उसमें **'वाग्भव'** आदि बीज विद्यमान होते हैं।

'वाग्भव बीज' (ऐं) संसार की उत्पत्ति का मूल केन्द्र या योनि है—**'जगद्योनिरिदं बीजं वाग्भवारव्य मुदाहृत्म्।।'** (ल.तं.-26/14)

परब्रह्म अपार है, शक्तिमान है, परमेश्वर है और **'नारायण'** के नाम से प्रख्यात है। वह नित्य है, षड्गुणयुक्त है एवं अव्यय है। ब्रह्मादि से स्थावर पर्यन्त सभी उसकी विभूतियां हैं—

'अपारं तत् परं ब्रह्म शक्तिमत परमेश्वरः।
नारायण समाख्यातं नित्यं षाड्गुण्यमव्ययम्।
विभूतयस्तु तस्येमे ब्रह्माद्याः स्थावरान्तिमाः।।' (4)

(1) **एकमादौ परं तत्वं लक्ष्मी नारायणात्मकम।**
पूर्णस्तिमित षाड्गुण्यं स्वच्छस्वच्छन्दचिद्‌धनम्।।
(ल.तं. 26/3)

(2) **द्वे एते कथितेदेवि! तव तन्वौ सनातने।**
'मम तन्वाविमे शक्ति तारिका चानुतारिका।।

(3) **सर्वत्रावस्थिता साऽहं निमेषोन्मेणरूपिणी।। (26/8)**

(4) **अहिर्बुध्न्य संहिता (13/18)**

(3) * राधा कृष्ण

'श्री कृष्णो जगतां तातो जगन्माता च राधिका पितुः सद्गुणे माता वन्द्या पूज्या गरीयसी।

—नारद पञ्चरात्र

वैष्णव-सम्प्रदाय के उपास्य **शक्तिमान और शक्ति**- (विष्णु-लक्ष्मी) वैष्णव निम्बार्क-सम्प्रदाय के **उपास्य** = राधाकृष्ण हैं।

विष्णु स्वामी का सम्प्रदाय भी राधाकृष्णोपासक है। चैतन्य महाप्रभु के गौडी वै. सम्प्रदाय के **उपास्य** = राधाकृष्ण है। वहां राधाकृष्ण का प्राधान्य है।

पाञ्चरात्रागम के उपास्य, मुख्यतया, विष्णु और लक्ष्मी है। (इसमें राधाकृष्ण एवं बृन्दावन-लीला भी स्वीकृत हैं।

'नारद पञ्चरात्र' में राधा का वर्णन है।

चैतन्यदेव दक्षिण से जो **'ब्रह्म संहिता'** लाए थे उसमें प्रध ाानतः वृन्दावन तत्व अङ्गीकृत है। यह संहिता पाञ्चरात्रिक है किन्तु इसमें प्राधान्य राधाकृष्ण तत्व का है।

* 'राधा' की महिमा-

भगवान ने राधा जी को हृदय में स्थान दिया है और कहा है कि 'हे राधिके! तू मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। तू मेरे वक्षः स्थल पर स्थिर होकर वहां निवास करो-

'मम प्राणाधिदेवी त्वं स्थिरा भव ममोरसि।।'
अत्र स्थानं मया दत्तं तुभ्यं प्राणेश्वरि प्रिये।।
प्राणेभ्योऽपि प्रियतमे परमाद्या सनातनि।
व्यज लज्जां क्षमाशीले नव संगम लज्जिते।। (1)

श्री कृष्ण और राधा से ही 'ब्रह्मा' का जन्म हुआ।

पूर्वकाल में भगवती **राधा श्री कृष्ण के वामांग से** उत्पन्न हुई थीं। राधा के अंशाश कला से समस्त देव-पत्नियां उत्पन्न हुई थीं।

(4) * 'राधा' शब्द का महत्व

'रा' शब्द के उच्चारण से भक्त मुक्ति और मुक्ति प्राप्त करता है। **'धा'** शब्द के उच्चारण से वह हरिपद की ओर धावमान होता है- **'रा' शब्दोच्चारणाद्भक्तो भक्तिं मुक्तिं च राति सः।**
धा शब्दोच्चारणे नैव धावत्येव हरेः पदम्।।

(1) नारद पञ्चरात्र (रात्र 2/अ./28-29) (2)ना.पं. (2/3/38)

श्रीकृष्णोपासना —

'परं श्रीकृष्णभजनं ध्यानं तन्नाम कीर्तनम।
तत्पादोदक नैवेद्यमक्षणं सर्ववाञ्छितम्।।

—नारद पञ्चरात्र (राम 1/2/64)

* वैष्णवागम में लक्ष्मीनारायण (ब्रह्म) ही परम तत्व हैं*

'लक्ष्मी नारायणं ब्रह्म' (ल.तं./24/1)

वैष्णवागम में कहा गया है कि—

'लक्ष्मी नारायणं ब्रह्म दोष-शून्यं निरञ्जन।।'(ल.तं 24/1)

'लक्ष्मी तंत्र' में श्री लक्ष्मी कहती हैं कि परम ब्रह्म, परम धाम एवं अनुपम परम ज्योति हैं। **'लक्ष्मी नारायण'** ही ब्रह्म हैं। ये **दोष-शून्य** एवं निरञ्जन हैं। ये अकेले ही सर्वव्याप्त हैं और सभी से परे भी हैं और महान भी हैं। मैं उनकी अहन्ता हूं।

(1) 'परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिरनूपमम्।
लक्ष्मीनारायणं ब्रह्म दोषशून्यं निरञ्जनम्।। (ल.तं./24-1)

(2) 'एक सर्वमिदं व्याप्य स्थितं सर्वोतरं महः।
अहन्तांह परा तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।।

* परमात्मा सर्वशक्त्यनुस्यूत एवं सर्वसत्तामूलक है *

जो कुछ भी है उन सब में भगवान देव का वास है। अंसख्य शक्तियां उन्हीं का स्वरूप हैं—

**'याभिः स भगवान देवः पूर्णरूपोऽवतिष्ठते।
एकैकस्य असंख्याताः शक्तयस्तत्तदात्मिकाः।। (45/97)**

* परमतत्व की एकात्मता—

यदि संसार में कोई 'एक' है तो केवल 'नारायण' एवं उनकी 'परमाशक्ति' लक्ष्मी हैं।

**'एको नारायणो देवः श्री मान कमलत्लोचनः।
एकाहं परमा शक्तिः सर्वकार्यकरी हरेः।।** (ल.तं./36/69)

इन दोनों परम तत्वात्मक परा सत्ताओं का लक्ष्य समस्त आत्माओं का कल्याण है—

'तावावां परमे व्योम्नि क्षेमाय सकलात्मनाम्।। (36/70)

(6) * परमात्मा का प्रधान वैलक्षण्य—

यह है अनुग्रहात्मक योगक्षेम-वहन। **'लक्ष्मी तंत्र'** में कहा गया है कि 'हम दोनों (नारायण-नारायणी) के हृदय में एक **'सङ्कल्प'** आविर्भूत हुआ कि जीवों के उद्धारार्थ उपायोन्वेषण किया जाय—

* 'उत्तारणाय जीवानामुपायोऽन्विष्यतामिति।।'*

इस स्थिति में हम दोनों से एक तेज का आविर्भाव हुआ। यह तेज **'शब्द ब्रह्म'** का महासागर बन गया और उसी **'शब्द-ब्रह्म'** सागर से दो सूक्त रूप अमृत निकले—

'आवाभ्यामुत्थितं तेजः शब्दब्रह्ममहोदधिः।
मथ्यमानात्ततस्तस्माद्भूत सूक्तद्वयामृतम्।।' (36/72)

* **'ब्रह्म'** त्र्यक्षर मंत्र है—

नाम एवं नामी अभिन्न हैं अतः कहा गया है कि त्र्यक्षर मंत्र ही ब्रह्म है—

'एतत्त्वैष्णवं रूपं त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।। (ल.तं. 24/7)

(2) *परमात्म तत्त्व*

'ब्राह्मणानां च सद्ब्रह्म वासुदेवाख्य याजिनाम्।
लक्ष्यभूतं यदासृष्टे हृदिस्थमधिकारिणाम्।। (सा.सं./2/4)
त्रिविधेन प्रकारेण परमं ब्रह्म शाश्वतम्।
आराधयन्ति ये तेषां रागस्तिष्ठति दूरतः।
षाड्गुण्यविग्रहं देवं भास्वज्ज्वलन्तेजसम्।
सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्
परमेतत् समाख्यातमेकं सर्वाश्रयं प्रभुम्।
एतत्पूर्व त्रयं चान्यज्ज्ञाना द्यैर्भेदितं गुणैः।।
विद्धि तद् व्यूह संज्ञं सद निःश्रेयसफलत्रदम्।।
मुख्यानुवृत्तिभेदेन युक्तं ज्ञानादि कैर्गुणैः।
नानाकृतिं चतद् विद्धि वैभवं मुक्तिमुक्तिदम्।।

—सात्वत संहिता (1/23-27)

'बलसंवलितेनाथ ज्ञानेनास्तेऽथ दक्षिणे।
ऐश्वर्येण तु वीर्येण प्रत्यज्भावेऽवतिष्ठते।
तेजश्शक्त्यात्मना सौम्ये संस्थितः परमेश्वरः।।'

—सात्वत संहिता (3/6-7)

'तथा समस्तमाक्षिप्तं यस्माद्वै परमात्मना।
तस्माद्वै सर्वपाणित्वं सर्वगस्यानुमीयते।
नावच्छिन्नं हि देशेन न कालेनान्तरी कृतम्।
अतः सर्वगतत्वाद्वै सर्वतः पात् प्रभुः स्मृतः।
ऊर्ध्वं तिर्यगधोयातैर्यथोच्चैभसियेद्र विः।
तद्वत् प्रकाशरूपत्वात् सर्वचक्षुस्ततो ह्यजः।
यथा सर्वेषुं गात्रेषु प्रधानं गीयते शिरः।।
भवेऽस्मिन् प्राकृतानां तु न तथा तस्य सत्तम।
समत्वात् पावनत्वाच्च सिद्धः सर्वशिराः प्रभुः।।
यथानन्तरसाः सर्वे तस्य सन्ति सदैव हि।
सर्वत्र शान्त रूपस्य अतः सर्वमुखः स्मृतः।।
सत्वराशिर्यतो विद्धि स एव परमेश्वरः।
सर्वत्र श्रुतिमांश्चासौ यथा हकश्रावकोरगः।।

—जयारव्य संहिता (4/76-82)

ॐ वासुदेवः परं ब्रह्म परमात्मा परात्परम्।
परं धाम परं ज्योतिः परं तत्वं परं पदम्।।
परं शिवं परोध्येयः परं ज्ञानं परा गतिः।
परमार्थः परं श्रेयः परानन्दः परोदयः।।

नारद पञ्चरात्र-(4/10-11)

(3) वैष्णवागम के परमोपास्य (इष्टदेव)—

'सात्वत संहिता' 'सात्वत तंत्र' 'माहेश्वर तंत्र' 'लक्ष्मीतंत्र' 'नारद पञ्चरात्र' 'अहिर्बुध्न्य संहिता' 'जयारव्य संहिता' आदि ग्रंथों एवं (संहिताओं में तो नारायण (विष्णु) एवं नारायणी (लक्ष्मी) तथा उनके अवतार श्री कृष्ण एवं राधिका को ही वैष्णवागम का आराध्य देव स्वीकार किया गया है।

भगवान विष्णु के परमाराध्य अवतारों में तो (क) श्रीराम एवं (ख) श्रीकृष्ण दोनों हैं। दोनों वैष्णवों के आराध्य भी हैं। इसी प्रकार भगवती लक्ष्मी की अवतार के रूप में भगवती सीता एवं राधा भी वैष्णवोपास्या हैं अतः वैष्णवागम के अंतर्गत (1) श्रीराम और भगवती सीता (2) श्रीकृष्ण और राधा तथा (3) मूल रूप से भगवान नारायण एवं नारायणी (विष्णु एवं लक्ष्मी) तीनों अंतर्मुक्त हैं किन्तु 'वैष्णवागम' नारायण-नारायणी (विष्णु-लक्ष्मी) एवं श्रीकृष्ण-श्रीराधा को ही उपास्य मानकर चला है। ऐसा क्यों? राम-सीता की उपेक्षा क्यों? शायद पाञ्चरात्रिको को **'लीला पुरुषोत्तम' मर्यादा पुरुषोत्तम'** से अधिक प्रिय थे।

(4) *वैष्णवागम में प्रतिपादित परात्पर ब्रह्म के नाम एवं विभिन्न स्वरूप

वैष्णवागम में ब्रह्म के जिन स्वरूपों को इष्टदेव के रूप में स्वीकार किया गया है वे मुख्यतः निम्नाङ्कित हैं-

देवता (शक्तिमान)	देवी (शक्ति)
* लक्ष्मीनारायण * 1. * नारायण * 2. * विष्णु, ब्रह्म * परमात्मा 3. श्याम सुन्दर, परं ब्रह्म वासुदेव 4. श्री कृष्ण परमात्मा	*'शक्ति'* *नारायणी* लक्ष्मी *रमादेवी* 'राधिका 'राधा'

(1) एको नारायणो देवो वासुदेवः सनातनः।

(2) चातुरात्म्यं परं ब्रह्म सच्चिदानन्द भवशाम।। (ल.तं.17/3)

(3) 'नारायण' परंब्रह्म दिव्यं नयननन्दनम्। (ल.तं. 17/7)

(4) 'तदा मूर्तिमती साहं शक्ति नारायणी परा। (ल.तं./17-8)

(5) 'एकाहं परमा शक्तिस्तस्य देवी सनातनी। (ल.तं. 17-4)

(6) 'सैषा नारायणी देवी कृत्स्नस्य
(7) स्थिता नारायणात्मना।। (ल.तं./1/43)

श्री कृष्ण —

(1) परमात्मा स्वयं कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परा।
तत‍ो देवास्तदंशाश्च सगुणाः प्राकृताः स्मृताः।।
(2) सर्वेषां जनकः कृष्णः परमाद्यः परात्परः। (2/5/15/ना.पं.)
(3) ध्यायन्ते सन्ततं सन्तो योगिनो वैष्णवाः तथा।
ज्योतिष्यन्तरे रूपमतुलं श्यामसुन्दरम्। (ना.पं.1/1/3)
ध्यायेत्तं परमं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्। (ना.पं.1/1/4)
(4) स्वयं विधातां भगवान परं कृष्ण परायणः (ना.पं.1/1/28)
(5) कृष्ण भक्तो वसिष्ठस्तु तत्सुतो वैष्णवः स्वयम् (28)
(6) वैष्णवस्तत्सुतः शक्तिः कृष्णध्यानैक मानसः।। (1/1/28)
(7) पराशरश्च तत्पुत्रः कृष्ण पादाब्जसेवया।। (1/1/29)
* नारायण - नारायणः परं ब्रह्म सर्वावासमनाहतम्। (अ.सं.5/2)
* शक्ति = आत्मभूता हि या शक्तिः परस्य ब्रह्मणो हरेः।
(अ.स.5/4)
* वासुदेव = अनन्त एव भगवान वासुदेवः सनातनः (अ.सं.5/34)

(क) 'विष्णु' —

अनन्तो भगवान विष्णुः शक्तिमान पुरुषोत्तमः। (अ.सं. 5/32)
विष्णोराधनपरा मुनयो मलयाचले। (सा.सं. 1/1)
नास्ति विष्णोः परं सत्यं नास्ति विष्णोः परं पदम्।
नास्ति विष्णोः परं ज्ञानं नास्ति मोक्षो ह्यवैष्णवः।
नास्ति विष्णोः परोमंत्रो नास्ति विष्णोः परं तपः।।

---

* परमात्मा (8) अनवच्छिन्नरुपोऽहं परमात्मेति शब्द्यते।। (2/4) (9) स वासुदेवो भगवान क्षेत्रज्ञः परमोमतः। (ल.तं./2/5) (10) विष्णुर्नारायणो विश्वो विश्वरुप इतीर्यते। (ल.तं.2/6) (11) भगवन्नारायणो देवो भावो लक्ष्मी रहं परा।(ल.तं. 2/15) (12) लक्ष्मीनारायणाख्यातमतो ब्रह्म सनातनम्। (ल.तं.2/16) (13) अहं नारायणी शक्तिः सृसिसृक्षालक्षण तदा। (2/22) (14) अहं नारायणी शक्तिः सुषुप्सालक्षणा हि सा।। (2/23) (15) श्री कृष्णो जगतां तातो जगन्माता च राधिका (ना.पं. 2/6/2) (16) श्री कृष्णोरसि या राधा यद्वामांशेन संभवा। (ना.पं. 2/6/14)

नास्ति विष्णोः परंध्यानं नास्ति मंत्रो ह्यवैष्णवः।
वाजपेयहस्त्रै किं भक्तिर्यस्य जनार्दने।
सर्वतीर्थमयो विष्णुः सर्वशास्त्रमयः प्रभुः।।
सर्वकृतुमयो विष्णुः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।
आब्रह्मसार सर्वस्वं सर्वमेतन्मयोदितम्।।

—नारद पञ्चरात्र (4/3)

(ख) 'वासुदेव' —

ॐ वासुदेवः परं ब्रह्म परमात्मा परात्परम्।
परं धाम परं ज्योतिः परं तत्वं परं पदम्।।
परं शिवं परो ध्येयः परं ज्ञानं परा गतिः।
परमार्थः परं श्रेयः परानन्दः परोदयः।।

1. *नादातीत परम ज्योति ही लक्ष्मी नारायण ब्रह्म हैं*—
नाद के अस्तमनोपरान्त उदित परम ज्योति ही लक्ष्मी नारायण ब्रह्म हैं— 'विरामे सति नादस्य यः स्फुटीभवति स्वयम्।
ज्योतिस्तत्परमं ब्रह्म लक्ष्मी नारायणा ह्ययम्।।' [1]

2. *पर 'ब्रह्म' 'शब्द ब्रह्म' से परे है—
'शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधि गच्छति।।'

3. *ज्ञान स्वरूप, नित्य, संसार के हेतु लक्ष्मी नारायण ही ब्रह्म हैं—
'नमो नित्यानवद्याय जगतः सर्व हेतवे।
ज्ञानाय निस्तरङ्गाय लक्ष्मीनारायणात्मने।।' [2]

4. *परमात्मा निर्दुःख, असीम सुख एवं आनन्दस्वरूप है।
(ल.तं.:द्वि.अ.) में कहा गया है कि—
'अस्ति निर्दुःखनिःसीमसुखानुभव लक्षणः।
परमात्मा परं यस्य पदं पश्यन्ति सूरयः।।

5. *'परमात्मा' अध्वों का अध्व, अहं और आत्मा है
परमात्मा मार्गों का मार्ग, अस्मिता एवं सर्वात्मभूत चैतन्य है।

(1) लक्ष्मी तंत्र (24/11) (2) लक्ष्मी तंत्र (57/55) (3) ल.तं

'चैतन्यमात्मा' कहकर त्रिक दर्शन ने परमात्मा या आत्मा को चैतन्य कहा है। वैष्णवागम उसे आत्मा और अहं के साथ ही साथ अध्वों का अध्व कहता है—

'अध्वनामध्वनः पारं परमात्मानमूचिरे।
अहं नाम स्मृतोयोऽर्थः स आत्मा समुदीर्यते।।

—(ल.तं. 2/3)

6. ***परमात्मा अनवच्छिन्न अहं चेतना चेतनात्मक तथा विश्व क्रोडीकृतस्वरूप है*** कहा भी गया है—

'अनवच्छिद्‌रूपोऽहं परमात्मेति शब्द्यते।
क्रोडी कृतमिदं सर्वं चेतना चेतनात्मकम्।। (2/4)

7. ***परमात्मा वह है जिससे प्रतीत होता है कि 'वह मैं हूं' और साथ ही वह क्षेत्रज्ञ एवं वासुदेव है ***

उक्त तथ्य की पुष्टि में वैष्णवागम में कहा गया है कि

'येन सोऽहंस्मृतो भावः परमात्मा सनातनः।

8. ***परमात्मा विश्वरूप है और परमात्मा की अहन्ता ही विश्व है*** 'लक्ष्मी तंत्र' में कहा गया है —

'विष्णुर्नारायणो विश्वो विश्वरूप इतीर्यते।
अहन्तया समाक्रान्तं तस्य विश्वमिदं जगत्।।' 2/6)

अर्थात् विष्णु (नारायण) ही 'विश्व हैं। वे ही **विश्वरूप** हैं। 'विश्व' उन्हीं की अहन्ता से समाक्रान्त है।

9. ***परमात्मा सभी विकारों से रहित, सनातन एवं देशकालपरिच्छेद शून्य है***

परमात्मा शान्त, निर्विकार सनातन, अनन्त आदि लक्षणों वाला है—कहा भी गया है—

'सर्वतः शान्त एवासौ निर्विकारः सनातनः।
अनन्तो देशकालादिपरिच्छेद विवर्जितः।। (2/8)

10. *परमात्मा महाविभूति, सर्वेव्याप्ति, निरालम्ब एवं परम धाम है*

परमात्मा विभूतियों का विभूति, सर्वानुस्यूत, सर्वव्याप्त एवं परम दिव्य धाम है—

'महाविभूतिरित्युक्तो व्याप्तिः सा महती यतः।
तद् ब्रह्म परमं धाम निरालम्बन भावनम्।। (2/9)

11. परमात्मा तरंगशून्य रत्नाकार है। वह षाड्गुण्योज्ज्वल, अद्वैत। चिद्धन एवं उदयास्तहीन परम सत्ता है—

निरस्तरङ्गामृताम्मोधिकल्पं षाड्गुण्य मुज्ज्वलम्।
एकं तच्चिद्धनं शान्त मुदयास्तमयोज्झितम्। (2/10)

12. *परमात्मा समस्त प्राणियों की अहम्भूत आत्मा है

सृष्टि के जितने भी जीव हैं उनमें स्थित, अस्मितानुगत जो चैतन्य है उसे ही 'हरि' कहते हैं—

आत्मा स सर्वभूतानामहम्भूतो हरिः स्मृतः। (2/13)

13. *'परमात्मा' शक्ति से अपृथक होने के कारण 'ब्रह्माद्वैत' कहलाता है

परमात्मा चन्द्र एवं चन्द्रिका की भांति शक्ति के साथ अद्वैत सम्बंध रखता है इसीलिए उसे 'ब्रह्माद्वैत' कहा गया है—

'अपृथग्भूत शक्तित्वात् ब्रह्माद्वैतं तदुत्यते।
तस्य या परमा शक्ति र्ज्योत्स्नेव हिमधीधितेः।।' (2/11)

14. * परमात्मा वह है जिसने विश्व को क्रोडीकृत करके रखा है और वह परमात्मा आकाशस्थ चन्द्र एवं विश्व जलस्थ चन्द्र प्रतिविम्ब है— कहा भी गया है कि —

क्रोडीकृत्याखिलं सर्वं ब्रह्मणि व्यवतिष्ठते।
उन्मेषस्तस्य यो नाम यथा चन्द्रोदयेम्बुधेः।।

* (बिम्ब प्रतिबिम्ब सम्बंध)*

***परमात्मा के लक्षण**—(1) ज्ञानस्वरूपता (2) देशकालापरिच्छिन्नता (3) त्रिगुण-शून्यता (4) निरञ्जनता (5) निसार एक ही आनन्द में मग्नता (6) षाड्गुण्य (7) अजरामरत्व (8)शाश्वती अहन्ता स्वरूप परमा शक्ति से जो युक्त है वही परब्रह्म या परमात्मा है—

सुख सदैक रूपं तु षाड्गुण्यमजराजरम।
तस्याहं परमा शक्तिरहन्ता शाश्वती ध्रुवा।।

—(ल.तं.14/1,2)

15. ***ज्ञान ही परब्रह्म है***
वेदों में भी 'सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म' कहकर ब्रह्म को ज्ञान का साक्षात् स्वरूप कहा गया है। वैष्णवागम की भी यही दृष्टि है—
'अवाहतमसङ्कोचमैश्वर्यं प्रतिजृंभते।
ज्ञानं तत्परं ब्रह्म सर्वदार्शि निरामयम्।। (2/24)

16. ***'षाड्गुण्यं ब्रह्म का स्वरूप है-**
ब्रह्म में 6 गुण विद्यमान हैं- (1) 'ज्ञान' (2) 'शक्ति' (3) 'बल' (4) 'वीर्य' (5) 'तेज' (6) 'ऐश्वर्य।'

17. *** ब्रह्म एवं उसकी शक्ति की जो अहन्ता है वह मुख्यतः ज्ञानात्मिका ही है।** इस ज्ञान में (1)सर्वज्ञता एवं (2) सर्वदर्शिता की शक्तियां निहित हैं।

18. **ब्रह्म एवं उसकी शक्ति का पर रूप ज्ञानात्मक है—**
'ज्ञानात्मिका तथाहन्ता सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी।
ज्ञानात्मकं परं रूपं ब्रह्मणो ममचोभयोः। (2/25)

* ज्ञान विषयक अन्य दृष्टियां —

(1) जैन दर्शन की मान्यता है कि प्रत्येक जीव में स्वभाव से ही अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन एवं अनन्त सामर्थ्य आदि गुण विद्यमान रहते हैं किन्तु आवरणीय कर्मों के प्रभाव से इनकी अभिव्यक्ति नहीं होती। कर्मों का नाश होने पर शुद्ध ज्ञान उदित होता है। जीव के मुख्य गुण दो ही हैं—(1) चेतना या अनुभूति (2) उपयोग (चेतना का फल) 'उपयोग' के दो भेद हैं—(1) ज्ञानोपयोग (2) दर्शनोपयोग ज्ञानोपयोग

ही सविकल्पक ज्ञान कहा जाता है। दर्शनोपयोग निर्विकल्पक ज्ञान है। जैनियों ने ज्ञान के अनेक भेद किए।

(5) * ज्ञान के प्रकार (जैन दर्शन)

↓

1	2	3	4	5
'मति ज्ञान'	'श्रुति ज्ञान'	'अवधि ज्ञान'	'मन: पर्याय'	'केवल ज्ञान'

'अवधि ज्ञान'- समय एवं स्थान की दूरी होने पर भी उस स्थान का ज्ञान। यह यौगिक प्रत्यक्ष के समतुल्य है

'मन: पर्याय = दूसरे के मन का ज्ञान ।।

{केवली का / केवल ज्ञान} = सर्वज्ञता। अवधिज्ञान'-भूत, भविष्य एवं वर्तमान त्रिकाल का ज्ञान। 'मन:पर्याय'-परचित्तज्ञान।।

'केवल ज्ञान = मुक्त जीवों का ज्ञान। अपरिच्छिन्न सर्वज्ञतापूर्ण) ज्ञान

त्रिक दर्शन = **'चैतन्यमात्मा' : चैतन्य ही आत्मा है**

जैनागम = **'चैतन्यमात्मनो रूपं तच्चज्ञानमयं विदु:।।**
चैतन्य आत्मा का स्वरूप है और वह ज्ञानमय है

*** ज्ञान की श्रेष्ठता**— भगवान षाड्गुण्यपूर्ण है किन्तु उसके 6 गुणों में भी **'ज्ञान'** सर्वोच्च गुण है क्योंकि—**'शक्ति', 'बल', 'वीर्य', 'तेज'** एवं **'ऐश्वर्य'** ये 5 गुण ज्ञान के अविनाशी धर्म हैं—

'शेषमैश्वर्यवीर्यादि ज्ञान धर्म: सनातन्:।
पर ब्रह्म की अहन्ता अन्य धर्म नहीं मात्र ज्ञान है
'अहमित्यान्तरं रूपं ज्ञानरूपमुदीर्यते।। (2/26)

(6) ***भगवती और भगवान दोनों ज्ञानारूपात्मक हैं—**
भगवती लक्ष्मी कहती हैं—
'अतस्तु ज्ञानरूपत्वं मम नारायणास्य च।।' (2/27)

(7) ***भगवती का ऐश्वर्य भी ज्ञानरूपात्मक है***
भगवती कहती हैं कि निर्बाध रूप में उदीयमान एवं स्थायी ज्ञान ही मेरा ऐश्वर्य है—
'अव्याहतिर्यद्यत्यास्तदैश्वर्यं परं मम।।' (2/28)

(8) ***परमतत्व एकात्मक है, नारायणस्वरूप है और सनातन है***
शास्त्र कहता है–
'एको. नारायणो देवः परमात्मा सनातनः। [1]

(9) **परमतत्व षाड्गुण्योपेत है–**
जगत के परम तत्व में 'ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति एवं तेज'-यह षाड्गुण्य विद्यमान हैं–
'तदा ज्ञानबलैश्वर्य वीर्य शक्त्योजसां निधिः। [2]

(10) **यह परम तत्व अनादि, अपरिच्छेद्य एवं देशकाल के साक्षात् स्वरूप हैं अर्थात् वे ही देश भी हैं और काल भी हैं–**
'अनादिरपरिच्छेद्यो देशकालस्वरूपतः।।' (ल.तं.13/19)

(11) ***व्यूह भी भगवान के ही रूपान्तर हैं**–हाँ इनमें **'षाड्गुण्य'** का पूर्णतम विकास (जैसा कि वासुदेव में होता है) नहीं होता तथापि इनमें जो प्रधान गुणद्वय होते हैं वे अमित होते हैं।

(12) ***'वासुदेव' ही परं ब्रह्म हैं**–**'लक्ष्मी तंत्र'**(14/1) में कहा गया है कि–
ज्ञानस्वरूपो भगवान देशकालाद्यभेदितः।
वासुदेवः परं ब्रह्म गुण शून्यं निरंजनम्।।'

1. **त्रिविध-ब्रह्म** (1)'पर' (2) 'व्यूह' (3) 'विभव'
2. **चतुर्विध ब्रह्म** (1) वासुदेव (2) संकर्षण
   (3) प्रद्युम्न (4) अनिरुद्ध (व्यूह चतुष्टय)
3. **पञ्चविध ब्रह्म** (1) पर (2) व्यूह(3) विभव
   (4) अन्तर्यामी (5) अर्चावतार। –विष्वक्सेन संहिता तत्वत्रय

(13) **'नारायण'**
'आपो नारा इति प्रोक्ता।
आपो वै नरसूनवः।
अयनं मम तत पूर्वमतो
नारायणो ह्यहम'
–(महाभारतः शान्ति पर्व
341/40)

परमात्मा
(परब्रह्म)
(वासुदेव, विष्णु नारायण)

अस्ति निर्दुःख निःसीम
सुखानु भ लक्षणः।
परमात्मा परं यस्य पदं
पश्यन्ति सूरयः।
(ल.तं. 2/1)
अध्वानाम ध्वनः पारं
परमात्मनमूचि

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (13/18) (2) ल.तं. (13/19) (3) ल.तं.

परमात्मा के लक्षण

↓

1	2	3	4	5	6
निर्दु:ख	नि:सीम सुखी	मार्गों का मार्ग	'अहं'	चेतनाचेतनं को क्रोडीकृत करके स्थित	जिससे सोऽहं का भाव उद्‌बुद्ध हो उठे वही परमात्मा है
2/1 ल.तं.	2/1 ल.तं	2/3 ल.तं	(2/4) ल.तं	(2/4) ल.तं2/5	

7	8	9	10
विश्वरूप (1)	विश्वाहन्ता विश्व की अनन्त अहन्ताओं की समष्टि	'सर्वत: शान्त एवासौ निर्विकार: सनातन:। अनन्तो देशकालादि परिच्छेद विवर्जित।। -ल.तं. 2/8)	महाविभूति ल.तं. (2/9) (सर्वव्याप्त)

11	12	13	14
निरालम्बन भावात्मक एवं परम धाम एवं ब्रह्म है	निस्तरंग अमृत समुद्र है	षाड्गुण्य से उज्जवल है	एकं, तच्चिदधनं शान्तमुदयोस्तम योज्झितम्।। (ल.तं 2/10)

15	
समस्त प्राणियों की अहम्भूत आत्मा स सर्वभूताना	आत्मा ही परमात्मा है महम्भूतो हरिस्मृत: —ल.त. (2/13)

16	17		18
परमात्मा विश्व को क्रोडीकृत करके रखने वाली परा सत्ता है: 'क्रोडी कृत्याखिलं सर्वं ब्रह्मणिव्यवतिष्ठते। ल.तं. 2/21	ब्रह्म का उन्मेष आकाशस्थ चन्द्रमा समुद्र में समुद्र से उत्पन्न लगता है	ब्रह्म आकाशस्थ चन्द्रवत है 'जगत'-समुद्र में उदित चन्द्रवत है अत: मिथ्या है ब्रह्म सत्य जग-न्मिथा। (शंकर)	ज्ञान ही परब्रह्म है ज्ञानं तत्परमं ब्रह्म सर्वदर्शि निरामयम्। ल.तं 2/24

'उन्मेषस्तस्य यो नाम यथा चन्द्रोदयेऽम्बुधेः।।' ल.तं. 2/21)

यतीन्द्रमतिदीपिका कार श्री निवास आदि एवं रामानुजाचार्य एवं उनके वैष्णव अनुयायी पंचविध ब्रह्म की उपासना करते हैं।

विश्व में जो कुछ भी है वह ब्रह्म के भीतर स्थित है। ('तत्वत्रय' एवं 'विष्वक्सेन संहिता' के अनुसार)

(15)

पञ्चविध ब्रह्म

'पर ब्रह्म' के 5 भेद

1	2	3	4	5
'पर'	'व्यूह'	'विभव'	'अन्तर्यामी'	अर्चावतार'

(1) विष्णुर्नारायणो विश्वो विश्वरूप इतीर्यते। (ल.तं. 2/6)

(2) अहन्तया समाक्रान्तं तस्य विश्वभिदं जगत् (ल.तं. 2/6)
(विश्व परमात्मा की अहन्ता से समाक्रान्त है। वह सर्वव्याप्त अहन्ता है।)

(3) महाविभूतिरित्युक्तो व्याप्तिः सा महती यतः।
तद् ब्रह्म परमं धाम निरालम्बनभावनम्।। (ल.तं. 2/9)

(4) *अध्वाओं का अध्व (मार्गों का मार्ग) तथापि अध्वातीत*
अध्वनामध्वनः पारं परमात्मानमूचिरे
अहं नाम स्मृतो योऽर्थः स आत्मा समुदीर्यते।।
(ल.तं. 2/3)

* अध्वाओं का अध्व तथा अध्वातीत* = परमात्मा।।

(16) * 'परं वासुदेव' एवं व्यूह चतुष्टय*
* त्रिविध ब्रह्म * त्रिविध परमं ब्रह्म'

(17) 'सात्वत संहिता' के प्रथम परिच्छेद में ब्रह्म को त्रिविध कहा गया है—

(1) त्रिविधेन प्रकारेण परमं ब्रह्म शाश्वतम्।'

(2) 'भगवंस्त्रिविधं ब्रूहि उपेयं ब्रह्मलक्षणम्।।'

(क) 'पर ब्रह्म'-षाड्गुण्य विग्रहं देवं मास्वज्ज्वलनतेजसम् सर्वतः
पाणिपादं तत् सर्वतोक्षिशिरोमुखम्
परमेतत् समाख्यातमेकं सर्वाश्रयं प्रभुम्।

(ख) 'व्यूह' ब्रह्म
एतत् पूर्वत्रयं चान्यज्ज्ञानाद्यैर्भेदितं गुणैः।
विद्धि तद 'व्यूहं संज्ञं सद् निःश्रेयसफलप्रदम्।।

(18) ब्रह्मत्रय

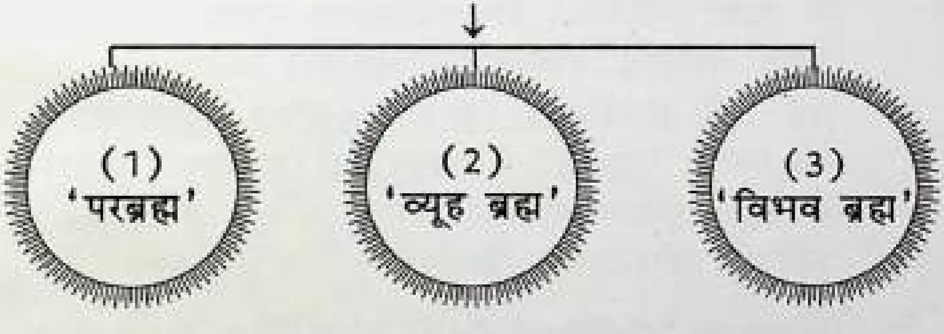

'परं व्यूह विभवात्मना त्रिविधं परं ब्रह्मेति भागवत सिद्धान्तः।। [1]

(ग) 'विभव ब्रह्म'-
'मुख्यानुवृत्तिभेदेन युक्तं ज्ञानादिकैर्गुणैः।
नानाकृतिं च तद् विद्धि 'वैभवं' मुक्ति मुक्तिदम्।। [2]

(19) वासुदेव के चार व्यूह : व्यूह ब्रह्म : व्यूह चतुष्टय[3]

1	2	3	4	
'वासुदेव' (तुरीय के) स्वामी	'संकर्षण' सुषुप्ति के स्वामी	'प्रद्युम्न' स्वप्न के स्वामी	'अनिरुद्ध' जाग्रत के स्वामी	'वासुदेव'-संकर्षण प्रद्युम्नानिरुद्ध चतुष्टयम्।।

—भाष्यकार अलशिङ्ग भट्ट

चतुर्व्यूह के ऊपर 'पद्मनाभपरमब्रह्म वासुदेव नारायण' है।

'विभवोऽनन्तरूपस्तु पद्मनाभमुखो विभोः।।' (ल.तं.2/58)

(1) माष्यकारः अलशिङ्गभट्ट (2) सात्वत् संहिता (प्रथम परिच्छेद 27)
(3) पर ब्रह्म का चातुर्विध्य।। (पञ्च)

(20) काश्मीरी शैव तांत्रिको की परमशिव सम्बंधिनी दृष्टि—
शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त 36 तत्वों में अभेदरूपता से स्फुरित आत्मा का इच्छा प्रसार ही उसका अपना **'विश्वात्मक स्वरूप'** है। शैवागम में इसे **'विमर्श'** (परमशिव की शक्ति) कहते हैं। शिव की शक्ति का सकार ही नानारूपात्मक विश्व है—
'क्रिया शक्तेरेष (स्वातंत्र्यामर्शरूपायाः)
अयं सर्वो विस्कारः।। (ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी)
इसी कारण 'शिवसूत्रों' में 'विश्व' को परमशिव (आत्मा) का शक्ति-संघात कहा गया है—
'स्वशक्ति प्रचयोऽस्य विश्वम्।'

परमेश्वर का शक्ति सकार होने के कारण निखिल पदार्थ प्रकाशरूप है अतः परमेश्वर से अभिन्न हैं। एक मात्र **'परमशिव'** ही विभिन्न विचित्रताओं के साथ विश्वभाव से स्फुरित हो रहा है।परमशिव सर्वाकाररूप है— सर्वात्मक है-सर्वानुस्यूत एवं सर्वरूप है। इस प्रकार वह विश्वात्मक तो है किन्तु फिर भी विश्वोत्तीर्ण है—अतएव अयं विश्व मयत्वेऽपि विश्वोत्तेर्णस्तुदुत्तीर्णत्वेऽपि तन्मयः।।'

—तन्त्रालोक की टीका

(21) परमशिव 'विश्वमय' एवं विश्वोत्तीर्ण, दोनों है।
चिति (इच्छा) ही 'विश्व' का उपादान कारण है
'प्रत्यभिज्ञा हृदय' में कहा गया है कि 'चिति' अपनी स्वतंत्र इच्छा से 'आत्मभित्ति पर (अपनी चिद्रूपता के अन्तर्गत) अभेद रूप से विश्व को उन्मीलित करती है—

'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्व मुन्मीलयति।। (प्र.ह.सू.2)

(9) **विभव ब्रह्म— 'विभव'** व्यूहों की छाया है। वे सुर, नर, तिर्यक आदि योनियों में प्रकट हुए हैं। जैसे मत्स्यकूर्म नृसिंह, वराह आदि। अन्य जैसे-ऋष्यादिक। भार्गव राम, कृष्ण द्वैपायन आदि।

शक्त्यावेश युक्त-पुरञ्जय आदि। अर्चावतार। 'विभवोऽनन्तरुपस्तु पद्मनाभमुखो विभोः।

अनिरुद्धस्य विस्तारो दर्शितस्तस्य सात्वते।
अर्चापि लौकिकी या सा भगवद्भावितात्मनाम्।
मन्त्र मन्त्रेश्वरन्यासात् सापि षाड्गुण्यविग्रहा।। (2/58-61)

(10) षाड्गुण्य और अहन्ता

* षाड्गुण्य के कारण

परमेश्वर के चार रूप : चातुरात्म्य*
(षाड्गुण्य' व्यूहों का स्वरूप-निर्धारक है)

'षाड्गुण्य के आधार पर ही व्यूहों के स्वरूप का निर्माण हुआ।
6 गुण = 'आलम्बित चतूरूपं रूपं तत्पारमेश्वरम्।। (ल.तं.2/38)
'षाड्गुण्य : लक्ष्मी और परमात्मा के रूप
* 'षाड्गुण्य' लक्ष्मी का स्वस्वरूप है
* 'ज्ञानाद्याः षड्गुणा एते षाड्गुण्यं मम तद्वपुः।।' ल.तं. 2/36

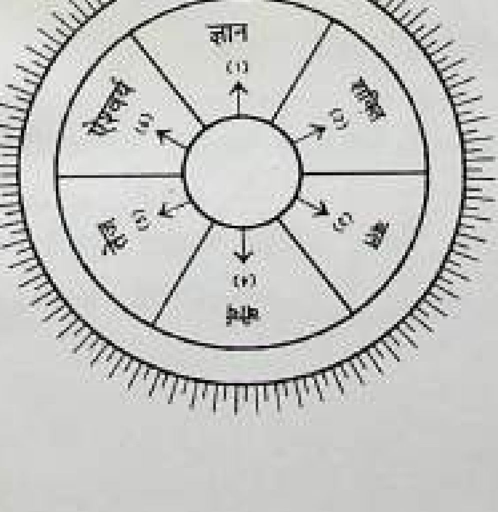

* लक्ष्मी में
स्थित
6 गुण

* 'षाड्गुण्य' *

'लक्ष्मी में स्थित 6 गुण—

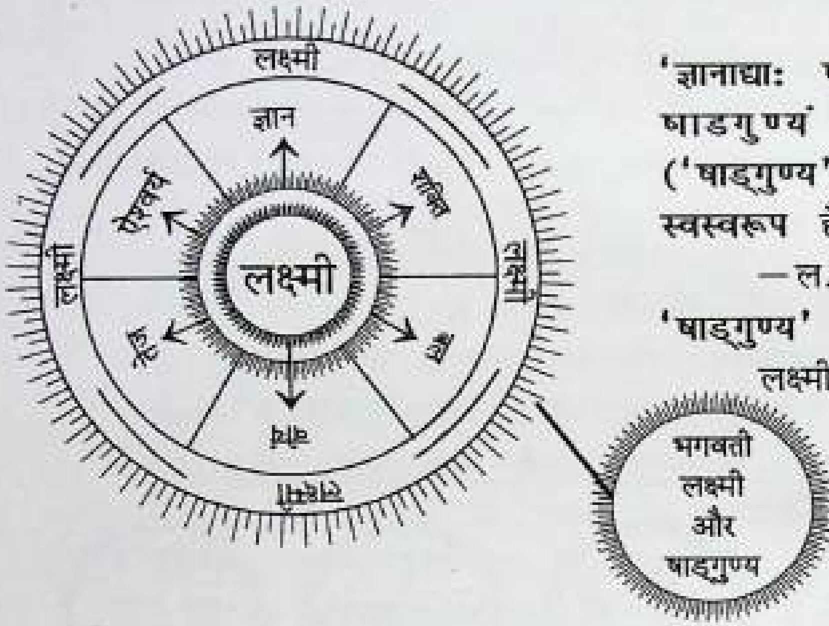

'ज्ञानाद्याः षड्गुण एते षाडगुण्यं ममतद्वपुः ('षाड्गुण्य' लक्ष्मी का स्वस्वरूप है)

—ल.तं. (2/36)

'षाड्गुण्य' = भगवती लक्ष्मी का शरीर।

(लक्ष्मी और षाड्गुण्य का पारस्परिक सम्बंध)

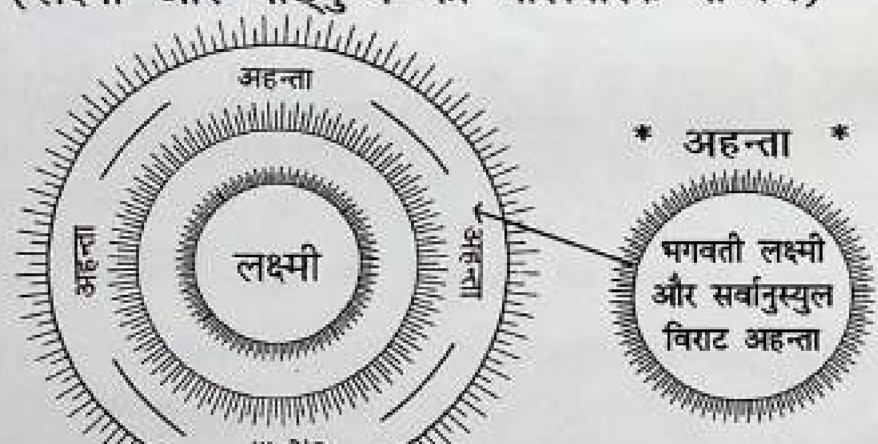

(सर्वान्तर्भूतसार्वभौम वैश्विक अहन्ता और लक्ष्मी) (अंर्तसंबंध)

निरुन्मेषे निरुन्मेषा साहन्ता पारमेश्वरी।।

— (ल.तं. 2/20)

(1) 'आदि व्यूहस्य देवस्य वासुदेवस्य'

— (ल.तं. 6/14)

* भगवती लक्ष्मी की विराट अहन्ता का स्वरूप *

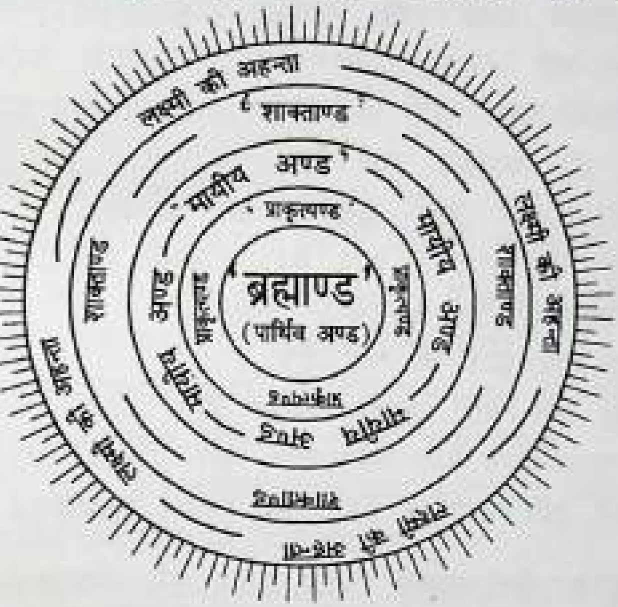

(ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड एवं शाक्ताण्ड आदि सभी में लक्ष्मी की अहन्ता व्याप्त है)

'ज्ञान' ब्रह्म, लक्ष्मी, षाड्गुण्य–

षडैश्वर्य षाड्गुण्य

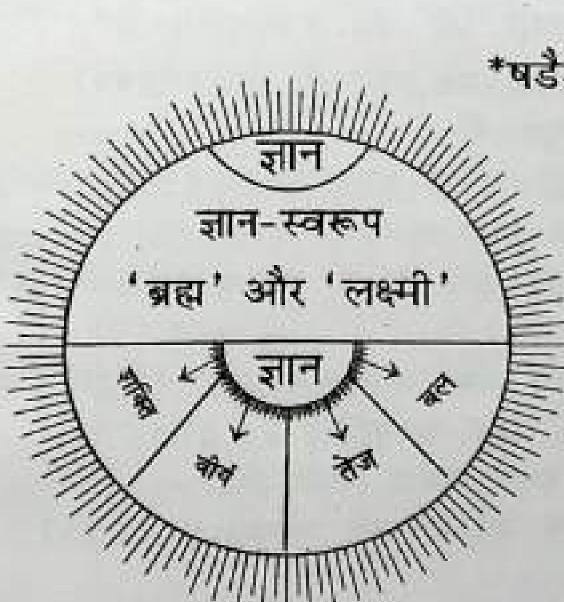

6 गुणों में एक गुण 'ज्ञान' भी है।

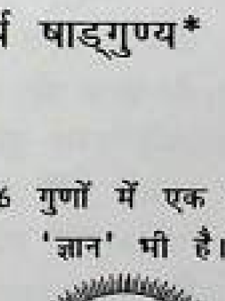

'सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म'

(11) *ज्ञान तत्व* - ज्ञान की सर्वोच्चता–

(1) ज्ञानात्मिका तथा हन्ता सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी।
(शक्ति की अहन्ता ज्ञानरूपा है।)

(2) ज्ञानात्मकं परं रूपं ब्रह्मणोमम चोभयो:।।
(ब्रह्म का परमरूप ज्ञान है)

(3) ज्ञानात्मकं परं रूपं ब्रह्मणो मम चोभयो:
(लक्ष्मी का परमरूप ज्ञान है।) (लक्ष्मी तंत्र-2/25)

(4) शेषमैश्वर्यवीर्यादि ज्ञानधर्म: सनातन:।
(अन्य गुण ज्ञान के धर्म हैं।)

(5) परब्रह्म का अहं ज्ञानरूपात्मक है–
अहमित्यान्तररूपं मम नारायणस्य च।। (ल.तं. 2/27)
(लक्ष्मी और नारायण दोनों का स्वरूप ज्योतिर्मय ज्ञान है।)

(11) षाड्गुण्य का स्वरूप और ज्ञान की महत्ता–

1. ज्ञानादिक गुणाषट्क (ज्ञान, शक्ति, बल, वीर्य, तेज और ऐश्वर्य) लक्ष्मी का शरीर है
'ज्ञानाद्या: षड्गुणा: एते षाड्गुण्यं ममतद्वपु:'।।

(2) 'वपु' का अर्थ स्वरूप भी ग्रहणीय है अत:

* षाड्गुण्य लक्ष्मी जी का स्वस्वरूप है*

(3) शेष 5 गुण (शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, ऐश्वर्य)
* ज्ञान के ही गुण हैं–
'इति पञ्च गुणा एते ज्ञानस्य श्रुतयोऽमला:। (ल.तं. 2/35)

(4) परब्रह्म की अहन्ता ज्ञानस्वरूप है। (ल.तं. 2/26)।

(5) शक्ति एवं शक्तिमान दोनों का ही स्वरूप ज्योतिर्मय ज्ञान है–
'अतस्तु ज्ञान रूपत्वं मम नारायणस्य च।' (2/27)
'अहमित्यान्तरं रूपं ज्ञान रूपमुदीर्यते।। (2/26)

(6) ज्ञानात्मिका तथा हन्ता सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी।
ज्ञानात्मकं परं रूपं ब्रह्मणो मम चोभयो:।। (2/25)

(7) निर्बाध उदय होने वाला 'ज्ञान' ही लक्ष्मी का ऐश्वर्य है
'अव्याहति र्यदुद्यत्यास्तदैश्वर्यं परं मम।।
इच्छेति सोच्यते:।।
(8) भगव इसे ही इच्छा भी कहते हैं। (2/28)

(12) अद्वैत की स्थिति —

'लक्ष्मी तंत्र' के अध्याय 18 में भगवती कहती हैं कि 'पुष्करेक्ष, पूर्णतम सनातन, आद्य एवं परम पुरुष जो विष्णु' हैं और मैं दोनों एक ही हैं।'

'अहमित्येव यः पूर्णः पुरुषः पुष्करेक्षणः।' [1]

भगवान वासुदेव अनन्त एवं निस्तरङ्ग उदय की भांति प्रकाशित हैं और मैं उसी पूर्णतम सत्ता की 'पूर्ण हन्ता' हूं।

मैं एक हूं— मैं उसकी एकात्मिका शक्ति हूं और ईश्वरतामयी हूं—'पूर्णाहन्तास्मि तस्यैका शक्तिरीश्वरतामयी।'

भगवती 'पूर्णाहन्ता' हैं। 'मैं पूर्णाहन्ता हूँ।' (लक्ष्मी)।

प्रश्न उठता है कि **'पूर्णाहन्ता' है क्या?**

भगवती कहती हैं कि- (1) इस जगत में जितने भी भावभाव पदार्थ हैं उनका स्वभाव यह है कि वे सभी सत-असत् के स्वरूप वाले इस जगत में 'इदम्' के रूप में स्थित हैं—'इदंतयावलीढंयत् सदसज्जगति स्थितम्' (18/12) * 'इदम' का 'अहम' में लय*

परमात्मा के साथ विश्व की एकता —

यह निखिल जगद्रूप इदम्' 'इदम पदरूप एक द्वीप में विलीन हो जाता है। सभी अहं में विलीन हो जाते हैं। यह इदम द्वीप चित तत्व के सागर भगवान वासुदेव में विलीन होकर उसके साथ एकत्व प्राप्त कर लेते हैं।

1	2
विश्व के अनन्त भेदों का- एक 'इदम्' में लय।	इदमात्मक, समस्त जागतिक, भावाभाव, सत-असत् के स्वरूप वाला अनन्त भेदात्मक विश्व 'एक' में लयीभूत हो जाता है।

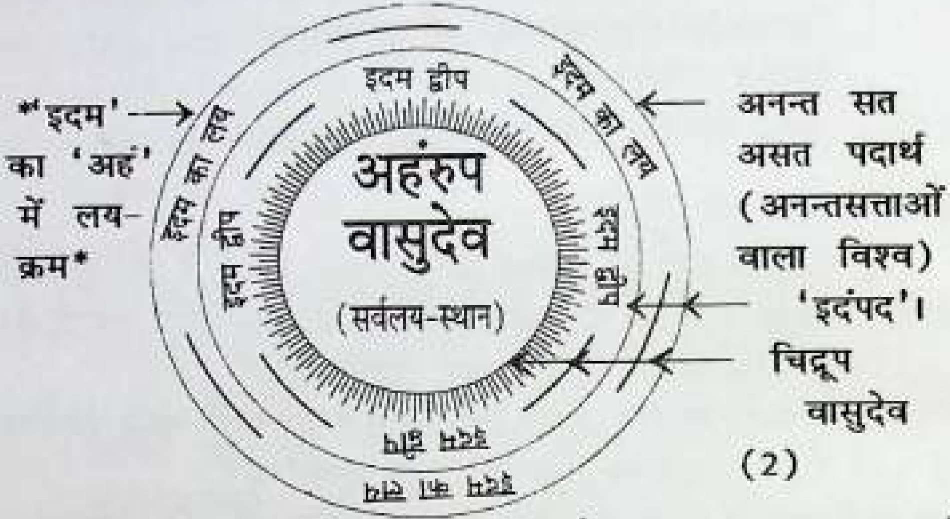

(2)

विश्व के अनन्त भेदात्मक नाम-रूप, देश-काल, सत्-असत पदार्थ इदम्पद रूप द्वीप में लयीभूत हो जाते हैं और यह 'इदम पद रूप द्वीप' चिति के महासागर वासुदेव में विलीन हो जाता है। (यथा समस्त अहं और इदम 'हिरण्यगर्भ' में एवं 'हिरण्यगर्भ' परमात्मा में लीन हो जाता है।)

(1) 'बहु 'एक' में लय हो जाता है क्योंकि एक ही तो बहु बन गया है—

'एकोऽहं बहुस्याम्'

बह्वात्मक विकास
सत्य नहीं है क्योंकि वह एकात्मक का ही पुनः प्रसार है और अनन्त बहु एक में लय हो ही जाएगा।

---

(1) ल.तं. (18/11) (2) ल.तं. (18-12-13)

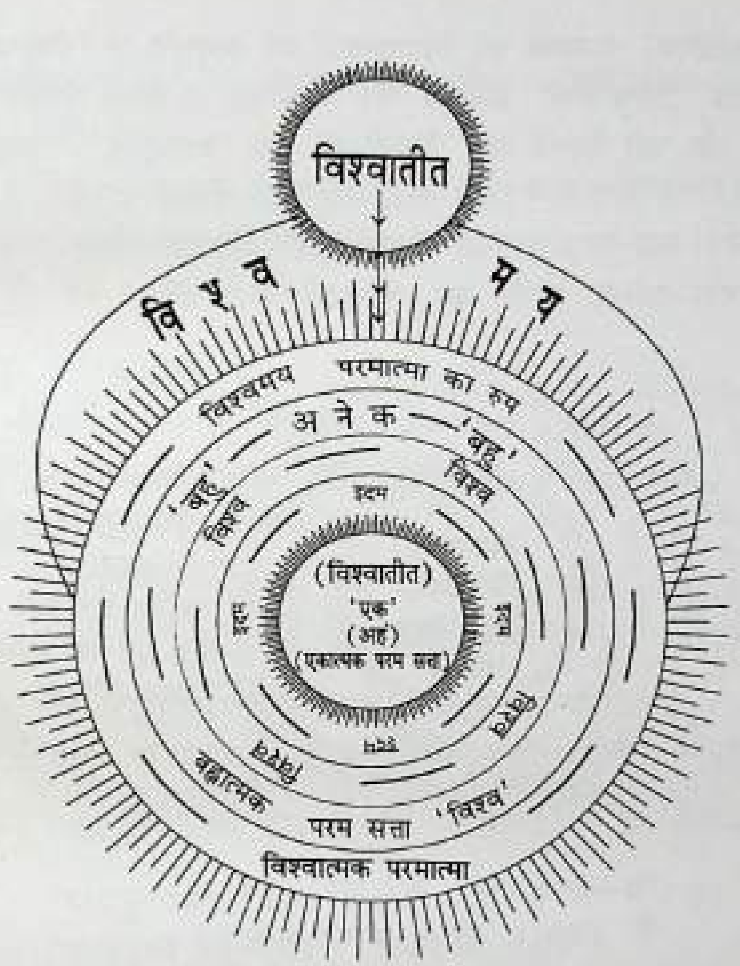

(1) 'अहमित्येव यः पूर्णः पुरुष पुष्करेक्षणः।'

(2) इदंतयावलीदंयत् सदसज्जगति स्थितम्।

(3) पूर्णाहन्तास्मि तस्यै का शक्तिरीश्वरतामयी' —ल.तंत्र

'विश्वमय' परमात्मा की विश्वमयता की अनुभूति ही **'विश्वाहन्ता'** है और यह 'विश्वाहन्ता' वासुदेव की आत्मभूता सनातनी वैष्णवी **'परा शक्ति'** है और यही वैष्णवी सत्ता **'विश्वोऽहं'** (या **'अहमस्मि'—'अहमिदम'** एवं इदमहम के रूप में—शिव-सदाशिव' एवं ईश्वर के रूप में अभेद एवं भेदाभेद स्तर पर) बनकर **'पूर्णाहन्ता'** कहलाती है—

'पूर्णाहन्तास्मि तस्यै का शक्तिरीश्वरतामयी।।

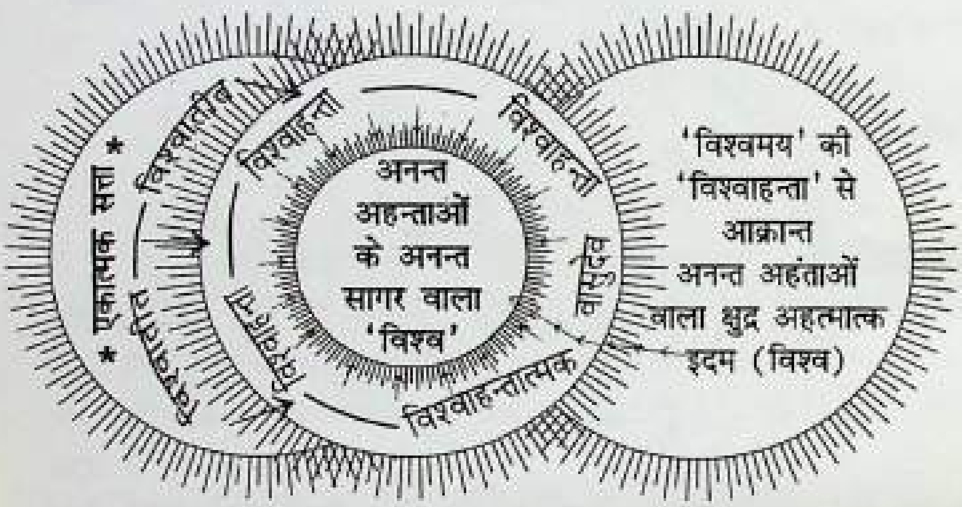

'घबड़ाओ मत मैं' ही 'तुम हूं' —
मैं (एक) ही (विश्वरूपात्मक)
'बहु' हूं 'एकोऽहं बहुस्याम'

परमात्मा के रूपद्वय

↓

(1) विश्वातीत	⟷	(2) विश्वरूप

(बीज)→ अंकुर→तना→पत्ता→शाखा→फूल→फल→ (बीज)।

* **एकात्मक 'बीज' का बह्वात्मक वृक्ष रूप में विकास होता** है किन्तु वृक्ष का अन्तिम विकास फिर 'बीज' रूप में ही होता है।

(1)ल.तं. (2) ल.तं. (3) ल.तं. (18/11-14)

बीज या वृक्ष के विकास की अन्तिम परिपक्वावस्था 'बीज' रूप में ही होती है।

"बीज' से आरंभ और 'बीज' में अन्त। विश्वातीत (बीज) विश्वरूप वृक्ष बनता है किन्तु विकास-क्रम की अन्तिम स्टेज पर पुनः बीज ही बन जाता है।

(13) * षाड्गुण्य : *

षाड्गुण्य-निहित गुणषट्क देवी ही हैं।

(ज्ञानाद्याः षड्गुणा एवे षाड्गुण्यं मम तद्वपुः।।)

षाड्गुण्य का स्वरूप—

'षाड्गुण्य' भगवती का ही अपना स्वरूप है।

(1) **'षाड्गुण्यं तत परं ब्रह्म सर्वकारणाकारणम्।।'**(अहि.सं.2.53)

(2) **निस्तरङ्गामृताम्भोधिकल्पं षाड्गुण्यमुज्ज्वलम्।**
एकं तच्चिद्धनं शान्तमुदयास्तमयोज्झितम्।। (ल.तं.2/10)

अर्थात् **'षाड्गुण्य'** पर ब्रह्म है और 'षाड्गुण्य' से वह देदीप्यमान है—

(1) **'षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म' (अहिर्बुध्न्य संहिता)**

(2) **'षाड्गुण्य मुज्ज्वलम्' (लक्ष्मी तंत्र)**

(3) **षाड्गुण्य गुणयोगेन भगवान् परिकीर्तितः। (अहि.सं. 2/28)**

(4) **ज्ञानाद्याः षड्गुणाः एते षाड्गुण्यं मम तद्वपुः।। (लक्ष्मीतंत्र)**

कल्पना कीजिए कि किसी व्यक्ति में **'ज्ञान', 'बल', 'शक्ति', 'वीर्य', 'तेज'** और **'ऐश्वर्य'** ये छहों गुण अपने चरम शीर्ष पर हों और इस संसार में इन गुणों की दृष्टि से उस व्यक्ति की कोई भी अन्य व्यक्ति समानता न कर सके तो क्या उस व्यक्ति में स्थित ये अप्रतिम गुण 'षाड्गुण्य' कहे जा सकते हैं? नहीं। कथमपि नहीं।

'षाड्गुण्य' की विशेषता—

'षाड्गुण्य' अपनी श्रेष्ठता और महत्ता में विलक्षण, अप्रतिम और अनुपम है

(1)प्र.- क्या **'षाड्गुण्य'** सांसारिक या प्राकृत गुणों के समतुल्य है।

(2)प्र.- क्या जीवों में पाये जाने वाले 'बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य, एवं ज्ञान आदि गुणों की ही भांति **'षाड्गुण्य'** भी हैं?

(3)प्र.- क्या ये भी उत्पन्न हो जाते हैं और नष्ट भी हो जाते हैं।?

(4)प्र.- क्या ये भी अनित्य हैं? 'नहीं' ये प्राकृत गुण नहीं है। इनकी कल्पना अनुपमेय पारमात्मिक दिव्य शक्तियों के रूप में की गई है। इनके बिना—**'वासुदेव' 'संकर्षण' 'प्रद्युम्न'** और **'अनिरुद्ध'** की भी कल्पना नहीं की जा सकती। इन्हीं गुणों में सारे लौकिका लौकिक अस्तित्वों का निवास है। इन्हीं में **'वासुदेव'**, भगवती 'लक्ष्मी', सारे व्यूह, सारे विभव, सारी सत्तायें और सारा-ब्रह्माण्ड, **'प्रकृत्यण्ड', 'मायाण्ड'** और **'शाक्ताण्ड'** निहित है ये ही सृष्टि के उपादान कारण भी हैं। ये **विष्णु-लक्ष्मी स्वरूप** भी हैं।

* 'षाड्गुण्य' का यथार्थ स्वरूप—

'षाड्गुण्य' साक्षात परब्रह्म है और जगत के समस्त कारणों का कारण है। सारे कारण उसी में निवास करते हैं अतः वह **'सर्वकारणकारणम'** है।

* 'अहिर्बुध्न्य संहिता' की दृष्टि—

'अहिर्बुध्न्य संहिता' (अ.2) में कहा गया है कि जो सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्त है और निखिल उपाधियों से रहित है वही **'षाड्गुण्य'** सभी कारणों का कारण है—

'सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वोपाधि विवर्जितम्।
षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म सर्व कारणकारणम्।। (2/53)

प्रश्न— यदि **'षाड्गुण्य'** पर ब्रह्म है तो क्या यह **'परब्रह्म'** प्रकृतिजन्य गुणों वाला है और इसीलिए उसकी आख्या **'षाड्गुण्य'** भी है? नहीं। यह **'षाड्गुण्य' स्वरूप पर ब्रह्मं 6 गुणों से युक्त** रहते हुए भी इनके समान प्रतीयमान प्राकृतिक षड्गुणों से परे है। इस षाड्गुण्य स्वरूप पर ब्रह्म को तो ये प्राकृतिक षड्गुण स्पर्श भी नहीं कर सकते—

'अप्राकृत गुणस्पर्शं निर्गुणं परिगीयतो' (2/55)

* तथापि वह निर्गुण पर ब्रह्म **'सर्वकारणकरण षाड्गुण्य पर ब्रह्म'** कहा गया है–

'षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म सर्व कारण कारणम्।। (1)

नारद इसी विरोधाभास से चकित होकर शंका में पड़कर अहिर्बुध्न्य से पूछते हैं–

'षाड्गुण्यं तत कथं ब्रह्म स्वशक्तिपरिबृंहितम्।
तस्य शक्तिश्च का नाम यया बृंहितमुच्यते।। (2)

'षाड्गुण्य' में ज्ञान प्रधान है और उसे भी प्रत्यक्षतः परब्रह्म कहा गया है और ज्ञानादिक अप्राकृत षाड्गुण्य से परब्रह्म को 'स्वशक्तिपरिबृंहित' कहा गया है–

'ज्ञानामेव परं रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः।
'षाड्गुण्यं तत् परं ब्रह्म स्वशक्तिपरिबृंहितम्।।

इसी **षाड्गुण्योपेत** परब्रह्म को **'सुदर्शन'** भी कहते हैं जिसने सिसृक्षा के समय संकल्प किया कि–**'एकोऽहं बहुस्याम्।।**–

'बहुस्यामिति संकल्पं भजते तत् सुदर्शनम्।'

निर्गुण-सगुण की समस्या–

वेदान्त का ब्रह्म निर्गुण है अतः सगुण नहीं है। किन्तु वैष्णवागम का ब्रह्म (1)निर्गुण और (2) 'सगुण' दोनों है। यद्यपि वह प्राकृत गुणों से अस्पृष्ट है- प्राकृत गुणस्पुर्शविहीन है तथापि वह अप्राकृत गुणों का महार्णव है। वह षाड्गुण्य-योग से भगवान है। पाञ्चरात्रागम में पर ब्रह्म का निर्गुणभाव एवं सगुणभाव दोनों स्वीकृत है। 'वह' 'षाड्गुण्यों पेत है किन्तु प्राकृतिक गुणों से रहित है अतः वह (षाड्गुण्य के कारण) 'सगुण' और (प्राकृतिक गुणों से रहित होने के कारण) 'निर्गुण', 'सगुण' दोनों है।

सम्पूर्ण जगत के सृष्टि–स्थिति-संहार रूप सारे व्यापारों के निष्पादन के लिए **'षाड्गुण्य'** आवश्यक है।

---

(1) अहि. संहिता (2/53) (2) अहि.सं. (3/1) (3) अहि.सं. (2/62)

(15) षाड्गुण्य और भगवती लक्ष्मी—

'लक्ष्मी तंत्र' (2/36) में कहा गया है कि भगवती स्वयं कहती है कि-(1)**'ज्ञान'** (2)**'शक्ति'** (3)**'बल'** (4)**'वीर्य'** (5)**'तेज'** (6)**'ऐश्वर्य'**—ये 6 गुण मेरा ही स्वरूप है, यही मेरा षाड्गुण्य स्वरूप हैं। इसी से मेरी सिसृक्षा के समय 10 हजार कलाओं का जन्म होता है और इन्हीं से सृष्टि होती है।[1]

(16) 'षाड्गुण्य' और परमात्मा का रूप चतुष्टय—

व्यक्ताव्यक्त षाड्गुण्य-क्रम प्रकाशमान है। इन्हीं प्रकाशमान 6 गुणों के आलम्बन से **परमेश्वर के चार रूप** हो जाते हैं—

'अभिव्यक्तानभिव्यक्त षाड्गुण्यक्रममुज्ज्वलम्।
आलम्बित चतरूपं रूपं तत्पारमेश्वरम्।। (2/38)

(17) परमेश्वर के रूप चतुष्टय

↓

1	2	3	4
वासुदेव	सङ्कर्षण	प्रद्युम्न	अनिरुद्ध

प्रथम व्यूह रूप वासुदेव में **'षाड्गुण्य'**-क्रम का आभास नहीं होता किन्तु **'सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध'** में कुछ-कुछ क्रम होता है।

भगवती और षाड्गुण्य तथा व्यूह— भगवती कहती हैं कि मेरे **'बल'**, **'वीर्य'** और **'तेज'** से—**'सङ्कर्षण'**, **'प्रद्युम्न'** तथा **'अनिरुद्ध'** उत्पन्न होते हैं—

उन्मिषन्तः पृथक्तत्त्वत्र्येण परिकीर्तिता।
बलं वीर्यं तथा ते इत्येतत्तु गुणत्रयम।।

—(ल.त.2/50)

(1) ज्ञानाद्याः षडगुणा एते षाडगुण्यं मम तद्वपुः। उद्यतीत्थं सिसृक्षाया ममायुतमयीकला। (लक्ष्मी तंत्र) प्रद्युम्न आदि 2-2 गुणों से विशिष्ट हैं किन्तु उनके (व्यूहों के) गुण भी भगवती के गुण हैं। भगवती उन्हीं के माध्यम से अपने कार्य निष्पादित किया करती हैं अतः षाड्गुण्य पूर्णतः लक्ष्मी का स्वरूप हैं।

(18) (1) ज्ञान तत्त्व

ज्ञान का लक्षण—(अहि. सं.)

↓

1	2	3	4
ज्ञान चेतन है	यह आत्मा का ज्ञान कराने वाला है	यह नित्य है	यह सर्वत्र व्याप्त है।

'**लक्ष्मी तंत्र**' (अ.2) में ज्ञान की विशेषताओं एवं लक्षणों के विषय में इस प्रकार कहा गया है—

(1) नारायण और लक्ष्मी (शक्तिमान तथा शक्ति) भी '**अहन्ता**' —ज्ञानयुक्त (ज्ञानात्मिका) है। इस ज्ञान में सर्वज्ञता एवं सर्वदर्शिता निहित है। ब्रह्म और उनकी शक्ति का पररूप ज्ञानात्मक है। दोनों ज्ञानगम्य हैं। (इन्द्रियगम्य नहीं हैं)

(2) ज्ञान के अन्य लक्षण (लक्ष्मी तंत्र)—

↓

1	2	3	4
शक्ति-शक्तिमान की अहन्ता ज्ञानात्मिका है	ज्ञान में सर्वज्ञता एवं सर्वदर्शिता है	ब्रह्म और उसकी शक्ति का पररूप-	शक्ति, बल, वीर्य, तेज एवं ऐश्वर्य आदि अन्य गुण इसी 'ज्ञान' के नित्य धर्म हैं।

5	6
नारायण और लक्ष्मी का स्वरूप ज्योतिर्मय ज्ञान है	जिस ज्ञान का निर्बाध उदय होता है, जिससे निरन्तर स्थिरता बनी रहती है वही लक्ष्मी का '**ऐश्वर्य**' है और वही ईश्वरीय गुण '**इच्छा**' भी कहा गया है। [2]

ब्रह्म का स्वरूप ही 'ज्ञान' गुण वाला है—

'स्वरूपं ब्रह्मणस्तच्च गुणश्च परिगीयते।। (अहि.सं.2/56)

षाड्गुण्य के विग्रह

↓

भगवान
नारायण
(शक्तिमान)

'एको नारायणः श्रीमान्'
षाड्गुण्य महिमोज्ज्वलः।
तस्य षाड्गुण्यरूपाहं,
शक्तिरेका सनातनी।।
(ल.तं.41/3)

भगवती
नारायणी
(शक्ति)

'ज्ञान को वैष्णवागम ब्रह्म का स्वरूप मानता है—

ज्ञानं तत्परपं ब्रह्म सर्वदर्शि निरामयम्।। (ल.तं. 2/24)

(19) **'शक्ति'—**

'शक्ति' भी षाड्गुण्य में से एक गुण है

***'शक्ति' के लक्षण *** (ल.तं.)

'शक्ति गुण' जगत का प्रकृति भाव है।

'जगत् प्रकृति भावो मे यः सा शक्तिरितीर्यते।। (2/29)
'जगत् प्रकृतिभावो यः सा शक्तिः परिकीर्तिता।।
(अहि.सं.2/57)

'शक्ति' ब्रह्म का द्वितीय गुण है।

'शक्ति' प्रकृति से ही जगत का सृजन करती है
'वासुदेव' शक्तिमान एवं भगवती 'शक्ति' हैं।

---

(1) अजड़ स्वात्म सम्बोध नित्यं सर्वावगाहनम्।
ज्ञानं नाम गुणं प्राहुः प्रथमं गुण चिन्तकाः।। (अहि.सं. 2/56)

(2) लक्ष्मी तन्त्र (अ. 2/25-28) :
'अतस्तु ज्ञानरुपत्वं मम नारायणस्य च।।'
'अहमित्यान्तरं रुपं ज्ञानरुपमुदीर्यते।।'
'ज्ञानात्मिका तथाऽहन्ता सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी।' (ल.त.: अ.2/25-28)

(1) वासुदेव—

वासुदेव वैष्णवागम के ब्रह्म हैं। गीता में कहा गया है कि—

'वासुदेवस्सर्वमिति' स महात्मा सुदुर्लभः।।

'सब कुछ वासुदेव ही हैं। (भगवान के सिवा अन्य कोई कुछ है ही नहीं।)—ऐसा मानने वाले भक्त को भगवान दुर्लभ कहते हैं। मधुसूदन सरस्वती 'भक्तिरसायन' में कहते हैं कि—

'वासुदेवातिरिक्त सर्वं सत्यन्नस्ति मादिकत्वात्।
वासुदेव एवात्मत्वात् प्रियतमस्सत्य इत्यर्थः।

'विष्णुपुराण' में वासुदेव शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि—चूँकि ये सर्वत्र निवास करते हैं, और सारी वस्तुएं यहीं निवास करती हैं इसीलिए विद्वानों के द्वारा उन्हें 'वासुदेव' कहा गया है। (अर्थात् 'वासुदेव—शब्द का धातुगत अर्थ यही है) कि—

'सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततः स वासुदेवेति विद्धद्भिः परिपट्यते।। (वि.पु.)

भगवान विष्णु एवं वासुदेव शब्द एकार्थक हैं—

इन शब्दों की एकार्थकता के कारण ही विष्णुपुराण में एक ही स्थल पर दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है—

'अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैवकरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ।।1।।
नमो हिरण्यगर्भाय हर ये शङ्कराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्ग स्थित्यन्तकारिणे ।।2।।
अव्यक्त व्यक्त रूपाय विष्णवे मुक्ति हेतवे ।।3।।
सर्ग स्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ।।4।।

---

(1) भक्ति रसायन - मधुसूदन सरस्वती

(3) 'बल'—

बल ब्रह्म का तृतीय गुण है

'बल' के लक्षण (लक्ष्मी तंत्र)

↓

1	2	3
जिस गुण के कारण लक्ष्मी को विश्व-सृजन व्यापार में कोई थकावट अनुभूत नहीं होती वही 'बल' है। श्रमाभावानुभवी भाव ही 'बल' है।	दीर्घकाल पर्यन्तक निष्पादित कार्य भी बल है।	संसार का भरण पोषण भी बल है

1. **'सृजन्त्या यच्छ्रमाभावो मम तद्बलमिष्यते।।** (ल.तं. 2/29)

(1) 'बल' शक्त्यंश है। (2) मरणं यच्च कार्यस्य बलं तच्च प्रचक्षते। शक्त्यंशकेन तत्प्राहुर्भरणं तत्व कोविदाः।।

—लक्ष्मी तंत्र (अ.2)

'श्रमहानिस्तु या तस्य सततं कुर्वतो जगत।
'बल' नाम गुणास्तरूप कथितो गुणचिन्तकैः।।

(अहि.सं.)

(20) 'शक्ति' एवं 'बल'

'लक्ष्मी तंत्र' (अ.2/29-30) में शक्ति एवं बल को इस प्रकार परिभाषित एवं व्याख्यात किया गया है-

1. **जगत्प्रकृतिभावो मेयः सा शक्तिरितीर्यते।**
सृजन्त्या यच्छ्रमाभावो मम तद्बलमिष्यते।। (2/29)

2. **मरणं यच्च कार्यस्य 'बलं' तच्च प्रचक्षते।**
शक्त्यंशकेन तत्प्राहुर्मरणं तत्वकोविदः।। (2/30)

अर्थात् जगत का जो प्रकृतिस्वरूप है उसे ही **'शक्ति'** कहते हैं।

प्रकृतिस्वरूप से ही शक्ति समस्त जगत की सृष्टि का सृजन किया करती है।

जिस सृजन-शक्ति को श्रम का अनुभव नहीं होता या सृजन व्यापार का निष्पादन करने पर भी यदि श्रम की अनुभूति नहीं होती उसी को **'बल'** कहते हैं।

पारमात्मिकी पराशक्ति (भगवती लक्ष्मी) की सृष्टि ही उसके **'बल'** का परिचायक है।

दीर्घ काल तक जो कार्य किया जाता है उसे भी **'बल'** कहते हैं। क्षणिक कार्य निष्पादन बल नहीं कहलाता। समस्त विश्व का जो पालन-पोषण कार्य किया जाता है उसे भी 'बल' कहा जाता है। तत्वज्ञ उसे शक्ति का अंश ही माना करते हैं।

(21) वीर्य—

भगवती कहती हैं कि **'वीर्य'** मेरी प्रकृति है और यह सदैव निरन्तर रहती है। जब दूध दही बन जाता है तब उसमें दूध का स्वाद नहीं रहता उसी प्रकार मैं भी निर्गुण निराकार होते हुए भी सृष्टि में सगुण साकार होती हूं। **'दही' दूध का ही परिणाम (विकार, परिवर्तित रूप, रूपान्तर) है। 'सृष्टि'** भी शक्ति का ही परिवर्तित रूप है।

'लक्ष्मीतंत्र' वीर्य का स्वरूप इसी प्रकार निरूपित किया गया है-

'विकारविरहो वीर्यं प्रकृतित्त्वेऽपि मे सदा।
स्वभावं हि जहत्याशु पयो दधिसमुद्भवे।। (ल.तं.2/31)

सृष्टिभाव में भी लक्ष्मी विकृत नहीं होतीं। विकार का अभाव ही **'वीर्य'** है। जो **'वीर्य'** है उसे **'विक्रम'** भी कहा गया है। वीर्य को ऐश्वर्य का अंश भी माना जाता है। भगवती लक्ष्मी के जो भी निष्पाद्य व्यापार होते हैं उन्हें उनके निष्पादनार्थ किसी सहयोगी की अपेक्षा नहीं होती। वे सारे कार्य स्वतंत्र रूप में स्वयं (सहयोगी-निरपेक्ष होकर) निष्पादित कर डालती हैं। वीर्य के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

जगद्भावेऽपि सा नास्ति विकृतिर्मम नित्यदा।
विकारविरहो वीर्यं मतस्तत्त्वविदां मतम्।। [1]

विक्रमः कथितो वीर्यमैश्वर्यांशः स तु स्मृतः।
सहकार्यनपेक्षा में सर्वकार्यविधौ हि या।। [2]

'अहिर्बुध्न्य संहिता' में कहा गया है—

तस्योपादानभावेऽपि विकारविरहो हि यः।
'वीर्यं' नाम गुणः सोऽयमच्युतत्वापरा ह्ययम्।। [3]

अर्थात् इस जगत का 'उपादान कारण' होने पर भी उसमें विकार उत्पन्न नहीं होता। इसे ही 'वीर्य' नामक गुण कहते हैं। व्यूह प्रद्युम्न में (1) 'ऐश्वर्य' और (2) 'वीर्य'—ये दो गुण ही प्रधान हैं—

'प्रद्युम्न इति मामाहुः सर्वार्थद्योतनीं तदा।
युगं प्रस्फुरितं रूपं तस्मिन्नैश्वर्य वीर्ययोः।। 2/47)

(22) तेज—

'अहिर्बुध्न्य संहिता' एवं 'लक्ष्मी तंत्र' में कहा गया है कि 'तेज' के लक्षण निम्नाङ्कित हैं— जिस शक्ति को किसी सहकारी की अपेक्षा नहीं होती उसे ही 'तेज' कहते हैं। ये ही गुण परमात्मा में पाये जाते हैं।

'सहकार्यनपेक्षा या तत् तेजः समुद्राहृतम्
एते शक्त्यादयः पञ्च गुणा ज्ञानस्य कीर्तिताः।।

—(अहि.सं.)

* * * * * * * *

तेजः षष्ठं गुणं प्राहुस्तमिमं तत्त्ववेदिनः।
पराभिभव-सामर्थ्यं 'तेज' केचित्प्रचक्षते। (ल.तं. 2/34)

अर्थात् तत्वज्ञों के द्वारा छठे गुण को 'तेज' कहा गया है। कतिपय मनीषी दूसरों को अभिभूत (प्रभावित) करने के सामर्थ्य को तेज कहते हैं। दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता को 'तेज' कहते हैं।

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (अ. 2/32) (2) ल.तं. (2/33) (3) अहि. सं. (2/60)

'तेज' भी तत्वतः ज्ञान का ही गुण है।

* षड्गुण एवं तेज *

↓

1 'ज्ञान'	2 'शक्ति'	3 'बल'	4 'वीर्य'	5 'तेज'	6 'ऐश्वर्य'
नामक गुण	नामक गुण	नामक गुण	नामक गुण	नामक गुण	नामक गुण

कतिपय ध्यातव्य बिन्दु

(1) गुण केवल 6 हैं।

(2) ये 6 गुण— 'ज्ञान', 'शक्ति', 'बल', 'वीर्य', 'तेज' एवं 'ऐश्वर्य' हैं।

(3) ये 6हों गुण तत्त्वतः **'ज्ञानगुण' के ही गुण हैं—**

क. 'ज्ञानाद्याः षड्गुणा एते।

ख. 'षाड्गुण्य' भगवती का रूप है (उनका स्वस्वरूप है)-

षाड्गुण्य मम तद्वपुः।। [1]

ग. ज्ञानात्मकं परं रूपं ब्रह्मणो मम चोभयोः।

ज्ञानात्मिका तथाहन्ता सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी।।

घ. शेषमैश्वर्यं वीर्यादि ज्ञानधर्मः सनातनः

ङ. अहमित्यान्तरं रूपं ज्ञानरूपमुदीर्यते।

च. अतस्तु ज्ञानरूपत्वं मम नारायणस्य च।।

'ज्ञान' भगवती एवं विष्णु का परात्पर स्वरूप है।
शक्ति-शक्तिमान की अहन्ता भी ज्ञानात्मिका है
दोनों का स्वरूप 'ज्ञान' है

छ. जिस ज्ञान का उदय निर्बाध होता है, जिसमें स्थिरता निरन्तर रहती है वही भगवती का **'ऐश्वर्य'** है और दसे **'इच्छा'** भी कहा गया है। [2]

'इच्छेति सोच्यते तत्तत्त्वशास्त्रेषु पण्डितैः।। (ल.तं. 2/28)

(23) ऐश्वर्य

'अहिर्बुध्न्य सँहिता' में कहा गया है कि—

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (2/36) (2) लक्ष्मी तंत्र (2/25-28)

'कर्तृत्वं नाम यत् तस्य स्वातंत्र्यपरिबृंहितम्।
ऐश्वर्यं नाम यत् तस्य स्वातंत्र्यपरिबृंहितम्।
ऐश्वर्यं नाम तत् प्रोक्तं गुणतत्त्वार्थ चिन्तकैः।।

(अहि.सं. (2/58)

अर्थात् स्वातंत्र्य से परिबृंहित होने वाला कर्तृत्व नाम का उसका तृतीय गुण है जिसे गुणतत्त्वार्थचिन्तकं 'ऐश्वर्य' के नाम से पुकारते हैं।

'लक्ष्मी तंत्र' में कहा गया है कि—

(1) कुछ तत्त्वज्ञाता 'तेज' को 'ऐश्वर्य' से जोड़ते हैं। शुद्ध श्रुतियों के अनुसार ये पांचों ज्ञान के ही गुण हैं—

'ऐश्वर्ये योजयन्त्येके तत्तेजस्तत्त्वकोविदाः।
इति पञ्च गुण एते ज्ञानस्य श्रुतयोऽमलाः।। (2/35) ल.तं.

'चतुर्व्यूह' में 'षाड्गुण्य' के गुण समन्वित हैं। (1)

↓

'वासुदेव'	'संकर्षण'	'प्रद्युम्न'	'अनिरुद्ध'
6 गुण प्रधान	2 गुण प्रधान	2 गुण प्रधान	2 गुण प्रधान
	1. ज्ञान गुण 2. बल गुण	1. ऐश्वर्य गुण 2. वीर्य गुण	

(1) 'व्यूह' और इस सम्बंध में शङ्कराचार्य के विचार—

(व्यूह = 'वासुदेव', 'संकर्षण', 'प्रद्युम्न', 'अनिरुद्ध')।

आचार्य शङ्कर ने 'चतुर्व्यूह सिद्धान्त' का प्रत्याख्यान किया है तथापि उन्होंने 'प्रपञ्चसार तंत्र' में उनका इस प्रकार उल्लेख किया है— 'वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धकः।
स्फटिक स्वर्ण दूर्वेन्द्र नीलाकाराश्च वर्णतः।।
चतुर्भुजाश्चक्रशङ्खगदापङ्कजधारिणः।
किरीटकेयूरिणश्च पीताम्बरधरा अपि।। (1)

(1) प्रपञ्चसार तंत्र (पटलः 19/8-9)

'विष्णु पुराण' में भी 'व्यूह चतुष्टय' का उल्लेख किया गया है।

(24) व्यूह और उनके कार्य

↓

(1) वासुदेव

↓

(कार्य)

1. सृष्टि
2. स्थिति
3. संहार
4. निग्रह
5. अनुग्रह

विष्णु का संकल्प

↓

6 गुणों का उन्मेष- 6 गुणों का युगपद उन्मेष विष्णु के संकल्प से होता है।

(2) संकर्षण

↓

'संकर्षण' भगवत्प्राप्ति साधन का मार्ग प्रकट करते हैं। 'तत्र ज्ञानमय त्वेन देवः संकर्षणेवली व्यनक्त्यै कान्तिकं मार्गं भगवत्प्राप्ति साधनम्।।'

(3) प्रद्युम्न

↓

वीर्य-ऐश्वर्य वाले प्रद्युम्न- भगवत्प्राप्ति के मार्ग से शास्त्र के अर्थ के रूप में स्थित हैं। 'स्थितः शास्त्रार्थ भावेन भगवत् प्राप्ति वर्त्मना। शास्त्रार्थस्य फलंयद्तद् भगवत्प्राप्ति लक्षणणम'। उन सभी शास्त्रों के अर्थ का फल उसी उसी प्रकार भगवत्प्राप्ति- लक्षणात्मक है।

(4) अनिरुद्ध

↓

शास्त्रार्थानुकूल फल प्रदान करते हैं। प्रापयत्य निरुद्धः 'सन् साधकान् पुरुषोत्तमः। शास्त्रशास्त्रार्थ तत्साध्यफल निर्वाहका इमे'। वे ही पुरुषोत्तम अनिरुद्ध बनकर साधकों को साध्य तक पहुँचाते हैं। ये तीनों ही व्यूह शास्त्र शास्त्रार्थ एवं तत्साध्ययफल का निर्वहन करते हैं।

* 'चातुरात्म्य' *

'वासुदेव'—

'शक्ति' एवं शक्तिमान में भेद है—

शक्तेः शक्तिमतो भेदाद 'वासुदेव' इतीर्यते।।

शक्ति-शक्तिमान में भेद हैं। जो शक्ति में निवास करता है वही शक्तिमान 'वासुदेव' है —अहि.सं.5/29

(25) **'चातुरात्म्य' —**

'व्यूहत्रय' एवं **'चतुर्थ व्यूह'** भगवान वासुदेव—इन सबको मिलाकर 'चातुरात्म्य'—समझना चाहिए जो कि व्यक्ताव्यक्तलक्षणात्मक हैं—

'भगवान वासुदेवश्च व्यूहाश्चेते त्रयो मुने।
चातुरात्म्यमिदं विद्धि व्यक्ताव्यक्तस्वलक्षण्।।

—(अहिर्बुध्न्य संहिता)

*** 'वासुदेव' का स्वरूप—**

1) **'ज्ञान', 'ऐश्वर्य', 'बल'** आदि गुण प्रलय की स्थिति में स्तिमित रहते हैं। उनका स्तैमित्य से रहित युगपदोन्मेष विष्णु के संकल्प से होता है।

'गुणाः शक्तिमया ये ते ज्ञानैश्वर्य बलादयः।
तेषां युगपदुन्मेषः स्तैमित्यविरहात्मकः।।
संकल्पकल्पितो विष्णोर्यः स तद् व्यक्तिलक्षणः। (5/27)

* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *

प्रकृति

भगवान वासुदेवः स परमा प्रकृतिश्च सा। (5/28)
शक्तिर्या व्यापिनो विष्णेः सा निगत्प्रकृतिः परा। (5/28)

अवतारवाद—

धर्म की रक्षा एवं अधर्म के विनाश के लिए भगवान विष्णु चार प्रकार के अवतार ग्रहण करते हैं जो निम्नांकित हैं (1)'व्यूह'(2)'विभव' (3)'अर्चावतार'(4)'अन्तर्यामी अवतार'।।

(26) अर्चावतार —

भगवान के पञ्चस्वरूपों में एक स्वरूप **'अर्चा'** भी है। प्रस्तर, रजत, काष्ठ, कांस्य, ताम्र, स्फटिक, स्वर्ण आदि वस्तुओं से निर्मित भगवान विष्णु की मूर्तियां पाञ्चरात्र विधि से संस्कारित किए जाने के बाद प्रतिष्ठित की जाती हैं। इन्हें भी भगवान का अवतार माना जाता है। **शठकोपस्वामिपाद** कहते हैं—

श्री वैकुण्ठ में निवास करने वाले श्री भृगुलता को धारण करने वाले, आमोदादि पदों में प्रतिष्ठित, सर्वव्यूहाधार, जगत के कारणभूत, भक्ताभीष्ट-कल्पद्रुम, अभक्तों को दण्ड देने वाले, अन्तर्यामी, सर्वनियामक, विलक्षण, वैभवसम्पन्न भगवान 'अर्चावतार' जीवमात्र के लिए परम सुलभ एवं परम शरण्य हैं—

'श्री वैकुण्ठ निकेतनं श्रियमथोवत्सन्दधानं परं,
आमोदादि पदेषु व्यूहमखिलाधारं जगत्कारणम्।
भक्ताभीष्ट सुरद्रुतं तदितरे दण्डप्रदं वैभवं,
अन्तर्व्याप्य नियामकं च सुलभ अर्चावतारं भजे।।

(27) *वैष्णव दर्शन में भगवान के पञ्च प्रकारात्मक स्वरूप*

(1) परस्वरूप	(2) व्यूहस्वरूप	(3) विभवस्वरूप
अपने दिव्य धाम साकेत, वैकुण्ठ, गोलोक आदि में प्रभु का शाश्वत, सच्चिदानन्द धन स्वरूप ही उनका परस्वरूप है।	भगवद्धाम में जो प्रभु के नित्य अभिन्न स्वरूप हैं, वे व्यूह कहे जाते हैं। श्रीराम के साथ भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न एवं भगवान श्री कृष्ण के साथ वासुदेव, प्रद्युम्न अनिरुद्ध एवं संकर्षण उनसे नित्य अभिन्न होने के कारण व्यूह हैं। ये आमोद-प्रमोद आदि लोकों में प्रतिष्ठित हैं।	मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह आदि अवतार विभवस्वरूप हैं। (पद्मनाभ, ध्रुव, त्रिविक्रम कपिल, मधुसूदन आदि की गणना विभव के अन्तर्गत की जाती है।)

प्रत्येक प्राणी के हृदय में सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान विराजमान हैं जो उनकी प्रवृत्ति और चेष्टाओं का नियमन करते हैं। उनका यह स्वरूप 'अन्तर्यामी स्वरूप' है।

पूर्वोत्तम चार स्वरूपों के अतिरिक्त पञ्चम स्वरूप भी है और वह है 'अर्चावतार' इन्हें ही 'अर्चास्वरूप' भी कहते हैं।

(28) परमात्मा के पांचों स्वरूपों के अवतार-प्रकार

(1) 'पूर्णावतार' | (2) 'अंशावतार' | (3) 'कलावतार' | (4) 'युगावतार' | (5) 'अनुकम्पावतार'

'आवेशावतार' | 'अर्चावतार'

-स्वयंव्यक्त | 'दैव' | 'सैद्ध' | 'प्राकृत' (मानुष) आदि

(1) **व्यक्तस्वरूप अर्चावतार**— श्री रंगनाथ जी, श्री वेंकटेश (बालाजी) श्री बांकेबिहारी आदि **'व्यक्तस्वरूप'** हैं।

(2) देवताओं के द्वारा प्रतिष्ठित किए गए विग्रह **'दैवस्वरूप'** है।

(3) दिव्य ऋषि-महर्षियों द्वारा पूजित **'सैद्ध'** हैं।

(4) मनुष्यों एवं महापुरुषों द्वारा स्थापित विग्रह प्राकृत या **'मानुष'** कहलाते हैं

(30) 'पर', 'व्यूह', 'विभव' एवं 'अन्तर्यामी' –
ये चार स्वरूप नित्य और मुक्त चेतनों के लिए ही सुलभ हैं क्योंकि इन भगवत्स्वरूपों के स्थान प्रकृति से परे दिव्य द्वीपान्तरों में एवं चित् अचित् (जीव जगत) का 'अन्तर्यामी' होने से ये अव्यक्त स्वरूप भक्तों के लिए दुष्प्राप्य हैं किन्तु 'अर्चावतार' तो भक्तों के दर्शनरूप प्यास का शमन करने के लिए पराग पूरित कमलों परिपूर्ण निर्मल सरोवर की भांति सुलभ है–

'अर्चावतारस्तु सर्वेषां पद्माकर जलजवत् सुलभः'।।

(29) अर्चामूर्ति के प्रकार

(1) शिलामयी | (2) काष्ठमयी | (3) धातुमयी | (4) चित्रपटमयी | (5) मृण्मयी | (6) बालुकामयी | (7) मनोमयी

(8) मणिमयी | (9) चन्दनादि निर्मित

कृष्ण की सर्वोच्चता

'नारद पञ्चरात्र' में श्री कृष्ण को सर्वोपरि देव माना गया है और कहा गया है कि –

नैव कृष्णात्परो देवी नैवकृष्णत्परः पुमान नैव
कृष्णात्परः ज्ञानी न योगी च ततः परः।
नैव कृष्णात् परः सिद्धस्तत्परोऽपि नहीश्वरः।
न तत्परश्च जनको विश्वेषां परिपालकः।
न तत्परश्च बलवान बुद्धिमान कीर्तिमांस्तथा
न तत्परः सत्यवादी दयावान भक्तवत्सलः। आदि

(31) *भगवान विष्णु का स्वरूप* (विष्णु पुराण के आलोक में)–

* विष्णु द्वारा स्वस्वरूप का चतुर्विभाजन*

↓

1 रजोगुण-विशिष्ट विष्णु 4 विभागों से सृष्टि काल में-	2 सत्वगुण-विशिष्ट विष्णु 4 विभागों में स्थिति काल में-	3 तमोगुण-विशिष्ट विष्णु 4 विभागों में प्रलयकाल में-
रजोगुण विष्णु 1. एक अंश से अव्यक्तस्वरूप **'ब्रह्मा'** बनते हैं। 2. द्वितीय अंश से मरीचि आदि **'प्रजापति'** बनते हैं। 3. तृतीय अंश से **'काल'** बनता है। 4. चतुर्थ अंश से **'सम्पूर्ण प्राणी'** आविर्भूत होते हैं।	**सतोगुण विशिष्ट विष्णु** 1. एक अंश से वे 'विष्णु' होकर पालन करते हैं। 2. दूसरे अंश से 'मनु' आदि बन जाते हैं 3. तीसरे अंश से वे 'काल' बनते हैं। 4. चौथे अंश से वे समस्त प्राणियों में स्थित हो जाते हैं।	1. तमोगुण की वृत्ति का आश्रय लेकर श्री विष्णु एक अंश से 'रूद्ररूप' धारण करते हैं। 2. द्वितीय भाग से अग्नि एवं अन्तकादि रूप धारण करते हैं। 3. तृतीय भाग से वे 'काल' का स्वरूप धारण करते हैं। 4. चतुर्थ भाग से वे सम्पूर्ण भूतस्वरूप बन जाते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, दक्ष आदि प्रजापतिगण, काल तथा समस्त प्राणी— ये सभी श्री विष्णु की विभूतियाँ जगत की सृष्टि का कारण हैं। —विष्णु पुराणः अ. 22/31

भगवान स्वय जगत हैं

एवमेष जगत्स्रष्टा जगत्पाता तथा जगत।
जगद्भक्षयिता देवः समस्तस्य जनार्दन। (वि.पु.22/40)

श्री विष्णु

↓

1	2	3
जगत के स्रष्टा (ब्रह्मा)	जगत के पालक (विष्णु)	जगत के संहारक (शिव)

'ब्रह्म' के दो रूप (समस्त प्राणियों में संस्थित भगवद्रूप)—

↓

1	2
'मूर्त' (क्षर) (जगत)	अमूर्त (वि.पु.अ.22/55) (अक्षर) (परब्रह्म)

द्वेरूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्तं चामूर्तमेव च।
क्षराक्षरस्वरूपे ते सर्वभूतेष्वव स्थिते।
अक्षरं तत्परं ब्रह्म क्षरं सर्वमिदं जगत।

* जगत का स्वरूप और ब्रह्म

'एक देशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।
परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तयेदमखिलं जगत्।।'

—(विष्णु पुराण 22/56)

(32) **ब्रह्म**

षाड्गुण्यममलं 'ब्रह्म' निर्दोषमजर ध्रुवम्।
सर्वशक्ति निरातङ्क निरालम्बनभावनम्। (ल.तं. 10/5)
परं ब्रह्म ततः शान्तं ततो नाद इति क्रम।

सर्वत्रावस्थिता साऽहं निमेषोनमेषरूपिणी (ल.तं. 26/8)
आद्यं यत परमं ब्रह्म सूक्ष्मं स्तिमित शक्तिकम्।
तारस्तत्र प्रतिष्ठाय तनोति विततां गतिम्। (ल.तं.26/9)

* भगवान विष्णु की सर्वरूपता

'विष्णु पुराण' में कहा गया है कि-ध्रुव कहते हैं कि

1. हे विष्णु! आप **ब्रह्मास्वरूप** से विश्व की रचना करते हैं।
2. विश्व के स्थित हो जाने पर **विष्णु रूप** से उसका पालन करते हैं और अन्त में-**रुद्र के रूप से**
3. समस्त विश्व का संहार करते हैं।
4. आप ही **स्रष्टा** और **सृष्टि** तथा **पालक** आप पाल्य तथा **संहारकर्ता** एवं संहृति हैं।
5. हे अच्युत! देव, यक्ष, असुर, सिद्ध, नाग, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर, पिपीलिका, सरीसृप, पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, आत्मा, काल और गुण—इन सभी के पारमार्थिक रूप आप ही हैं वस्तुतः आप ही ये सभी हैं। **आप सब कुछ हैं।** आप ही विद्या-अविद्या, सत्य-असत्य एवं प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि सभी कुछ हैं। आप ही समस्त कर्मों के भोक्ता, उनकी सामग्री, सारे कर्मों के फल हैं—

'समस्त कर्म भोक्ता च कर्मोपकरणानि च।
त्वमेव विष्णो सर्वाणि सर्व कर्म फलं च यत्।।

यह समस्त स्थूल विश्व आप ही तो हैं—

'रूपं महत्ते स्थित मंत्र विश्वं। (1)

'विष्णु पुराण' (अंश 5/अ.18) (श्लोक 48-50) में कहा गया है कि परमात्मा सन्मात्रस्वरूप, सर्वव्यापक, एक एवं अनेकरूप, कार्य-कारणरूप, भूतस्वरूप, इन्द्रियस्वरूप, प्रधानस्वरूप तो हैं ही साथ ही वे जीवात्मा और परमात्मा भी हैं। **वे 5 रूपों में स्थित हैं—**

1. **सन्मात्ररूपिणोऽचिन्त्यमहिम्ने परमात्मने।**

2. व्यापिने नैकरूपैकस्वरूपाय नमो नमः।
3. 'सर्वरूपाय' 'नमो विज्ञानपाराय पराय प्रकृतेः प्रभो
4. भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तय भवान्।
आत्मा च परमात्मा च त्वमेक पञ्चधा स्थितः।।

(33) परमात्मा के स्वरूपपञ्चक

↓

1	2	3	4	5
'भूतात्मा'	'इन्द्रियात्मा'	'प्रधानात्मा'	'आत्मा'	'परमात्मा'

'विष्णु पुराण' (अंश 5/अ.18/55) में कहा गया है कि—(1) हे प्रभु! आपने जिन कल्पनामय पदार्थों से अनन्त विश्व की उत्पत्ति की है वे **समस्त पदार्थ भी आप ही हैं तथा आप ही अविकारी आत्मवस्तु भी हैं आप विश्वरूप हैं।** सम्पूर्ण पदार्थों में आपसे भिन्न अन्य कुछ है ही नहीं। आप ही-ब्रह्म, महादेव, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम सभी हैं।[1]

(34) *परमात्मा का स्थूल विश्वमय स्वरूप*

साधनारंभ के समय ही योगियों को साधना के समय परमात्मा के **'विश्वातीत स्वरूप'** का ध्यान करना चाहिए। हिरण्यगर्भ, भगवान वासुदेव, प्रजापति, मरुत, वसु, इन्द्र, रुद्र, सूर्य, तारे, ग्रह, गन्धर्व, दक्ष, दैत्य आदि समस्त देवयोनियाँ एवं मनुष्य, पशु, पर्वत, समुद्र, नदी, वृक्ष एवं भूत एवं प्रधान से लेकर विशेष (पञ्चतन्मात्रा) पर्यन्त उनके कारण तथा चेतन, अचेतन एक, दो अथवा अनेक चरणों वाले जीव ये सभी भगवान के विष्णु के **भावनाप्रथनात्मक मूर्त रूप** हैं। यही भगवान का स्थूल रूप है जोकि **विश्वात्मक** है।

(1) त्वं ब्रह्मा पशुपतिरर्यमा विधाता,
धाता त्वं त्रिदशपतिस्समीरणोऽग्निः।
तायेशो धनपति रन्तक स्त्वमेको
भिन्ना थैं र्जगदभिपासि शक्तिमेदैः। (वि.पु. 5/18/56)

(2) **'विष्णु पुराण'** (6/7/55-60)

(3) **यह सम्पूर्ण चराचर** जगत पर ब्रह्मस्वरूप भगवान **विष्णु का** उनकी शक्ति से सम्पन्न **'विश्व'** नामक रूप है—

'एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्
पर ब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोश्शक्ति समन्वितम्।। (6/7/60)

(35) परमात्मा की शक्ति का नाम

'अहं नारायणी नाम सा सत्ता वैष्णवी परा। —(ल.तं./3/1)

(परा वैष्णवी सत्ता रूपा 'नारायणी शक्ति') भगवती की परोपासना—

'तेन मां चिद्घनामेकां सर्वाकार मुपासते।।

***परमात्मा की शक्तियां**—वासुदेव (ब्रह्म) की अनन्त शक्तियां हैं तथापि उनमें कुछ प्रधान शक्तियां भी हैं।

*परमात्मा की शक्तियां (नारायणी शक्तियां)

↓

<table>
<tr><td>1</td><td>2</td><td>3</td><td>4</td></tr>
<tr><td>सिसृक्षालक्षणा नारायणी शक्ति-</td><td>निमेष शक्ति-</td><td>सुषुप्सालक्षणा नारायणी शक्ति-</td><td>अहन्ता शक्ति-ज्ञानात्मिका शक्ति-</td></tr>
<tr><td rowspan="2">सिसृक्षा शक्ति-
↓
विश्व-सृजन</td><td rowspan="2">संजिहीर्षा शक्ति
↓
प्रलय</td><td>नारायणी की सुषुप्तावस्था में स्थित शक्ति-योग</td><td rowspan="2">ज्ञानात्मिका तथाहन्ता सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी।।
-ल.तं.2/25)</td></tr>
<tr><td>माया-
'योग निद्रा'</td></tr>
<tr><td>5
इच्छाशक्ति</td><td colspan="3">'तस्याहं परमा शक्तिरहन्ता श्रीरभेदिनी।।
(ल.तं.21-4)</td></tr>
</table>

6 'ज्ञानशक्ति'	7 'क्रिया शक्ति'	8 'चैतन्य शक्ति'	9 'आनन्द शक्ति'
10 तिरोधान शक्ति तथा अचित् शक्ति	11 *पञ्चमी शक्ति* (शक्तिपात/कृपा)	12 *संवित्ति शक्ति* 'सवित्तिरेव मे रूपं सर्वैश्वर्यादि को गुणः। 'अहं सविन्मयी पूर्वा' (ल.तं.3/8)	
'स्वातंत्र्यशक्ति' 'स्वातंत्र्यमेव में हेतुर्नानुयोज्यास्मि किञ्चन' (ल.तं.3/31)		अचिच्छाक्तिर्जप्येवम शुद्धा परिणामिनी। –ल.तं.3/27	

6. चितशक्ति का सर्व व्यापकत्व —
बहिरन्तः पदार्थे हिचित्स्वरूप मखण्डितम् (3/30)

चिच्छक्ति चितिशक्ति चैतन्य —
चिच्छक्तिर्भोक्तृरुपामं सा च चिद्रूपधारिणी (ल.तं.3/23)
सच्चिन्मात्राख्य उन्मेषः साद्या में शान्तताच्युतिः। (ल.तं.)

शक्ति–शक्तिमान की अहन्ता का स्वरूप —
ज्ञानात्मिका तथाहन्ता सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी
'शक्ति' जगत्प्रकृतिभावो मे यः सा शक्तिरि तीर्यते।
(ल.तं. 2/29)
'ज्ञानशक्ति' अतस्तु ज्ञानरूपत्वं म नारायणस्य च।।
(2/27)
ज्ञानात्मिका तथा हन्ता सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी।।
'ज्ञानात्मकं परं रूपं ब्रह्मणो मम चोभयोः
1. 'अहं नारायणी शक्तिः सिसृक्षा लक्षण तदा।।'
(लक्ष्मी तंत्र/द्वि.अ. 22)

2. 'निमेषस्तस्य यो नाम संहृतौ परमात्मनः।'

(ल.तं. 2/22)

3. 'अहं नारायणी शक्तिः सुषुप्सा लक्षण हि सा।'
इसी सुषुप्सालक्षण/नारायणी शक्ति को लक्ष्मीपति सृष्टि करने के लिए उत्प्रेरित करते हैं—
'सिसृक्षाया ममोद्यन्त्या देवाल्लक्ष्मीपतेः स्वयम्।।

(ल.तं. /द्वि.अ. 23)

4. 'ज्ञानात्मकं परं रूपं ब्रह्मणों मम चोभयोः।

(ल.तं. 2/25)

ब्रह्म एवं उनकी शक्ति का पररूप 'ज्ञान' है। (2/25)

5. अव्याहतिर्यादुद्यत्या स्तदैश्वर्यं परं मम्।
इच्छेति सोच्यते तत्त्व शास्त्रेषु पण्डितैः।। (2/28)

6. चिच्छक्तिर्विमला शुद्धा चिन्मयानन्दरूपिणी

(ल.तं. 3/26)

****

(शक्ति तत्त्व और उसका स्वरूप)

(पाञ्चरात्रागम के उपदेष्टा— भगवान वासुदेव

(भगवान श्री कृष्ण)

द्वितीय अध्याय

'अष्टपत्रं तु हृत्पद्मं द्वात्रिंशत्केसरान्वितम्।
तस्य मध्ये स्थितो भानुर्भानुमध्यगतः शशी।।
शशिमध्यगतो वह्निर्वह्निमध्यगता प्रभा।
प्रभामध्यगतं पीठं नानारत्न प्रवेष्टितम्।।
तस्य मध्यगतं देवं वासुदेवं निरञ्जनम्।
श्री वत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्तामणिविभूषितम्।। —ध्यानबिन्दूपनिषद्

द्वितीय अध्याय

शक्ति तत्त्व और उसका स्वरूप

परं ब्रह्म परं धाम षाड्गुण्यामलोज्ज्वलम्।
देशकालानवच्छिन्नमनाकारमनूपमम्।
अहमित्येव तद ब्रह्म स्वात्मसम्बोधि निर्गुणम्।
अनादि निधनं दिव्यं लक्ष्मीनारायणं महत्।।
चिदानन्दरसं दिव्यमखण्डमजरामरम्।।
अनुन्मिषद्भवद्भावं ग्राह्यग्राहकवर्जितम्।।
स्तिमितं तत् परं ब्रह्म तस्य स्तिमिततास्म्यहम्।।
साहं भावात्मिकाहन्ता सम्पूज्या परमात्मनः।।
स्वभित्तौ लिखितं नीत्वा प्रभवामि षड्ध्वना।
वार्णः कलामयश्चैव तात्त्विको मांत्रिकस्तथा।
पादिको भौवनश्चैव षड्ध्वानः प्रकीर्तिताः।। —(ल.तं22/4-11)

भगवती का मंत्राध्व स्वरूप और उसका उद्देश्य :

उत्तारणाय जीवानां मग्नानां भवसागरे।
भोगाय भवसंस्थानां वैराग्यजननाय च।
आराधनस्य सिद्ध्यर्थं मानसालम्बनाय च।
मन्त्राध्वा परमोदारो मम चिद्रूपलक्षणः।। —ल.तं. (22/18-19)
'गुणत्रय अधिष्ठात्री 'त्रिगुणा' परिकीर्तिता।'
'साहमेवंविधा नित्या सर्वाकारा सनातनी।।'
'मत्तः प्रक्रियते विश्वं प्रकृतिः सास्मि कीर्तिता।।'
'महत्वाच्च महामाया मोहनान्मोहिनी मता।
दुर्गा च दुर्गमत्वेन भक्त रक्षाविधेरपि।
'भद्रकाली समाख्याता मायाश्चर्यगुणान्विता।।'
लक्षयामि जगत्सर्वं पुण्यापुण्ये कृताकृते।
महनीया च सर्वत्र महालक्ष्मीः प्रकीर्तिता। —(ल.तं.4/42)
महालक्ष्मीः समाख्याता साहं सर्वाङ्ग सुन्दरी।
महाश्रीः सा महालक्ष्मीश्चण्डा चण्डी च चण्डिका।।
भ्रदकाली तथा भद्रा काली दुर्गा महेश्वरी।
त्रिगुणा भगवत्पत्नी तथा भगवती परा।। —लक्ष्मी तंत्र

(1) * शक्ति तत्व *

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं, विश्वात्मिका धारयसीति विश्वं।।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति, विश्वाश्रया ये त्वमि भक्तिनम्राः।

* शक्ति तत्व और उसका स्वरूप *

वैष्णवागम में कहा गया है कि जगत का जो प्रकृतिस्वरूप— प्रकृतिभाव है उसे ही शक्ति कहते हैं—

'जगत्प्रकृतिभावो यः सा शक्तिरितीर्यते।। (1)

'शक्लृशक्तौ' धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर **'शक्ति'** शब्द सिद्ध होता है। वस्तु में जो कार्योत्पादनोपयोगी एवं अपृथकसिद्ध धर्म विशेष है उसी को **'शक्ति'** कहते हैं। वह अघटनघटनापटीयसी शक्ति **'कर्तुं' 'अकर्तुं'** एवं **'अन्यथा कर्तुं'** की सामर्थ्य रखती है।

'विष्णु पुराण' (6/7/61) में तीन प्रकार की शक्तियों का उल्लेख किया गया है-(1) **'परा विष्णु शक्ति'** (2) **'अपरा क्षेत्रज्ञ शक्ति'** (3) **'अविद्या (कर्म) नामक शक्ति'**—तीसरी शक्ति कर्म है। इसे ही **'अविद्या'** भी कहा गया है-

'विष्णु' शक्ति 'परा' प्रोक्ता 'क्षेत्रज्ञाख्या' तथापरा।
'अविद्या' कर्म संज्ञाना तृतीया शक्तिरिष्यते।। (2)

वेदों में भी अनेक शक्तियों का उल्लेख किया गया है-

'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।। (श्वेता.उप.6/8)

'विष्णुपुराण' में कहा गया है—

एकदेश स्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।
परस्य ब्रह्मणश्शक्ति स्तथे मखिलं जगत।।

(2) * अहन्ता शक्ति *

'लक्ष्मी तंत्र' 'अहिर्बुध्न्य संहिता' आदि वैष्णवागम में भगवती के अहन्ता स्वरूप या विष्णु की **'अहन्ता शक्ति'** का बार-बार

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (2/29) (2) विष्णु पुराण (6/7/61)

उल्लेख आया है। 'विष्णु पुराण' में भी विष्णु की अहन्ता शक्ति का वर्णन किया गया है। महाविष्णु की अनेक शक्तियों में एक शक्ति 'अहन्ता शक्ति' का भी उल्लेख किया गया है और यही शक्ति महालक्ष्मी है। 'शक्ति' के अन्य भेद भी हैं यथा—

ह्लादिनी सन्धिनी संविदभिधानान्तरङ्गिक।
तटस्था बहिरङ्गा च जयन्ति प्रभुशक्तय:।।

देवी का शक्तिरूप सदा से प्रणम्य रहा है—

'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरुपेण संस्थिता
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमो नम:।।

*भगवती लक्ष्मी 'माता', 'मान' और 'मिति' हैं एवं 'मेय' हैं— माता मानंमितिमेयं विद्या एतास्त्वदात्मिका:।
त्वामेवाराध्य जीवास्ते तरन्ति भवसागरम्।।

—ल.तं. (14/4)

(3) * औपनिषदिक दृष्टि *

'बहवृचोपनिषद' में पराशक्ति के संदर्भ में कहा गया है कि तस्याएव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णुराजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे गरुद्गणा अजीजनत्। गन्धर्वाप्सरस: किन्नरा वादिय वादिन: समन्तादजीजनत्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमंजीजनत्। सर्वं शाक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वेदजमुद्भिजं जरायुजं यत्किञ्चैतत्प्राणी स्थावर जङ्गमं मनुष्यमजीजनत् सैषा परा शक्ति:।।

—बह्वृचोपनिषद

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में शक्ति का वर्णित स्वरूप

'भगवान श्री कृष्ण कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूल प्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टि विधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका।
कार्योर्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुण: स्वयम्।

पर ब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी।
तेजः स्वरूपां परमा भक्तानुग्रह विग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा।
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रां सर्वमङ्गल मङ्गला।।

(ब्रह्मवैवर्त पुराणं प्रकृति 02/66,710)

वैष्णवागम में 'विष्णुपुराण' एवं 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' का अनेक बार उल्लेख किया जा चुका है। अतः उसमें 'ब्रह्मवैवर्त' की लक्ष्मी विषयक यह दृष्टि भी मान्य है।

*** सारी विद्यायें एवं सारी नारियां भगवती लक्ष्मी का स्वस्वरूप हैं ***

'विद्यः समस्तास्तव देवि! भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु
त्वयिकया या पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।।

*** वही शक्ति 'जगज्जननी' भी है और 'परा प्रकृति' भी ***

'त्वं परा प्रकृति' साक्षाद् ब्रह्मणः परमात्मनः।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे।।

ध्यानयोगियों ने ध्यानयोग से देखा तभी उन्हें वह **'स्वगुणनिगूढा देवात्मशक्ति'** दिखाई पड़ी—
ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।।

—(श्वेताश्वतरोपनिषद)

*** भगवती ब्रह्मस्वरूपिणी हैं**—'साब्रवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी
*** भगवती द्विरूपात्मिका है**— भगवती के दो रूप हैं—
(1) ज्ञाता (2) ज्ञेयः 'वेद्य वेदकरूपेण भेद्यते मे स्वयं तया।।

—(ल.तं.14/10)

(4) *शक्ति के बिना 'शक्तिमान' भी पंगु हैं*

आचार्य शङ्कर (केवलाद्वैत वेदान्ती) कहते हैं कि **'शक्ति'** की सहायता के बिना तो (स्रष्टा, पालक, संहार करने वाले सर्वाधार) शिव सृजन-पालन-संहार की तो बात ही क्या वे हिल भी नहीं सकते—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं,
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि,
प्रशान्तुं स्त्रोतुं वा कथय कृत पुण्यः प्रभवति।। (1)

चतुश्शती में भी यही बात शब्दान्तर में इस प्रकार कही गई है—

'परोऽपि शक्तिरहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि
सृष्टिस्थितिलयान कर्तुमशक्तः शक्त एव हि।।'

'शक्ति' तत्त्वतः एक ही है— अद्वैत नारायण की भांति शक्ति भी अद्वैत हैं। कहा भी गया है—

'एको नारायणः श्रीमान् षाड्गुण्यमहिमोज्ज्वलः।
तस्य षाड्गुण्य रूपाहं शक्तिरेका सनातनी।। (2)

(5) *भगवती लक्ष्मी और उनके विभिन्न नाम*

भगवती को वैष्णवागम में अनेक नामों से पुकारा गया है ।

1. **'सनातनी शक्ति'**—'तस्य षाड्गुण्यरूपाहं शक्तिरेका सनातनी(41/3)
2. **'परादेवी'**— एकैवैषा परादेवी बहुधा समुपास्यते। (1/45)
3. **'ब्रह्म की अहन्ता'**—अहन्ता ब्रह्मणस्तस्य साहमस्मि सनातनी।(2/12)
4. **'समस्त प्राणियों की अहन्ता'**—अहन्ता सर्वभूतानामहभस्मि सनातनी 2/13)
5. **'परमा शक्ति'**—तस्य या **परमा शक्ति** ज्योंत्स्नेवहिमयीधितेः।।(2/11)

---

(1) सौन्दर्य लहरी। (2) लक्ष्मी तंत्र (41/3)

6. **'शक्ति'**—जगत्प्रकृतिभावो मेयः सा **शक्तिरितीर्यते**।। (2/29)
7. **'षाड्गुण्य'**—ज्ञानाद्याः षड्गुणा एते' **षाड्गुण्यं** मयतद्वपुः। (2/36)
(मंत्र, मंत्रेश्वर, न्यासादि भी षाड्गुण्य विग्रह है (2/60)
8. **'संवित्ति'**—संवित्तिरेव में रूपं सर्वैश्वर्यादिको गुणः। (3/2)
9. **'स्वातंत्र्य'**—**स्वातंत्र्यमेव** में हेतु (3/31) निरवद्या स्वतंत्रऽहं(3/36)
10. **'भगवती'**—पूर्ण षाड्गुण्य रूपात्वात् साहं **भगवती** स्मृता (4)
महनीया च सर्वत्र महालक्ष्मी प्रकीर्तिता (4/42)
11. **'महालक्ष्मी'**—**महालक्ष्मीः** समाख्याता साहं सर्वाङ्गसुन्दरी।। (4/39)
12. **'महामाया'**—मोहिनी-महत्वाच्च **महामाया** मोहतान्मोहिनीमता।
13. **'राधा'**=श्रीकृष्णो जगतां तातो जगन्माता च **राधिका** (ना.पं.2/6/7)

(6) *भगवती द्विरूपा हैं : प्रथम रूप है 'चेत्य', द्वितीय रूप है चेतन*

साहं सृजामि स्वाच्छन्द्यात द्विधा भेदमुपेयुषा।
चेत्य चेतन भावेन चिच्छक्तिश्चेतनोऽनयोः।। (ल.तं.14/4)

विष्णु की शक्ति को **'विष्णु की पत्नी'**, लक्ष्मी, वैष्णवी आदि अनेक नामों से भी पुकारा गया है किन्तु उनका प्रधान नाम इस प्रकार है— **'अहं 'नारायणी' नाम सा सत्ता वैष्णवी परा। (3/1)**
'सैषा 'नारायणी' देवी, स्थिता नारायणात्मना। (1/43)
'अहं 'नारायणी' शक्तिः सुषुप्सालक्षणा हिसा। (2/23)
'अहं 'नारायणी' नाम भावोऽहं तादृशो हरेः। (4/1)

* भगवती के स्वरूप का सारांश *

1. भगवती नित्य, अविनश्वर, निर्दोष, निःसीम, कल्याण-गुणशालिनी, परा वैष्णवी, सत्ता, नारायणी[1] देशकालातीत, सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सर्वरूपमयी, ज्ञानगम्या, इन्द्रियों से अज्ञात, समस्त ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री, संवित्ति[2] देश-काल-रूप में विभक्त, ज्ञान, ऐश्वर्य,

---

(1) ल.तं.(3/1) (2) ल.तं.(3/2)

शक्ति एवं आत्मा के रूप में विभाजन करने वाली [3] षड्गुणों में से **'ज्ञान-शक्ति'** एवं **'ऐश्वर्य'** से उन्मेष करने वाली [4] ईख से रस से बनने वाले गुड़ की भांति ज्ञान-शक्ति-बल से रूपों की सर्जना करने वाली[5] *'**ज्ञान से सत्वगुण, 'ऐश्वर्य से रजोगुण** तथा **'शक्ति' से** तमोगुण का आविर्भाव करने वाली, ज्ञान-ऐश्वर्य-शक्ति से गुणत्रय सतरजतम को जन्म देने वाली। [6]

'ज्ञान' को सत्व में, 'ऐश्वर्य' को रजत्व में, 'शक्ति' को तमत्व में परिवर्तित करने वाली स्थिति में सत्व को एवं संहार में तमोगुण को प्राधान्य देने वाली तथा **गुणत्रय के पूर्व संविन्मयी बनकर** रहने वाली **('अहं संविन्मयी पूर्वा')**[7] स्वेच्छया गुणों में अधिष्ठित होकर सृष्टि स्थित संहार करने वाली किन्तु सगुण-निर्गुण दोनों स्वरूपों में रहने वाली[8] अकेले ही सृजन, पालन, संहार करने वाली[8] अकेले ही शुद्ध से अशुद्ध, त्रिगुणातीत से त्रिगुणमयी बनने वाली तथा इसके स्वेच्छा (प्रेरक तत्व) द्वारा सृजन करने वाली **(इच्छैव मम कारणम्)**[9]**'चित् शक्ति'** के अविद्या से समाविद्ध होने

(3) ल.तं.(3/3) (4) ल.तं.(3/4) (5) ल.तं.(3/5) (6) ल.तं. (3/6) (7)ल. तं.(3/8) (8) ल.तं.(3/9) (9) ल.तं.(3/9)*

* अधिष्ठाय गुणान् सृष्टि, स्थिति संहतिकारिणी।
निर्गुणापि गुणानितानधिष्ठायात्मवाञ्छया।
चक्रं प्रवर्तयाम्येका सृष्टिस्थित्यन्तरुपकम्। (3/9)

पर चित् शक्ति को भोक्ता बनाने तथा उसे अविद्या-अज्ञान से युक्त करने वाली, उनमें नित्य भोग-वासना उत्पन्न करने वाली [10] चित् एवं अचित् दोनों को जन्म देने वाली, चित्-अचित् दोनों को अपने में समाविष्ट करने वाली [11] अभिमान-शून्य चिच्छक्ति द्वारा भगवती से एकत्व प्राप्त कर लेने पर पर व्यूह को आद्यास्वरूप में एवं **'शुद्ध विद्या'** मार्ग में ले जाने वाली एवं करुणा (कृपा) दिखाने वाली [12] विभाजित स्वरूप में स्थित शक्ति के दोनों स्वरूपों–

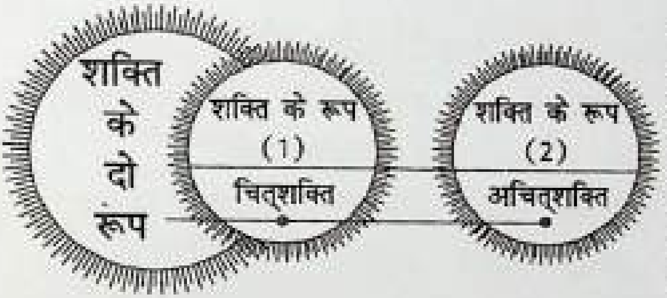

'चित्' 'अचित्' को धारण करके वाली, शुद्धा शुद्ध मार्गों (अध्वों) के आधार में ईश की आत्मा (41/1)अद्वैतस्व रुपा (41/3) है।

(8) *भगवती और नारायण दोनों षाड्गुण्य स्वरुपा (41/3: ल.तं.)हैं*

1. पूर्ण षाड्गुण्यरुपत्वात् साहं भगवती स्मृता।। (ल.तं.4/48)
2. सृष्टिं कृतवती शुद्धां पूर्ण षाड्गुण्यविग्रहाम। (ल.तं.5/2)
3. तत्तदैश्वर्य सम्पन्ने षाड्गुण्यं सुव्यस्थितम् (ल.तं.11/16)
4. षाड्गुण्य-नाना रुपों की सृष्टि (11/5)
5. 'एको नारायणः श्रीमान् षाड्गुण्यमहिमोज्ज्वलः।। (41/3)
6. परं ब्रह्म परं धाम षाड्गुण्य ममलो जज्वलम्। (ल.तं.22/4)
7. तस्य षाड्गुण्यरुपाहं शक्तिरेका सनातनी।

भगवती लक्ष्मी, भगवान नारायण और व्यूह षाड्गुण्य युक्त हैं।*[13]

---

(10) ल.तं.(3/15-19) (11) ल.तं.(3/17)
(12) ल.तं.(3/18-19) (13) ल.तं.(3/24-25)

षाड्गुण्य की विद्यमानता वासुदेव-लक्ष्मी एवं अन्य व्यूहों में भी है तो व्यूहों में एवं वासुदेव में भेद क्या है?

भेद यह है कि भगवान एवं भवगती में यह षाड्गुण्य अपनी सम्पूर्णता के साथ स्थित है किन्तु व्यूहों में स्वल्पाधिक रुप है।

भगवती जगत की परात्पर माता है—देवी जगतां मातरं पराम्। (ल.तं.1/52)

शक्ति एक होकर भी अनेक है (अनेक रुपों में उपासित है)

'एकैवैषा परा देवी बहुधा समुपास्यते।। (1/45)

उसी की शरण लेनी चाहिए–

तामुपेहि महाभागां शरणं पद्मसंभवाम्।। (1/45)

(9) * शक्ति तत्व का स्वरूप क्या है?*

*'शक्ति' नाद की पराकाष्ठा की अहन्ता रूपा परमेश्वरी है

'शक्तिः सा परमा सूक्ष्मा नादान्तगगना ह्यया।

शब्द ब्रह्ममयी सूक्ष्मा साहं सर्वावगाहिनी।।(ल.तं.24/10)

ॐकार ब्रह्म और शक्ति तत्व—

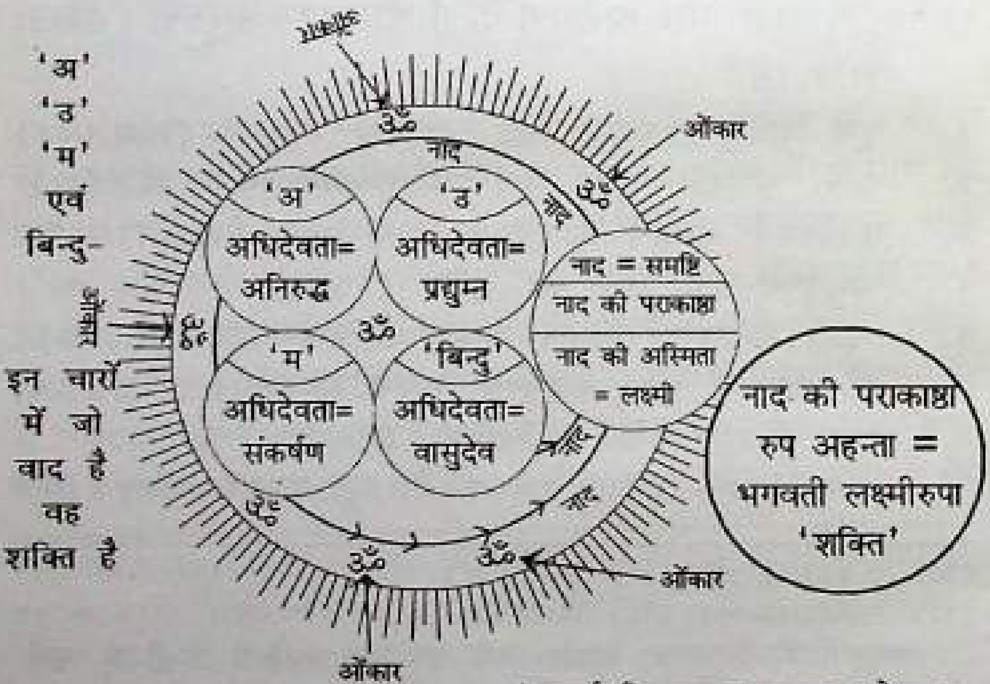

नाद की जो पराकाष्ठा है
उसकी अहन्ता
ही परमेश्वरी लक्ष्मी 'शक्ति' है।

'चतुर्णामविभागस्तु नादस्तत्र सुरेश्वर।
नादस्य पराकाष्ठा साहन्ता रमेश्वरी।।
(ल.तं. 24/9)

*'कुलार्णाव तंत्र में शक्ति विषयक दृष्टि

शत कोटि दिव्य महायोगिनियों की प्रीति की आधारभूत और तत्क्षण तीव्र भाव से मुक्ति प्रदान करने के कारण इस विश्वनियामिका परा सत्ता को 'शक्ति' कहा जाता है–

'शत कोटि महादिव्य योगिनी प्रीति कारणात्।
तीव्र मुक्ति प्रदानाच्च शक्तिरिव्यमिधीयते।'

श्री देवी (शक्ति का परिवार अनन्त है। यह निखिल जगत 'शक्तिमय' है। चारों रुपों में (लक्ष्मी-कीर्ति-जया-माया में) एक ही शक्ति आदि लक्ष्मीरुपा परमेश्वरी स्थित हैं–

'अनन्त परिवारास्त्ता इति शक्तिमयं जगत्।
आसां चतसृणामेकां शक्तिनां परमेश्वरीम्। (ल.तं.45-98)

भगवती तो 'नाद' हैं–

1. 'आसीच्छक्तिस्ततो नादः'। (शारदा तिलक)
2. नादस्य या पराकाष्ठा साहन्ता परमेश्वरी। (लक्ष्मी तंत्र 24/9)
3. भगवती 'शब्द ब्रह्ममयी सूक्ष्माशक्ति' हैं
   'शब्द ब्रह्ममयी सूक्ष्मा साहं सर्वावगाहिनी।' (ल.तं.24/10)
4. नाद का विराम होने पर स्वयं प्रस्फुटित होने वाली परम ज्योति को 'लक्ष्मी नारायण' कहते हैं–
   'विरामेसति नादस्य यः स्कुटी भवति स्वयम्।
   ज्योतिस्तत् परमं ब्रह्म लक्ष्मी नारायणाह्वयम्। (24/11)

(10) *भगवती पुरुष भी हैं और नारी भी हैं*

भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि मैं–

1. (1) 'वासुदेव' (2)'सङ्कर्षण' (3)'प्रद्युम्न' एवं (4)'अनिरुद्ध' के रूप में पुरुष हूँ और
2. लक्ष्मी, कीर्ति, जया और माया के रूप में नारी हूँ।
3. मैं माया और अपने निष्फल रूप को त्याग करके-
   वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध ; लक्ष्मी-कीर्ति-जया-माया– इन चतुष्टय-युग्म के रूप में नर-नारी दोनों हूँ।

'तदीयं निष्फलं रुपं मरीयं च विहाय वै।
कोऽस्मिंस्तत्वोदधो चास्ति चतुर्धा सुर सत्तम।। (ल.तं.45/13)

लक्ष्मी-कीर्ति-जया-माया नामक चारों भगवत शक्तियों का ध्यान सम्यक् रुप से करने पर स्वलोक ज्ञान के सामर्थ्य से साकारात्व प्राप्त हो सकता है।

(11) *भगवती विष्णु का धर्म पराहन्ता एवं शक्ति चक्र-नायिका है*

मूलभूतां पराहन्तां विष्णोस्तद्धर्म धर्मिणीम्।
सर्वशक्तिमयी. तां मां शक्ति चक्रस्य नायिकाम्।। (45/98)

भगवती प्रकाश-आनन्द, अग्नि-सोम, अग्नि (पिंगला) सोम (इड़ा) के अन्तः प्रदेश एवं सुषुम्णा में निवास करती हैं

प्रकाशानन्द योरन्तरनुस्युतामनु स्मरेत।
अग्नि षोमद्वयान्तः स्थां मध्य मार्गा नुवर्तिनीम्।
(45/100 ल.तं.)

भगवती सर्वसामर्थ्यरुपा है इसीलिए 'शक्ति' कहलाती हैं
'शकनाच्छक्ति रुपा हं' (ल.तं. 4/50)

(12) *भगवती लक्ष्मी 'नारायणी शक्ति' 'सिसृक्षा' 'निमेष' एवं 'संहृति' हैं*

भगवती विश्व की सिसृक्षा, संजिहीर्षा, संहार एवं नारायणी शक्ति आदि सभी कुछ हैं। भगवती कहती हैं –
'अहं नारायणी शक्तिः सिसृक्षालक्षणा तदा।
निमेषस्तस्य यो नाम संहृतौ परमात्मनः।। (2/22)

*भगवती 'सिसृक्षा' एवं 'सुषुप्सा' दोनों हैं–

भगवती लक्ष्मी स्वयमेव कहती हैं कि–
'अहं नारायणी शक्तिः सुषुप्सालक्षणा हि सा।
सिसृक्षाया ममोद्यन्त्या देवाल्लक्ष्मी पतेः स्वयम्।। (ल.तं.2/23)

(13) ***भगवती वैष्णवों का वैकुण्ठ है और श्री विष्णु का धाम है***

एतत्तु वैष्णवं धाम यतो नावर्तते यतिः। (ल.तं.1/41)
भगवती सांख्यविदों की परमानिष्ठा भी हैं।
'एषा सा परमा निष्ठा सांख्यानां विदितात्मनाम्।। (1/41)

भगवती लक्ष्मी योगियों की निष्ठा, पाशुपती निष्ठा एवं वेदज्ञों की परागति है

भगवती केवल सात्वतों की ही नहीं योगियों, पाशुपतों एवं श्रुतिधरों की भी परागति एवं निष्ठा है—
एषा सा योगिनां निष्ठा यत्र गत्वा न शोचति।
एषा पाशुपती निष्ठा सैषा वेदविदां गतिः।

***भगवती लक्ष्मी पाञ्चरात्रिकों की निष्ठा, सनातनी निष्ठा, नारायणी देवी एवं नारायणस्वरूपा हैं—**

भगवती के विषय में कहा गया है कि—
'पञ्चरात्रस्य कृत्स्तस्य सैषा निष्ठा सनातनी।
सैषा नारायणी देवी स्थिता नारायणात्मना।। (ल.तं.1/43)

(14) ***भगवती लक्ष्मी नारायण से पृथ्कापृथ्क दोनों है—**

भगवती का नारायण से तादात्म्य भी है और पृथकत्त्व भी:

पृथग्भूताऽपृथग्भूता ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः।
तैस्तैर्ज्ञानैः पृथग्भूतैरागमैश्च पृथग्विधैः।। (ल.तं.1/44)

चन्द्रमा और उसकी चाँदनी की भाँति लक्ष्मी और लक्ष्मीपति पृथकापृथक हैं।

(15) *** शक्ति के अनन्त रुप हैं तथापि पराशक्ति लक्ष्मी एक ही हैं तथापि वे अनेक रूप से उपासना का विषय बनती हैं—कहा भी गया है—**

'एकैवैषा परा देवी बहुधा समुपास्यते। (1/45)

भगवती लक्ष्मी ही एक मात्र शरण्यास्पद हैं

भगवती लक्ष्मी समस्त संसार का आश्रय एवं शरणदात्री हैं— अतः उनकी ही शरण में जाना चाहिए

बृहस्पति इन्द्र से कहते हैं—

'तामुपेहि महाभागां शरणं पद्मसंभवाम् (ल.तं.1/45)

अतः 'आराध्य महिषीं विष्णोः
स्थिरी कुरु निजश्रियम्।।'

***भगवती सर्वेच्छा एवं सर्वाभीप्सित पूर्ण करने वाली हैं—** एषा प्रसाद सुमुखी स्वं पदं प्रापयिष्यति।
अभीप्सितार्थदा देवी कामिनामपि कामदा।। (1)

***भगवती लक्ष्मी चन्द्ररुप ब्रह्म की चाँदनी हैं—** चन्द्रमा का जो सम्बंध चांदनी से है वही भगवती लक्ष्मी का ब्रह्म से है—

'तस्य या परमा शक्ति र्ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः।। (2)

(16) ***भगवती लक्ष्मी ब्रह्म के अहं की अस्मिता है***

ब्रह्म में जो अहन्ता है वही भगवती है— भगवती स्वयं कहती हैं

'अहन्ता ब्रह्मणस्तस्य साहमस्मि सनातनी।। (3)

भगवती विष्णु की ही नहीं प्रत्युत समस्त प्राणियों की भी सनातनी अहन्ता हैं

प्राणियों में जो अहंभाव या अस्मिता है जिसे कि वह स्वत्व मानता है उसका वह अहम्भूत स्वत्व या अहन्ता भी भगवती लक्ष्मी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है—

'अहन्ता सर्वभूताना महमस्मि सनातनी।। (4)

क. समस्त प्राणियों की आत्मा = हरि।

ख. समस्त प्राणियों की अहन्ता = लक्ष्मी।

ग. ब्रह्म की अहन्ता = लक्ष्मी।

घ. सर्वावस्थागता, स्वात्मभूतानपायिनी देवी = लक्ष्मी।
(सर्वावस्थागता देवी स्वात्मभूता न पायिनी/ 2/12)

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (1/47) (2) लक्ष्मी तंत्र (2/11)
(3) लक्ष्मी तंत्र (2/12) (4) लक्ष्मी तंत्र (2/13)

ङ. प्रलयोपरान्त सृजनेच्छा से युक्त - हरि।

च. हरि में उद्भूत सिसृक्षा - लक्ष्मी।

*जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीया तीत आदि सभी अवस्थाओं में अनुस्यूत शक्ति जो कि स्वात्मभूतानपायिनी भी है वह शक्ति **'देवी'** है और उसे ही 'लक्ष्मी' कहा जाता है।*

सर्वावस्थागता देवी—'सर्वावस्था देवी स्वात्मभूतानपायिनी
(लक्ष्मी तंत्र 2/12)

भगवती वासुदेव की ही भाँति सनातन तत्त्व हैं

येन भावेन भवति वासुदेवः सनातनः।
भवतस्तस्य देवस्य स भावोऽहमितीरिता।। (2/14)

(17) *लक्ष्मी ब्रह्म का भावपद हैं तथा ब्रह्म भवद्भावात्मक और शाश्वतपद है*

ब्रह्म भवद्भावात्मक शाश्वतपद है। उसे 'भवत' एवं उसकी शक्ति को 'भाव' कहा जाता है—

'भवद्भावात्मकं ब्रह्म ततस्तच्छाश्वतं पदम्।
भवन्नारायणो देवो भावो लक्ष्मी रहं परा।। (2/15)

ब्रह्म ही 'लक्ष्मी नारायण' है वह जिस अहन्ता से समाक्रान्त है उसका अहं भगवती लक्ष्मी हैं

भगवती स्वयं कहती हैं—

'लक्ष्मी नारायणाख्यातमतो ब्रह्म सनातनम्।
अहन्तया समाक्रान्तो ह्यहमर्थः प्रसिध्यति।। (2/16)

भगवती और ब्रह्म में जो अहन्ता एवं अहं का सम्बंध है वह अन्योन्याश्रित सम्बंध है और परस्पर समन्वयात्मक है

कहा भी गया है—

अहमर्थ समुत्था च साहन्ता परिकीर्तिता।
अन्योन्येनाविनाभावादन्योन्येन समन्वयात्।।

*** भगवती और भगवान में तादात्म्य सम्बंध है***

* ब्रह्म और उसकी शक्ति में सम्बंध *

ब्रह्म और उसकी शक्ति चन्द्र और चन्द्रिका (1/44) के सम्बंध की भांति सम्बंध वाली है और उसका परस्पर तादात्म्य सम्बंध है–

1. पृगभूताऽपृथग्भूता ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः।।
2. तादात्म्यं विद्धि सम्बंध मम नाथस्य चोभ्योः।।
   अहन्तया विनाहं हि निरुपारव्यो न सिध्यति।। (2/18)
3. 'अहं' और 'अहन्ता' एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते उसी प्रकार 'शक्तिमान' एवं 'शक्ति' भी एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते क्योंकि–
   'अहं' के बिना 'अहन्ता' निराधार होने के कारण अपना अस्तित्व नहीं रखती–
   'अहन्तया विनाहं हि निरुपारव्यो न सिध्यति।।
   'अहमर्थं विनाहन्तां निराधारा न सिध्यति।। (2/19)

भगवती निरुन्मेषा अहन्ता है कहा भी गया है–

परोक्षमपरोक्षं च जगति प्रविचिन्त्यते।
निरुन्मेषे निरुन्मेषा साहन्ता पारमेश्वरी।। [1]

(18) *भगवती लक्ष्मी की अनेक अवस्थायें हैं*

'विज्ञान' 'ऐश्वर्य' एवं 'शक्ति' इन तीन गुणों से भगवती की तीन अवस्थायें हैं–'सुषुप्ति, स्वप्न एवं जाग्रत।' 'विज्ञान, ऐश्वर्य एवं शक्ति ही इनके स्वाभाविक नाम हैं–इनमें

(1) लक्ष्मी का 'विज्ञान' = 'सुषुप्ति' है। (अवस्थात्रय)
(2) लक्ष्मी का 'ऐश्वर्य' = 'स्वप्न' है
(3) लक्ष्मी की 'शक्ति' = 'जाग्रत' अवस्था है।

अवस्थाः क्रमशोमे ताः सुषुप्ति स्वप्न जागराः।
तिस्त्रो मम स्वभावारव्या विज्ञानैश्वर्य शक्तयः।। (2/49)

***भगवती के गुणों से ही व्यूहों का आविर्भाव हुआ है–**

---

(1) ल.तं. (20/ 20) (2)

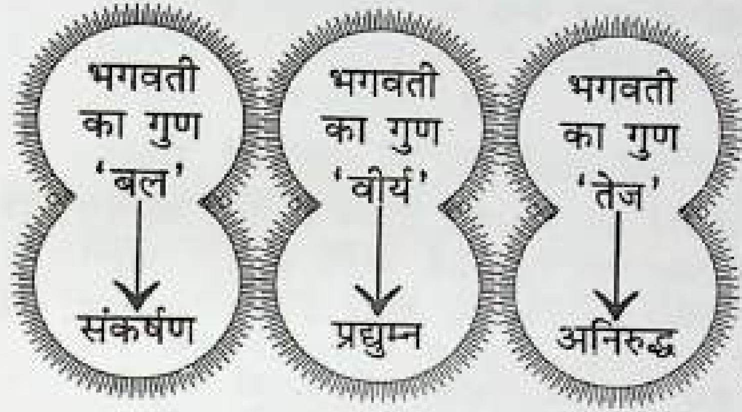

'संकर्षण', 'प्रद्युम्न' एवं 'अनिरुद्ध', लक्ष्मी जी की 'सुषुप्ति', 'स्वप्न' एवं 'जाग्रत' अवस्थाओं के उन्मेष हैं।

(19) *लक्ष्मी की अवस्थायें और उसमें उनके गुणों की स्थिति—

1 'जाग्रत' लक्ष्मी की शक्ति

2 'स्वप्न' लक्ष्मी की शक्ति

3 'सुषुप्ति' लक्ष्मी की शक्ति

4 'तुरीय' समाधि की अवस्था =शान्तावस्था। इसमें नारायण एवं नारायणी एक होकर रहते हैं। शान्तावस्था =वासुदेवा

भगवती की अन्य दो अवस्थायें भी हैं—

(1) 'शान्तावस्था* (2) उदितावस्था*।
(शान्तावस्था = *वासुदेवावस्था।)
(उदितावस्था = *व्यूहावस्था।।)

शान्तोदिता अवस्था

'तुरीयातीत' अवस्था- भगवती की अन्य अवस्थायें
(1) शान्ता
(2) उदिता
1. भगवती की आद्यावस्था- श्रमभावापन्नावस्था।
2. भगवती की द्वितीयावस्था - ज्ञानोपसर्जन, त्याग विराम या अन्त की अवस्था।
(श्लोक 2/51)

(1) **भगवती का संकर्षणरूप:**दो प्रधान गुण हैं (1) **'ज्ञान'** (2) **'बल'**

(2) **भगवती का प्रद्युम्न रूप :** दो प्रधान गुण हैं (1) **'ऐश्वर्य'** (2) **'वीर्य'**

(3) भगवती का अनिरुद्ध रूपः दो प्रधान गुण हैं—
(1) 'शक्ति' (2) 'तेज'

सारांश —

भगवती की गुणयुग्मतारूपता में—व्यूहों की स्थिति—

1. जहां (क)ज्ञान एवं (ख)बल प्रधान हैं वहां **'संकर्षण'** हैं।
2. जहां (क)ऐश्वर्य एवं (ख)वीर्य प्रधान हैं वहां **'प्रद्युम्न'** हैं।
3. जहां (क)शक्ति एवं (ख)तेज प्रधान हैं वहां **'अनिरुद्ध'** हैं।

वासुदेव ही ब्रह्म हैं और लक्ष्मी ही उनकी पराशक्ति हैं

भगवती का विश्वसंचालन नट की भांति है

'लक्ष्मी तंत्र' में कहा गया है कि जिस प्रकार एक नट अनुनय, औदार्य, क्रूरता, शूरता आदि गुणों के प्रदर्शनार्थ भावानुरूप बदल-बदल कर वेष धारण करता है और तदनुसार भिन्न चेष्टायें करता है उसी प्रकार लक्ष्मी एक हो कर भी—**'ज्ञान', 'शक्ति', 'बल', 'वीर्य', 'तेज'** एवं **'ऐश्वर्य'** इन 6 गुणों से **'सङ्कर्षण- प्रद्युम्न-अनिरुद्ध के रूप से**—सृष्टि का सञ्चालन-पालन आदि कार्य निष्पादित किया करती हैं। (1)

भगवती लोकहित के उद्देश्य से ही 'व्यूहात्मक स्वरूप' धारण करती हैं।

भगवती के व्यूहात्मक स्वरूप के भी विशिष्ट व्यापार हैं

1. **भगवती सङ्कर्षण के रूप से**→शास्त्रोपदेश एवं प्रलय करती हैं।
2. **भगवती प्रद्युम्न के रूप से**→शास्त्रों का वर्तन एवं सृष्टि करती हैं।
3. **भगवती अनिरुद्ध के रूप से**→शास्त्रार्थ के फलों का निर्वहन सृष्टि-पालन करती है।

'क्रमशः प्रलयोत्त्पति स्थितिभिः प्राण्यनुग्रहः।
प्रयोजनमथान्यच्च शास्त्र शास्त्रार्थतत्फलैः।। (2)

*** अवस्थायें, व्यूह और भगवती लक्ष्मी—**

1. व्यूह के रूप में विद्यमान चार मूर्तियाँ = 4 अवस्थायें—तुरीया—सुषुप्ति—स्वप्न—जाग्रत) है।

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (2/55-56) (2) लक्ष्मी तंत्र (2/57)

2. वासुदेव = 'तुरीयावस्था' हैं।(समाधि की–योगियों की अवस्था है।)
3. सङ्कर्षण = 'सुप्तावस्था' हैं। 4. प्रद्युम्न = 'स्वप्नावस्था' हैं।
5. अनिरुद्ध = 'जाग्रतावस्था' हैं।

चतुर्व्यूह के ऊपर 'पद्मनाभ परब्रह्म वासुदेव नारायण' स्थित हैं। उनका वैभव असीम एवं अनन्त है। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, कृष्ण उनके ही अवतार हैं।

मंत्र, मंत्रेश्वर आदि भी षाड्गुण्यविग्रह हैं—
मंत्र मंत्रेशरन्यासात्सापि षाड्गुण्य विग्रहा।। (ल.तं. 2/60)

* ईश, ईशता, ईशितव्य तथा लक्ष्मीनारायण

'ईशो नारायणों ज्ञेयः ईशिता तस्य चाप्यहम्। ईशितव्यं तु विज्ञेयं चिदचिच्च पुरन्दर।। —(ल.तं.3/14)

1. **ईशो नारायणों ज्ञेयः**(3/14) (लक्ष्मी)
2. **ईशोऽहमी शितव्यो न स च देवः सनातन।** (लक्ष्मी)।

प्र. ईश नारायण हैं या नारायणी? दोनों को 'ईश' कहा गया है।

'भोग्योपकरण स्थानरूपं तस्या अचित् पदम् -(ल.तं.3/15) (3 ल.तं. 3/22,23)

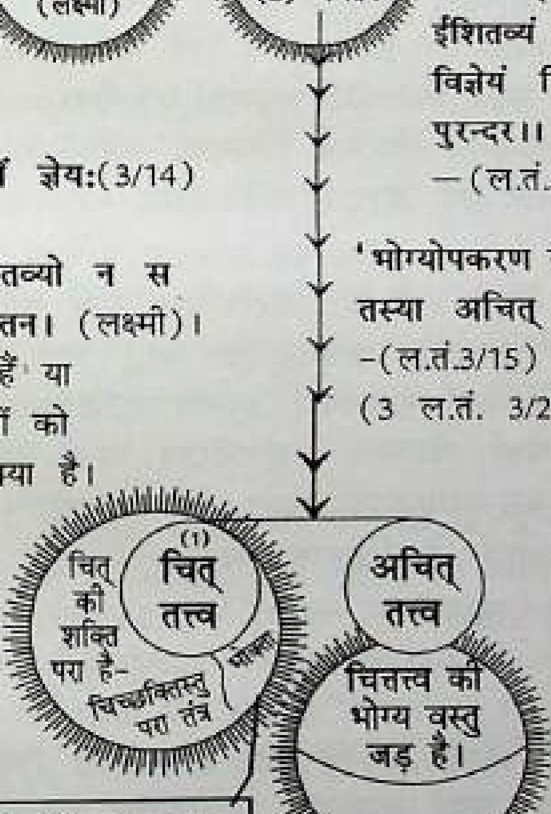

'शक्ति' के रूपद्वय- विभक्ते अपि ते एते शक्ती चिद्चिदात्मिके।।

चिच्छक्तिमोक्तृ रूपात्र सा च चिद्रूपधारिणी।

शाङ्कर दर्शन में तो ब्रह्म (ईश) को छोड़कर सभी नश्वर हैं किन्तु वैष्णवागम की मान्यता यह है कि–

'विभक्ते अपि ते शक्ती चिद चिदात्मिके।
मत्स्वाच्छन्द्य वशेनैव मम रूपे सनातने।।' (3/25 ल.तं.)

(1) ईश (2) इशितव्य एवं (3) ईशता ये ही 3 तत्व हैं।

'चिच्छक्ति' = चिच्छक्तिर्विमला शुद्धा चिन्मयानन्द रूपिणी।
अनाद्यविद्या विद्धेयमित्थं संसरति ध्रुवं।। (3/26)

बन्धन का कारण है– 'अनादि अविधा' –(ल.तं.)

(20) *शक्ति का वाक्तत्वात्मक स्वरूप*

तांत्रिक योग में कहा गया है कि समस्त वर्ण, सारी वर्णमाला, सारे तत्व, सारे अर्थ, समस्त शाब्दी-सृष्टि एवं समस्त आर्थी सृष्टि एवं समस्त सृष्टि भगवती कुण्डलिनी के शरीर में स्थित है और **'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता'**। वाणी की शक्तिमूलकता तांत्रिक दर्शन एवं तांत्रिक योग दोनों में प्रतिपादित की गई है किन्तु **'परा' 'पश्यन्ती' 'मध्यमा' एवं वैरवरी'** को शक्ति के विभिन्न रूपान्तरों के रूप में स्पष्टः प्रतिपादित नहीं किया गया है।

आचार्य शङ्कर की दृष्टि– आचार्य शङ्कर उपर्युक्त वाक्य तुष्टय के मूल को शक्ति का अभिधान न देकर 'भाव' कहते हैं और वाणी के चारों रूपों का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं–

'मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु भावः परारव्यः।
पश्चात् पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुग्मध्यमारव्यः।
वक्त्रे वैरवर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्ना,
बद्धस्तस्माद्भवति पवन प्रेरितो वर्णसंघः। [1]

पद्मपादाचार्य ने विवरण में –

'मूलाधार' की व्याख्या करते हुए उसे (1) मूलाधार चक्र एवं (2) जगत की मूलशक्ति **'माया'** को पर्यायवाची मानकर समानार्थक सिद्ध किया है और इस प्रकार 'परावाक्' को मायाशक्ति का पर्याय मान लिया है। **(1) मूलं जगन्मूलभूता परिणामिनी 'मायाशक्तिः'।**
तथा आधारभूत श्चिदात्मा मूलाधारः।

---

(1) प्रपञ्च सार तन्त्र (द्वि. पटल/43)

मूलाधार का अर्थ— **'मूल'** (मायाशक्ति) को आधार बनाकर रहने वाला या माया (मूल) का आधार बनकर रहने वाला **'चिदात्मा'** ही **'मूलाधार'** हुआ। (यह भी अर्थ पद्मपादाचार्य ने किया है और) उसी चिदात्मा से (या मूलाधार चक्र से) या सारे चक्रों के आधारभूत मूलाधार से भाव (जगद्‌भावयति इति माया शक्तिर्भाव: स परारव्य: अर्थात **विश्वोत्पादक 'परावाक्' की उत्पत्ति हुई।** [2]

प्रयोगक्रमदीपिकाकार की दृष्टि —

'प्रयोग क्रमदीपिका, (वृत्ति) में कहा गया है कि 'परायास्तु मूलाधार एवं स्थानम्। तत्र नित्योदिततया व्यक्तेरित्यव बोद्ध व्यम्। अर्थात् परावाक् का मूल अभिव्यक्ति स्थान तो प्रथम चक्र 'मूलाधार चक्र' ही अत: उसी से परावाणी का आविर्भाव हुआ। किन्तु वे यह भी कहते हैं— **मूलं जगन्मूलभूता। चिदात्मनो जगन्मूलत्वम्।**
शारदैव तद्‌द्वारेण जगदुपादान निमित्त चेति।'

'मूल' (माया शक्ति) अचिद्रूपा है। उसकी अभिव्यक्ति मूलाधार में होती है। उसके नीचे **'त्रिकोण'** है। उस त्रिकोणाभ ज्योति को **'आधार'** कहा गया है। उससे ही प्रथम वाक् **'परावाक्'** का उदय हुआ है।
(1) जो प्रथमोदित है (2) जो प्रथम अर्थ है (3) जो भाव है वही **'परावाक्'** है। **'भाव'-जगद्‌भावयतीति भाव:।। 'भाव'-चैतन्याभासविशिष्ट। चैतन्याभास का भाव। चैतन्याभास विशिष्टतया तथाविधस्य स्वरूपस्य प्रकाशिकेति भाव:।** [3]

(21) * 'लक्ष्मी तंत्र' में प्रतिपादित दृष्टि *

'लक्ष्मी तंत्र' में स्पष्टत: कहा गया है कि वाणी के सारे रूप शक्ति के विभिन्न रूप हैं अत:-(1) शब्दों के साथ उदित शक्ति **'शान्ता शक्ति'** है जो कि **आत्मा की प्रथम शक्ति** है—

(2) सारांश यह है कि शंकराचार्य ने तो नहीं किन्तु विवरणकार पद्मपाद ने वाक्तत्व का मूल शक्ति को सिद्ध करने का प्रयास किया है।
(3) प्रयोग क्रम दीपिका।

क. बोधोन्मेषः स्मृतः 'शब्दः' शब्दोन्मेषोऽर्थ उच्यते।
ख. उद्यच्छब्दोदयः शक्तेः प्रथमः शान्ततात्मनः।।

* आत्मा की प्रथम शक्ति *

(2) इस प्रथम शब्दोन्मेष को **'नाद'** कहते हैं। नाद के साथ जो शक्ति रहती है उसे **'सूक्ष्म शक्ति'** कहते हैं।

(3) नाद के बाद जिसका उन्मेष होता है उसे **द्वितीय शक्ति** या **'बिन्दु'** कहते हैं।

(4) इसके बाद तृतीय शक्ति आती है। उससे जो उन्मेष होता है उसे **'पश्यन्ती'** कहते हैं। (इसके बाद जिस शक्ति का उदय होता है उसे **'पश्यन्ती'** कहते है।)

(5) मध्यमा शक्ति से भी उन्मेष होता है उसे (उन्मिषित शक्ति को) चौथी शक्ति या **'वैरवरी'** कहते हैं।

(6) भगवती कहती हैं कि समस्त वाक्परम्परा **'नाद सन्तान'** है और इस वाणी की मूल जननी **'नादशक्ति'** को मेरी क्रियात्मिका शक्ति अनुप्राणित करती हैं।

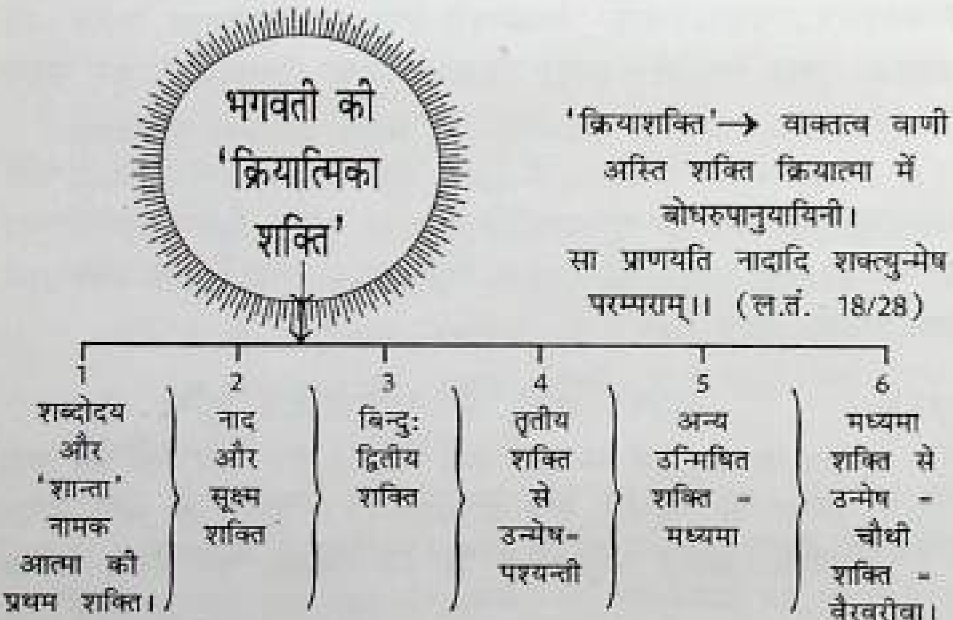

(1) अस्ति शक्तिः क्रियात्मा में बोधरुपानुयायिनी।
सा प्राणयति नादादिं शक्त्युन्मेष परम्पराम्।। —(नित्य तंत्र 18/28)

(22) * शक्ति चतुष्टय और भगवती लक्ष्मी *

1	2	3	4
शान्ता शक्ति द्वारा वासुदेव का प्रतिनिधित्व	पश्यन्ती शक्ति द्वारा सङ्कर्षण का प्रतिनिधित्व	मध्यमा शक्ति द्वारा-प्रद्युम्न व्यूह का प्रतिनिधित्व	वैखरी शक्ति द्वारा अनिरुद्ध व्यूह का प्रतिनिधित्व

भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि—1. **'शान्ता'** 2. **'पश्यन्ती'** 3.**'मध्यमा'** और 4. **'वैखरी'**—इन चार रुपों वाली शक्ति मेरे द्वारा निर्मित चार रुपों का प्रतिनिधित्व करती हैं—

'शान्तरुपाथ पश्यन्ती मध्यमा वैखरी तथा।
चतूरुपा चतूरुपं वच्मि वाच्यं स्वनिर्मितम्।
वासुदेवादयः सूक्ष्मा वाच्याः शान्तादयः क्रमात्।
अहमेकपदी ज्ञेया प्रकाशानन्दरुपिणी। (ल.तं. 18/28-30)
शान्तता नाम यावस्था साहं शान्ताखिलंप्रसूः।। (18/19
प्रकाशानन्द साराहं सर्व मंत्रप्रसूः परा।
शब्दानी जननी शक्ति रुदयः स्तमयीज्झिता। (18/18)

(23) *भगवती 'स्वातंत्र्य शक्ति' हैं—

वैष्णवागम के अतिरिक्त तांत्रिक शैव-शाक्त दर्शन में भी पराशक्ति को **'स्वातंत्र्य शक्ति'** के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। **'स्वातंत्र्य'** है क्या?

'स्वातंत्र्य' का अर्थ—बिना किसी अन्य उपादान एवं निमित्त-सहकारी कारण या वस्तु के निरपेक्ष रूप में (बिना किसी की सहायता के) विश्व की रचना कर सकने की अलौकिक सामर्थ्य को ही **'स्वातंत्र्य शक्ति'** कहा जाता है। पर निरपेक्ष सर्वकर्तृत्व की सामर्थ्य ही स्वातंत्र है।

विश्वसृजन के व्यापार में सर्व निरपेक्ष सर्व सामर्थ्य ही **'स्वातंत्र्य'** है।

*** भगवती लक्ष्मी आत्म विभाजन करके 'शब्द', 'अर्थ' एवं 'वृत्ति' के रूप में रूपान्तरित हो जाती हैं***

भगवती शब्द-अर्थ एवं वृत्ति तीनों हैं-

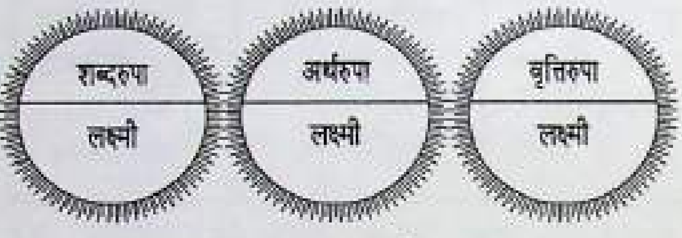

'आत्मानं विभाज्येका,
पञ्चधा देवसंविदा।
शब्दरूपार्थ रूपाभ्यां,
वृत्तिरूपेण वासव।' (1)

(भगवती लक्ष्मी के तीन रूप)

भगवती का नाम भी **'स्वातंत्र्य'** है अतः वे लोकोत्तर और अनुत्तर **'स्वातंत्र्यशक्ति'**। युक्त परात्पर शक्ति हैं-

भगवती का 'स्वातंत्र्य'—

1. स्वाच्छन्द्यादवरोहामि पञ्चकृत्यविधायिनी।
साहं यदवरोहामि सा हि **चिच्छक्तिरुच्यते**।। (2)
2. **सङ्कोचो** मायकः सोऽयं स्वच्छस्वच्छन्द चिद्धनः।
अस्मिन्नपि जगद्भाति दर्पणोदर शैलवत्।। (3)
3. **आत्मभित्तौ** जगत्सर्वं स्वच्छयोन्मीलयाम्यहम्।
मयि लोकाः स्फुरन्त्येते जले शकुनयो यथा।। (4)
4. संविदेका स्वरूपं मे स्वच्छस्वच्छन्द निर्भरा।
सिद्धयो विश्व जीवानामायतन्तेऽखिला मयि।। (5)
5. **भगवती का स्वातंत्र्य ही उनकी पूर्णाहन्ता है क्योंकि-**
'सर्वकार्यकरी शक्तिरहन्ता नाम शाश्वती।। (ल.तं.13/20)
6. **भगवती स्वातंत्र्य शक्ति हैं—**

'स्वतंत्रा सर्वसिद्धीनां हेतुश्चाय महाद्भुता।। (2) स्वतंत्रा निरवद्याहं विष्णोः श्रीरनपायिनी (3) 'स्वातंत्र्यवाद' - 'स्वातंत्र्य' लक्ष्मी नारायण भगवान की निरपेक्ष सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञातृत्व, सर्वव्यापकत्व, सर्वान्तर्यामित्व की (पूर्णतमा परात्पर) शक्ति है। निरपेक्ष सर्वसमर्था शक्ति (**'कर्तुं'**,

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (41/4) (2) लक्ष्मी तंत्र (13/23) (3) ल.तं. (13/24)
(4) ल.तं.(13/22) (5) ल.तं. (13/21)

'अकर्तुं', 'अन्यथाकर्तुं' की परात्पर शक्ति वैष्णवी शैवी-शाक्ती शक्ति) की ही आख्या **'स्वातंत्र्य'** है। **'स्वातंत्र्य'** भगवान की पराशक्ति है। **'आनन्द'** इसका अपर पर्याय है। परमात्मा का जो **दुर्घटकारित्व नामक 'ऐश्वर्य' है** वह स्वातंत्र्यशक्ति का एक गुण है। यह **'ऐश्वर्य'** (निरपेक्ष सर्वसामर्थ्य) **'स्वातंत्र्य'** से पृथक नहीं है। अपने स्वातंत्र्य या ऐश्वर्य से अनन्त रूपों में स्फुरित होता हुआ भी परमेश्वर स्वरूपत: अखण्ड एवं पूर्ण रहता है।

* स्वातंत्र्यवाद

परमात्मा की इच्छा का अनभिहत प्रसार उसका स्वातंत्र्य है

स्वातंत्र्य च नाम यथेच्छं तत्रेच्छाप्रसरस्य अविघात:।। (1)

'स्वातंत्र्य' अतिदुर्घअकारित्व है— .

'एतदेव स्वातंत्र्य यदति दुर्घटकारित्वम्।।

जिसे परमात्मा का **'ऐश्वर्य'** या **'स्वातंत्र्य'** कहा गया है वही **'नित्योदित' 'परावाक'** भी है। तत्वदर्शी मनीषी इसे **'विमर्शात्माचिति'** कहते हैं।

संवित्स्वरूप शिव के **'स्वातंत्र्य' की यही महिमा है** कि वह अनतिरिक्त रहते हुए भी अतिरिक्तवत दृष्टिगोचर होती है और **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'**—कहकर जिस परम तत्व एवं परमा शक्ति को एक (या अद्वैत) कहा गया है वही (एक होकर भी) अनन्त प्रमाता-प्रमेयों के रूप में सर्वत्र प्रसृत है।

शैव दर्शन में कहा गया है कि-(1) **'शिव'** प्रकाशात्मा चिति हैं। (2) अविभक्त (अन्तर्लीन) विमर्शात्मके शिव ही **'परमशिव'** हैं। यही निष्कलदशा है।

प्रकाशविमर्शात्मक संवित्स्वभाव भगवान **'परमशिव'** अपनी **'स्वातंत्र्य शक्ति'** से रुद्र आदि प्रमाताओं एवं नील सुख आदि प्रमेयों के रूप में प्रकाशित होते हैं। यह प्रकाशन अनतिरिक्त रहते हुए भी दर्पणस्थ पर्वतवत भिन्नाभिन्न दृष्टिगोचर होता है।

'स्वातंत्र्यवाद' का अर्थ — यह शैव-शाक्त-वैष्णव आदि तांत्रिक

---

(1) ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी वि. (1/1)

सम्प्रदायों का सृष्टि सम्बंधी सिद्धान्त है।

'स्वातंत्र्यवाद' को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि—

'तस्मादनपह्नवनीयः प्रकाशविमर्शात्मा संवित्स्वभावः परम शिवो भगवान स्वातंत्र्यादेव रुद्रादिस्थावरान्त प्रमातृरुपतया नील सुखादि प्रेमयरुपतया च अनतिरिक्तापि अतिरक्तयेव स्वरुपानाच्छादिकया संवित्स्वरूपनान्तरीयक स्वातंत्र्य महिम्ना प्रकाशते इत्ययं 'स्वातंत्र्यवादः' प्रोन्मीलितः।।।।[1]

'प्रत्यभिज्ञा शास्त्र' की सृष्टि सम्बोंधिनी दृष्टि की व्याख्या करने के लिए—(1)**'स्वातंत्र्यवाद'** एवं (2)**'आभासवाद'** का आश्रय लिया जाता है।

क. पर प्रमाता की दृष्टि से —**'स्वातंत्र्यवाद'** एवं

ख. प्रमेय की दृष्टि से — **'आभासवाद'** की चरितार्थता है।

'प्रत्यभिज्ञा हृदयम्' में **'स्वातंत्र्यवाद'** के सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए कहा गया है—

* **'चितिः स्वतंत्र विश्वसिद्धि हेतुः।।** (सूत्र1)

अर्थात्— **विश्वस्य-** सदाशिवादेः भूम्यन्तस्य' **सिद्धौ**— प्रकाशने, स्थित्यात्मनि, परप्रमात्ट विश्रान्त्या त्मनि च संहारे **चितिः**— पराशक्ति रुपा चितिः भगवती **स्वतंत्रता**— अनुत्तर विमर्शमयी शिवभट्टारि कामिन्ना, **हेतुः**— कारणम्।[2]

* **स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।** * [3]

अर्थात्—**स्वेच्छया—न तु ब्रह्मादिवदन्येच्छया, तयैव च, न तु उपादानाद्यपेक्षया—एवं हि प्रागुक्त स्वातंत्र्यहान्या चित्त्वमेव न घटेत, 'स्वभित्तौ—न तु अन्यत्र क्वापि, प्राक् निर्णीतं विश्वं दर्पणेनगम्वत अभिन्नमपि भिन्नमिव उन्मीलयति—उन्मीलनं च अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम्। इत्यनेन जगतः प्रकाशै कात्म्येन अवस्थानम् उक्तम्।।**[4]

'लक्ष्मी तंत्र' (3/3) में भगवती कहती हैं कि मैं अपनी **'स्वातंत्र्य शक्ति'** द्वारा ही देश, काल और रूप में विभक्त हो जाती हूं। मैं अपनी स्वतंत्रता के द्वारा ही विज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति एवं आत्मा के रूप का विभाग करती हूं।

* **स्व स्वातंत्र्यवशेनैव विभागस्तम वर्तते।**

---

(1) ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविवृति विमर्शिनी (2) प्रत्यभिज्ञाहृदयम्

(3) प्र.ह.सूत्र(2) (4)प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (क्षेमराज)।

विज्ञानैश्वर्य शक्त्यात्मा विभागो यः स ईरितः।।
'निरवधा स्वतंत्राहं नानुयोगपदे स्थिता (3/26)
'स्वातन्त्र्यमेव में हेतु (मैं स्वतंत्र हूँ। मैं ही हेतु हूँ।) (ल.तं.3/31)
'यद्वातद्वाऽस्तु तदेवि 'स्वातंत्र्यं' ते यदीदृशम्।। (3/37)

भगवती हेत्वन्तरानपेक्ष स्वतंत्र होकर भी समस्त जगत का निर्माण करती है। यही **'स्वातंत्र्यवाद'** के सिद्धान्त का लक्षण है।

हेत्वन्तरान पेक्षं यत् **स्वातंत्र्यं** विश्वनिर्मितौ।। (1)

(24) * शक्ति (लक्ष्मी) के कार्य— लक्ष्मी के पांच कार्य हैं।

'तिरोभावस्तथा सृष्टिः स्थितः संहृतिरेव च।
अनुग्रह इति प्रोक्तं मदीयं कर्म पञ्चम। (ल.तं.12/13)

(25) * तिरोभाव शक्ति—

1. **'तिरोभाव'** नामक कर्म पांचों कर्मों से प्रथम कर्म है। इसमें शेष चार कर्मों का अभाव रहता है।
2. यह भगवती की स्वच्छ निर्मल शक्ति है।
3. यही मोकतृरूप में **'तिरोभाव शक्ति'** के नाम से प्रख्यात है। इसे ही अविद्या शक्ति भी कहते हैं—
   'तिरोभावामिधाना में साविद्याशक्तिरुच्यते।। (12/16)
   स्वच्छापि सा मदीया हि चिच्छक्ति मोंकत्ट संज्ञिता। (12/15)
4. शक्ति के सत्यप्राण संकल्प **'सत्य संकल्प'** से भेदित होकर उन्मीलित भगवती लक्ष्मी का जो स्वरूप है उसे भगवती का **'अवरोह'** कहा जाता है।

(1) लक्ष्मी तंत्र (4/9)

5. इसी चित शक्ति को जीव कहते हैं।

***'अविद्या' तिरोभाव 'अविद्या शक्ति' है–**

तिरोभावाभिधाना में साविद्या शक्ति रुच्यते। (ल.तं.12/16)

6. अविद्या के **'पांच पर्व'** हैं।

भगवती के विभिन्न रूप (लक्ष्मी तंत्र अ. 14)

↓

1	2	3	4	5	6
विकल्प स्वरूप	सिसृक्षा स्वरूप	शुद्धचिन्मयी स्वरूप	संविन्मय स्वरूप	सर्वाकार स्वरूप	परमानन्दमय स्वरूप

(1) **भगवती का सर्वाकार रूप–**

'तेन मां चिद्घनामेकां सर्वाकारामुपासते।। (14/45)

(2) **भगवती का संविन्मय स्वरूप–**

'एवं नित्या विशुद्धा च सुखदुखाद्यभेदिता।
स्वसंवेदन स वेद्या मम संविन्मयी स्थिति (14/39)

(3) **भगवती का शुद्ध चिन्मय स्वरूप–**

सा चाहमेव तेनाहं सर्वतः शुद्ध चिन्मयी। (14/16)

(4) **भगवती का आनन्दमय स्वरूप–**

मामेव परमानन्दमयी लक्ष्मी स विन्दति। (14/57)

(26) * अविद्या तत्त्व

'क्लेश' के भेद (योगशास्त्र)

↓

1	2	3	4	5
अविद्या	अस्मिता	राग	द्वेष	अभिनिवेश।

योग की दृष्टि —

'अविद्याऽस्मिता राग द्वैषाभिनिवेशा क्लेशाः।। —योग सूत्र

'लक्ष्मी तंत्र' (अ.12) में लक्ष्मी के जो पांच कार्य बताए गए हैं वे इस प्रकार हैं (1) **'तिरोभाव'** (2). **'सृष्टि'** (3) **'स्थिति'** (4) **'संहार'** (5) **'अनुग्रह'**।

फिर यह कहा गया है कि —'भोक्त्रा' नाम वाली एक ही चिति शक्ति भोग्यादिरूपा हो जाती है। उसके दो रूप हैं–

चिच्छक्तिरेका भोक्त्राख्या या भोग्यादिरुपिणी।
काल काल्य विभेदेन साद्विधा भेदिता मया।।

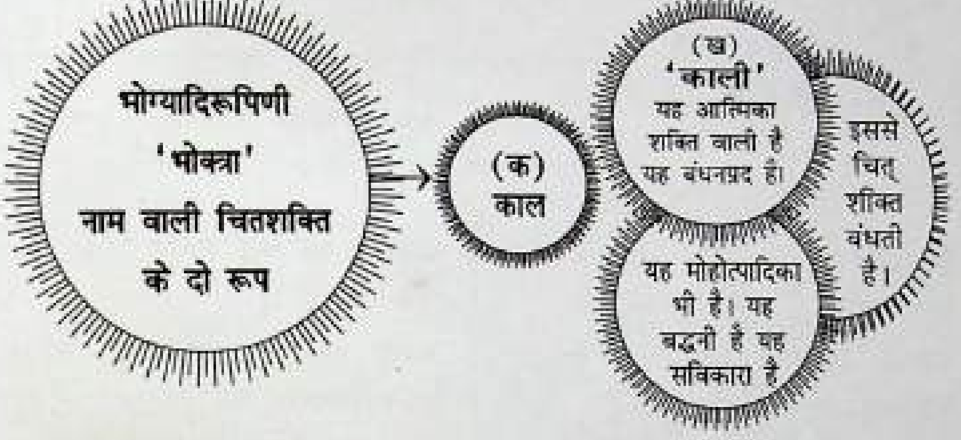

'तत्र काल्यात्मिका शक्ति मोहनी बंधनी तथा
प्रकृतिः सविकारैषा चिच्छक्तिर्बध्यतेऽनया।।'

'चितशक्ति' भोक्तृता रूप में जिस प्रकार क्लेश भोगती है वे पांच प्रकार के बताए गए हैं।

* भोक्ताचित्शक्ति के क्लेशरूप भोग* (ल.तं.)

↓

1 तम क्लेश	2 मोह क्लेश	3 महामोह क्लेश	4 तामिश्र क्लेश	5 अन्ध क्लेश

* ये पांचों क्लेश **'अविद्या' के पांच पर्वों से युक्त** हैं। इन पांचों क्लेशों में तमोगुणजनित क्लेश की गति उत्तम होती है।*

क्लेशों की आख्या

'तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रो ह्यन्धसंज्ञितः।।' (ल.तं. 12-9)

इन्द्र पूछते हैं कि– **'चिच्छतिरेव तेशुद्धा यदि जीवः सनातनः।**

क्लेश कर्मा शयस्पर्शः कथमस्य सरोरुहे?'

यदि चितशक्ति शुद्ध है और जीव सनातन है तो उससे क्लेश कर्माशय का स्पर्श कैसे हो सकता है।

लक्ष्मी के 'कर्मपञ्चक' का 'तिरोभाव कर्म' -(ल.तं.)

लक्ष्मी के कर्मपञ्चक-

↓

1	2	3	4	5
तिरोभाव	सृष्टि	स्थिति	प्रलय	अनुग्रह

लक्ष्मीतंत्रोक्त 'अविद्या' शक्ति-'साविद्या शक्तिरुच्यते।' (ल.तं.

अविद्या सा परा शक्ति स्तिरोभाव इति स्मृतः।।
पञ्च पर्वाणि तस्यास्तु सन्ति तानि निबोध मे। (ल.तं.12/20)

'चिच्छक्ति' का स्वरूप—चिच्छक्तिरेव ते शुद्धा यदि जीवः
सनातन असङ्गिन्यपि चिच्छक्तिः शुद्धा व्यपरिणामिनी।
आविद्धमात्मनो रूपं नैर्भल्येन विभर्ति सा। (12/10)

यद्यपि चित् शक्ति असंगिनी, शुद्ध एवं अपरिणामिनी है तथापि यह भगवती की अपनी काली नामक शक्ति से सम्बद्ध होने के कारण (शुद्ध होने के बाद भी) अपने आविद्ध स्वरूप को धारण करती है।

इसके कारण चितशक्ति व्याहत प्रतीत होती है।

प्र. यदि चित् शक्ति शुद्ध है तो सनातन जीव क्लेश कर्माशय से बंधता क्यों है?

चिच्छक्तिरे का भोक्त्रारव्या परा भोग्यादि रूपिणी कालकालय विभेदेन सा द्विधा भेदिता मया।। (12/6)

'भोक्त्रा' नाम वाली एक ही चित शक्ति भोग्यादिरूपा हो जाती है। भगवती उसे दो भागों में विभाजित कर देती है।

(काल एवं काली) भोक्त्रा नामक चित शक्ति का देवी द्वारा विभाजन (12/6)

देवी द्वारा विभाजन

↓

1	2
'काल'	'काली'

* 'चित् शक्ति' के भोक्त्रा बन जाने पर उसके द्वारा भोगे जाने वाले क्लेश 5 प्रकार के हैं।

सारांश–

चित शक्ति की भोगेच्छा एवं भोग प्रवृत्ति→ पञ्च क्लेशों से कष्टापन्नता के दुर्भाग्य की प्राप्ति।

'क्लिश्यते येन रूपेण चिच्छक्ति र्भोक्तृतां गता।
स क्लेशः पञ्चधा ज्ञेयो नामान्यस्य च मे श्रृणु।।

पञ्चक्लेश– (1) 'तम' (2) 'मोह' (3) 'महामोह' (4) 'तामिश्र' (5) 'अन्ध (तामिश्र)'

आत्मा शुद्ध एवं असंगिनी होकर भी भोक्त्री बनने पर पञ्चक्लेश भोगती हैं।

(27) ***भगवती के पञ्चकर्म**

तुलना कीजिए–
काश्मीरीय तांत्रिक शैव मत–
शिव पञ्चकृत्यकारी है–
'सृष्टि संहार कर्तारं विलय स्थिति
कारकम् अनुग्रहकरं देवं
प्रणतार्तिविनाशनम् – '
स्वच्छन्द तंत्र (पटल 1)

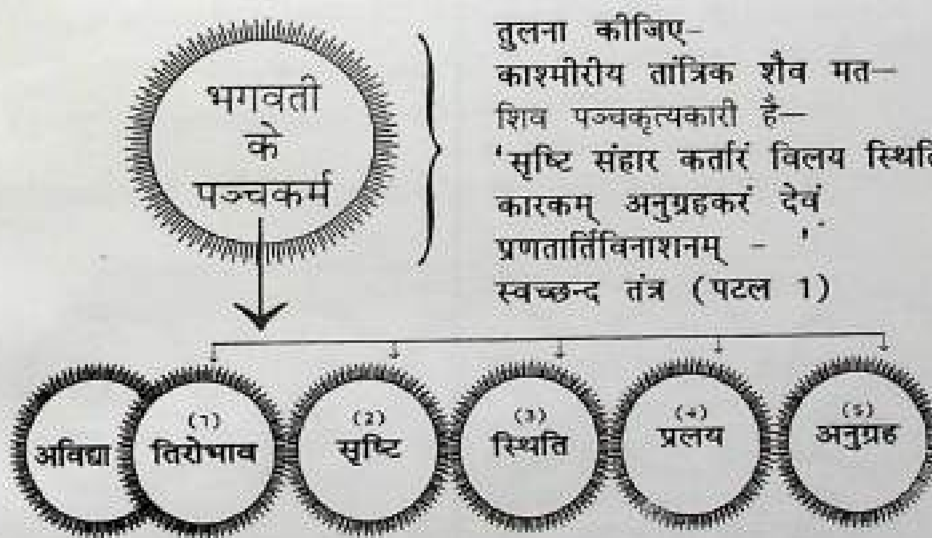

1. तत्र नाम तिरोभावोऽन्यद्भावः परिकीर्त्यते। स्वच्छापि सा मदीया हि चिच्छक्ति र्भोक्तृ संज्ञिता। (12/15)

2.. मदीयया यया शक्त्या वर्तते प्रकृतेर्वशे। तिरोभावाभिधाना में साविद्या शक्तिरुच्यते।

(क) उन पांच कर्मों में 'तिरोभाव' नामक जो प्रथम कर्म है उसमें अन्य चार कर्मों का अभाव रहता है। उसमें अन्य कार्यों का अस्तित्व नहीं रहता। इसीलिए इसे (सबको तिरोहित करने वाला) 'तिरोभाव' कहते है।।

(ख) भगवती की स्वच्छ निर्मल शक्ति है। यही भोक्तरुप में 'तिरोभाव शक्ति' के नाम से जानी जाती है। भगवती द्वारा जो शक्ति प्रकृति के वश में कर ली जाती है उसे ही 'तिरोभावशक्ति' कहते हैं। उसे ही 'अविद्या शक्ति' भी कहते हैं। तिरोभाव शक्ति= अविद्या शक्ति।।

(ग) भगवती के सत्य संकल्प के द्वारा उनका जो रूप भेदित हो जाता है उसे 'अवरोह' कहते हैं।।

(घ) चिच्छक्ति को 'जीव' कहते है।

(ङ) तिरोभाव शक्ति 'अविद्या' ही है-

'अविद्या सा परा शक्तिस्तिरोभाव इति स्मृतः। पञ्चपर्वाणि तस्यास्तु सन्ति तानि निबोध में।

* तिरोभाव = अविद्या का स्वरूप*
(अविद्या सा पराशक्ति स्तिरो भाव इति स्मृतः।।)

*अविद्या के पञ्चपर्व *

तमस्तु प्रथम पर्व नामाविद्येति तस्य तु। अनात्मन्यस्वभूते च चैत्ये जीवस्य या मतिः स्वतयाइन्तया चैव तमोऽविद्या च सा स्मृता। स्वीकृतेऽहन्तया चैत्ये मानो यस्तत्र जायते।।

(लक्ष्मी तंत्र 12/21-22)

* * * * *

*'पञ्चपर्वा अविद्या'

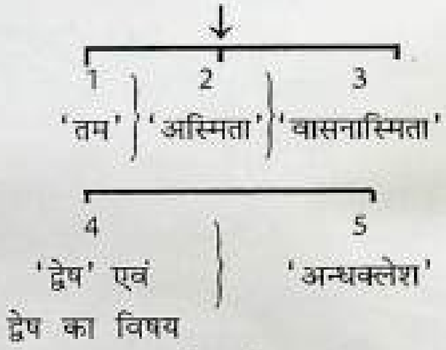

-लक्ष्मी तंत्र 12/20-27)

(1) 'अविद्या' प्रथम पर्व 'तम'

'तम' का अर्थ है अन्धकार किन्तु वैष्णवागम में तम शब्द अविद्या के प्रथम पर्व के रूप में स्वीकृत है। यह पञ्चपर्वाविद्या का प्रथम पर्व है।

1. **अविद्या के प्रथम पर्व का नाम 'तम' है।** अनात्मजन्य यही जीव का चैतन्य है—**'अनात्मन्य स्वभूते च चैत्ये जीवस्य या मतिः।।** अविद्या की अपनी अहन्ता से **'तम'** की उत्पत्ति होती है।

'अविद्या' की अपनी अस्मिता→

'तम का आविर्भाव। इसे ही **'अविद्या'** भी कहते हैं।

स्वतयाहन्तया चैवतमोऽविद्या च सा स्मृता स्वीकृतेऽहन्तया चैत्ये मानो यस्तत्र जायते।।' चैत्य द्वारा अहन्ता को स्वीकार कर लेने पर यह परिणाम में अपेक्षित स्वरूप वाली हो जाती है।

(2) 'अविद्या' का द्वितीय क्लेश पर्व ('अस्मिता')

अविद्या के द्वितीय पर्व की आख्या **'अस्मिता'** है। अस्मिता अहङ्कार जनित महामोह है। अविद्यानुगत होने के कारण(1) चैत्य एवं (2) चेतन को एक ही माना जाता है।

'चैत्य चेतनयोरेक भावापत्तिरविद्यया।।

'अस्मितारव्यो महामोहो द्वितीयं 'क्लेशपर्व' तत्। (12/23)

सुखानुस्मृति के हेतु (या वासना) में **'अस्मिता'** होने के कारण **'मोहास्मिता महामोह'** आविर्भूत हो जाता है।

'पञ्चपर्वा अविद्या'—अविद्या के पञ्चपर्व (लक्ष्मी तंत्र अ.12)

(3) 'अविद्या' का तृतीय क्लेश पर्व 'राग' एवं राग के विषय

स रागोरञ्ज्य विषयस्तृतीयं क्लेशपर्व तत्।

दुःखानुस्मृतिहेतुर्या वासनास्मित तयाहिता।।

इस तृतीय क्लेश पर्व में रम्य विषयों में आसक्ति उत्पन्न होती है।

(4) **अविद्या का चतुर्थ क्लेश पर्व : द्वेष एवं द्वेष के विषय***
चतुर्थ क्लेशपर्व द्वेष एवं द्वेष के विषयों का है। योग से द्वेष नष्ट हो जाता है और इसके नष्ट हो जाने पर सुखाविर्भाव भी होता है। **'स द्वेषो द्वेष्यविषयश्चतुर्थं क्लेश पर्व तत् दुःखं जिहासतो योगैः प्रेप्सतश्च सुखं तथा।।**

* * * * * * * *

(5) **अविद्या का पञ्चम क्लेशपर्व 'अन्ध'**
तदन्तरायै र्वित्रासो मध्य यो नाम जायते।
अन्धाख्योऽभि निवेशः स पञ्चमं क्लेश पर्वतत्।।—(ल. तंत्र)
पञ्चम क्लेश पर्व उनके अन्तराय एवं वित्रास के कारण उत्पन्न होते हैं जिसे **'अन्धक्लेश'** कहते हैं।[1]

* * * * * * * * *

अन्य शास्त्रों की समतुल्य दृष्टि

1. **'तत्त्वसमास सूत्र'** नामक सांख्य दर्शन के ग्रंथ का 14वां सूत्र इस प्रकार–**'पञ्चपर्वाऽविद्या'**
2. **'लिङ्गपुराण' : 'तमो मोहो महामोहोस्ता मिश्रश्चान्ध संज्ञितः।
अविद्या पञ्चधा ह्येषा प्रादुर्भूता स्वयंभुवः।।**[2]
3. **'विष्णुपुराण'** (1/5/5)
4. **सांख्यतत्त्वकौमुदीकार की दृष्टि**—कारिका (47) की व्याख्या में वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि—
वार्षगण्य मानते थे कि अविद्या **'पञ्चपर्वा'** है।
5. **कपिल एवं आसुरि-सम्वाद**—यहां पञ्च पर्वों का परिचय देते हुए उनके नाम—(1)**'तम'** (2)**'मोह'** (3)**'महामोह'** (4)**'तामिश्र'** एवं (5)**'अन्धतामिश्र'** बताया गया है। इसके अनुसार—

क) **'तम'**-अज्ञान (ख) **'मोह'**-आलस्य (ग) **'महामोह'**-कामसेवा

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (अ. 12/27) (2) लिंग पुराण (1/5/2)

(घ) 'तामिश्र'=क्रोधाधिक्य। (ङ) 'अन्धतामिश्र'=विषाद।।
'पर्वाणि पर्वाणि घोराणि योऽविद्वान नावबुध्यते।
स वध्यते मृत्युपाशैर्हर्षशोक समन्वितः।।

(6) 'पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीम' श्रुति।।

* योगसूत्रकार की दृष्टि में क्लेशों का स्वरूप *

* 'अविद्या स्मिता रागद्वेषाभिनि वेशाः क्लेशाः।। (2/5)*
1. 'अविद्या' = अनित्या शुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसु खात्मख्यातिर विद्या।। (2/5) [3]
2. 'अस्मिता' = दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्म तेवास्मिता (यो.सू.2/6)
3. 'राग' = सुखानुशयी रागः (यो.सू. 2/7)
4. 'द्वेष' = दुःखानुशयी द्वेषः (यो.सू.2/8)
5. 'अभिनिवेशः' स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभि निवेशः।।(2/9)

'कर्म' और 'वासना' —

वासना में अस्मिता ही 'पर मोहोस्मिता महामोह' नामक दूसरा क्लेश पर्व उत्पन्न होता है।

जीव अपनी कर्मासक्ति के कारण देह के कर्मों को अपने कर्म मानकर देहात्मबोध से कलुषित हो जाता है और देह को ही आत्मा मानने लगता है और दैहिक सुख-प्राप्त्यर्थ अनेक कर्म करने लगता है—

1. देहमात्मतया बुद्धवा ततस्तादात्म्य भागतः।।
2. यदयं कुरुते कर्म त्रिविधं त्रिविधात्मकम्।।
3. कर्म से कर्मविपाक होता है जो सुख दुखात्मक होता है। कर्मविवाक क्लेश होता है—वासना एवं कर्मविपाक दोनों क्लेश स्वस्वरूप हैं—'वासना आशयाः प्रोक्ताः क्लेश कर्म विपाकजाः।।
4. अविद्या पञ्चपर्वो का जन्म— वासनात्मक प्रवृत्तियां ही पञ्चक्लेश पर्वों को जन्म देती हैं—और वासनायें ही सभी कर्मों के आरंभ का कारण होती हैं।
1. वासनात्मक प्रवृत्तियां →पञ्चपर्व क्लेशों का जन्म।

---

(3) योगसूत्र (2/5)

2. वासनायें → समस्त कर्मों का जन्म।

जन्यन्ते वासना नित्यं पञ्चभिः क्लेशपर्वभिः

सदृशारंभ हेतुश्च वासना कर्मणां तथा। (ल.तं. 12/33)

तिरोभाव स्वरूपा बंधनी शक्ति→जीवों का बंधन एवं कर्मफल भोग

(28) * सृष्टि-शक्ति

यह भगवती की द्वितीय शक्ति है। भगवती की प्रथम शक्ति तिरोभावन है और दूसरी सृष्टि है। भगवती की सृष्टि आदि शक्तियां सदैव प्रवर्तनशील रहती हैं। भगवती की दो प्रकार की शक्तियां और उनसे उत्पन्न दो प्रकार की सृष्टियां होती हैं (1) शुद्ध शक्ति-'शुद्धा सृष्टि' (2) अशुद्ध शक्ति-'अशुद्ध-सृष्टि'। 'सृष्टिर्ज्ञेया त्रिधापुनः'

सृष्टि के अन्य तीन भेद भी हैं-(1)'भाविकी सृष्टि' (2) 'लैंगिकी सृष्टि' (3) 'भौतिक सृष्टि' [1]

भाविकी लैंगिकी चैव भौतिकी चेतिभेदतः।। [2]

(ग) * स्थिति शक्ति*

यह भगवती की तृतीय शक्ति है : 'स्थितिनभि तृतीया में शक्तिर्या ते पुरोदिता।।

त्रिक दर्शन में भगवान की पांच शक्तियां मानी गई हैं—

1. 'चित शक्ति' 2. 'आनन्द शक्ति' 3. 'इच्छा शक्ति' 4. 'ज्ञान शक्ति' 5. 'क्रिया शक्ति' —

(1) 'प्रकाशरुपता चिच्छक्तिः' (2) 'स्वातंत्र्य आनन्द शक्तिः' (3)'तच्चमत्कार इच्छा शक्तिः' (4) 'आमर्शात्मकता ज्ञान शक्तिः' (5) 'सर्वाकार योगित्वं क्रियाशक्तिः'।।

* प्रथमा 'स्थितिशक्ति' *

1.. आद्य सृष्टि के क्षणों में जो क्षण विद्यमान रहता है उसी की आख्या है- 'स्थैर्यकरण शक्ति'। वही शक्ति इसके बाद भी विद्यमान रहती है। वह परा शक्ति 'स्थिति शक्ति' भगवान के नाम रुपों में रहती है। विष्णु एवं भगवती की अपेक्षा के अनुसार वह शक्ति विद्यमान रहती

---

(1) लक्ष्मी तंत्र(12/39) (2) लक्ष्मी तंत्र (13/38-39)

है। यही 'प्रथमा स्थिति शक्ति कही गई है।

*** द्वितीया 'स्थितिशक्ति' ***

मन्वन्तराधियों के लिए जो स्थितिशक्ति होती है उसे **द्वितीया** स्थिति शक्ति' कहे हैं।

*** तृतीया 'स्थितिशक्ति' ***

मनुपुत्रों की स्थिति के लिए जो शक्ति प्रयुक्त होती है उसे तृतीया स्थिति शक्ति' कहा जाता है।

*** चतुर्थ 'स्थितिशक्ति' ***

जो अन्य क्षुद्र जीवों की स्थिति के लिए शक्ति प्रयुक्त होती है उसे **चतुर्थ स्थिति शक्ति** कहते है।।

(घ) * संहार-शक्ति *

चतुर्थी संहृती शक्तिस्तस्या भेदभिमं श्रृणु।। (12/52)

1. जो शक्ति नित्य जरायुज जीवों एवं अन्य भूतों का नाश करती रहती है उसे **'संहारशक्ति'** कहते हैं। इसे ही **'नैमित्तिंक शक्ति'** भी कहते हैं।

'संहारशक्ति' (नैमित्तिक शक्ति) त्रैलोक्यविषया होती है। यही **'ब्रह्मप्रस्वाप'** है और यही हेतु है। महदादि तत्वों में जो-व्यपाश्रय है वही **'प्रकृति'** है। उसी को **'तृतीय शक्ति'** कहते हैं:

तृतीया प्राकृती प्रोक्ता महदादिव्यपाश्रदा।।

'चतुर्थशक्ति'—जो अव्यक्त विषया है उस चतुर्थ को 'प्रासूती' कहते हैं।

'पांचवी शक्ति'—जो प्रसूति विषया है उस पांचवी शक्ति को 'मायी' कहते हैं।

'छठवीं शक्ति'—छठवीं शक्ति जो सविषया होती है उसे 'माया' कहते हैं।

'सातवीं शक्ति'—जो सातवीं शक्ति है उसे तो 'आत्यन्तिकी' कहते हैं। यह भगवती और योगियों दोनों में ही लीन रहती है। सत्कर्मियों के शरीर में यह सूक्ष्म रूप में प्रवर्तमान रहती है। ये ही सात प्रकार की संहार शक्तियां हैं।

(ड.) * **अनुग्रह शक्ति**— भगवती मी पांचवी शक्ति **'अनुग्रह शक्ति'** है। **'लक्ष्मी तंत्र'** के त्रयोदश अध्याय में इस शक्ति का सविस्तार परिचय दिया गया है। **'अनुग्रहात्मिकाशक् शक्तिर्मे पञ्चमी स्मृता।।**

अनुग्रहात्मिका शक्ति का स्वरूप एवं लक्षण-

1. **'अनुग्रहात्मिका शक्ति'** अविद्या से समाविद्ध अहङ्कार आदि को अपने वश में रखती है। भगवती की शक्ति से यह तिरोभूत होती है और इसका **'तिरोधान'** आदि होता है।
2. यह शक्ति उच्च शक्ति से नीचे गिरती है और वहीं से 'लव' को उत्पन्न करती है। उन्हें तीन बंधनों में बांधती है और तीन स्थानों में विद्यमान रहने की क्षमता प्रदान करती है।

   यह संसाररुपी अङ्गार के मध्य अपने कर्मों को पकने के लिए उसे रख देती है। वह 'लव' सुख का अभिमानी हो जाता है और दुःख की स्थिति में—अज्ञान के द्वारा नित्य घर्षित होता रहता है।

   वही शक्ति सभी चराचर योनियों में भटकती रहती है और एक होकर भी अनेक भेदों वाली हो जाती है। देह, इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि के द्वारा वही अहर्निश वेदना का अनुभव करती रहती है। वही लव रुप में जन्म के बंधन में पड़ती है और जन्मों के अनुसार उसका मरण भी होता रहता है। इस प्रकार वह क्लेशपरितप्त रहती है। संयोग-वियोग ही उसके क्लेशों के कारण हैं। वह सन्तान-जन्म से सुखी एवं मृत्यु से दुःखी हो जाती है।

* 'अनुग्रह' और 'शक्तिपात' —

भगवती की जिस पर भी दृष्टि पड़ जाती है वह जीव दुःखों से रहित एवं श्रीमान् हो जाता है। इसे ही 'अनुग्रह' कहा जाता है। इसी का नामान्तर है—'शक्तिपात'

'मया जीवाः समीक्ष्यन्ते श्रिया दुःख विवर्जिताः।
सोऽनुग्रह इति प्रोक्तः शक्तिपाता पराह्वयः।। (13/8)

* 'कर्मसाम्य'—

भगवती की, जीव पर, दृष्टि पड़ते ही जीव के कर्मों में **'कर्मसाम्य'** हो जाता है—

'कर्मसाम्यं मजन्त्येते प्रेक्ष्यमाणा मया तदा।

'कर्म-साम्य' होने पर जीव भगवती का भजन करने लगते हैं और भगवती से प्रेक्षित होने पर जीव का शरीर शुद्ध हो जाता है—

'अपश्चिमा तनुः सा स्याज्जीवानां प्रेक्षिता मया।।'

* शक्तिपात का समय —

'शक्तिपात' करने का समय केवल 'ागवती को ही ज्ञात है अन्य को नहीं—

'अहमेव हि जानामि शक्तिपात क्षणं च तम्।।

* शक्तिपात का उद्देश्य—

पुरुषाकार का ध्वंस 'पुरुषाकार ध्वंस' या अन्य उद्देश्य से ही 'शक्तिपात' किया जाता है। * भगवती के जीव प्रेक्षण का उपाय—

'केवल स्वेच्छयैवाहं प्रेक्षेकश्चित् कदाप्यहम्।।

उससे उस जीव का अन्तःकरण निर्मल हो जाता है।

* 'कर्मसाम्य' का प्रभाव

1. 'कर्मसाम्य' से समन्वित होकर वह जीव शुद्ध कर्म करने लगता है।
2. वेदान्तज्ञान-सम्पन्न हो जाता है।
3. सांख्ययोग में निरत हो जाता है।
4. सम्यक् 'सात्वत विज्ञान' से वह विष्णु की सद्भक्ति में लग जाता है।
5. समय आने पर वह योगी क्लेश समूह नष्ट कर देता है। (13/12-13)
6. विविध बन्धनों से मुक्त होकर वह प्रकाशमान हो उठता है। जैसे-जैसे बंधन कटते जाते हैं वैसे-वैसे वह अधिक प्रकाशमान हो जाता है। इसके बाद वह लक्ष्मीनारायणात्मक परम ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। यही मेरी 'पञ्चमीशक्ति' है जिसे अनुग्रहात्मिका कहा जाता है। यह स्वच्छन्द होते हुए भी तिरोभाव आदि कर्मों का कारण होती है।

भगवतीरुपा परमाशक्ति, षाड्गुण्योपेत, परम तत्व एवं नारायण की सर्वकर्तृत्वसमर्था शाश्वती '**अहन्ता**' है— वे

1. '**लक्ष्मी**' नारायण की परमाशक्ति हैं।
2. '**लक्ष्मी**' षाड्गुण्योपेता ज्योतिर्मयी शक्ति हैं।
3. '**लक्ष्मी**' भगवान की **शाश्वती अहन्ता शक्ति है।।**

'तस्याहं परमादेवी षाड्गुण्यो महिमोज्वला।
सर्वकार्यकारी शक्तिरहन्ता नाम शाश्वती।। (ल.तं.13)

स्थिति —

सृष्टि के पट्ट को नीले-पीले रूप में वर्णित किया गया है। इसमें विषयों का अस्तित्व रहता है अतः इसे '**स्थिति**' कहते हैं। प्रारंभ में विषयों को ग्रहण करते हैं और बाद में उसे त्यागने की इच्छा करते हैं और त्याग देते हैं। इसे ही '**संहति**' कहते है।।

इस वासना की समाप्ति के बाद तो अनुग्रह का भी विलोप हो जाता है। जीवों में शक्ति का चढ़ाव-उतार होता है।

(29) *भगवती की अविद्या का स्वरूप

भगवती का एक स्वरूप (1)'**विद्या**' है तो दूसरा (2)'**अविद्या**' है। देव्यथर्व शीर्ष में देवी ने विद्या एवं अविद्या दोनों को अपना स्वरूप बताया है—'**विद्याहम विद्याहम्। अजहमम नजाहम्। अधश्चोर्ध्व च तिर्यक् चाहम।।**

भगवती का जो अविद्यास्वरूप है वह शुद्धविद्या के समायोग से सर्वत्र बन्धनमुक्त होकर प्रकाशित हो उठता है—

'शुद्धविद्या समायोगात् संकोचं यज्जहात्यसौ।
तदा प्रद्योतमानोऽयं सर्वतो मुक्त बन्धनः। (ल.तं.13/31)

(30) * 'शुद्धविद्या' क्या है? (विश्व के समस्त पदार्थों में अहंभाव की प्रतीति)

1. **शुद्धविद्योदयाच्चक्रेश्वरत्व सिद्धिः।** **(शि.सू.1/1)**
2. **विद्यासमुत्थाने स्वाभाविकके खेचरी शिनावस्था।** **(शि.सू.2/5)**

3. अहमेव सर्वं 'इति शुद्धविद्या' (आचार्य क्षेमराज)
(शि.सू. 1/21)
4. विद्याशरीर सत्ता मन्त्र रहस्यम् (शि.सू. दि.उ.2/3)

ज्ञान एवं क्रिया के समायोग से **सर्वकृतित्व एवं सर्वज्ञातृत्व** (पारमात्मिक शक्तियाँ) प्राप्त हो जाती हैं–

'ज्ञान क्रिया समायोगात् सर्ववित्सर्वकृत्सदा। (ल.तं.13/32)

भगवती कहती है कि 'जब तक मैं करुणार्द्र होकर जीव का अवलोकन नहीं करती तब तक जीव का ज्ञान संकुचित रहा करता है और वह (परम तत्व के स्थान पर) विश्व को ही प्रामुख्य देता है।[1]

अविद्या के पर्व–**'अविद्या पञ्चपर्वा'** है। सांख्य दर्शन भी अविद्या को **'पञ्चपर्वा'** ही स्वीकार करता है।

'लक्ष्मी तंत्र' (12/20) में इसे पञ्चपर्वा कहा गया है–

'अविद्या सा परा शक्तिस्तिरोभाव इति स्मृतः।
पञ्चपर्वाणि तस्यास्तु सन्ति तानि निबोध में।। (ल.तं.12/20)

(31)

*'अविद्या' क्या है?
'तिरोभाव' नामक शक्ति ही अविद्या है। (लक्ष्मी तंत्र)

'अस्मिता राग द्वेषाभिनि वेशा क्लेशाः' कहकर योग सूत्रकार ने भी क्लेशों का वर्गीकरण किया है।

---

1. यावन्निरीक्ष्यते नायं मया कारुण्यवत्तया।
तावत्संकुचिताज्ञानः करणैर्विश्वमीक्षते।। (13/33)

1. **'तम पर्व'** अविद्या के प्रथम पर्व की आख्या है **'तम'**। इसका स्वरूप इस प्रकार है—**अनात्मन्यस्वभूते च चैत्ये जीवस्य या मतिः।।** (ल.तं. 12/21)

   तम की उत्पति अविद्या की अपनी अहन्ता से होती है। इसे अविद्या भी कहते हैं।

2. **अस्मिता पर्व**—यह अहंकार जन्य महामोह है। इसमें चैत्य एवं चेतन को अविद्या के कारण एक ही स्वीकार किया जाता है—

   चैत्य चेतनयोरेक भावापतिरविद्यया।। (ल.तं. 12/23)

3. **'वासनास्मिता पर्व'**—**'दुःखानुस्मृतिहेतुर्या वासनास्मितत्तयाहिता।।**

4. **द्वेष पर्व—'स द्वेषो द्वेष्य विषयश्चतुर्थ क्लेशपर्व तत्।।** [2]

(32) *भगवान नारायण की स्वाश्रिता शक्तियां*

नारायणीदेवी— **'लक्ष्मीतंत्र'** में कहा गया है कि भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि मुझसे पूर्व जितनी भी देवियों का आविर्भाव हुआ है उनकी पूर्वजा मैं नारायणी हूं और साक्षात् विष्णु की लक्ष्मी श्री अनपायिनी (कभी पृथक न होने वाली) हूं—

'अहं नारायणी देवी पूर्वेषामपि पूर्वजा।
साक्षाद्भगवतो विष्णोर्लक्ष्मीः श्रीरनपायिनी।। [1]

भगवती का आत्मविभाजनात्मक स्वरूपचतुष्टय—

भगवती कहती हैं कि मैं अपनी इच्छा और अपनी शक्ति से अपने को चार भागों में विभक्त करके स्थित रहती हूं और इन्हीं चार रुपों में मूर्तिमान हो जाती हूं।

---

(2) **'अन्धक्लेशपर्व'**—पञ्चम क्लेशपर्व अन्धक्लेश पर्व कहलाता है।
यह अन्तराय एवं वित्राय के मध्य होता है—
'तदन्तरायैर्वित्रासो मध्ये यो नाम जायते।
अन्धाख्योऽभिनिवेशः स पञ्चमं क्लेशपर्व तत्।। (12/27) —ल.तं.

(1) लक्ष्मी तंत्र (45/1)

भगवती के स्वरूप चतुष्टय (मूर्ति चतुष्टय)

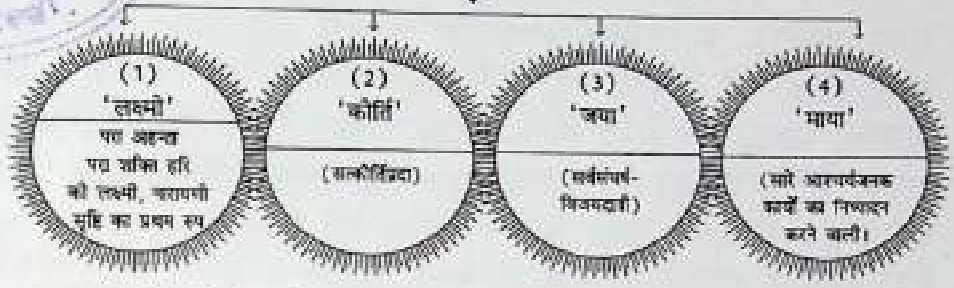

(ये चारों शक्तियां नारायण के आश्रय में रहती हैं)

'विभजामि स्वया शक्त्या चतुर्धात्मान आत्मना।

'लक्ष्मीः' कीर्तिर्जया माया चतुस्त्रो मूर्तयश्च ताः।। (2)

(1) **'लक्ष्मी'**—जो पराशक्ति लक्ष्मी है वे ही **'लक्ष्मीतंत्र'** में प्रतिपादित एवं श्री विष्णु की **'लक्ष्मी'** हैं। वे विश्व कल्याणार्थ अपनी आत्मा (अपने स्वरूप) को चार भागों में विभक्त करके स्वयं ही चार रूप **धारण कर लेती है:**

'या साशक्तिः परा लक्ष्मी रहन्ताहं विभोर्हरिः।

विभजन्ती स्वभात्मानं चतुर्धा जगतो हिते।। (3)

पराहन्ता — ये लक्ष्मी ही **'पराहन्ता'** हैं और ये लक्ष्मी का प्रथम स्वरूप है।

1. ये **'पराहन्ता'** हैं। (2) ये ही लक्ष्मी का (या जगत का) प्रथम् स्वरूप है।
3. ये सभी ऐश्वर्यों का फल प्रदान करती हैं।
4. ये ही विष्णु की शक्ति लक्ष्मी हैं।
5. इन्होंने ही चार रूप धारण कर रखे हैं।

ये सभी शक्तियाँ नारायणाश्रिता हैं–

लक्ष्मीर्नाय महाभागा सर्वैश्वर्यफल प्रदा।। (45/4)

सिद्धि-प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ साधक को पूज्य प्रतिमा का ध्यान करना चाहिए। उसमें **आदिलक्ष्मी का ध्यान** करना चाहिए।

---

(2) ल. तं. (45/2) (3) ल. तं. (45/3)

*'ध्यान'-लक्ष्मीमूर्ति का रूप इस प्रकार है-

भगवती का मुख अत्यन्त मनोज्ञ, नेत्र सौम्य, हाथ दो, कानों में सुन्दर कुण्डल, अंगकान्ति पद्मगर्भवत, करधनी दाममण्डित, वस्त्र एवं माला श्वेत, गले में हार, बाहुओं में केयूर, स्तनद्वय, नेत्र विशाल, अधर सुस्मित, भ्रमरगुञ्जित काले केश, ललाट मनोहर तिलक से युक्त, अधर अरुण, दांत वंशमुक्ता एवं रत्नवत, ललाट अर्धचन्द्र मण्डित, हाथ पाश एवं अंकुश से युक्त, मुकुट अत्यन्त मनोहर एवं बैठने का आसन कमल है।[1] उनका ध्यान इसी रुप में करना चाहिए—

वे मुकुट पहने हुए पद्मासन लगाकर बैठती हैं—

'बद्धपद्मासना चैव मकुटोत्तमशोभिता।।
एवं ध्येयाहमीशाना लक्ष्मी व्यूह स्थिता सती।।' [2]

* भगवती लक्ष्मी की सखियाँ *

↓

1 ऋद्धि (ऋं)	2 वृद्धि (वृं)	3 समृद्धि (सिं)	4 विभुति (विं)	सखियाँ (बीजमंत्र)

1. ॐ ऋं टं ऋद्धये स्वाहाः
2. ॐ वृं टं वृद्धये स्वाहाः
3. ॐ सिं टं समृद्धये स्वाहाः
4. ॐ विं टं विभूतये स्वाहाः

(सभी सखियाँ पद्मासनस्था हैं और भगवती लक्ष्मी की ओर मुख करके स्थित और उन्हें सदैव देखती रहती हैं। ये द्विभुजी, सुन्दर एवं पञ्चकोश की आभा से मण्डित है।।)

* भगवती लक्ष्मी के अनुचर चतुष्टय

↓

1 'लावण्य'	2 'सुभगा'	3 'सौभाग्य'	4 'सौमनस्य'

इनका स्वरूप— भुजाएं चार हैं। मुख सुन्दर है। वस्त्र-नीला कौषेय वस्त्र है। हाथों में पद्म कुंभ है। ध्वज कुमुदिनी के हैं।

(1) ल.तं. (45/18-20) (2) ल.तं. (45/21)

1. लावण्य - ॐ लां टं लावण्याय नमः।
2. सुभग - ॐ सुं टं सुभगाय नमः।
3. सौभाग्य - ॐ सौं टं सौभाग्याय नमः।
4. सौमनस्य - ॐ सौं टं सौमनस्याय नमः।।

* भगवती की कीर्ति का स्वरूप *

(2) 'कीर्तिनाम द्वितीया में तनुः सत्कीर्तिदायिनी,
जया नाम तृतीया मे तनुर्विजयजयदायिनी।। (45/5)
माया चतुर्थी मे सर्वाश्चर्यकरी तनुः।
लक्ष्मीः कीर्तिर्जया मायेत्येवं नारायणाश्रयाः।। (45/6) [1]

लक्ष्मी की चार मूर्तियां — नारायणश्रिता ये शक्ति चतुष्टय (चार मूर्तियां, परम उज्ज्वल, अपनी शक्ति समूह से युक्त निराकार और निष्फल है।) जिस प्रकार सूर्य की रश्मियां सूर्य से अभिन्न हैं उसी प्रकार लक्ष्मी-सहित ये मूर्तियां भी लक्ष्मी और लक्ष्मीपति के समान सभी ऐश्वर्यों के प्रभाव से पूर्ण हैं। लक्ष्मी और लक्ष्मीपति के ऐश्वर्यों से इन सभी के समलंकृत होने से इनके ऐश्वर्यों में और अधिक प्रशस्ति-वृद्धि होती है। मानों ये करोड़ों लक्ष्मियों से घिरी हुई हैं। उसी प्रकार कीर्ति भी अनेक कीर्तियों से घिरी रहकर विभु विष्णु से अभिन्नतया स्थित है।

कीर्ति—

ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां वे न रहती हों। वे समस्त सामान्य देहधारियों मे व्याप्त हैं। जो जहां जिस रूप मे रहता है उसे वहां उसी रूप में सामर्थ्य के अनुसार कीर्ति प्राप्त करता है।

जया—

'जया' और 'जयेश्वर' सभी में स्थित रहकर अपने विभिन्न रूपों से सभी को विजय प्रदान करते हैं।

---

1. प्राचीन वैष्णव आचार्यों ने 'शक्ति' की अव्यक्त (निष्क्रिय एवं अनभिव्यक्त) अवस्था में शक्ति की सत्ता स्वीकार की है।

माया—

इस **चौथी मूर्ति को 'माया'** कहते हैं। सभी आश्चर्यजनक कार्यों को करने वाली मेरी चतुर्थ मूर्ति का नाम **'माया'** है। ये सभी मूर्तियां (लक्ष्मी, कीर्ति, जया एवं माया) नारायण के आश्रय में रहा करती है।। भगवती कहती हैं कि 'इस जगत में देवता आदि में जो कुछ भी 'माया' दृष्टिगोचर होती है वह भगवान की माया से ही उत्पन्न होती है। उस माया में मुझे भी विद्यमान मानिये।। (2)

(2) कीर्ति—

'भगवती कीर्ति का स्वरूप एवं मंत्रादि

↓

1	2	मंत्र—
लक्ष्मी के समान मनोज्ञ	चम्पा पुष्प के समान रंग	'ॐ ह्रीं क्रीं त्रैं नमः सदोदितानन्द विग्रहायै ह्रीं क्रीं स्वाहा।।

कीर्ति की सखियाँ

↓

1	2	3	4
द्युति	सरस्वती	मेधा	श्रुति

कीर्ति के अनुचर

↓

1	2	3	4
वागीश 'वं' ॐ वं टं वागीशाय नमः	जयद 'जं' 'ॐ जं टं जयदाय नमः	प्रसाद 'प' 'ॐ प. टं प्रसादाय नमः	त्राण 'तं' (बीजमंत्र) 'ॐ तं टं. त्राणाय नमः

---

2. 'या काचिद्दिद्यते माया जगत्यस्मिन् सुरादिषु।
भगवन्मा ययोद्भूतां तां मां विद्धि सुरेश्वर।। (ल.तं. 45/12)

(3) जया

जया का स्वरूप

↓

1	2
परम सुन्दर हैं लक्ष्मी स्वरूप है	मंत्र—'ॐ ह्रीं जयायैनमः अजिता द्यामत वस्थितायै ह्रीं र्क्षीं स्वाहा।

जया की सखियां

↓

1	2	3	4	
जयन्ती 'जं'	विजया 'विं'	अपराजिता 'स'	सिद्धि 'ई' (बीजमंत्र)	
ॐ जं टं जयन्त्यै स्वाहा	'ॐ विं टं विजयायै स्वाहा	'ॐ सं टं अपराजितायै स्वाहा	'ॐ इं टं, सिद्धयै स्वाहा	मंत्र

जया के अनुचर

↓

प्रतापी	जयभद्र	महबल	उत्साह	
पं	जं	मं	उं	बीज मंत्र
ॐ पं टं प्रताप्यै नमः	'ॐ जं टं जय भद्राय नमः	ॐ मं टं महाबलाय नमः	'ॐ तं टं. उत्साहाय नमः	मंत्र

(4) माया –

'माया' का स्वरूप

↓

स्वरूप – लक्ष्मी के समान	इस मूर्ति का मंत्र— ॐ ह्रीं मायायै नमः मोहलक्षावस्थितायै श्रीं म्रीं ह्रीं स्वाहा।

'माया' की सखियों के नाम

↓

1	2	3	4	
मोहिनी	भ्रामणी	दुर्गा	प्रेरणी	
मों	भ्रां	दुं	प्रें	बीज मंत्र
ॐ मों टं मोहिन्यै स्वाहा	'ॐ भ्रां टं भ्रामिण्यै स्वाहा	ॐ दुं टं दुर्गायै स्वाहा	'ॐ प्रें टं. प्रेरण्यै स्वाहा	मंत्र

'माया' के अनुचर

↓

मायामय	महामोहि	शम्बर	कलीश्वर	
मां	मं	शं	कं	बीज मंत्र
ॐ मां टं मयाय नमः	'ॐ मं टं मोहाय नमः	ॐ शं टं शम्बराय नमः	'ॐ कं टं. कलीश्वराय नमः	मंत्र

भगवती की प्रधान चार मूर्तियों में से प्रत्येक के साथ करोड़ों परिवार हैं—

'कोटिकोटिपरीवारा एकैकास्ताश्च वासव।
एताः प्रधान भूतास्ताश्चतस्त्रः परिकीर्तिताः।।

भगवती 'षाड्गुण्य' सर्वकार्यकरी एवं शाश्वरी अहन्ता शक्ति हैं भगवती स्वयं कहती हैं—

'तस्याहं परमादेवी षाड्गुण्यमहिमोज्ज्ला।
सर्वकार्यकरी शक्तिरहन्ता नाम शाश्वती।। (13/20)

* भगवती का स्वरूप संवित् है और समस्त 'सिद्धियां' 'जीव' एवं निखिल 'विश्व' भगवती की ही कृतियां हैं*

'संविदेका स्वरूपं में स्वच्छ स्वच्छन्दनिर्भरा।
सिद्धयो विश्व जीवानामायतन्तेऽखिलां मयि।।

* 'विश्व' भगवती के आत्मभित्ति का एक चित्र है और सारे लोक जल में विहार करने वाले पक्षी की भाँति हैं*

वैष्णवागम की दृष्टि में जगत भगवती की आत्मभित्ति का एक चित्र है—

आत्मभित्तौ जगत्सर्वं स्वेच्छयोन्मीलयाम्यहम्।
मयि लोकाः स्फुरन्त्येते जले शकुनयो यथा।। (13/22)

(1) भगवती लक्ष्मी परा अहन्ता के रूप में देव सङ्कर्षण का रूप ग्रहण करती हैं।

वे कहती हैं कि इसी रूप में देव 'सङ्कर्षण' है—

'अहम्मानी परो ह्यासीदेवः सङ्कर्षणः प्रभुः।।

संकर्षण की 'अहन्ता' वही 'परा संकर्षणी शक्ति लक्ष्मी' है

'तस्या हन्ता तु या देवी सांहं साङ्कर्षणी परा।। (6/7)

* मन की अहन्ता–सरस्वती*

'मनोभूतस्य देवस्य
(अहन्ता–सरस्वती)
तस्या हन्ता तु या स्मृता।।
साहं सरस्वती नाम...।

अनिरुद्धस्य याहन्ता रतित्येवसं-ज्ञिता
सदैव देवी महालक्ष्मीर्माया कोशः
स उच्चते।। —6/18

1) अनिरुद्ध की अहन्ता = 'रति'
'महालक्ष्मी' 'मायाकोश'

2) मन की अहन्ता = 'सरस्वती'

---

(1) ल.तं. (6/7) (2) ल.तं. (6/10)

*** प्रसूतिकोश = तृतीय उन्मेष**

[1]

1. 'प्रसूति कोश' के रजोगुण से — 'महालक्ष्मी'
2. 'प्रसूति कोश' के तमोगुण से — 'महामाया'
3. 'प्रसूति कोश' के सतोगुण से — 'महाविद्या'

भगवती सत्यंमुक्तिस्वरूप हैं तथापि उनका अविद्यास्वरूप भी है

भगवती का यही स्वरूप अभेद में भेद या **'एकोऽहं'** में **'बहुस्याम'** का आविर्भाव करता है।

भगवती स्वयं कहती हैं कि —

'आविद्यं मत्स्वरूपं तु व्याख्यातं ते पुरा मया।
शुद्ध विद्या समायोगात् संकोच यज्जहात्यसौ। (ल.तं. 13/30)

(8) **'षाड्गुण्य'**—(1) **'षाड्गुण्य' लक्ष्मी का स्वरूप है।** (2) **'षाड्गुण्य'** द्वारा ही सिसृक्षु लक्ष्मी 10 हजार कलाओं की उत्पति करती है। और उन्हीं से सृष्टि होती है।
'उद्यतीत्थं सिसृक्षाया ममायुततमी कला।' (2/36)

(9) **'षाड्गुण्य' (प्रकटाप्रकट या व्यक्ताव्यक्त गुण षट्क के द्वारा ही परमेश्वर के चार रूप हो जाते हैं।)**

---

(1) ल.तं. (6/20)

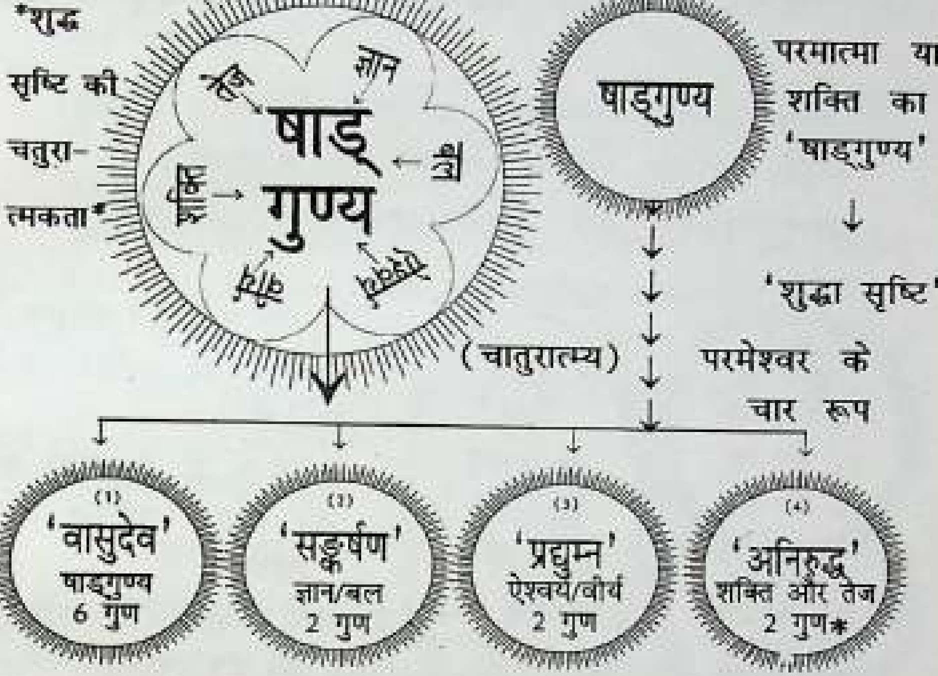

अभिव्यक्तानभि व्यक्त षाड्गुण्य क्रममुज्ज्वतमम् आलम्वित चतूरूपं रूपं तत् पारमेश्वरम् (ल.तं. (2/38)

*** आद्य पर ब्रह्मस्वरूप वासुदेव षड्गुणों से भिन्न स्थित रहते हैं। वासुदेव ही ब्रह्म हैं।**

*** 'षाड्गुण्य'—** षाड्गुण्य ब्रह्म का स्वरूप है। ब्रह्म में 6 गुण पाये जाते हैं—इनमें 'ज्ञान' प्रधान गुण है-

'ज्ञानात्मिका तथाहन्ता सर्वज्ञा सर्वदर्शिनी
ज्ञानात्मकं परं रूपं ब्रह्मणों मम चोभयोः [1]
क्योंकि- 'शेषमैश्वर्य वीर्यादि ज्ञान धर्मः सनातनः
अहमित्यान्तरं रूप ज्ञानरूपमुदीर्यते।।
ज्ञानाद्याः षड्गुणः एते षाड्गुण्यं मम तद्वपुः—
(भगवती का षड्गुणात्मक स्वरूप)
भगवती लक्ष्मी एवं लक्ष्मीकान्त
दोनों षाड्गुण्योपेत हैं।

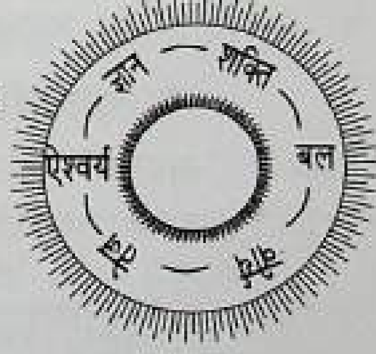

---

(1) ल.तं. (2/25) (26)

(33) *'मन्त्र' 'मन्त्रेश्वर' एवं न्यासादि भी षाड्गुण्यविग्रह ही है—

'मन्त्र मन्त्रेश्वरन्यासात्सापि षाड्गुण्य विग्रहा।। (2/60)

व्यूह- यद्यप्येक गुणोन्मेषस्थाप्येते हि षड्गुणाः।

अन्यूनानधिकाः सर्वे वासुदेवात्सनातनात्।। (4/29)

भगवान का परम स्वरूप—

1. भगवान की शक्ति-लक्ष्मी या 'श्री'।
(अहि.सं. में पराशक्ति का यही स्वरूप स्वीकृत है।)
'शक्ति'
2. अन्य संहिताओं में- *शक्ति* ('पद्म तंत्र' परमेश्वर संहिता आदि में) शक्ति-(क) **'श्री'** और (ख) **'भू'**
3. **'विहगेन्द्र संहिता'** तथा **'सीतोपनिषद्'** में

'शक्ति'— 1. श्री 2. भू 3. लीला या नीला। (शक्ति)

ये **शक्तित्रयवादी** कहते हैं कि—

क. **'श्री'** = कल्याण वाचक है। इच्छाशक्ति वाचक भी है।

ख. **'भू'** = (1) भू = प्रभावद्योतक (2) क्रिया शक्तिस्वरूप है।

ग. लाली = यह चन्द्रसूर्य अग्निमयी शक्ति का वाचक है।

* भगवती लक्ष्मी का स्वरूप *

(34) * 'अहन्ता' और भगवती लक्ष्मी *

(1) * **भगवती लक्ष्मी ब्रह्म की 'अहन्ता' है**—ल.तं. (2/12) में कहा गया है कि 'जो ब्रह्म की अहन्ता है उसकी वह सनातनी अहन्ता मैं हूं।।'[1]

---

(1) 'अहन्ता' ब्राह्मणस्तस्य साहमस्मि सनातनी। (ल.तं.2/12)

(2) *** भगवती लक्ष्मी समस्त अवस्थाओं में अनुगत, आत्मस्थित एवं अनश्वर हैं**

सांसारिक प्राणी मात्र 'जाग्रत' 'स्वप्न' 'सुषुप्ति' तीन अवस्थाओं में रहता है किन्तु शक्ति इन तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त-'तुरीय' एवं 'तुरीयातीत' अवस्था में भी रहती है।

सांसारिक प्राणी आत्मसंस्थित नहीं **देह-संस्थित, इन्द्रिय-संस्थित; मन-बुद्धि-चित्त**-अहंकार-संस्थित और देहात्माभाव-संस्थित रहते हैं। वे अचिदात्मक पदार्थों, उनके धर्मों, अनात्मक वस्तुओं एवं विषयादि से तादात्मय स्थापित करके परपदार्थ-स्थित रहते हैं किन्तु देवी आत्मस्थित रहती हैं और अनापायिनी है।

'सर्वावस्थागता देवी स्वात्म भूतानपायिनी।। [2]

(3) *** भगवती लक्ष्मी समस्त प्राणियों की सनातनी अहन्ता है—**

'अहन्ता सर्वभूतानामहमस्मि सनातनी।। (ल.तं.2/13)

(4) नारायण में जो भाव हैं और जिस भाव से वे 'सनातन' कहे जाते हैं वह भाव एवं सनातनत्व **भगवती में भी हैं।** 'लक्ष्मीतंत्र' (2/14,15) में कहा गया है-

येन भावेन भवति वासुदेवः सनातनः।

भवतस्तस्य देवस्य स भावोऽहमितीरिता।।

भवद्भावात्मकं ब्रह्म ततस्तच्छाश्वतं पदम्

भवन्नारायणो देवो भावो लक्ष्मीरहं परा।। (ल.तं.2/14)

(5) *** भगवती लक्ष्मी निरुन्मेषा 'अहन्ता' हैं—**

'निरुन्मेषेनिरुन्मेषा साहन्ता पारमेश्वरी।। [3]

(6) भगवती लक्ष्मी उन्मेषरुपा भी हैं—

उन्मेषस्तस्य यो नाम यथा चन्द्रोदयेऽम्बुधेः।। [4]

---

(2) ल.तं. (2/12) (3) ल.तं. (2/20) (4) ल.तं. (2/21)

भगवती इच्छा भी है—इच्छेति सोच्यतं तत्तत्त्व शास्त्रेषु पण्डितैः (ल.तं.-2/28)

(35) *भगवती लक्ष्मी का षट्कोशात्मक स्वरूप

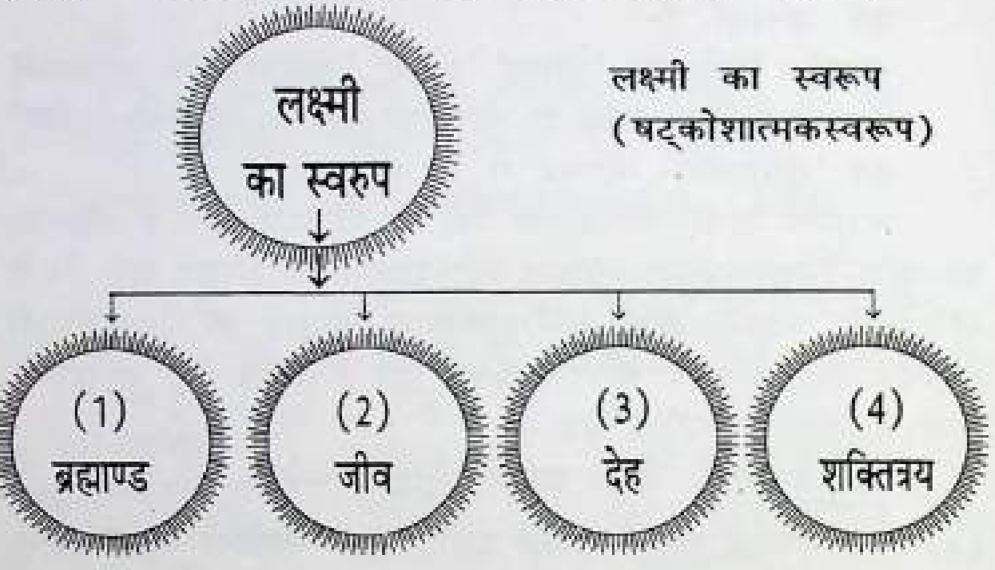

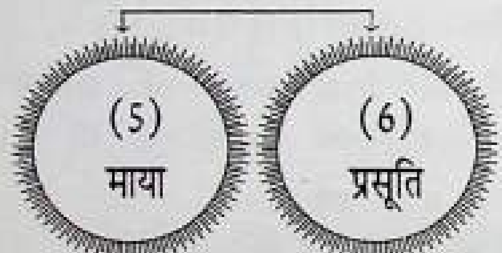

'ब्रह्माण्डं जीव देहश्चेत्येते षटकोश सञ्ज्ञिता:।'
'षट्कोशतां समापद्ये सत्ताहं वैष्णवी परा।
शक्तिर्माया प्रसूतिश्च प्रकृतिस्त्रिगुणमिका।।
(6/3)

***"षट्कोशों से सम्पन्न मैं वैष्णवी सत्ता हूं'—**
षट्कोशों में जो 'शक्ति' 'माया' एवं 'प्रसूति' है वे सतोगुण-तमोगुण एवं रजोगुण से युक्त होती है।

(36) * भगवती का वासुदेव से 'ब्रह्म द्वैतभावात्मक संबंध है

'अपृथग्भूत शक्तित्वात् ब्रह्माद्वैतं तदुच्यते।' (ल.तं. 2/11)

लक्ष्मी और वासुदेव का सम्बंध चन्द्र-चन्द्रिका के समान है।

'तस्य या परमा शक्ति ज्योंत्स्नेव हिमदीधिते:।। (2/11)

(9) * भगवती का वासुदेव के साथ 'तादात्म्य-सम्बंध' है—

'लक्ष्मी तंत्र' वासुदेव और लक्ष्मी में चन्द्र-दीधित-सम्बंध एवं 'तादात्म्यं विद्धि सम्बंध मम नाथस्य चोभ्योः।

अहन्तया विनाहं हि निरुपाख्यो न सिध्यति।। [1]

'अहं' अर्थ के बिना 'अहन्ता' का कोई आधार नहीं होता।

'अहमर्थं विनाहन्ता निराधारा न सिध्यति।। [2]

'अहन्ता' है क्या? जिसका अहं से उत्थान होता है वही 'अहन्ता' है- 'अहमर्थसमुत्था च साहन्ता परिकीर्तिता।। (2/17)

(10) * भगवती सिसृक्षालक्षणा' नरारायणी शक्ति है—

'अहं नारायणी शक्तिः सिसृक्ष्वा लक्षणा तदा।।

(11) *भगवती संजिहीर्षा (या प्रलयरूपा) भी है* [3]

(12) *भगवती लक्ष्मी सुषुप्सालक्षणा 'योगमाया' है—

'लक्ष्मी तंत्र' में कहा गया है कि वासुदेव से उत्प्रेरित होने पर उन्मिषित 'शक्ति' (लक्ष्मी)—(क) 'सिसृक्षा' एवं (ख) 'सुषुप्सा' दोनों लक्षणों वाली शक्ति है अतः वे कहती हैं कि—

'अहं नारायणी शक्तिः सुषुप्सालक्षणा हि सा।। [4]

'शक्ति' के दो रूप हैं—

भगवान की इच्छी ही सृष्टि है और इच्छा ही लक्ष्मी है। 'इच्छेति सोच्यते ततत्त्वशास्त्रेषु पण्डितैः।।' (2/28)

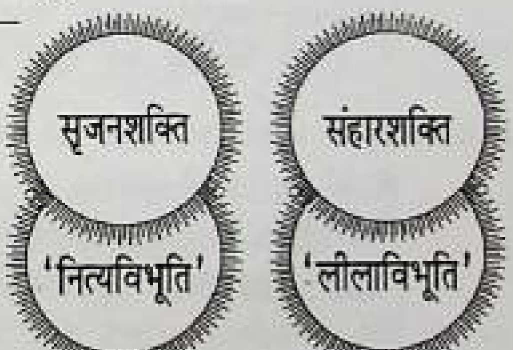

(13) लक्ष्मी का जो –'जगत प्रकृतिभाव' (प्रकृति रूप) है वही 'शक्ति' है—

'जगत्प्रकृतिभावो मेयः सा शक्तिरितीर्यते।।

(14) विकार हित वीर्य गुण ही लक्ष्मी की प्रकृति है—

'विकारविरहो वीर्य प्रकृतित्वेऽपि मे सदा।। (2/31)

---

(1) ल.तं. (2/18) (2) (2/19) (3) निमेषस्तस्य यो नाम संहतौ परमात्मनः (ल.तं. 2/23) (4) (ल.तं. 2/23)

विकार का अभाव ही वीर्य है विकार विरहो **'वीर्यमतस्तत्व विदां मतम्।।'** (2/32)
'वीर्य' को विक्रम भी माना जाता है—**'विक्रमः कथितो वीर्यमैश्वर्यांशः स तु स्मृतः।।'**

(15) लक्ष्मी **'स्वातंत्र्य शक्ति'** हैं क्योंकि वे प्रत्येक कार्य परापेक्षारहित होकर करती हैं।
'वीर्य' ऐश्वर्य का अंश भी है।
'स्वातंत्र्य' लक्ष्मी की प्रकृति है अतः-
'सहकार्यनोक्षा में सर्वकार्य विद्यौ हि सा।।'

* **'ज्ञान'**, **'शक्ति'**, **'बल'**, **'वीर्य'**, **'तेज'** और **'ऐश्वर्य'** के रूप में जो 6 गुण हैं वे भगवती के ही स्वरूप में स्थित हैं। देवी षाड्गुण्यात्मिका है।

(37) ***'षाड्गुण्य' लक्ष्मी का शरीर या स्वरूप है***
'ज्ञानाद्याः षड्गुणा एते षाड्गुण्यं मम तद्वपुः।।
* ये ही भगवती का षाड्गुण्यस्वरूप है *

(16) **शैवशाक्ततांत्रिक दर्शन की ही भांति वैष्णव तांत्रिक दर्शन में भी सृष्टि के स्वरूप को दो भागों में विभाजित किया गया है—(1) 'शुद्ध सृष्टि' (2) 'अशुद्ध सृष्टि'।**
'शुद्धा शुद्धात्मको वर्गस्तया क्रोडीकृतोऽखिलः'।
इसे परमात्मा ने अपनी गोद में स्थान दिया है—
'क्रोडी कृतोऽखिलः'

(17) **भगवती कहती हैं कि मैं चतुरात्मक शान्त स्वरूप वाली हूँ।**
'विवक्ष्यते यदा सा में शान्तायाश्चातुरात्म्यता' (2/41)

(18) **भगवती कहती हैं कि शान्त से अतिशान्त मेरे रूप से 3 युग्मों का उन्मेष उत्थान एवं आविर्भाव होता है।** मेरी

---

(2) (ल.तं. 2/26)

अभिव्यक्ति 'वासुदेव', 'सङ्कर्षण', 'प्रद्युम्न' एवं 'अनिरुद्ध' —इन चार रूपों में होती है।

(19) **आद्या शान्तता से होने वाला लक्ष्मी का उन्मेष—** तरंगशून्य, अनिर्देश्य, सत्ता शून्य, अविनश्वर एवं सच्चितमात्रात्मक जो उन्मेष होता है वह आद्या शान्तता (च्युति नामक उन्मेष) से होता है।

(20) **लोग सङ्कर्षण को ज्ञान-बल की दृष्टि से समान देखकर देवी को 'सङ्कर्षण' ही मान लेते हैं।** लोग देवी को ऐश्वर्य एवं वीर्य के कारण प्रद्युम्न मान लेते है।। भगवती में अनिरुद्ध का स्वरूप भी देखा जाता है।

(21) **देवी के 'विज्ञान' 'ऐश्वर्य' एवं 'शक्ति' से तीन अवस्थाओं का ज्ञान होता है।**

(38) *कश्मीरीय 'त्रिक दर्शन' और पाञ्चरात्रः 'आत्मभित्ति पर विश्वोदय'-के आलोक में—

1. 'आत्मभित्ति'—('प्रत्यभिज्ञा हृदयम्') 'त्रिक दर्शन' के आलोक में-

'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।।' (सूत्र 2) [1]

2. 'आत्मभित्ति'—('लक्ष्मी तंत्रः' पाञ्चरात्र की दृष्टि)

'आत्मभित्तौ जगत्सर्वं स्वेच्छयोन्मील याम्यहम्।
मयि लोकाः स्फुरन्त्येते जले शकुनयो यथा।।
(ल.तं.13/22)

मयि वा भित्तिभूतायां चित्रवत् संस्मरेज्जगत्।
स्तिमिता पारंगभीरे केन पिण्डं यथाम्बुधौ।। (ल.तं. 43/32)

अभिव्यक्त शक्ति के दो प्रकार है—(1) 'क्रिया' (2) 'मूर्ति'

'स्वेच्छया' न तु ब्रह्मादिवदन्येच्छया, तदैव च, न तु उपादानाद्यपेक्षया एवं हि प्रागुक्तास्वातंन्त्र्य-हान्या चित्त्वमेव न घटेत 'स्वभित्तौ' न तु अन्यत्र क्वापि, प्राक् निर्णीतं, विश्वं दर्पणे नगर वत अभिन्नमपि भिन्नमिव उन्मीलयति। 'उन्मीलनं' च अवस्थित स्यैव प्रकरीकरणम् (सूत्र 2) —प्रत्यभिज्ञा हृदयम् ।

(1) 'क्रिया' शक्ति ← अभिव्यक्त या 'जाग्रत शक्ति' के भेद → (2) मूर्ति शक्ति

सृष्टि: शुद्ध | मिश्र | अशुद्ध[2]

यह (1) **'सौदर्शिनी कला'** है[1] यह निष्कल एवं (2) प्राणात्मक है।

1. सकल शक्ति है
2. उनके भेद वाली है
3. यह क्रिया शक्ति की तुलना में अत्यन्त निम्न श्रेणी की होती है
4. इसके सभी व्यापार क्रिया सापेक्ष होते हैं

(3)यह **'क्रिया शक्ति'** ही-

क. सृष्टि काल में प्रकृति में पारिणाम-सामर्थ्य का

ख. काल में कलन-सामर्त्य मा एवं

ग. आत्मा में भोग-सामर्थ्य का सञ्चार करती है

घ. संहार-काल में सारे सामर्थ्यों को अपने में विलीन कर लेती है।

= **'शुद्ध सृष्टि'** गुणोन्मेषदशा

(**'शुद्ध सृष्टि'** का नामान्तर है गुणोन्मेषावस्था)

↓

1. भगवान के अप्रकृतिक दिव्य गुणों का आविर्भाव।
2. **(गुणोन्मेष होने पर)** प्राकृतिक गुणों से वर्जित रहने पर भी अर्थात् निर्गुणावस्था में भी नित्य सगुण रहते हैं। 'षाड्गुण्य' (6 गुणों की समष्टि) परमात्मा में सदैव विद्यमान रहती है। इसीलिए उन्हें वैष्णवागम में 'षाड्गुय विग्रह' कहा जाता है।

ज्ञान-गुण

1. यह भगवान का स्वरूप एवं धर्म दोनों है।
2. अन्य गुण धर्म तो हैं किन्तु भगवान के स्वरूप नहीं हैं।

इच्छाशक्ति ही **'ऐश्वर्य'** है (अबाधित इच्छा-इच्छाशक्ति) जगत का प्रकृति भाव या उपादान -**'शक्ति'** है श्रमाभाव ही है **'बल'** है। विकार राहित्य ही है-**'वीर्य'**।

विकारी-अविकारी

क. दूध दधि बनने पर विकारग्रस्त हो जाता है।

ख. प्रकृति परिणाम उत्पन्न करके विकार ग्रस्त हो जाती है किन्तु परमात्मा जगत को उत्पन्न करने पर भी विकार ग्रस्त नहीं होता।

---

(1) अहि. सं. (2) कश्मीर आगम एवं त्रिपुरा-साहित्य में तीन प्रकार की सृष्टि मानी गई है।

(39) *भगवती का मंत्रमय या मंत्रात्मक स्वरूप–

भगवती स्वयं कहती हैं–

(1) मंत्राणां जननी ज्ञेया मुक्ति मुक्ति प्रदायिनी।

(2) मंत्ररूपमिदं शक्रविद्धि मद्रूप वेदिनाम्।। (ल.तं. 18/37,43)

(3) यं विज्ञायार्चयेयं ते दिव्या मंत्रमयीं तनुम्। (18/2)

'शान्ता' 'पश्यन्ती' और 'मध्यमा' में स्थित शब्दवृत्ति मंत्र ही है क्योंकि वहां शब्दार्थ 'नाद' रूप में स्थित है और 'मंत्र' चिदात्मक नाद की किरणें ही तो हैं–

'मन्त्राश्चिन्मरीचयः।।'

भगवती कहती हैं–

'प्रकाशानन्दसाराहं सर्वमंत्रप्रसूः परा' 'शान्ता' आत्मा की प्रथम शक्ति है। प्रथमोन्मेष को 'नाद' कहते हैं। 'नाद' शिव-शक्ति के पारस्परिक सम्बंध की आख्या है। अर्थात् 'नाद' शिव-शक्ति का स्वस्वरूप है क्योंकि शक्ति की प्रथम सन्तान 'नाद' ही है–

'आसीच्छक्तिस्ततो नादः' फिर–'नादाद्बिन्दु समुद्भवः।।'

शक्ति→ नाद→ बिन्दु→ बिन्दु विस्फोट→ शब्द ब्रह्म→ परा→ पश्यन्ती→ मध्यमा→ वैखरी।।

1. 'नाद' = 'नादेन सह शक्तिःसा सूक्ष्मेति परिगीयते।।' (नाद) = 'नादात् परो य उन्मेषो' (द्वितीयः शक्ति संभवः)। (बिन्दु)

2. 'पश्यन्ती'- 'पश्यन्ती नाम सावस्था मम दिव्या महोदय।' (पश्यन्ती)

3. 'ततः परो च उन्मेषस्तृतीयः शक्तिसंभवः।' (18/25)

4. 'मध्यमा सा दशा तत्र संस्कारयति सङ्गतिम्।' (18/26) 'वाच्यवाचक भेदस्तु तदा संस्कारतामयः।' (ल.तं. 18/26)

5. 'वैखरी' - 'चतुर्थस्तुय उन्मेषः शक्तेमध्यिमिकात् परः।' 'वैखरी' नाम सावस्था वर्ण वाक्य स्फुटोदया (ल.तं. 18/27) भगवती की क्रिया शक्ति और वर्णमाला का मूलरूप नाद्यामंत्र भगवती कहती हैं कि मेरे बोधरूप का अनुगमन करने वाली मेरी जो 'क्रियात्मिका शक्ति' है वह नादादि शक्ति की उन्मेष-परम्परा को अनुप्राणित करती है–'सा प्राणयति नादादिं

शक्त्युन्मेष परम्पराम्।' सारांश यह है कि 'मंत्र' या उनका मूल रूप 'नाद' या नाद के रूप —'परा', 'पश्यन्ती', 'मध्यमा' और 'वैखरी'—
सभी शक्ति का रूप होने के कारण शक्तिस्वरूप हैं।
भगवती लक्ष्मी कहती है—

1) 'मंत्राणां जननी ज्ञेया—मैं मंत्रों की माता हूं।'
2) उद्यन्ति मंत्रकल्लोला मत्त एव चिदम्बुधेः।। (18/37) अर्थात् मेरे ज्ञान के रत्नाकर से ही मंत्ररूपी तरंगे उठती हैं।
3) 'ममाश्रित्य विवर्तन्ते यान्ति चास्तं मुहुर्मयि। (18/38) अर्थात् मेरा आश्रय ग्रहण करके ये मंत्र विवर्तमान रहते हैं और अन्त में मुझ (लक्ष्मी) में विलीन हो जाते है।। ज्ञानमय आनन्द के पुञ्ज इनके शब्दमय शरीर अत्यन्त मनोज्ञ हैं—
4) 'संविदानन्दसन्दोहसुन्दराः शब्ददेहकाः'
5) सामर्थ्यपूर्णाः फलदा मंत्रात्मानो हि मन्मयाः' (मंत्र) वर्णाः पदानि वाक्यानि सहप्रकारणाह्निकैः।। (18/39) अर्थात् दैनिक कृत्यों में प्रयुक्त वर्ण, पद एवं वाक्यरूपी मंत्र पूर्ण समर्थ एवं फलदायक हैं और मुझ लक्ष्मी के ही रूप हैं।

(40) *** मंत्र का स्वरूप—**

शब्दों से समुत्पन्न क्रमों के द्वारा जिन शब्दों से 'अहन्ता' का विकास होता है उन्हें ही 'मंत्र' कहा जाता है—

'स मंत्रः संस्मृतोऽहन्ता विकासः शब्दजैः क्रमैः।।

'पूर्णाहन्ता का उदय' होने पर शुद्ध आत्मा का ज्ञान होता है।

* जो शब्द राशि 'अहन्ता' का विकास करे वही है- मंत्र।
* जो पूर्णाहन्ता है उसी से शुद्ध आत्मा का ज्ञान होता है-

'पूर्णाहन्ता समुदभूतैः शुद्धबोधान्वयो यतः।। (18/45)
'मंत्र' रक्षा करते हैं—'मननात् त्रायते'
भगवती कहती हैं कि योग के द्वारा ध्वनि की स्वीकृति रक्षक

के रूप में की गई है। गुप्ताशय वाले मंत्र मंत्रज्ञ की रक्षा करते हैं—'गुप्ताशयः सदा यश्च मंत्रज्ञं त्रायते भयात्।। (18/44)
भगवती का स्वस्वरूप और 'मंत्र'—भगवती कहती हैं—
'सर्वे मंत्रा मदीयास्युः प्रभवाप्ययवेदिनाम्' (18/46)
अर्थात् उत्पत्ति एवं संहार से ज्ञात सभी मंत्र मेरे स्वरूप है।।
भगवती कहती हैं कि—

1. **प्रधानतः सभी मंत्र मेरी प्रकृति का निरुपण करने वाले हैं।** ये स्वारस्यं से भवत और भावात्मक ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। ॐ ह्रीं आदि सभी मंत्र स्वरसानुकूल भाव या भवदुत्तर प्रभाव प्राप्त करते हैं।
2. **तारक मंत्र ॐ प्रसाद मंत्र सौः आदि मंत्र धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चतुर्वर्गप्रद हैं** या भावोत्तरा के समान इनका जप तथा भजन करने से भवत में स्थिति होती है।
3. **तारकादि मंत्र भोगापवर्गात्मक है। एक से भाव में प्रवेश करते हैं और दूसरे से भवत में जाते हैं—**

'भोगावर्गदा मंत्रा ज्ञेयास्ते तारिकादयः।

ये 'भोग' और 'मोक्ष' दोनों प्रदान करते हैं—

क. **भुक्तिदा मुक्तिदाश्चैव द्वितये ते व्यवस्थया'** (18/51)
ख. **'तेऽपवर्गप्रदा ज्ञेयाः'** (18/49)
ग. **भोगापवर्गदा मंत्रा ज्ञेयास्ते तारिकादयः।।** (18/50)

सभी मंत्र स्वरस के अनुसार भाव या भवदुत्तर भाव प्राप्त करते हैं-'विशन्ति भावभेवैके यान्त्येके भवदेव च।। (18/50)

(41) *भगवती लक्ष्मी का वर्णात्मक स्वरूप

'लक्ष्मी तंत्र' (अ.19) में भगवती के वर्णात्मक स्वरूप की विवेचना की गई है।
'अ' से 'अं' तक के 15 वर्ण भगवती की 15 अस्थायें माने गये हैं-
'देश पञ्च च तुल्या मे दशास्त्रिदशनन्दन। (19/2)

भगवती का स्वरूप है- अनुत्तर एवं स्वसंवेद्य-
'अनुत्तरं स्वसंवेद्यं चिद्रूपं मम् शाश्वतम्।। (19/2)
'अः' की गणना 15 दशाओं में नहीं की जाती।
'अ' से सारे वर्ण उत्पन्न होते हैं। 'अ' (प्रथम स्वर) समस्त वर्णमाला की आत्मा है ।
'वाक्तत्त्वं तदकारात्मा सर्ववाङ्मय संभवः।। (19/3)
'अ' का आनन्द रूपः द्वितीय स्वर 'आ'

1. उसकी इच्छा से तृतीय स्वर -'इ'
2. ईशान आत्मा से चतुर्थ स्वर 'ई'
3. पञ्चम स्वर - '3' का उन्मेष
4. षष्ठ स्वर 'ऊ' ऊर्जता रूप है।
5. 16 स्वरों के मध्यवर्ती 4 स्वर-'ऋ' 'ॠ' 'लृ' 'ॡ' है। ये इच्छा की विक्रियायें-'4 स्वर' हैं।
6. 'अनुत्तर इच्छा के संयोग से- 11वां स्वर 'ए' का जन्म।
7. उसी के आनन्द के संयोग से-जगद्योनिरूप - 'ऐ' का जन्म।
8. अनुत्तर उन्मेष के योग से-13वां स्वर-'ओ' का जन्म।
9. अनुत्तर के श्लेष से-14वें स्वर 'सद्योजात' 'औ' का जन्म।
10. उसके अनुत्तर रूप से वेद्य संश्रय 'अं' का विकास होता है। आनन्दादि 13 अवस्थाओं के अनुसार सबका उन्मेष होता है। आनन्द आदि 13 अवस्थाओं के अनुसार सबका उन्मेष होता है। उसके उन्मेष 13 होते हैं।
11. 15 स्वर उसकी 15 अनुत्तरी सूक्ष्म दशायें हैं।
    विसृष्टि के उद्यम से स्फुरित ये 15 अवस्थायें हैं।
    देवी सृष्टिमयी शक्ति की इच्छा से जो-जो उद्यम करती है उसके 15 अङ्ग ये 15 स्वर हैं
12. 'क' से 'म' तक ये 25 व्यंजनों से लक्ष्मी जी ने 'पुरुष' से 'पृथ्वी' तक के 25 तत्वों को निर्मित किया।

25 व्यंजन		25 तत्त्व
1. क, ख, ग, घ, ङ। 2. च, छ, ज, झ, ञ। 3. ट, ठ, ड, ढ, ण। 4. त, थ, द, ध, न। 5. प, फ, ब, भ, म।	→→	क्षिति, जल, पावक, गगन समीर, रुप, रस, गन्ध, हाथ, पांव, गुदा, लिङ्ग जिह्वा, नाक, कान, आंख, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, प्रकृति और पुरुष।

13. **य, र, ल एवं व**—चार वर्ण अपने मध्य में पुरुष को धारण करते हैं। इसीलिए इन्हें **'अन्तःस्थ'** या **'धारण'** कहा गया है। **अक्षर–'य'**= यह वायु तत्त्व का प्रतिनिधि और काल की क्रिया है। **अक्षर–'र'** = यह ज्ञान विद्या स्वरूप है और यह अग्न्यात्मक है। **अक्षर–'ल'** = यह स्तंभन, माया, मोह के स्वरूप वाला है और पृथ्वी का बीज है। **अक्षर 'व'**= यह आत्मा को प्रसन्न करने वाला, राग एवं शक्ति का विकार एवं जल तत्त्व का बीज है।

ये चारों अक्षर—'य' 'र' 'ल' 'व'—मनुष्यों को पर एवं अपर दशा में सदैव धारण किए रहते हैं।

(42) *श ष स ह एवं क्ष : पञ्चब्रह्म

1. **'धारणा'** = य, र, ल, व।।
2. **विशुद्ध पञ्च ब्रह्म** = श, ष, स, ह, क्ष।

'चतस्त्रो 'धारणा' ज्ञेयास्ता एतास्तत्व कोविदैः'।
शादि क्षान्तं तु विज्ञेयं विशुद्ध ब्रह्म पञ्चकम्।। (1)

भगवती कहती हैं कि—सृष्टि के आरंभ में मेरा अद्भुत स्वरूप क्षुब्ध होता है अतः उससे इनका प्रादुर्भाव होता है और इन्हीं के द्वारा

(1) ल.तं. (19/16)

सृष्टि होती है: *क्षोभिका नामक शक्ति और वर्ण 'क्ष'—

'क्ष'—भगवती को क्षुब्ध करने वाली शक्ति की आख्या है—'क्षोभिका महाशक्ति'। वही क्षोभिका शक्ति अक्षर 'क्ष' के रूप में सर्जनात्मक महाशक्ति है। भगवती की शक्तियों से तत्त्वों का आविर्भाव हुआ।

तत्त्व	भगवती की शक्तियां
पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश	बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज

क्षोभिका सा महाशक्तिः क्षात्मा सत्या पराह्वया।
पृथिव्याद्या वियत्प्रान्ताः या दिव्याः पञ्च शक्तयः।। [2]

(43) *भगवती का सोमात्मक स्वरूप

15 स्वर वर्ण + 16 कलायें (विसर्गात्मक विकास शक्ति)

विसर्गो नाम यः प्रोक्तः पुरा पञ्चदशाङ्गवान्।
साहं सोममयी शक्तिः किरणायुत संकुला।। (19/20)

भगवती का बिन्द्वात्मक स्वरूप [3]

(1) **'बिन्दु'** भगवती का **'संकोच'** है (2) **'विसर्ग'**-भगवती का **'विकास'** रूप है।

* **'बिन्दु'** और **'विसर्ग'**—भगवती का संकोच और विकास

(2) ल.तं. (19/18) (3) ल.तं (19/21)

है। 15 स्वर ही भगवती के अंग हैं उनमें अन्तिम अंग बिन्दु है शेष 15 स्वर–भगवती के अंग हैं।

* **'बिन्दु'** सूर्यस्वरूप है। 'विसर्ग' चन्द्रस्वरूप है।

'सूर्याचन्द्रमसावेतौ बिन्दुसर्गौ पुरन्दर।।

* **'बिन्दु'**– 'अं' एवं 'विसर्ग' 'अः' को छोड़कर 14 स्वर शेष रह जाते हैं उनमें से दो-दो को मिलाकर 7 युग्मों का स्वरूप निर्मित होता है।

(44) ***सूर्यस्वरूपा शोषिका शक्तियाँ**–उक्त सात युग्मों के 14 स्वरों में

***प्रथम सात स्वर** –अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ -सूर्य रूपा शोषिका शक्तियाँ हैं। ये भगवती के ही अंश से 'भोक्त्रा' नाम वाली हैं। * (शोषिका शक्तियाँ) *

***शेष सात स्वर**–ॠ, ऌ, ॡ, ए ऐ ओ औ–**शीतल एवं** आह्लादिका शक्तियां हैं। भगवती के अंशरूप से इनका भोक्तृत्व चन्द्ररूप **'पोषक'** है। चन्द्र रूप में ये **पोषिका शक्तियां** हैं।* (पोषिका शक्तियां)*

*चन्द्रमा की 7 किरणें

↓

द्रवता	शीतलता	शान्ति	कान्ति	प्रसन्नता	रसता	आनन्द

अग्निषोमात्मक कान्तिशालिनी किरणों से युक्त **'पुरुषांश'** बिन्दु का अंग है। **'सोमरूप शक्ति'** करोड़ों मण्डलों से युक्त है और महासृष्टि को आनन्द देती हैं तथा **अन्तिम सात स्वरों- 'ॠ, ऌ, ल, ए, ऐ, ओ' और औ के रूप में प्रवर्तमान** रहती हैं। इनके प्रवर्तमान होने से 'पञ्च ब्रह्म' आविर्भूत होते हैं। **'क्ष ह स ष श' की शक्ति के उन्मेष** की विशेषता से इन **सुरेशों** का **प्रादुर्भाव** होता है।

1. **'क्ष'** अक्षर में **महाक्षोभ** होने से सत्यस्वरूप आदि **ब्रह्म** होते हैं।

2. 'ह' अक्षर से 'वासुदेव'
3. 'स' अक्षर से सङ्कर्षण'
4. 'ष' अक्षर से 'प्रद्युम्न'
5. 'श' अक्षर से 'अनिरुद्ध' का प्रादुर्भाव होता है।
6. क्ष, ह, स, ष, श रूपिणी शक्तियों से—सत्य, ब्रह्म, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामक 5 ब्रह्म का आविर्भाव होता है।
7. ये पांचों अक्षर —'ह' 'क्ष' 'स' 'ष' 'श' पञ्च ब्रह्मात्मिका पराशक्तियां हैं।
8. 'व' 'ल' 'र' 'य'—चार अक्षरों से चार धारणा बन जाती हैं। इसे ही 'तुरीया' 'स्वप्न' 'सुषुप्ति' और 'जाग्रत' अवस्था कहा गया है।
9. 'म' से लेकर 'क' पर्यन्त 24 अक्षरों से प्रकृति से लेकर पृथ्वी तक के 24 तत्वों का आविर्भाव होता है। ये **'पुरुषांश'** धारण करते हैं। इसे प्राकृती **'ब्रह्मदशा'** कहा जाता है। उनके मध्य में 'म' अक्षर चारों धारणाओं से युक्त होता और इसे पुरुषोत्तम की जाग्रत अवस्था कहा जाता है।
10. भगवती लक्ष्मी से ही **'धारण शक्ति'** का प्रादुर्भाव होता है।
11. भगवती कहती हैं कि -पूर्वोक्त प्रकार का मदीय ज्ञान प्राप्त कर लेने वालों को सुखोपभोग प्राप्त होता है क्योंकि -पुरुषों को भोग उपलब्ध कराने के लिए मैं इस रुप में रहती हूं- **'भोगानां प्रसवर्थाय पुरुषस्यास्य वासव।।**

* समतुल्य दृष्टि –

(सांख्य दर्शन की दृष्टि)—यही दृष्टि सांख्य दर्शन की भी है क्योंकि सांख्य यह मानता है कि प्रकृति के उद्देश्य दो हैं।
(1) **'पुरुष'** को भोग प्रदान करना
(2) **'पुरुष'** को अपवर्ग प्रदान करना।
ये ही उद्देश्य लक्ष्मीतंत्रोक्त वैष्णवागम के भी है।

'अपवर्ग' कौन प्राप्त करता है? जिसे भगवती के परमार्थिक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है-

मत्तो जज्ञे म इत्येवं योग्यो भोगापर्वगयोः। (19/38)

(45) *भगवती का अचैतन्यात्मक स्वरूप

भगवती अपनी इच्छा से अपना परम सूक्ष्म गुण समत्व (साम्य) एवं अव्यक्त स्वरूप का त्याग करके अचैतन्य योनिस्वभाव -सञ्जात् स्वरूप धारण कर लेती हैं। (1)

*भगवती का वर्णात्मक स्वरूप–

भगवती लक्ष्मी ज्ञानियों को भोगादिक प्राप्त कराने हेतु **'ब' से 'क' पर्यन्त 23 वर्णों का स्वरूप धारण कर लेती है।**(2)

1. **'ब' से 'क'** तक 23 अक्षरों में भगवती (शक्ति/लक्ष्मी) का स्वरूप व्यक्त होता है। उनके इस व्यक्त स्वरूप में **'बुद्धि' 'अहङ्कार' 'मन' पांच तन्मात्रायें, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां एवं पांच महाभूत अन्तर्निविष्ट हैं।**
2. **'ब' 'फ' एवं 'प' से बुद्धि**—अहंकार एवं मन होते हैं। **'न ध द थ त' से**—कान, आंख, नाक, जीभ, एवं त्वक् होते हैं।
3. **ण, ढ, ड, ठ, ट से**—जिह्वा, हाथ, पांव गुदा और लिङ्ग होते हैं।
4. **ञ, झ, ज, ह एवं च से**—पांच तन्मात्राओं का प्रादुर्भाव होता है।
5. **ङ, घ, ग ख क से**—आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी का प्रादुर्भाव होता है। (1)

* बोध *

शब्दों से बोध का उदय होता है। शब्दों से अर्थ निष्पन्न होता है। **बोध भगवती का स्वरूप है।** भगवती सभी में इसी रूप में निवास किया करती हैं–

'बोधः शब्दात्मनोदेति शब्दस्त्वर्थात्मना ततः।
विद्धि बोधं तु मद्रूपं सर्वेयं मत्तविस्ततः।। (2)

---

(1) ल.तं. (19/40) (2) ल.तं (19/41)

(1) ल.तं. (19/41-44) (2) ल.तं (19/45)

प्रश्न- क्या 'शक्ति' का कोई स्वतंत्रस्वरूप नहीं है? क्या वे विष्णु की शक्ति मात्र के रूप में स्थित हैं?

(46) * शक्ति का स्वतंत्र स्वरूप –

'शक्ति' और **'शक्तिमान'** में अभेद होते हुए भी शैवशाक्त तंत्रों की भांति **वैष्णवागम का 'शक्तितत्व'** शक्तिमान के स्वरूप में ही लयीभूत होकर अपना स्वस्वरूप या **स्वतंत्र अस्तित्व** (या अपनी स्वतंत्र पहचान) **खो नहीं देता** क्योंकि यह भी कहा गया है कि 'वह शक्ति' सर्वशक्तिमान परमेष्ठी से भिन्न हैं क्योंकि यह 'पर ब्रह्म और यह शक्ति' **'धर्म धर्मी स्वभाव'** के कहे गए हैं–

'देवाच्छक्तिमतो भिन्ना ब्रह्मणाः परमेष्ठिनः।
ऐष चैषा च शास्त्रेषु धर्म धर्मिस्वभावतः। [3]

उन दोनों पें एक भाव (पदार्थ) है तो दूसरा उसमें रहने वाली शक्ति है इस प्रकार दोनों मिलकर एक तत्व के प्रतिपादक हैं। (अहि.सं. 3/26-27)

(47) * निर्गुण-सगुण उभयस्वरूपा भगवती लक्ष्मी–

1. लक्ष्मी एक है किन्तु उसके स्वभाव अनेक हैं।
2. लक्ष्मी साकार है किन्तु वह निराकार भी है। [1]
3. उसके मुख एवं पाद तथा हाथ अगणित हैं–

---

(3) अहि.सं. (3/25)

(1) भगवती कहती हैं कि मैं स्वेच्छा से गुणों में अधिष्ठित होकर सृष्टि-स्थिति संहार करती हूं किन्तु मैं निर्गुण हूं। मैं गुणातीत होने पर भी स्वेछा से गुणों में अधिष्ठित होकर सृष्टि-स्थिति-संहार का जागतिक चक्र प्रवर्तित किया करती हूं।
अधिष्ठाय गुणान् सृष्टि स्थित संहृति कारिणी।
निर्गुणापि गुणा नेतानधिष्ठायात्म वाञ्छया।
चक्रं प्रवर्तयाम्येका सृष्टि स्थित्यनारूपकम्।। (ल.तं. 3/9)

'एकानेकस्वभावा सा साकारा च निराकृतिः।
अनन्तवक्त्रानन्तानन्तपदा तथानन्तकरा परा।। (ल.तं.44/46)

*** आधाराधेय स्वरूपा, सर्वत्रावस्थिता भगवती लक्ष्मी ***

*भगवती संसार की प्रत्येक वस्तु का आधार भी हैं और वे आधेय भी हैं। *

'लक्ष्मी तंत्र' (44/47) में कहा गया है कि—

'आधाराधेयभावेन सर्वत्रावस्थिता सदा।।' (44/47)

*** वर्णमाला में स्थित चतुर्दश स्वरूपा भगवती लक्ष्मी**

भगवती, वर्णमाला में स्थित 14 स्वरों के स्वरूप वाली है—
'स्वरद्विसप्तकं देव्याः किरणत्वेन संस्थितम्।। (44/50)

*** भगवती का चातुरात्म्य स्वरूप—**

'लक्ष्मी तंत्र' (45/13) में कहा गया है कि मैं निष्कलस्वरूप का त्याग करके 'चातुरात्म्य स्वरूप' ग्रहण कर लिया है—
'तदीयं निष्फलं रूपं मदीयं च विहाय वै।
कोऽस्मिंस्तात्त्वोदधौ चास्मि चतुर्धा सुरसत्तम।। (45/13)

*** भगवती का नादस्वरूप—**

भगवती नादस्वरूपा है। यह कहा गया है कि भगवती तेल की अटूट धार के समान निरन्तर नाद करती रहती हैं।
'जनयन्ती परं नादं तैल धारावदच्युतम्।। (51/37)

(48) *भगवती का शक्तिस्वरूप

जो विश्व की अनन्त शक्तियों का केन्द्र है तथा सत्-असत् रूप निखिल विश्व में जो भी वस्तुएं हैं उन सभी में जो शक्ति रूप से निहित है उनका मूल स्त्रोत ही 'परा शक्ति' है। 'शक्ति' जगत की प्रत्येक वस्तु की सामर्थ्य है—
'यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सात्वं किं स्तूयसे तदा।।

(1) *भगवती श्रेय का मूल एवं परमा गति हैं—(ल.तं.) में कहा गया है कि —

'एषा हि श्रेयसो मूलमेषा हि परमा गतिः।।

(2) *भगवती लक्ष्मी श्रुतियों की अभिसन्धि, जगत का प्राण एवं जगत की क्रिया हैं *

वैष्णवागम मानता है कि भगवती लक्ष्मी ही वेदों का लक्ष्य, जगत का प्राण एवं जगत की क्रिया है—

श्रुतीनाममिसन्धिश्च सैव देवी सनातनी।
एषैव जगतां प्राणा एषैव जगतां क्रिया।

(3) *भगवती लक्ष्मी ही जगत की इच्छा, ज्ञान, क्रिया है*

ल.तं. में कहा गया है कि भगवान की जो शक्तियां ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि कहा गया है वह यही भगवती लक्ष्मी ही तो हैं—

1. एषैव जगतां प्राणा एषैव जगतां क्रिया।
2. एषैव जगतामिच्छा ज्ञानमेषा परावरा।। (1/39)

(4) *भगवती लक्ष्मी ही सृष्टि-कर्त्री, पालिका एवं संहर्त्री हैं*

वैष्णवागम में कहा गया है-

'एषैव सृजते का सृजते काले सैषा पाति जगत् त्रयम्।।
जगत्संहरते चान्ते तत्त्कारण संस्थिता। (1/40)

(5) *भगवती ही परमोपास्या हैं *

'मातरं जगतामेना मनाराध्य महत् कुतः?

(अतः जगज्जननी लक्ष्मी की आराधना से बढ़कर और क्या हो सकता है?)

(6) *भगवती लक्ष्मी विष्णु का वैकुण्ठ धाम और सांख्यो की परमानिष्ठा है *

'एतत्तु वैष्णवधाम यतो नावर्ततेयतिः।
एषा सा परमा निष्ठा सांख्यानां विदितात्मनाम्।(ल.तं. 1/41)

(50) *'शक्ति' और 'शक्तिमान'—एक तुलनात्मक विवेचना

(क) भगवान विष्णु	(ख) भगवती लक्ष्मी
1. भगवान विष्णु भी वैसे ही हैं यथा लक्ष्मी और दोनों सर्वगत हैं—'**यथा सर्वगतो विष्णु स्तथैवेयं द्विजोत्तम।।**	भगवती लक्ष्मी जगन्माता और अनपायिनी नित्यशक्ति हैं—'**नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।।' (वि.पु.)**
2. विष्णु अर्थ हैं।	लक्ष्मी वाणी हैं।
3. विष्णु नियम हैं	लक्ष्मी नीति हैं।
4. विष्णु बोध हैं	लक्ष्मी बुद्धि हैं।
5. विष्णु धर्म हैं।	लक्ष्मी सत्क्रिया हैं।
6. विष्णु स्रष्टा हैं।	लक्ष्मी सृष्टि हैं।
7. विष्णु भूधर हैं।	लक्ष्मी भूमि हैं।
8. विष्णु संतोष हैं।	लक्ष्मी नित्यतुष्टि हैं।
9. विष्णु काम हैं।	लक्ष्मी इच्छा हैं।
10. विष्णु यज्ञ हैं।	लक्ष्मी दक्षिणा हैं।
11. विष्णु पुरोडाश हैं।	लक्ष्मी धृताहुति हैं।
12. विष्णु यजमानगृह हैं।	लक्ष्मी पत्नीशाला हैं।
13. विष्णु यूप हैं।	भगवती लक्ष्मी चिति हैं
14. विष्णु कुशा हैं।	भगवती लक्ष्मी इध्मा हैं।
15. विष्णु सामस्वरूप हैं।	भगवती लक्ष्मी उद्गीति हैं।
16. विष्णु हुताशन हैं।	भगवती लक्ष्मी स्वाहा हैं।
17. विष्णु शंकर हैं।	भगवती लक्ष्मी गौरी हैं।
18. विष्णु सूर्य हैं।	भगवती लक्ष्मी सूर्यप्रभा हैं।
19. विष्णु पितृगण हैं।	भगवती लक्ष्मी स्वधा हैं।
20. विष्णु सर्वात्मक अवकाश हैं।	भगवती लक्ष्मी स्वर्गलोक हैं।

(क) भगवान विष्णु	(ख) भगवती लक्ष्मी
21. विष्णु चन्द्रमा हैं।	भगवती लक्ष्मी अक्षय कान्ति हैं।
22. विष्णु वायु हैं।	भगवती लक्ष्मी जगच्चेष्टा हैं।
23. विष्णु समुद्र हैं।	भगवती लक्ष्मी सामुद्र तरङ्ग हैं।
24. विष्णु इन्द्र हैं।	भगवती लक्ष्मी इन्द्राणी हैं।
25. विष्णु यम हैं।	भगवती लक्ष्मी यम पत्नी धूमोर्णी हैं।
26. विष्णु कुबेर हैं।	भगवती लक्ष्मी ऋति हैं।
27. विष्णु वरुण हैं।	भगवती लक्ष्मी गौरी हैं।
28. विष्णु कार्तिकेय हैं।	भगवती लक्ष्मी देवसेना हैं।
29. विष्णु आश्रय हैं।	भगवती लक्ष्मी शक्ति हैं।
30. विष्णु निमेष हैं।	भगवती लक्ष्मी काष्ठा हैं।
भगवान विष्णु मुहूर्त हैं।	भगवती लक्ष्मी कला हैं।
भगवान विष्णु दीपक हैं।	भगवती लक्ष्मी ज्योति हैं।
भगवान विष्णु वृक्ष हैं।	भगवती लक्ष्मी लता हैं।
भगवान विष्णु दिन हैं।	भगवती लक्ष्मी रात्रि हैं।
भगवान विष्णु वर हैं।	भगवती लक्ष्मी वधू हैं।
भगवान विष्णु नद हैं।	भगवती लक्ष्मी नदी हैं।
भगवान विष्णु ध्वजा हैं।	भगवती लक्ष्मी पताका हैं।
भगवान विष्णु लोभ हैं।	भगवती लक्ष्मी तृष्णा हैं।
भगवान विष्णु राग हैं।	भगवती लक्ष्मी रति हैं।
भगवान विष्णु पुरुष वाची हैं।	भगवती लक्ष्मी स्त्रीवाची हैं। —विष्णु पुराण (अ.8/अंश 1) —(17-35)

(क) भगवान विष्णु	(ख) भगवती लक्ष्मी
देवदेवो हरिः पिता पारं परं विष्णुरपार पारः, परः परेभ्यः परमार्थ रूपी। स ब्रह्म पारः परमारभूतः, परः पराणामपि पारपारः।। सः कारणं कारण तस्ततोऽपि तस्यापि हेतुः परहेतु हेतुः कार्येषु चैवं सह कर्म कर्तृ रूपैरशेषैरवतीह सर्वम् ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म सः सर्वभूतो ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ ब्रह्माव्ययं नित्यमजं सः विष्णु रपक्षयाद्यैरखिलं लैरसङ्गि। ब्रह्म क्षरभजं नित्यं यथाऽसौ पुरुषोत्तमः -भविष्य पुराण (अ.18)	'त्वं माता सर्वलोकानां' त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोक पावनी। सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती।। **लक्ष्मी का जन्म** 1. प्रथम जन्म -भृगु-ख्याति से 2. द्वितीय जन्म -समुद्र से 3. श्री राम के साथ -सीता। 4. श्री कृष्ण के साथ—रुक्मिणी। .... **भगवान विष्णु की शक्तियों में श्रेष्ठता का क्रम—** 1. ब्रह्म- विष्णु- शिव (ब्रह्म की प्रधान शक्तियां हैं।) ब्रह्मविष्णु शिवा ब्रह्मन् प्रधाना ब्रह्म शक्तयः।। (22/58) 2. (फिर) उनसे न्यून शक्तियां देवगण 3. उनसे भी न्यून शक्तियां- दक्ष आदि प्रजापति। 4. उनसे भी न्यून शक्तियां- मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप 5. उनसे भी न्यून शक्तियां- वृक्ष, गुल्म, लता आदि।।

●●●

जीव तत्त्व
वैष्णव तन्त्र के प्रथमोपदेष्टा भगवान
विष्णु एवं ब्रह्मा

तृतीय अध्याय

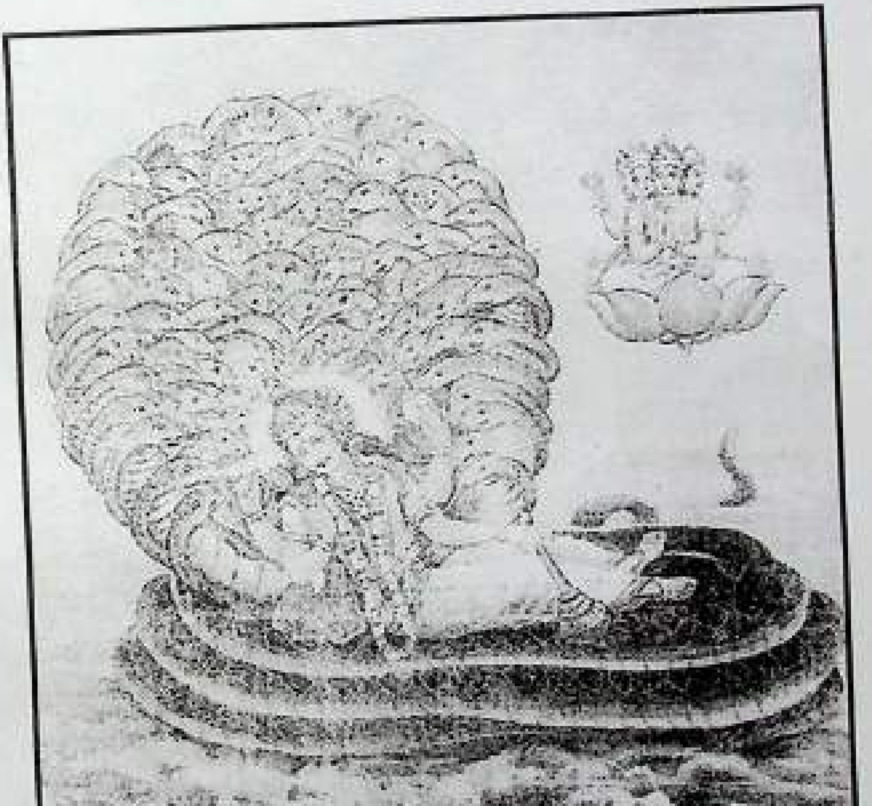

भगवान विष्णु और ब्रह्माजी

तृतीय अध्याय
* जीव तत्त्व *

*जीव और शक्तिपात—

मया जीवाः समीक्ष्यन्ते श्रिया दुःखविवर्जिताः।
सोऽनुग्रह इति प्रोक्तः शक्तिपाता परा ह्ययः।।
कर्मसाम्यं भजन्त्येते प्रेक्ष्यमाण मया तदा।
अपश्चिमा तनुः सा स्याज्जीवानां प्रेक्षिता मया।
केवलं स्वेच्छयैवाहं प्रेक्षे कञ्चित् कदां प्यहम्।
ततः प्रभृति स स्वच्छस्वच्छान्तःकरणः पुमान्।।

—लक्ष्मी तंत्र (13/8,9,11)

* जीव लक्ष्मी का आत्म संकोचात्मक स्वरूप है—

'तदयं मम सङ्कोचः प्रमाता शुद्ध चिन्मयः।। (ल.तं.7/18)
पुंशक्तिः काल मथ्यन्या पुमान् सोऽयमुदीरितः।
कालशक्ति विकारस्थः सोऽयं संसरति ध्रुवम्।।

(अहि.स. 14/10)

अप्राकृताश्च ते देहा उभयेषां प्रकीर्तिताः।
अन्ये पञ्चसु कोशेषु देवाद्याः स्थावरान्तिमाः।
नानास्थानजुषो जीवाः कर्मभिः संसरन्ति ये।
अधिकारक्षयं नीत्वा शुभपाकं वशादिमे।।

(ल.तं.6/29,30)

निर्लिप्तः साक्षिरूपश्च स च कर्मसु कर्मिणाम्।
जीवस्तत्प्रतिबिम्बश्च भोक्ता च सुखदुःखयोः।
तस्मान्नित्यं परं ब्रह्म स जीवो नित्य एव सः
सर्वान्तरात्मा भगवान् प्रत्यक्षं प्रति जीविषु।।

(ना.पं.2/1/34)

'अहिर्बुध्न्य संहिता' (6/37) में कहा गया है कि—आत्मा के ('भूति' की दृष्टि से होने वाले भेदों की दृष्टि से) ब्राह्मण 'क्षत्रिय' वैश्य एवं शूद्र चार भेद हैं। इस प्रकार की आत्माओं की संज्ञा **'जीव'** है। ये जीव ही बन्धन और मोक्ष प्राप्त करते हैं। **'आत्मानो जीव संज्ञास्ते बंधमोक्षौ व्रजन्ति ते।।'**

चेतना का संकुचित रूप ही चित्त एवं अन्तःकरण है। इसमें मन, बुद्धि एवं अहंकार तीनों स्थित रहते हैं। (ल.तं. 7/30)

नानाविधानि सर्वाणि जीवरूपाणि सर्वतः।
मध्यमानि च क्षुद्राणि महान्ति चापि सर्वतः।।
पृथक पृथक च प्रत्येकं प्रत्यक्षं सर्वजीविषु।
सन्ततं सन्ति ये देवाः सन्तो जानन्तिनिश्चितम्।।

—नारद पञ्चरात्र-2/1/25-26)

(1) * जीव तत्व *

'जीव' किसे कहते हैं? 'जीव तत्वतः तो शुद्ध आत्मा है किन्तु निग्रह शक्ति के कारण 17 या 18 अवयवों से युक्त **'पुर्यष्टक'** (जीव) बन जाता है। **जीवत्व** आत्मा की नश्वर उपाधि है। सोपाधिक आत्मा ही **'जीव'** है।

वैष्णवागम की दृष्टि—
प्र. 'जीव' बन्धनग्रस्त कैसे होता है?

जीव की बन्धनग्रस्तता का कारण 'आकार'-'ऐश्वर्य'-'विज्ञान' का तिरोभावन

(1) जीव के आकार का तिरोधान
↓
अणुत्व प्राप्ति

(2) जीव के ऐश्वर्य का तिरोधान
↓
आकिंचित्करता की प्राप्ति

(3) जीव के ज्ञान का तिरोधान
↓
ज्ञान का संकुचन अज्ञताविर्भाव

'आकारस्य तिरोधानादणुत्वं पुस इष्यते।
ऐश्वर्यस्य तिरोभावादकिं चित्करता स्मृता।।

पुंसो विज्ञान संकोचादज्ञत्वं समुदाहतम्।।
—अहिर्बुध्न्य संहिता (14/19)

पुमांसं जीवसंज्ञं सा तिरोभावयति स्वयम्
आकारैश्वर्य विज्ञान तिरोभावनकर्मणा। (14/16)

'निग्राहात्मिका शक्ति' (निग्रह शक्ति) 'जीव' संज्ञक पुरुष को (1) 'आकार' से (2) 'ऐश्वर्य' से एवं (3) 'विज्ञान' से तिरोहित किया करती हैं—

तिरोधानकरी शक्ति ही 'निग्रह' कही जाती हैं-
'तिरोधानकरी शक्तिः सा निग्रह समा ह्वया।।'

*जीव के आकार, ऐश्वर्य एवं ज्ञान, का तिरोधान

जब पुरुष रूप जीव के 'आकार का तिरोधान' हो जाता है तब वही पुरुष अणुत्व प्राप्त कर लेता है। जब उसके 'ऐश्वर्य का तिरोभाव' हो जाता है तब उसमें अकिंचित्करता आ जाती है और जब उसके 'ज्ञान का तिरोभाव' हो जाता है तब उसमें ज्ञान के संकुचित हो जाने से 'अज्ञता' आ जाती है।

*मल एवं बन्धन

पुरुष रूप जीव जब विष्णुसंकल्परूपशक्ति से तिरोहित हो जाता है तब उसमें किंचित्करत्व एवं किंचिज्ज्ञत्व आ जाता है और इसे 'तीन मल' या 'तीन बन्धन' कहा गया है। (1)

(2) *कर्म और कर्म-विपाक*

जीव के नित्य शुद्ध बुद्ध रहते हुए भी उसे क्लेश, जन्म-मरण आदि क्यों भोगने पड़ते हैं। इसका उत्तर है कर्म और भोग-वासना।

कर्मविपाक— कर्म-विपाक के तीन प्रकार हैं

1. प्रथम-कर्मजन्य प्राप्त सुख
2. कर्म जन्य प्राप्त दुख

---

(1) पुंसो विज्ञानसङ्कोचादज्ञत्वं समुदाहतम्।
तिरोहितः पुमाञ्छक्त्या विष्णु संकल्परुपया।
अणुः किंचित्करश्चेति किंचिज्ज्ञश्चेति कथ्यते।
मलत्रय मिदं प्रोक्तं बन्धत्रयमिदं बुधैः।। —अहिर्बुध्न्य संहिता अ. 14/19-20

3. कर्म-जन्य प्राप्त सुख-दुःख का मिश्रित स्वरूप। वासना को **'आशय'** कहा जाता है। **कर्मों का विपाक 'क्लेश'** होता है।[1] अन्तःकरण में वासना का निलय है। वासनात्मक प्रवृत्ति ही इस अन्तःकरण की परिणति है। वासनात्मक प्रवृत्तियां पांच क्लेश पर्वों को जन्म देती हैं।

'वासनायें' ही सभी कर्मों के प्रारंभ का कारण होती हैं।[2]

सुखादि की वासना से ही **तीन प्रकार के 'विपाक'** उत्पन्न होते हैं। सुख-दुःख एवं सुख-दुःख मिश्रित वासनायें और उनका विपाक—इन चार लक्षणों से युक्त जो फल प्राप्त होते हैं उन्हें ही **'क्लेश'** कहते हैं। जीवकोश की तिरोभाव नाम वाली विद्या में शक्ति के रूप में बन्धनी शक्ति भगवती जीवों को नित्य आबद्ध किए रहती हैं और कर्म फल का भोग कराती रहती हैं।[3]

जीव देह को ही आत्मा समझकर उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है और दैहिक सुख के लिए कुटिल मार्ग अपनाकर उसी में आसक्त हो जाता है—

देहमात्मतया बुद्धवा ततस्तादात्म्य भागतः।
रञ्जनीय ममि प्रेप्सुर्निहासुश्च तथेतरत्।। [4]

इन्हीं **कर्मों** से वासनायें उत्पन्न होती हैं और **वासनाएं** पांच **क्लेशों** को जन्म देती हैं—

'जन्यन्ते वासना नित्यं पञ्चमिः क्लेशपर्वमिः।

ये वासनायें ही सभी कर्मों के जन्म का भी कारण हैं—

'सदृशारंभ हेतुश्च वासना कर्मणां तथा।।

(1) ल.तं.(12/31) (2) ल.तं.(12/32) (3) ल.तं (12/34) (4) ल.तं.(12/28)
(5) ल.तं.

(3) मलत्रय एव जीव—

'मलत्रय' या 'बन्धनत्रय' ही आत्मा को बन्धनग्रस्त जीव बना देते हैं और यह व्यापार भगवान की निग्रहात्मिका शक्ति या तिरोधान करी शक्ति निष्पादित करती है।

'तिरोधान शक्ति' ही–'माया', 'विद्या','महामोह', 'महातामिश्रतम', 'बन्ध' एवं 'हृदग्रंथि' के पर्यायवाची शब्द हैं–

'माया विद्या महामोहो महातामिश्रमित्यपि। (अहि.सं.)
तमो बन्धोऽथ हृद्ग्रंथिरिति पर्यायवाचका:। (14/17)

इस प्रकार वैष्णवी शक्ति की 'तिरोभावन शक्ति' से बन्धनग्रस्त जीव को–अविद्या, अस्मिता एवं राग आदि 'मल' घेर लेते हैं–

'तिरोभावन शक्त्यैवं वैष्णव्या बन्धमेयुष:।
अविद्यास्मित्वरागाद्या मलं समुपचिन्वते।। (अहि.सं.14/20)

* तांत्रिक शैव-शाक्त दर्शन में मल की अवधारणा

मल ही पशुत्व है

* मल के भेद *

↓

'आणवमल'	'मायीय मल'	'कार्ममल'
	'भिन्नवेद्यप्रथात्रैव मायाख्यं जन्म-भोगदम्।। –मालिनी विजय	'कर्तर्यबोधे कार्मं च –मालिनी विजय

(1) स्वातंत्र्यहानिर्बोधस्य स्वातन्त्र्यस्या प्यबोधता द्विधाणाव मल मिदं स्वस्वरूपापहानित:।। —(श्री प्रत्यभिज्ञा) (2) चिदात्मन्यपिस्वातं त्र्याप्रथात्म वि:ा्ना कलवद् अपूर्णम्मन्यता	'धर्माधर्मात्मकं कर्म सुख दु:खादिलक्षणम्।।' —मालिनी विजय (1) मायीय मल वृत्ते स्वरूपसंकोच आणवेन मलेन वै। भिन्नस्य प्रथमं यत्तन

मात्रात्मना रुपेण, स्वातंत्र्येऽपि देहादौ अवबोधरूपेण अनात्मन्यात्मत भिमानात्मना रूपेण द्विप्रकार माणवमलम्।। ।। —राजानक आचार्य क्षेमराज —शिवसूत्र विमर्शिनी।	मायीयमिति संज्ञितम्। (2) –'कार्ममल' अबोधरूपदेहादेः कर्तुभिन्न प्रथा यतः। धर्माधर्मस्वरूपं च मलं कार्मं मलस्यापि मायान्ताध्वविसरिण प्रधान कारणं प्रोक्तमज्ञाध्माणवो मलः 'अज्ञान'—अज्ञाना द्बध्यते लोकस्ततः सृष्टिश्च संहृतिः।।

(3) * 'मल'–

'मलमज्ञानमिच्छन्ति संसारांकुर कारणम्।। ('मालिनी विजय')

* समावेश *

↓

(1)	(2)	(3)
शांभव समावेश	शाक्त समावेश	आणव समावेश

'वैष्णव दर्शन' शैव दर्शन से प्रभावित है। 'शिव' पञ्चकृत्य-विधायक हैं ही उसी प्रकार जीव भी पञ्चकृत्य-निष्पादक हैं—(वैष्णवागम की मान्यता)

प्रमाण—'विधत्ते पञ्चकृत्यानि जीवोऽयमपि नित्यदा।। [1]

काश्मीरीयत्रिक दर्शन 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम' में भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि–

* 'तथापि तद्वत् पञ्चकृत्यान करोति।।' (10)* अर्थात् तो भी (संसारी दशा में भी) आत्मा शिव के सदृश पांच कृत्यों का निष्पादन किया करती है।

शिव और जीव में साम्य (काश्मीरीय शैव दर्शन)

(1) ल.तं. (13/26)

(पञ्चकृत्य के आलोक में)

↓

शिव के कृत्य (पञ्चकृत्य) } अभेद का स्तर सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व, व्यापकत्व } →	जीव के कृत्य- (पञ्चकृत्य) कला, विद्या, राग, कला, नियति।। भेद का स्तर
असंकुचित अवस्था में पञ्चकृत्य	संकुचित अवस्था में पञ्चकृत्य

(4) ***जीवों के प्रकार** —त्रिलोकों के अन्तर्गत तीन लोक हैं-1. स्वर्ग लोक 2. भू लोक एवं 3. पाताल लोक। इन सभी लोकों में जीवों की **स्थिति** तीन प्रकार की है—1. बद्ध 2. मुक्त और 3. नित्य। इन तीनों प्रकार के जीवों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाली शक्ति का नाम ऐश्वर्यदा है।[2]

***'चिद्वत्तच्छक्ति सङ्कोचात् मलावृतः संसारी।'**(प्रत्य.ह.9)

अर्थात्-जब चिदात्मा परमेश्वर अपने **'स्वातंत्र्य'** से अभेदव्याप्ति को संकुचित करके भेद व्याप्ति का अवलम्बन ग्रहण करते हैं तब उनकी इच्छादिक शक्तियां असंकुचित होने पर भी संकुचित प्रतीत होती हैं। तभी यह मलों से आच्छादित होकर **'संसारी'** बन जाता है। तब—

1. **इच्छा शक्ति संकुचित होकर 'आणवमल'** बन जाती है।
2. **ज्ञान शक्ति संकुचित होकर 'मायीयमल'** बन जाती है।
3. **क्रिया शक्ति संकुचित होकर 'कार्ममल'** बन जाती है।
4. **सर्वकर्तृत्व (इच्छाशक्ति) सर्वज्ञत्व (ज्ञान शक्ति) पूर्णत्व, नित्यत्व और सर्वव्यापकत्व की शैवी शक्तियां संकुचित होकर जीवतगत, 'कला', 'विद्या', 'राग', 'काल' एवं 'नियति' बन जाती हैं।** [3]

(5) *जीव तत्त्व

जीव 'स्वरस' की दृष्टि से शुद्ध है, परिणाम-रहित है, कूटस्थ है, चिद्घन है, नित्य है, अनन्त है, अप्रतिसंक्रम है। [1]

---

(2) ल.तं (26/23) (3) प्रत्यभिज्ञा हृदयम् (1) ल.तं.(16/13-14)

अनाद्य विद्या से विद्ध जीवात्मां सत्-असत् दोनों का सम्मिश्रण हैं। जीवात्मा में संचित कर्म को समाविष्ट करके मिली जुली सृष्टि भगवती ही करती हैं।

जीव है क्या? भगवती कहती हैं कि जीव मेरा **'संकोच'** है। मैं ही देश-काल के रूप में बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त रहती हूँ।

भगवती का संकोच ही प्रमाता 'जीव' है।

* **'प्रमाता चेतनः प्रोक्तो मत्सङ्कोचः स उच्यते।।** (6/36) अपनी इच्छा के अनुसार आदि वासुदेव सङ्कोच करते हैं। उससे मैं आविर्भूत होती हूं। मेरे प्रथम सङ्कोच को जीव कहते हैं:

*** 'प्रमाता चेतनः प्रोक्तो मत्सङ्कोच स उच्यते।**
अहं हि देशकालाद्यैरपरिच्छेदमीयुषी।।
स्वातंत्र्यादेव सङ्कोचं भजाम्यजहती स्वताम्।
प्रथमस्तत्र सङ्कोचः प्रमातेति प्रकीर्त्य ते।। (6/37)

जीव अपने कर्मों से संसरण करते हैं-

'नाना स्थानजुषो जीवाः कर्मभिः संसरन्तिये। (6/30)

***जीव चार अवस्थाओं में रहता है जो निम्न हैं-**

1. 'जाग्रत' 2. 'स्वप्न' 3. 'सुषुप्ति' 4. 'तुरीय'

जीव के ज्ञान, कर्म एवं विभेद के आधार पर अन्तःकरण त्रिविधरूप होता है-

'ज्ञान कर्म विभेदन त्रीण्यन्तः करणानि च।।

और उनके नाम है-1. **बुद्धि** 2. **चित्त** 3. **अहङ्कार**

'ज्ञान कर्म विभेदेन त्रीण्यन्तः करणानि च। (6/43)

'जीव' परमात्मा का अंश है-

'अंशतः प्रसरन्त्यस्मात्सर्वे जीवाः सनातमनाः।। (7/11)

प्रलयकाल में **सभी जीव परमात्मा में विलीन हो जाते हैं-**

'प्रलये त्वपि कर्मात्मानोनरं परम्'

भगवती कहती हैं कि मेरे रूप के संकोच से उत्पन्न **'जीव' शुद्ध चिन्मय होता है।** दर्पण में दृष्टिगोचर रूप बिम्ब के समान उसके

स्वान्तः स्फुरितवोधः स्थितो दर्पणवत्सदा।। -ल.तं. (7/18)

अन्तःकरण में ये तत्वौघ स्फुरित रहते हैं—

'तदयं मम संकोचः प्रमाता शुद्धचिन्मयः

जीव की चार अवस्थायें होती हैं। **आरंभकाल में जीव 'शून्यावस्था'** में रहता है जिसे **'मूर्च्छा'** कहते हैं—

चातूरूप्यं तुयत्तस्य तदि है कमनाः श्रृणु।
आद्यं शून्यमयो माता मूर्च्छायौ परिकीर्तितः।। (7/19)

जब जीव में **प्राणों का सञ्चार** होता है त उसकी **'सुषुप्ति दशा'** होती है। इसी कारण सुषुप्त पुरुष में भी प्राण गतिशील रहते हैं। विषपान कर लेने या चोट लगने से जो मूर्च्छा उत्पन्न होती है, उसमें प्राण प्रयाण कर जाते हैं। उस स्थिति में केवल स्वात्म सत्ता से जीव शून्यमय होकर रहता है। **'स्वप्नावस्था'** में जीव की दशा त्रिरूपात्मक होती है। इसमें जीव की स्थिति अष्ट पुरों में होती है। प्राण भूत, कर्म, सत्व, रज, तम, त्रिगुणात्मक उपकरण, पूर्ववासनात्मक अविद्या और लिङ्ग सूक्ष्म शरीर-ये **'आठ पुर'** कहे जाते हैं। इन्हीं को **'पुर्यष्टक'** कहते हैं। स्वप्न में अन्तःकरण स्वयं कार्यरत रहता है किन्तु बाह्यचेष्टारहित होता है।(1)

'जाग्रत अवस्था' में 'जीव' अपने देह के द्वारा सचेष्ट रहता है। इसे **चतूरूपात्मक दशा** कहते हैं।

जीव की **त्रिरूपात्मक दशा** भी है। **ज्ञान, क्रिया** एवं **स्वरूप-संकोच** तीन प्रकार का होता है। यही है **'त्रिरूपत्व'**।

क. माया से ज्ञान का संकोच होता है।

ख. ईश्वरीय गुणों के अभाव से अभीप्सित क्रिया करने में असमर्थता होती है।(2)

ग. अशक्ति से अणुरूपता लघुरूपता होती है। ये ही उसके तीन रूप हैं।

जीव में जो चेतना संकुचित है वही **'चित्त'** और **'अन्तःकरण'** है। इसमें **'मन'**, **'बुद्धि'** और **'अहंकार'** तीन विद्यमान रहते हैं। **'मन'** अपने को सब कुछ मानकर नाना प्रकार के शुभाशुभ का विचार करता रहता है। उसकी वृत्ति अभिमान है। **'बुद्धि'** क्या है? चेतना में अधिष्ठित

(1) त.तं. (अ.7) (2) त.तं (अ.7)

होकर बुद्धि सदैव कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करती है और आध्यात्मिक और आधिभौतिक तथ्यों का निर्णय करती है। 'बुद्धि-दर्पण' में संलीन क्षेत्रज्ञ अधिदेवता **'अहंकार'** निर्णय करता है कि क्या **'अध्यात्म'** है? क्या अभिमान है और क्या **'अधिभूत'** है? रूद्र **'अधिदेव'** हैं। मन **'अध्यात्म'** है।[3] विकल्प भी **'अधिभूत'** है और चन्द्रमा भी **'अधिभूत'** है।

संकल्प **'प्राण'** से पोषित होते हैं। फल के स्वामीत्व से गर्व और संरभ होता है। संरभ को गर्व कहते हैं। अन्तःकरणिका का रूप जब अधिक एकत्रित होता है तो उसे बहिष्करण कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों की प्रवृत्ति के अनुरूप ही जीव के मन आदि का प्रवर्तन होता है। आंखे जो देखती हैं उसके अनुरूप ही मन विकल्प करता है। **'बुद्धि'** उसमें शुभाशुभ का विवेक करती है और तभी **'क्षेत्रज्ञ'** को ज्ञान होता है। **'क्षेत्रज्ञ'** के द्वारा उत्प्रेरित कर्मेन्द्रियाँ क्रिया में प्रवृत्त होती हैं। संकल्पों से वचनादिक क्रिया निपन्न होती है।। इसे ही **बहिष्करणवर्तनी 'तृतीय विद्या'** कहते हैं।[1]

*** विकल्प—** जब जीव के चित्त में विकल्पों का उत्थान होता है तब भगवती के सम्मुख रहने पर भी लोग भगवती को नहीं देख पाते और उन्हें विस्मृत कर देते हैं और ऐसी स्थिति में सदाचार के उपदेश से तर्क करने पर ही भगवती दृष्टिगोचर होती हैं—

'स्वचित्तोत्थविकल्पार्थैः प्रत्यक्षाप्यस्मि विस्मृता।
सदाचार्यो पदेशेन सत्तर्कमनुरुन्धता।।

जहाँ नैपुण्यपूर्वक भगवती का निरुपण किया जाता है वहां भगवती **'मेय'** रूप में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। सभी भावों के विलुप्त हो जाने पर भगवती का **'चैत्य स्वरूप'** प्रकट हो जाता है। [2]

***'चित् शक्ति' का तात्त्विक स्वरूप —**

वैसे तो जीव (चित्त शक्ति) निर्मल स्वरूप है—

'चिच्छक्तिर्विमला शुद्धा चिन्मया नन्दरूपिणी।
अनाद्यविद्या विद्धेयमित्थं संसरति धुवम्।। (3/26)

---

(3) ल.तं. (अ.7) (1) ल.तं. (अ.7) (2) ल.तं. (अ.7)

अनादि अविद्या से संयुक्त हो जाने के कारण ही यह भवसागर में पड़ा हुआ है और संसरण किया करता है।

'अचित् तत्व' चित् के विपरीत स्वरूप वाला है–

'अचिच्छक्तिर्जडाप्येवमशुद्धा परिणामिनी।

त्रिगुणापि ममैवेदं स्वाच्छन्द्यात् प्रविजृंभितम्।। (3/27)[3]

भगवती कहती हैं–'वर्तेऽहमचिदात्मना': मैं अचित् कही जाती हूं।

जीव का क्लेश-कर्माशय से सम्बंध है–

शक्र ने भगवती लक्ष्मी से प्रश्न किया कि–

चिच्छक्तिरेव ते शुद्धा यदि जीवः सनातनः।

क्लेशकर्माशय स्पर्शः कथमस्य सरोरुहे।

अर्थात् आपकी चिच्छक्ति शुद्ध है और जीव सनातन है तो आपकी चिच्छक्ति के प्रतिरूप जीव का क्लेश-कर्माशय से सम्बंध ही कैसे हुआ?

*** चित्शक्ति बाहर एवं भीतर दोनों ओर अखण्डित रहती है ***

वैष्णवागम भी यही कहता है–

'बहिरन्तः पदार्थे हि चित्स्वरूपमखण्डितम्।। (ल.तं.3/30)

भगवती लक्ष्मी (ब्रह्म की पराशक्ति) भी (अपने रुपान्तरित स्वरूप में) जीव है

(तत्त्वतः लक्ष्मी का संकुचित रूप ही 'जीव' है।)

जीव और लक्ष्मी में कोई भेद नहीं है। जब भगवती आत्मसंकोच करती हैं तो अपने संकुचित या रुपान्तरित स्वरूप में (1)चिद्रूप जीव एवं (2)अचिद्रूप जगत बन जाती हैं।

जब जल (अत्यन्त शैत्यावस्था में) बर्फ बन जाता है तो क्या वह जल नहीं रह जाता? जब सोना हाथ का कंगन बन जाता है तब क्या सोना नहीं रह जाता? जब लकड़ी सिंहासन बन जाती है तो क्या लकड़ी नहीं रह जाती? इसी प्रकार जब भगवती जीव बन जाती हैं तब क्या वे भगवती नहीं रह जातीं?

सारांश यह है कि 'जीव' भगवती का ही चिंदश हैं। वह परात्पर चित शक्ति भगवती से पृथक अन्य कुछ भी नहीं है। भगवती

(3) ल.तं.

कहती हैं कि अवरोह-क्रम में मैं (लक्ष्मी) ही चित् शक्ति 'जीव' कहलाने लगती हूँ-

'साहं यदवरोहामि सा हि चिच्छक्तिरुच्यते।।' (13/23)
'संकोचो मामकः सोऽयं स्वच्छस्वच्छन्द चिद्घनः।।
'तया स्फुरति जीवोऽसौ स्वत एवा नुरुपया।।' (ल.तं.)

* वही अद्वैत पराशक्ति अनन्त योनियों में (अनेकाकार बनकर) भटकती रहती है* और इस स्थिति में वह चित-अचित दोनों बनकर घूमती है—

* 'ता योनीरनुधावन्तश्चराचरविभेदिनी। (13/5)

* वही भगवती जीवों के रूप में रुपान्तरित होकर (देहातीत होने पर भी देहात्मक जीव के रुप में) देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि के द्वारा अहर्निश वेदनानुभव करती है। वही जन्म लेती है और वही मरती भी है—

1. देहेन्द्रिय मनो बुद्धि वेदनाभिरहर्निशम्।
जन्मानि प्रबध्नन्तो मरणानि तथा तथा।। [1] (जीव)
2. ता योनीरनुधावन्तश्चराचरविभेदिनी।
अपूर्वा पूर्वभूतामिश्चित्रितामिः स्वहेतुभिः।। [2] (जीव)
3. क्लिश्यमाना इति क्लेशैस्तैस्तैर्योग वियोगजैः।
उद्यत्कारुण्यसन्तान निर्वापित तदागसा।। (जीव)

अर्थात् इस प्रकार वह चित् शक्ति क्लेशों से दुःखी होती है। संयोग एवं वियोग ही उसके क्लेशों के कारण हैं। सन्तान के उत्पन्न होने से वह हर्षित होती है और उनकी मृत्यु से दुःखी होती है। [3]

(6) प्रश्न—जीवों का बन्धन क्यों? स्वभावतः निर्बन्ध, तत्वतः शुद्ध एवं चिन्मय, संविद्रूप, मुक्तस्वभाव जीव बन्धन में कैसे पड़ जाता है? इन्द्र देवी से यही प्रश्न करते हैं-

'चिच्छक्तिरेव ते शुद्धां यदि जीवः सनातन।
क्लेशकर्माशयस्पर्शः कथमस्य सरोरुहे? [4]

भगवती इसका उत्तर देते हुए कहती हैं कि मैं एक हूँ तथापि मैं

(1) ल.तं. (13/6) (2) ल.तं (13/5) (3) ल.तं.(12/7) (4) ल.तं. (12/9)

स्वेच्छया आत्म-विभाजन करके दो रूप बना लेती हूँ।

वे इस प्रकार हैं—(1)'ईश' (2)'ईशितव्य' (12/6)

जो **'ईशितव्य'** है उसके दो रूप हो जाते हैं—1. चित् (2) अचित्। **'चित् (जीव)'** तत्व **'भोक्ता'** है। **'भोक्ता'** नाम वाली एक ही चित् शक्ति भोग्यादिरुपिणी भी हो जाती है। उसके दो रूप हैं—(1)'काल' (2)'काली'। 'काली' आत्मिका शक्ति वाली, मोहित करने वाली एवं बन्धिनी शक्ति है। यह सविकारा शक्ति है। इसके कारण चित् शक्ति बंधन में पड़ जाती है—

1. 'तत्र काल्यात्मिका शक्ति र्मोहिनी बन्धनी तथा' (2/7)
2. 'प्रकृतिः सविकारैषा चिच्छक्तिर्बध्यतेऽनया।।

चित् शक्ति भोक्ता रूप में 5 प्रकार के क्लेश भोगती है

'क्लिश्यते येन रुपेण चिच्छक्तिर्भोक्तृतां गता।

'सक्लेशः पञ्चधा ज्ञेयो नामान्यस्य च मे श्रणु।।'

(7) *** पञ्चक्लेश ***

↓

1	2	3	4	5
तम	मोह	महामोह	तामिश्र	अन्ध

(3) यद्यपि **'चित् शक्ति'** असंगिनी है, शुद्ध है एवं अपरिणामी भी है तथापि आत्माओं से आविद्ध होकर आत्मा रूप में क्लेश भोगती हुई सी प्रतीत होती है—

'असिङ्गिन्यपि चिच्छक्तिः शुद्धाप्यपरिणामिनी।
आविद्धमात्मनो रूपं नैर्मल्येन बिभर्ति सा।। (ल.तं. 12/10)

मूलतः तो **'चित् शक्ति'** (जीव) शुद्ध एवं सनातन है तथापि क्लेश-कर्माशय के प्रभाव से अशुद्ध एवं मलिन हो गई है—

'चिच्छक्तिरेव ते शुद्धा यदि जीवः सनातनः।'

कर्म और उसका प्रभाव—जब जीव अपने स्वस्वरूप को न समझकर अपने को देहातीत मानते हुए अपने को आत्मा मानने लगता है तब वह मुक्त हो जाता है किन्तु ऐसा प्रायः होता नहीं। देह को

ही आत्मा समझने के कारण जीव का देह के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है और जीव दैहिक सुख-प्राप्त्यर्थ कुटिल मार्ग अपनाकर उसमें अविद्या के कारण निरत रहने लगता है और यही उसके बंधन का कारण है—

'देहमात्मतया बुद्ध्वा ततस्तादात्म्यमागतः।
रञ्जनीय ममि प्रेप्सु र्जिहासुश्च तथेतरत्।।

उस सुख की प्राप्ति में व्यवधान पड़ने पर वह प्रतीकार करता है और अभीष्ट-प्राप्त्यर्थ अपने को नष्ट कर डालता है। इस प्रकार के त्रिविधात्मक कार्यों को सांख्यायोग में **'कर्म'** कहा गया है—

'यदयं कुरुते कर्म त्रिविधं त्रिविधात्मकम् तत्कर्म गदितं सद्भिः सांख्ययोगविचक्षणैः (ल.तं. 12/30)

1. **'जीव तत्त्व' है क्या?**

भगवती के सत्य संकल्प से उनके ही द्वारा उनके जिस अन्य स्वरूप का प्रकटीकरण होता है उसे **'अवरोह'** कहते हैं। (ल.तं. 12/17) इसी चित् शक्ति को **'जीव'** कहते हैं। भगवती की स्वच्छन्दता के कारण उनमें अनेक भेद उत्पन्न हो गए हैं—

'चिच्छक्तिर्जीव इत्येवं विबुधैः परिकीर्त्यते।। (ल.तं.12/18)

2. अविद्या—

तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रो ह्यन्धसंज्ञितः।
अविद्या पञ्चपर्वैषा तमसो गतिरुत्तमा।। (12/8 ल.तं.)

1. भगवती कहती हैं कि मेरा जो चैतन्य रूप है उसे मैं ही अपने सत्य संकल्प से निर्मित करती हूं। चित् शक्ति जो विविध रूप धारण करती है उसे मैं पुनः एक कर देती हूँ—

'मदीयं चैत्यरूपं यत् सत्यसंकल्पया कृतम्।
मया तदेकी करणं चिच्छक्तेः क्रियते हि यत्।।

(12/18 ल.तं.)

जीवों में ज्ञान अपनी संकुचित अवस्था में रहता है। जब तक भगवती करुणार्द्र होकर जीव का अवलोकन नहीं करती तब-तक जीव का ज्ञान संकुचित ही रहता है और वह विश्व को अपनी

संकुचित इन्द्रियों से ही देखा करता है—

यावन्निरीक्ष्यते नायं मया कारुण्यवत्तया।
तावत्संकुचितज्ञानः करणैर्विश्वमीक्षते।। (2)

जीव का क्रिया-कलाप—

यह आंखों से वस्तुओं को देखकर मन से कल्पना करता है। अहङ्कार और बुद्धि के अनुसार क्रियाशील रहता है। जाग्रत और स्वप्न की स्थिति में अन्तःकरण के अनुसार चलता है और सुषुप्ति में सब का परित्याग करके अपने स्वरूप में स्थित रहता है—

'विहाय तत् सुषुप्तौ तु स्वरुपेणावतिष्ठते।।(3)

जीव की मुख्य अवस्थायें—

जीव की मुख्यतः तीन अवस्थायें हैं—**(1)'जाग्रत' (2)'स्वप्न' (3)'सुषुप्ति'।**

जीव की एक अवस्था और होती है जिसे **'तुर्यावस्था'** कहते हैं किन्तु यह **'समाधि'** की वह अवस्था है जो किसी विरले साधक को ही प्राप्त होती है—

'तुर्यापि या दशा जीवे समाधिस्थे प्रजायते।। (13/36)

तुर्यावस्था की प्राप्ति—

जीव को तुर्यावस्था तभी प्राप्त होती है जब शुद्ध सत्व की व्यवस्थिति हो—

'सापि नैवास्यं किं त्वेषा शुद्धसत्त्व व्यवस्थितिः।।

उपाधिशून्य एवं अच्छेद्य जीव का रूप चिन्मय होता है।

यह रूप भी अनाद्य अविद्या से आच्छादित रहता है। भगवती जीव में आत्मा के रूप में स्थित रहती हैं किन्तु जीव अविद्या के कारण उन्हें देख नहीं पाता-

'एवंरुपमपि त्वेतच्छाद्यतेऽनाविद्यया।
सुदृश्यामात्मभूतां मां नैव पश्यत्यसौ ततः। (4)

जो स्वरूप में, समष्टि रूप में एवं अन्तः करण में तीन प्रकार से

---

(2) ल.तं (12/33) (3) ल.तं. (13/35) (4) ल.तं. (13/38-39)

स्थित रहते हैं उन्हीं के अंश प्रत्येक जीव में व्यवस्थित रहते हैं।

व्यष्टि रूप में कर्मवासना जनित क्लेश 18 प्रकार के होते हैं। उसी के अनुसार प्राण और लिङ्ग जीवों के आश्रय हैं। चित् शक्ति ही लिङ्ग स्थित होती है और संसार में संसरित एवं गतिशील रहती है। शुद्ध दशा में ही भगवत् ज्ञान प्राप्त होता है और जीव सत्कर्म-प्रवृत्त रहता है।[1]

'शुद्ध हि भगवद्ज्ञाने जाते सत्कर्म जीविनाम्'

इसी प्रकार जीवों में लिङ्ग प्रवर्तमान होता है।

अपर नाम वाला ब्रह्माण्ड ही स्थूल देह के रूप में **'विराज'** कहलाता है। अन्य शरीरधारियों में चार प्रकार के शरीर होते हैं। इसे **'भौतिक सृष्टि'** कहते हैं।[2]

(8) *भगवती चित्शक्ति हैं* 'जीव' भी चित् शक्ति का ही एक रुप है।*

परमात्मा चिदानन्द है और **शक्ति चिद्रूपा** है। उसी का चेतनांश, चिंदश 'जीव' है।

भगवती कहती हैं कि मुझ **'पञ्चकृत्यविधायिनी'** का **'अवरोह'** संसार में स्वयं अपनी इच्छा से स्वच्छन्दरुप में होता है। जिस भी रूप में मेरा **'अवरोह'** होता है उसे ही **'चित् शक्ति'** कहते हैं—

स्वाच्छन्द्यावरोहामि पञ्चकृत्यविधायिनी।

साहं यदवरोहामि सा हि चिच्छक्तिरुच्यते।। [3]

भगवती यह भी कहती हैं कि 'अपने रुप का संकोच कर लेने पर मैं निर्मल स्वच्छन्द चित् की घनीभूत स्थिति में हो जाती हूं और इस स्थिति में सारा विश्व मुझमें दर्पण में प्रतिबिम्बित पर्वत के समान दृष्टिगोचर होता है'—

'सङ्कोचो मामकः सोऽयं स्वच्छस्वच्छन्द चिद्घनः।

अस्मिन्नपिं जगद भाति दर्पणोदर शैलवत।।

'जीव' हीरा की भाँति सदैव स्वच्छ एवं निर्मल रूप में स्फुरित होता रहता है। **चैतन्य ही इसका धर्म है।** इसकी प्रभा सूर्य-प्रभा की भाँति देदीप्यमान रहा करती है—

'चैतन्यमस्य धर्मोत्यः प्रभा भानोरिवामला।।' (13/24)

---

(1) ल.तं. (12/45) (2) ल.तं (12/47) (3) ल.तं. (13/23)

(9) जीवों के पञ्चकृत्य-कर्तृत्व–

इसी समष्टिभूता, घनीभूता चैतन्य शक्ति से जीव इसी के अनुरूप स्वतः स्फुरित होते रहते हैं। इसी से जीव नित्य ही **पञ्चकृत्यों में** प्रवर्तमान रहते हैं। [1]

'विधत्ते पञ्चकृत्यानि जीवोऽयमपि नित्यदा।।

त्रिक दर्शन की समतुल्यता के बिन्दु–

'प्रत्यभिज्ञा हृदयम्' (10) में परमात्मा और जीव (चिदात्मा परमशिव एवं चिदंश जीव) दोनों को **'पञ्चकृत्यकारी'** कहा गया है:

क. **परमात्मा–'सृष्टि-संहार-विलय-स्थिति कारकम्।**
अनुग्रहकरं देवं प्रणतार्तिविनाशनम्।।

ख. **जीव–'तथापि तद्वत् पञ्चकृतानि करोति।।** (10)

परमात्मा तो (1)**'सृष्टि'** (2)**'संहार'** (3)**'प्रलय'** (4)**'स्थिति'** (5)**'अनुग्रह'**–के कृत्यों का निष्पादन करता ही है साथ ही साथ जीव भी इन **पञ्चकृत्यों का निष्पादन किया करता है।**

भेद दशा में जब **'क्रियाशक्ति'** (परमात्मा की क्रिया शक्ति) अल्पकर्तृत्व का स्वरूप ग्रहण करती हैं एवं कर्मेन्द्रियरूप सङ्कोच को ग्रहण करके अत्यन्त परिमित हो जाती हैं तब उसे ही शुभाशुभ कर्ममय **'कार्ममल'** कहा जाता है।

***परमात्मा की शक्ति**
सर्वकतृत्व शालिनी **'क्रियाशक्ति'**
(महान शक्ति)

जीवों में आकर वही क्रिया शक्ति (शक्ति नहीं दुर्बलता बनकर) **'कार्ममल'** बन जाती है।

(ल.त. 13/26)

'शक्ति' ही 'मल' बन जाती है।

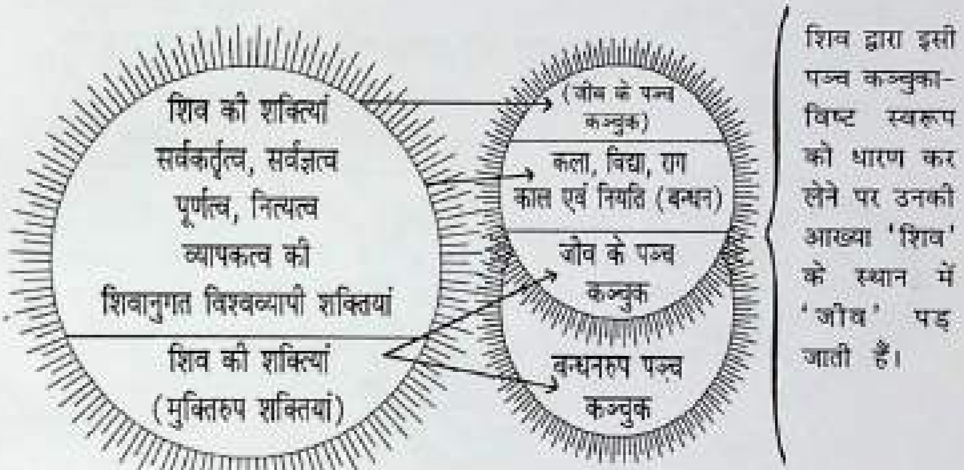

'संसारी दशा में भी शिव पञ्चकृत्य करता है।
—'तथापि तद्वत पञ्चकृत्यानि करोति' (प्र.हृ.)

(10) *(1) 'लक्ष्मीतंत्र की दृष्टि—(वैष्णवागम)।
'विधत्ते पञ्चकृत्यानि जीवोऽयमपि नित्यदा'

*(2) 'प्रत्यभिज्ञा हृदयम्' की दृष्टि—
'तद्वत् पञ्च कृत्यानि करोति' (शैवागम)

*जीव का स्वभाव और उसकी अवस्थायें—

(1) जीव आंखों से वस्तुओं को देखकर 'मन' से कल्पना करता है।
'अहंकार' और 'बुद्धि' के निर्देशानुसार क्रिया करता है।

(2) यह जाग्रत और स्वप्न की स्थिति में 'अन्तःकरण' के अनुसार चलता है।

(3) यह सुषुप्ति की दशा में सबका परित्याग करके अपने स्वरूप में स्थित है—
'विहाय तत् सुषुप्तौ तु स्वरूपेणावतिष्ठते।। (ल.तं.13/35)

(4) जीव इन्हीं तीन अवस्थाओं में रहता है। जीव कभी प्राकृत अवस्था में नहीं जा पाता।

(11) * जीव की अवस्थायें

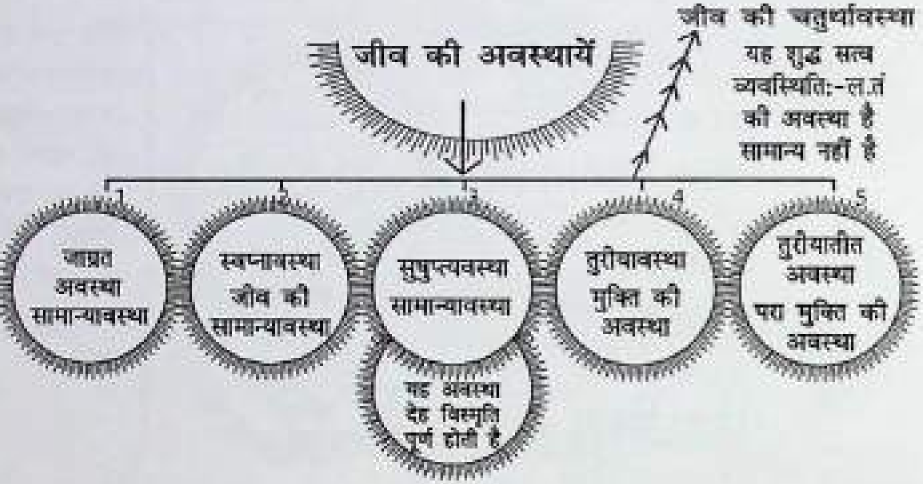

(1) इस अवस्था में देहात्मबोध तो नहीं हो पाता किन्तु आत्मज्ञान भी नहीं होता।।

(2) देह और इन्द्रियों के संस्कार लुप्त तो नहीं होते। केवल उद्बुद्ध नहीं हो पाते।

'तुर्यावस्था'—

'तुर्यापि या दशा जीवे समाधिस्थे प्रजायते।। (ल.तं. 13/36)

तुर्यावस्था जीव की वह अवस्था होती है जिसे योग में **समाधि की अवस्था** कहते हैं—

*'लक्ष्मी तंत्र' में 'तुर्या' का उल्लेख तो है किन्तु 'तुरीयातीतावस्था' का उल्लेख नहीं है तथापि यह अवस्था भी होती है—आचार्य भास्कर राय कहते हैं—

> 'आनन्दैक घनत्व' यद्वाचामपि न गोचरो नृणाम्।
> 'तुर्यातीतावस्था' सा नादान्तादिपञ्चके भाव्या।।[1] (1/41)
> यह आनन्द की अवर्ण्य अवस्था है। यह आनन्दैकघनावस्था है।
> **अवस्थास्ता इमास्तिस्त्रः प्राकृत्यो नैव जीवगा।**
> **तुर्यापि या दशा जीवे समाधिस्थे प्रजायते।।**[2] (ल.तं13/36)

---

(1) इसकी भावना अर्धचन्द्र एवं आगे के तीन वर्णों तक करनी चाहिए।
(2) 'योगवासिष्ठ' में तुरीयातीतावस्था का यथेष्ट वर्णन प्राप्त होता है।

(12) *जीव का चिन्मय स्वरूप—

उपाधिरहित एवं अच्छेद्य जीव का स्वरूप चिन्मय होता है। यह रूप भी अनाद्य अविद्या से आच्छादित रहता है। भगवती लक्ष्मी जीव में आत्मभूता शक्ति के रूप में स्थित रहती हैं किन्तु जीव अविद्या के कारण उसे देख नहीं पाता-

'एवंरूपमपि त्वेतच्छाद्यतेऽनाद्यविद्यया।
सुदृश्यामात्मभूतां मां नैव पश्यत्यसौ ततः।। (ल.तं. 13-38)

समाहित मन वाले ही भगवती को देख सकते हैं सामान्य जीव भगवती के ज्योतिर्मय अकथ्य स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर सकते।[1] जीव स्वभाव से शुद्ध, परिणाम रहित, कूटस्थ चिद्धन, नित्य; अनन्त; अपरिच्छिन्न एवं अप्रतिसंक्रम है

'स जीवः कथितः सद्भिस्तत्त्वशास्त्र विशारदैः।
अयं स्वरसतः शुद्धः परिणाम विवर्जितः।
कूटस्थ चिदधनो; नित्यो ह्यनन्तोऽप्रतिसंक्रमः।। [2]

भगवती कहती हैं कि—

जीव के **'अन्तःकरण'** में मन, बुद्धि अहङ्कार तीन होते हैं। बाहर 5 ज्ञानेन्द्रियां एवं 5 कर्मेन्द्रियां होती है।। उनकी तीन शाखाएँ हैं— 1. **'जाग्रत'** 2. **'स्वप्न'** 3. **'सुषुप्ति'**। चौथी अवस्था भावभूमिका है। जो समाधि की अवस्था होती है—

'प्रमातेति विधात्वेका तदन्तः करणं परा।
बहिःकरण मन्या च चतुर्थी भावभूमिका।। (35)

जीव को चेतन कहा गया है। यह **भगवती का संकोच** है। वे ही देश और काल के रूप में बाहर-भीतर व्याप्त रहती हैं। सभी में उन्हीं की व्याप्ति है—

'प्रमाता चेतनः प्रोक्तो मत्यं कोचः स उच्यते।
प्र. अहं हि देश कालाद्यैर परिच्छेदमीयुषी।।

---

(1) ल.तं. (13/40) (2) ल.तं (16/13-14)

अपनी इच्छानुसार **'आदि वासुदेव'** संकोच ग्रहण करते हैं। उससे **भगवती आविर्भूत** होती है।। भगवती के संकोच को **'जीव'** कहा जाता है। विस्तार का नाम **'ब्रह्म वासुदेव'** है। उनके संकोचात्मक लघुरूप को **'जीव'** कहते है—

स्वातंत्र्यादेव संकोचं भजाम्य जहती स्वताम्।
प्रथमस्तत्र संकोचः प्रमातेति प्रकीर्त्यते।। (3)

भगवती कहती हैं—

जीव नाना प्रकार के स्थान में रहकर कर्मों का भाग करते रहते है।। अशुभ कर्मों का क्षय होने पर और शुभ कर्मों के विपाक होने पर उन्हें मेरा सामीप्य (मुक्ति) प्राप्त होता है।(4)

सर्वज्ञ सर्वतोमुख पुरुष कूटस्थ होकर भोग करता है। तब उसके अंश से सनातन जीवों का सर्वत्र प्रस्तार विस्तार होता है:

पुरुषो भोक्तृकूटस्थः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः।
अंशतः प्रसरन्तयस्मात्सर्वे जीवाः सनातनाः।। (1)

प्रलय काल में सभी जीव परमात्मा में विलीन हो जाते हैं।
प्रलये त्वपि यन्त्येनं कर्मात्मानो नरं परम्।। (2)

भगवती के रूप-संकोच से जो जीव आविर्भूत होता है वह शुद्ध एवं चिन्मय होता है—

'तदयं मम संकोचः प्रमाता शुद्ध चिन्मयः।'

दर्पण में दृष्टिगोचररूप बिम्ब के समान उसके अन्तःकरण में ये तत्वौघ स्फुरित होते रहते हैं। **प्रलय-काल में सभी जीव परमात्मा में विलीन हो जाते हैं—**

'प्रलये त्वपि यान्त्येनं कर्मात्मानो नरं परम्।।

---

(3) ल.तं. (9/34-37) (4) ल.तं. (6/29-30)

(1) लक्ष्मी तंत्र (7/11) (2) लक्ष्मी तंत्र (7/12)

जीव की चार दशायें (लक्ष्मी तंत्र के आलोक में)

1.

***जीव की शून्यात्मक अवस्था-**
जीव शून्यमय होकर रहता है।
'आद्यं शून्य मयोमाता मच्छादौ परिकीर्तितः।।' -ल.तं.7/19)

जीव की चार दशाओं में प्रारंभिक दशा शून्यमय अवस्था में रहता है। जिस प्रकार विषपान कर लेने पर या आहत होने पर जो मूर्च्छावस्था आती है उसमें भी प्राण प्रयाण कर जाते हैं। उस स्थिति में केवल स्वप्त्म सत्ता से जीव शून्यमय होकर रहता है।

2.

***जीव की सुषुप्ति अवस्था-**
जब जीव में प्राणों का संचार होता है तब उसकी दशा सुषुप्ति की होती है। सोये हुए पुरुष में भी प्राण गतिशील रहते हैं।
'ततः प्राणमयो माता सुषुप्तौ परिकीर्तितः।
प्राणा एव प्रतायन्ते सुषुप्तौ पुरुषस्य तु।।

-ल.तं.7/20

3.

***जीव की स्वप्न अवस्था-**
स्वप्नावस्था में जीव की दशा त्रिरुपात्मक होती है।

इसमें जीव की स्थिति आठ पुरों में होती है।
अष्ट पुर- प्राण, कर्म, सत्व, रज, तम, त्रिगुणात्मक उपकरण। बाह्य चेष्टारहित होता है।
(ल.तं. 7/22-23)

4.

***जीव की जाग्रतावस्था-**
जाग्रतावस्था में 'जीव' अपने देह द्वारा सचेष्ट रहता है। इसे चतुरात्मक दशा कहते हैं।
त्रिरुपात्मक दशा
(ल.तं. 7/24)

-ल.तं.7/20

5.

***जीव की त्रिरुपात्मक दशा**

ज्ञान, क्रिया एवं स्वरूप का संकुचन तीन प्रकार का होता है। यही है जीव का त्रिरुपत्व।। —ल.तं. 7/25

माया से ज्ञान का संकोच होता है।

ईश्वरीय गुणों के अभाव से अभीप्सित क्रिया करने में असमर्थता होती है। अशक्ति से अणुरुपता लघुरुपता होती है। ये ही उसके तीन रूप दिखलायी पड़ते हैं। —ल. तंत्र

* * * * * * * * * *

जगत्तत्व

चतुर्थ अध्याय

शिव–पार्वती–संवाद

चतुर्थ अध्याय

* जगततत्व *

जगत की योनि 'शक्ति' है—'शक्तिरेषा जगद्योनि'—
(ल.तं. 26/19)

ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णु
र्वनानि विष्णुर्गियो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं
यदस्त यन्नास्ति च विप्रवर्य।। (2/38)
'एकं सदैकं परमः परेशः, स वासुदेवो नयतोऽन्यदस्ति।।'
—विष्णु पुराण

यतोयश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः
—(वि.पु. 17/1/22)

स च विष्णुः परं ब्रह्म, यतः सर्वमिदं जगत्।
जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिंश्च लयमेष्यति। (2/40)
तब्रह्म तत्परं धाम सदसत्परमं पदम्।
यस्य सर्वमभेदेन यतश्चैतच्चराचरम्।।
स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः।
तस्मिन्नेव लयं सर्वं भाति तत्र न तिष्ठति।। (2/42)
शक्ति में स्थित है—
'सैषा कुण्डलिनी शक्तिर्यस्यां कुण्डलितं जगत्।—(ल.तं. 26/15)
'रुपं महत्ते स्थितमत्र विश्वं' (यह निखिल ब्रह्माण्ड ही आपका स्थूल रूप है। —(1/74)
'विद्या वेद्यं सर्वात्मस्त्वन्मयं चारित्वलं जगत । (1/71)
'सर्वव्यापिन जगद्रूपं जगत्स्त्रष्ट र्जनार्दन।। (1/39)
'हिरण्यगर्भो ब्रह्माण्डभूतो ब्रह्मा भगवान प्राग्बभू।। (4/1/5)
'त्वं पयोनिधयश्शैल सरितस्त्वं वनानि च।
मेदिनी गगनं वायुरापोऽग्निस्त्वं तथा मनः।

बुद्धिख्याकृत प्राणाः प्राणेशस्त्वं तथा पुमान्।
पुंसः परतरं यच्च व्याप्य जन्म विकारवान्।। (5/34)
सर्ग स्थिति विनाशानां जगतो यो जगन्मयः।
(1/4)—विष्णु पुराण

जगत संकर्षण में काले तिल के समान स्थित है।
(—अहि.सं. 55/36)

'सर्वाथस्त्विमज विकल्पनाभिरे तै
र्देवा र्धैर्मवति हि यैरनन्त विश्वम्।
विश्वात्मा त्वमिति विकार हीनमेत
त्सर्वस्मिन्न हिं भवतोऽस्ति किञ्चिदन्यत्।। (5/55)

* वैष्णवागम की अद्वैत दृष्टि—

'स एवेदं जगत्सर्वं स्थूलसूक्ष्ममयं च यत्।
अज्ञानाद्रजतं भाति शुक्तिकायां यथा प्रिये।
ज्ञानात्तद्रजतं देवि तस्यामेव विलीयते।
तक्षाक्षरे परे ब्रह्मण्याभाति सकलं जगत्। (माहेश्वर तंत्र 1/33)

1. *जगत्तत्व*

'अहं पञ्चभूतान्य पञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत'(देव्यथर्व शीर्ष)

(1) *जगत लक्ष्मी की आत्मभित्ति पर उनका स्वेच्छोन्मीलन है*

भगवती कहती हैं कि मैं आत्मभित्ति पर स्वेच्छापूर्वक समस्त विश्व का उन्मीलन करती हूँ। निखिल लोक मुझसे उसी प्रकार स्फुरित होते हैं यथा जल में पक्षी विहार करते हैं—

'आत्मभित्तौ जगत्सर्वं स्वेच्छयोन्मीलयमाम्यहम्।
मयि लोकाः स्फुरन्त्येते जले शकुनयो यथा।। (13/22)

(2) *भगवती लक्ष्मी एक दीवार हैं और जगत उस पर अंकित चित्र है*

भगवती कहती हैं कि मुझे दीवार मानकर जगत को उस पर अंकित चित्र के रूप में जगत का स्मरण करना चाहिए। जिस प्रकार स्थिर गंभीर अपार सागर में फेनों के पिण्ड होते हैं उसी प्रकार इस जगत को मुझ सागर से उत्पन्न फेन के पिण्ड के समान मानना चाहिए—

'मयि वा भित्तिभूतायां चित्रवत् संस्मरेज्जगत्।
स्तिमिता पारगंभीरे फेन पिण्डं यथाम्बुधौ।। [1]

(3) *'जगत' यथार्थतः पराशक्ति लक्ष्मी का ही रूपान्तर है*

भगवती लक्ष्मी प्रत्यक्षतः तो दृष्टिगत होती नहीं किन्तु यदि उनका पार्थिव प्रत्यक्ष रूप देखना ही हो तो उसे उनके स्वपर्याय जगत के रूप में देख सकते हैं। चूंकि भगवती लक्ष्मी जगत के रूप में लक्ष्यमाण हैं इसीलिए उन्हें 'लक्ष्मी' कहा भी जाता है—

जगत्तया लक्ष्यमाणा सा लक्ष्मीरिति गीयते। (अहि.सं. 3/9)

(4) *'जगत' परा चिति शक्ति का आत्मसङ्कोच है *

वैष्णवागम यह मानता है कि यह विराट विश्व प्रकृतिसत्ताक या

(1) ल.तं. (45/32)

स्वसत्ताक नहीं प्रत्युत लक्ष्मीसत्ताक है और परा चितिशक्ति का आत्मसङ्कोच मात्र है—

जगदाकारसङ्कोचात् स्मृता कुण्डलिनी बुधैः।

(5) *'जगत' तत्त्वतः विष्णु ही है

वैष्णवागम के प्रमाण-ग्रंथ—**'विष्णु पुराण'** (प्रथम अंश)में कहा गया है कि—

1. जगत विष्णु से आविर्भूत हुआ है।
2. यह भगवान विष्णु में स्थित है और
3. भगवान ही जगत की स्थिति एवं लय के कर्ता हैं तथा
4. यह जगत भी भगवान विष्णु ही हैं—

'विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम्।
स्थितिसंयमकर्ताऽसौ जगतोऽस्य जगच्च सः।। (1/31)

* * * * * * * * * * * * * * * * * *

2. *जगत और 'वासुदेव' —

'भगवान सर्वत्र हैं और उनमें ही समस्त विश्व बसा हुआ है' —इसीलिए ही विद्वान भगवान को 'वासुदेव' कहते हैं—

'सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततः स वासुदेवेति विद्धद्भि, परिपठयते।। (वि.पु. 1/12)

वे ही 'वसुदेव' विष्णु हैं—

1. वे विश्वरूप हैं, वे जगत के मूलभूत उपादान हैं।
2. वे विश्व की उत्पत्ति-स्थित-संहार के कारण हैं।
3. वे विश्व के अधिष्ठातान हैं—

'सर्गस्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने।
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांस मणीयसाम्।। (वि.पु. 1/5)

परमात्मा 'जगन्मय' है

'ततस्तु तत्परं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः।।' (वि.पु.)

संसार मे दो सत्तायें हैं—रचनाकार और रचना या कर्ता तथा कार्य। इन्हीं की समष्टि का नाम है जगत। विष्णु पुराण (प्रथमांश) में कहा गया है—

1. वे सर्वस्वरूप, श्रेष्ठ, वरदायक एवं वरेण्य भगवान विष्णु ही रचनाकार भी हैं और रचित भी हैं, वे ही पालक भी हैं और पालित भी हैं, वे ही संसार के संहर्ता भी हैं और वे ही संहार किया गया (उपसंहृत) जगत भी हैं—

'स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता,
स एव पात्यत्ति च पाल्यते च।
ब्रह्माद्य वस्थाभिर शेषमूर्तिर्विष्णु वरिष्ठो वरदो वरेण्यः।
कारण यह है कि वे ही 'विश्वरूप' भी हैं—
'स एव सर्वभूतात्मा विश्वरुपो यतोऽव्ययः।। (वि.पु.)

एक ही वासुदेव विष्णु जगत भी हैं, जगत का स्रष्टा भी है; जगत का पालक भी हैं और जगत का संहारक भी हैं। वह स्वयं जगत भी हैं।

प्रश्नः जगत तो सृष्टि है और परमात्मा स्रष्टा; जगत तो पालित है और परमात्मा पालक; जगत तो संहार (संहृति) है और परमात्मा संहारक है—ऐसी स्थिति में भला 'कार्य' 'कारण' कैसे बन सकता है? 'कारण' एवं 'कार्य' एक कैसे हो सकते हैं? —'विष्णुपुराण' इसका उत्तर देता हुआ इस तथ्य की पुष्टि में कहता है—

* 1. भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते।
नागपर्यंक शयने शेते च परमेश्वरः।
प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टिं करोति ब्रह्मरुपधृक।।

* 2. वे प्रभु विष्णु 'ब्रह्मा' बनकर अपनी ही सृष्टि करते हैं। पालक विष्णु बनकर पाल्यरूप अपना ही पालन करते हैं; और अंत में वे विष्णु ही रुद्र बनकर अपना संहार करते हैं—
'स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च।
उपसंह्रियते चान्ते संहर्ता च स्वयं प्रभुः।।

* 3. इतना ही नहीं प्रत्युत् पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश तथा समस्त इन्द्रियाँ और अन्तःकरण आदि जितना भी जगत है वह सब पुरुषरुप है और क्योंकि **विष्णु ही विश्वरूप हैं और सर्वान्तरात्मा हैं।** (1)

* 4. जनार्दन सर्वव्यापी एवं जगद्रूप हैं—
सर्वव्यापिन जगद्रूप जगत्स्रष्टर्जनार्दन। (वि.पु.अ.18/2/39)

* 5. भगवान विष्णु जगत के स्रष्टा, जगत के पालक, जगत के भक्षक तो हैं ही साथ ही जगत भी हैं—
'एवमेष जगत्स्रष्टा जगत्पाता तथा जगत
जगद्भक्षयिता देवः समस्तस्य जनार्दनः। (वि.पु.22/40)

* 6. विद्या, वेद्य और सम्पूर्ण जगत भगवान विष्णु का ही स्वरूप तो है—
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः प्रजापतिः।
विद्या वेद्यं च सर्वात्मंस्त्वन्मयं चाखिल जगत्।। (2)

3. *'जगत' लक्ष्मी का आत्मसंकोचात्मक स्वरूप है*

भगवती लक्ष्मी कहती हैं—
'संङ्कोचो मामकः सोऽयं स्वच्छस्वच्छन्द चिद्धनः।
अस्मिन्नपि जगद्भाति दर्पणोदरशैलवत्।। (1)

सारांश यह है कि—(1)जगत भगवती लक्ष्मी का **आत्मसंकुचित स्वरूप** है (2) यह भगवती लक्ष्मी में उसी प्रकार परिलक्षित होता है यथा दर्पण में पर्वत।

4. *शक्ति (कुण्डलिनी शक्ति) में सम्पूर्ण जगत कुण्डलित है*

शक्ति के कुक्षि में ही तो जगत (ऊर्णनाभि के भीतर जाले की

(1 पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च।
सर्वेन्द्रियान्तःकरणं पुरुषाख्यं हि यज्जगत।।
स एव सर्वभूतात्मा विश्वरूपो यतोऽव्ययः।।-वि.पु.(अ.2/अंश1/श्लोक 68-69)

(2) वि.पु. (अ.9/71)

(1) ल.तं. (13/14)

भाँति) विद्यमान है—
'सैषा कुण्डलिनीर्यस्यां कुण्डलितं जगत।
शब्द शक्तिस्वरूपेण यथा तदवधारय।। [2]

5. ***'ऐं' (वाग्भव बीज) से ही जगत की उत्पत्ति होती है***

जगत अपने शब्दात्मक सूक्ष्म स्वरूप में 'ऐं' या वाग्भव की सन्तान है—
'शक्तिरेषा जगद्योनि स्त्रैलोक्यैश्वर्य दोज्ज्वला। (ल.तं. 26/19)
'सन्तिष्ठते परेत्येव मुदयास्तमयौ मम।
ईदृशीयं महाविद्या जगद्योनिर्गिरां प्रसूः।। [3]

6. ***स्वयं भगवान विष्णु ही जगत हैं—**

'विष्णु पुराण' में कहा गया है कि ब्रह्म के दो भेद हैं (1)मूर्त (2) अमूर्त। मूर्त रुप ही जगत है

1. 'एवमेष जगत्स्रष्टा, जगत्पाता तथा जगत्।।' (वि.पु. 22/40)
2. 'परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथदमखिलं जगत्।' (वि.पु. 22/)
3. 'अक्षरं' तत्परं ब्रह्म 'क्षरं' सर्वमिदं जगत्।
क्षराक्षरस्वरूपे ते सर्वभूतेष्व वस्थिते।
द्वेरुपे ब्रह्मणास्तस्य मूर्तं चामूर्तमेव च।।
(मूर्त क्षर। अमूर्त-ब्रह्म (अक्षर)। विष्णु मूर्तामूर्त एवं क्षराक्षर जगत।।

7. ***जगत परमात्मा का स्थूल स्वरूप है (वि.पु. 22/2)**

'रूपं महत्ते स्थित मत्र विश्वं' (वि.पु. 22/74)

8. ***लीलावाद**

उपनिषदों से लेकर 'ब्रह्म सूत्रों' तक तथा पुराणों से लेकर स्मृतियों तक तथा वेदान्त से लेकर शैव-शाक्त-वैष्णाव आगमों तक जगत को किसी परात्पर सत्ता की 'लीला' का अभिधान दिया गया है। वेदान्तसूत्रों में कहा गया है कि—
'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्।। (ब्र.सू.)।

---

(2) ल.तं (26/15) (3) ल.तं. (26/15)

वैष्णवागम भी जगत को भगवान पुरुषोत्तम की **'लीला'** ही मानता है:—

'पुरा कल्पावसाने तु भगवान पुरुषोत्तमः।
जगत स्रष्टुं मनश्चक्रे लीलारससमुत्सुकः।। (1)

अर्थात् प्रलय कालोपरान्त पूर्व काल में जब प्रलय काल का अन्त हो गया तब लीलारसबिहारी भगवान् पुनः जगत की सृष्टि रूप लीला करने के लिए उत्कण्ठित हो उठे।।

'अहिर्बुध्न्य संहिता' (30/3) में कहा गया है कि पूर्वकाल में भगवान नारायण देव अकेले ही थे अतः सृष्टि भी अस्तित्व में नहीं थी। अतः किसी लीलोपकरण के न रहने से उन्हें आनन्द की उपलब्धि नहीं हो पा रही थी—

'पुरा नारायणो देवः स्वयमेव व्यवस्थितः।
प्राक् सृष्टेर्न रतिं लेभे लीलोपपकरणादृते।
ततो लीलार्थमात्मानं बह्व कल्पयदीश्वरः।
अथ प्रधानमसृजनत् पुरुषाधिष्ठितं स्वतः।। (30/3,4)

अतः उन **लीलारसोत्सुक, लीला-प्रेमी** भगवान ने **'लीला'** के लिए अपने स्वरूप को अनेक रुपों में निर्मित कर डाला। उन्होंने स्वतः अपने से ही पुरुषाधिष्ठित **'प्रधान तत्व'** की रचना कर डाली। उन्होंने उस अव्यक्त से **'महत्तत्व'** की रचना की। **'महत्तत्व'** से गुणत्रयात्मक **'अहङ्कार'** की रचना की और फिर सात्विक अहङ्कार से 5 ज्ञानेन्द्रियों, 5 कर्मेन्द्रियों एवं मन की रचना की। सर्वदा पूर्णकाम परमेश्वर ने अपने द्वारा सृष्टि जगत के प्राणियों से **'लीलारस'** की अनुभूति की—

'सर्वदावाप्त सकलकामोऽपि परमेश्वरः।
जन्तुभिर्निजसृष्टैश्च लीलारस मथान्वभूत्।

प्रलयकाल होने पर परमात्मा एकाकी रह गया। इस एकाकीपन में उसका कहीं मन नहीं रमा—

'एकाकी स तदा नैव रमते स्म सनातनः।।
अतः—**'स लीलार्थं पुनश्चेदमसृजत् पुष्करेक्षणः।।** (38/10)

---

(1) अहि.सं.(41/4)

अतः परमात्मा ने नामरुपात्मक सृष्टि की—

'स पूर्वं नमरुपाणि चक्रे सर्वस्य सर्वगः।। (2)

'लीलोपकरणं देवः प्रकृति त्रिगुणात्मिकाम् (3)

9. *पदार्थ

* **'पदार्थ' (MATTER)** क्या है? क्या यह अंग्रेजी के 'MATTER' का पर्यायवाची या समतुल्यार्थक शब्द है? नहीं।

भारतीय दर्शन में 'पदार्थ' है—'पद' का 'अर्थ'। 'पदार्थ' (वस्तु) वह है जो अपनी पूर्वावस्था में या अपनी मूल अवस्था **में ध्वनि शक्ति (SOUND ENERGY)** था किन्तु अब वही **शक्ति (ENERGY)** रुपान्तरित होकर ठोस वस्तु बनकर उपस्थित है और उसे ही **'पदार्थ'** कहते हैं। यह **'शक्ति' (ENERGY)** कौन है? क्या यह ELECTRON की **अचेतन विद्युत्कणिका** है? नहीं। वास्तविकता तो यह है कि ब्रह्माण्डनायिका (परात्पर लक्ष्मी शक्ति) की जो विश्व व्याप्त चैतन्य शक्ति है जब वही ('जाग्रत'-'स्वप्त'-'सुषुप्ति' की अवस्थायें छोड़कर) मूर्च्छित अवस्था (या महा प्रसुप्तावस्था) में उपनीत हो जाती है तब उसे **'जड़'** कहा जाने लगता है। यथार्थतः **चेतन शक्ति से जड़ का आविर्भाव हो ही नहीं सकता। 'जड़ता'** जड़ता नहीं है प्रत्युत यह **चैतन्य की निद्रावस्था है। भगवती को चेतन एवं अचेतन दोनों कहा गया है।** उसका अर्थ यही है कि मानव, देव, दानव, पशु, पक्षी, सरीसृप आदि उदग्र **चैतन्य शक्ति वाले जीव** एवं पत्थर, लोहा, सोना, चांदी, मिट्टी आदि जड़ माने जाने वाली वस्तुओं में से **एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जो चैतन्य शून्य हो।** यही हैं सर्वचिन्मयवाद' का सिद्धान्त।

***'पदार्थ' और उसकी शक्ति**—**'लिङ्ग पुराण'** में पदार्थ और उसकी शक्ति पर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है—

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा विश्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः।

---

(2) अहि.सं. (अ.38/11) (3) अहि.सं. (अ.38)

शक्तिमन्तः पदार्था ये ते वै शर्वविभूतयः
पदार्थशक्त्यो या यास्तास्तां गौरीं बिधुर्बुधाः।। (1)

प्रश्नः प्रश्न फिर उठता है कि यदि जड़ कहा जाने वाला पदार्थ चैतन्य की निद्रावस्था या मूर्च्छतावस्था है तो इसे चैतन्य की निद्रावस्था न कहकर 'पद' का 'अर्थ' क्यों कहा गया है? 'पद' ('सुप्तिङ्न्तं पदम्) - वाक्य में प्रयोगार्ह 'प्रातिपदिक' = 'शब्द का अर्थ' क्यों कहा गया? पदार्थ से 'ध्वनि' का क्या सम्बंध है? परात्पर चैतन्य शक्ति का प्रथमावतार 'नाद' के रुप ही होता है। 'नाद' मूल ध्वनि है। सृष्टि के आदि में सर्जन-प्रक्रिया का स्वरूप नादात्मक है क्योंकि–
'सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्। आसीच्छक्तिस्ततो नादः' (पदार्थादर्श)

'विष्णु पुराण' (अंश 5/अ.18) में भगवान को पदार्थ और समस्त पादार्थिक जगत को अभिन्न कहा गया है–

'हे अज! जिन कल्पनामय पदार्थों से अनन्त विश्व का आविर्भाव हुआ है वे समस्त पदार्थ आप ही हैं और आप ही अविकारी आत्मवस्तु एवं विश्वरूप हैं। इन सम्पूर्ण पदार्थों में आप से भिन्न और कुछ भी नहीं है–

'सर्वार्थास्त्वमज विकल्पनाभिरेतै
र्देवाद्यैर्भवति हि यैरनन्त विश्वम्।
विश्वात्मा त्वमिति विकारहीनमेतत्
सर्वस्मिन्न हि भवतोऽस्ति किञ्चिदन्यत्।।

10. *जगत*

भक्तिसूत्रकार शण्डिलय-की जगद्विषयक दृष्टि–

ऋषि शाण्डिल्य कहते हैं कि–
'यह सम्पूर्ण जगत भजनीय भगवान से अभिन्न है क्योंकि सब कुछ उनका ही स्वरूप है–
'भजनीयेनाद्वितीयमिदं कृत्स्नस्य तत्स्वरूपत्चात्।।'
(तृतीय अध्यायः आ.1/85)

11. ***जीव और परमात्मा**

शाण्डिल्य की दृष्टि : जीव एवं ईश्वर में सम्बंध विषयक जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं

'तदैक्यं नानात्वैकत्वमुपाधियोगहानादित्यवत्

जैसे एक ही सूर्य उपाधि भेद से भिन्न भिन्न जल पात्रों में पृथ्क-पृथ्क प्रतिबिम्बत्त होकर (एक होकर भी) अनेक दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार जीव और ब्रह्म एक ही हैं किन्तु उपाधि के कारण दोनों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

12. **सम्पूर्ण जगत नित्य एवं अक्षय है (वि.पु. की दृष्टि)**

'विष्णु पुराण' में कहा गया है—

'तदेतक्षरं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्।

आविर्भाव तिरोभाव जन्मनाश विकल्पवत्।। (22/68)

'आविर्भाव' एवं **'तिरोभाव'** (छिप जाना), जन्म एवं विनाश आदि विकल्पों से युक्त रहते हुए भी यह जगत नित्य एवं अक्षय ही हैं। 'विष्णु' ब्रह्म के परस्वरूप एवं मूर्तरूप (जगत) दोनों हैं।

'सर्वशक्तिमयो विष्णुः स्वरूपं ब्रह्मणः परम्।

मूर्तं............।। (तव.पु. 22/61)

भगवान विष्णु में यह सम्पूर्ण जगत ओत प्रोत है, उन्हीं से उत्पन्न हुआ है, उन्हीं में स्थित है और स्वयं भगवान ही समस्त जगत हैं—

1. **तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत**
2. **ततो जगत**
3. **जगत तस्मिन्**
4. **स जगच्चाखिलं मुने।। (वि.पु. 22/64)**

} जगत एवं विष्णु में ऐकात्म्य

(13) ***'जगत' भगवान का आभूषण और आयुध**

क्षराक्षरमय ईश्वर विष्णु ही इस पुरुष प्रकृतिमय सम्पूर्ण जगत को अपने आभूषण एवं आयुध के रूप में धारण करते हैं—

क्षराक्षरमयो विष्णु विभर्त्यखिलमीश्वरः।

पुरुषाव्याकृतमयं भूषणास्त्रस्वरूप वत।। (22/65)

14. ***सारे प्राणी एवं संपूर्ण चराचर जगत भगवान विष्णु ही हैं**

'विष्णु पुराण' (अ. 19/अंश 1/श्लोक 48) में कहा गया है कि— देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, सरीसृप। ये सभी भगवान विष्णु से भिन्नवत स्थित होते हुए भी श्री अनन्त के ही रूप हैं—

देवा मनुष्याः पशवः पक्षि वृक्षसरीसृपाः।
रुपमे तदनन्तस्य विष्णोर्भिन्नभिव स्थितम्।

अतः जगत को आत्मवत समझना चाहिए क्योंकि यह

15. ***समस्त विश्व विश्वरूपधारी विष्णु ही हैं—**

'एतद्विजानता सर्वं जगत्स्थावर जङ्गमम्।
द्रष्टव्यमात्मवद्विष्णुर्यतोऽयं विश्वरूवधृका'

वैष्णवागम में जगत का स्वरूप

वैष्णवागम में 'जगत' (शाङ्कर दर्शन के अनुकूल) मिथ्या मृगमरीचिका नहीं माना गया है प्रत्युत् उसे (भक्तिसूत्रों में प्रतिपादित दृष्टि के समान) परमात्मा से एकीकृत स्वीकार किया गया है—

1. ***शाङ्कर दृष्टि—'यदृष्टं तन्नष्टं।' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**
   श्रुति श्लोकार्धे न प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथ कोटिभिः।
   ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरः।। (शङ्कराचार्य)
2. ***भक्तिसूत्रकार की दृष्टि—** जगत भजनीय से अभिन्न है अतः जगत भगवद्रूप है। (नारद)
3. ***(क) वैष्णवागम की दृष्टि—('अहिर्बुध्न्य संहिता' के आलोक में)**

* क. **'शक्ति'** जगत् स्वरूप से लक्षित होती है। इसीलिए उसे लक्ष्मी कहा जाता है—

'जगत्तया लक्ष्यमाणा सा लक्ष्मीरिति गीयते।। [1]

---

(1) अहि. सं. (3/9)

सारांश यह है कि जगत लक्ष्मी से अभिन्न होने के कारण लक्ष्मीस्वरूप या शक्तिस्वरूप है।

* ख. चूँकि शक्ति (कुण्डलिनी शक्ति) कुण्डलित होकर संकोचात्मक स्वरूप धारण करते हुए जगत बन जाती है इसीलिए उस शक्ति (लक्ष्मी शक्ति) को 'कुण्डलिनी शक्ति' कहा जाता है— अर्थात् जगत भगवती लक्ष्मी का आत्मसंकुचित स्वरूप—

'जगदाकार सङ्कोचात् स्मृता कुण्डलिनी बुधैः।। [2]

* ग. भगवती की 'स्वातंत्र्य शक्ति' ही जगत के रूप में स्वेच्छया रुपान्तरित हो जाती है इसीलिए भगवती को 'जगन्मयी' भी कहा गया है—

'स्वातंत्र्यरूपा सा विष्णोः प्रस्फुरत्ता जगन्मयी।'[3]

* *(ख) 'लक्ष्मी तंत्र' में जगत सम्बंधिनी दृष्टि—'लक्ष्मी तंत्र' में कहा गया है कि—जगत ब्रह्म की गोद की वस्तु है—

'क्रोडीकृत्याखिलं सर्वं ब्रह्मणि व्यवतिष्ठते।। [4]

'विश्व' भगवती की कृ ति है इसीलिए वे 'प्रकृति' कहलाती है— 'मत्त : प्रक्रियते विश्वं प्रकृतिः सास्मि कीर्तिता'। (4/5)

* * * * * * * * * * * * * * * * *

---

(2) अहि.सं. (3/12) (3) अहि. सं. (3/6) (4) अहि.सं (2/21)

सृष्टि - विज्ञान

पञ्चम अध्याय

श्रीश्रीमहालक्ष्मी

(वैष्णव तन्त्र की मूलोपदेशिका)

* पञ्चम अध्याय *

* सृष्टि-विज्ञान *

1) सृष्टि, उसका स्वरूप तथा सृष्टि-प्रक्रिया

2) सृष्टि तत्त्व

3) सृष्टि का मूल तत्त्व एवं मूल उत्स

4) परमात्मसंकल्प और सृष्टि—**'स्वातंत्र्य'** और **'संकल्प'**

5) **'शुद्धाध्वा'** का सर्ग—**'अशुद्धाध्वा'** का सर्ग

6) तत्त्व और वैष्णवागम

7) प्रकृति का यथार्थ स्वरूप

8) व्यूहों द्वारा आत्म-विभाजन

9) लक्ष्मी और सृष्टि

'सिसृक्षा लक्ष्णा पूर्वा पूर्णाहन्ता हरेरहम्।
सृष्टि रूपा पराशक्ति रुपेत्येवोदिता स्म्यहम।

1. * 'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता' *

भगवती लक्ष्मी का व्यक्त रूप या सिसृक्षा ही 'सृष्टि' है।

***सृष्टि का उपादान कारण**—सृष्टि का उपादान कारण भगवती लक्ष्मी है। जब नारद ने अहिर्बुध्न्य से पूछा कि—

'येनेदं ध्रियते विश्वं तन्तुना मणयो यथा'।

अर्थात् मणियों को धारण करने वाले सूत्र की भांति एवं समवायिकारण के रूप में जगत को कौन धारण करता है?' तो अहिर्बुध्न्य कहते हैं कि वह जगदाधार तो मात्र लक्ष्मी नामक शक्ति है। (8/35)

***जगत का आधार**—जगदाधार **'सुदर्शन'** है। **'सुदर्शन रुपा क्रिया शक्ति' 'भूति शक्ति'** को भी धारण करती है—

'सुदर्शनेन क्रियया...भूतिः सा ध्रियते' (अहि.सं. 8/37)

***विष्णु की आद्या शक्ति 'लक्ष्मी' है—**

'या सा शक्तिहरि राद्या लक्ष्मीर्नाम महामुने।

(अहि.सं. 8/35)

उसका 10 हजारवाँ अंश अपनी स्वतंत्रता से उद्भूत होकर **'क्रिया'** एवं **'भूति'** के भेद से आविर्भूत होता है। (वही : 8/36)।।

'क्रिया शक्ति' ही **'भूति शक्ति'** की सञ्चालिका है—

क्रिया प्रवर्तिका भूतेः सासुदर्शन रूपिणी।।'

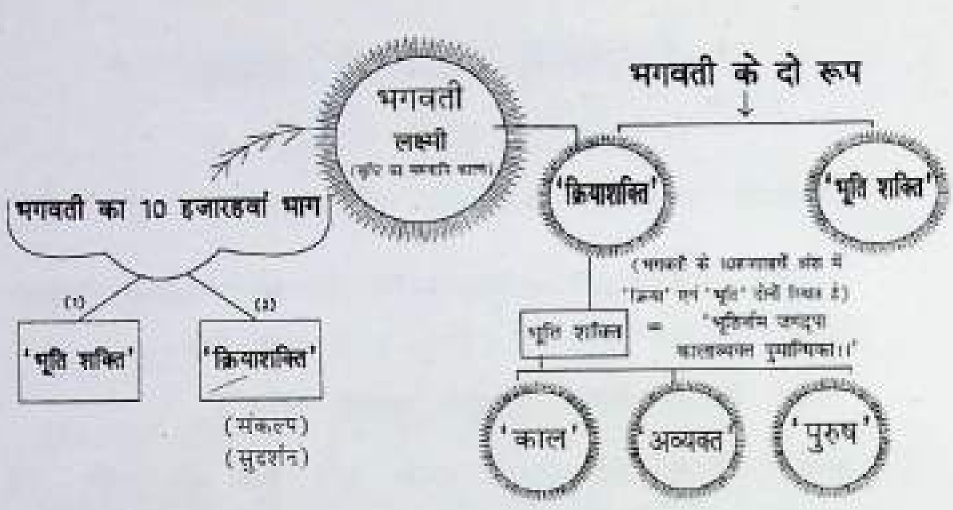

(1) *सृष्टि, उसका स्वरूप तथा सृष्टि-प्रक्रिया *

वैष्णवागम ने सांख्य, वेदान्त, पाशुपत, योग आदि अनेकों दर्शनों के सिद्धान्तों को स्वीकार करके 'पाञ्चरात्रमत' का ताना-बाना बुना है तथापि इसका उनके साथ मतभेद भी है। वै.आ. में कारणकार्यवाद (CAUSATION) की दृष्टि इस प्रकार है—

'या सा शक्तिर्नगद्धातुः, कथिता समवायिनी। लक्ष्मीर्नाम द्विधा सा तु क्रिया-भूति विभेदिनी! या 'क्रिया' नाम संकल्पः स सुदर्शन नामवान।। (अहि.सं. 8/30)

*** 'वैष्णवागम का कारणकार्यवाद**—वैष्णवागम का कार्य कारणवाद **लोकोत्तर कार्यकारणवाद** है क्योंकि इसमें **'कारण'** भी लक्ष्मी हैं और **'कार्य'** भी लक्ष्मी हैं। वही **'क्रिया शक्ति'** भी हैं और **'भूति शक्ति'** भी हैं।

'शक्ति' के दो रूप हैं-(1) **'क्रिया'** (2) **'भूति'**। संकल्प ही **'क्रिया'** एवं **'सुदर्शन'** है।

सांख्य दर्शन एवं वैष्णवागम (ना.पञ्च) की दृष्टियों में विरोध

सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि क्रम का स्वरूप इस प्रकार है—

पुरुष प्रकृति संयोग→ महत्तत्त्व→ अहंकार→ सात्विक अहंकार→ मन/5 ज्ञानेन्द्रियों /5 कर्मेन्द्रियों (11) तत्व। (तामस अहंकार)–5 तन्मात्रायें→ शब्द→(आकाश), स्पर्श→वायु)→रूप→(अग्नि) रस→(जल) गन्ध→(पृथ्वी) = 5 तन्मात्रायें →5 महाभूत→जगन्निर्माण।।

* **सांख्य दर्शन–प्रतिपादित दृष्टि**— सांख्यकारिका (22) में सृष्टि-क्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

'प्रकृतेमहांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पञ्चम्य: पञ्च भूतानि।।'

इसके अनुसार सृष्टि-क्रम का स्वरूप इस प्रकार होगा—

पुरुष (नित्य तत्व) + प्रकृति (नित्यतत्व)	(प्रकृति-पुरुष संयोग के कारण सृष्टि।।)
महत्तत्व→ अहङ्कार: (1) सात्विक अ.→ मन सहित 11 इन्द्रियां सात्विक अहंकार से उत्पन्न हुईं।	{ तामस अहंकार से पञ्च तन्मात्रायें पञ्चमहाभूत

सृष्टिक्रम—(यह सृष्टि क्रम सांख्य के विरुद्ध है)

सृष्टि के आरंभ में **'महत्तत्व'** हुआ। **'महत्'** से **'अहंकार'** **अहंकार'** से **'रूपतन्मात्र।'**, **रूपतन्मात्रा** से **'शब्द तन्मात्रा'**, शब्द तन्मात्रा से **'स्पर्शतन्मात्रा'** उत्पन्न हुई। यही सृष्टि क्रम है।

'महतो वै सृष्टिविधौ चाहङ्कारीऽभवन्मुने।
ततो हि रुपतन्मात्रं शब्दतन्मात्र इत्यतः।
ततो हि स्पर्शतन्मात्रमेवं सृष्टि क्रमो मुने।।
'सृष्टि बीज स्वरूपा सा नहि सृष्टिस्तया बिना।। [1]
'तस्यापि मायया सार्धं सर्वं विश्वं महामुने।

(1) नारद पञ्चरात्र (2/6/27-28)

(3) * सृष्टि तत्त्व *

वैष्णवागम के अनुसार समस्त **सृष्टि भगवती लक्ष्मी का आत्म विस्तार** है और यह निखिल विश्व लक्ष्मीनारायण का स्वस्वरूप है। भक्तिशास्त्र भी यही मानता है—

'भजनीयेनाद्धितीयमिदं कृत्स्नस्य तत्स्वरूपत्वात्'

(शा.भक्ति सूत्र 3/85)

क *स्वातंत्र्यवाद

भगवती का **'स्वातंत्र्य'** ही सृष्टि का उत्स है—

'हेत्वन्तरान पेक्षं यत 'स्वातंत्र्यं' विश्वनिर्मितौ'। (ल.तं.4/9)

*भगवती की विज्ञान एवं ऐश्वर्य की शक्ति ही **'सृष्टि' 'स्थिति' 'प्रलय'** तीनों का कारण है (ल.तं. 4/11)*

जीवों के कर्म, अज्ञान, मल उनकी वासना एवं 'अविद्या' ही (कर्म भोग करने के उद्देश्य से) **'तिरोधायिका शक्ति'** की सहायता से 'सृष्टि' कराती हैं।

'संकल्प' ही सृष्टि का मूल है। 'अहिर्बुध्न्य संहिता' (14/) में कहा गया है कि **'सुदर्शन नामक जो संकल्प है वह सृष्टि का मूल है।'** मुख्यतः उसके निम्न भेद हैं—**(1) 'सृष्टि' (2) 'स्थिति' (3) 'प्रलय' (4) 'निग्रह' और (5)** 'अनुग्रह'।

उसकी तिरोधायिका शक्ति का नाम है—**'निग्रहात्मिका शक्ति'**। वही 'जीव' संज्ञक पुरुष को (1) आकार (2) ऐश्वर्य एवं (3) विज्ञान द्वारा तिरोभूत करती है। ये **'तिरोभावन', 'बन्धन', 'मल' एवं 'अज्ञान'** सृष्टि के अपर पर्याय हैं।

ख. *लक्ष्मी द्वारा सृष्टि— भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि—

1. जो सर्वस्वरूपा सनातनी हरि की अहन्ता हैं
2. जो शुद्ध आनन्दमयी चित्स्वरूपा हैं।
3. जो सदैव सर्वत्र सम्यक् रूप से विद्यमान रहती हैं वही मै लक्ष्मी हूँ और वही मैं—
4. स्वयं की सिसृक्षा से संयुक्त होकर स्वल्प आत्मबिन्दु से शुद्ध, पूर्ण षाड्गुण्य विग्रह से सृष्टि करती हूँ—

'सां सिसृक्षया युक्ता स्वल्पाल्पेनात्म बिन्दुना।
सृष्टिं कृतवती शुद्धां पूर्ण षाड्गुण्यवि ग्रहाम्।। (1)

ग. सृष्टि (शुद्ध-अशुद्ध)

↓

1 'शुद्ध शक्ति'	2 'शुद्ध सृष्टि'	'अशुद्धशक्ति'	'अशुद्धसृष्टि'

(सृष्टिशक्तिद्विधा सा मे शुद्धयशुद्धिवशान्मया।। (12/36)

सृष्टि के अन्य भेद

↓

1	2	3
भाविकी	लैंगिकी	भौतिक

(ल.तं. 12/39)

(1) **'भाविकी सृष्टि'**—महत्त तत्व से जिस सृष्टि का आविर्भाव होता है उसे 'भावसृष्टि' या **'भाविकी सृष्टि'** कहते हैं:

'या स्थितिर्महदादेः सा भावसृष्टिर्निगद्यते।।

(2) **'लैंगिकी सृष्टि'**—समष्टि एवं व्यष्टि के भेद से जिन लिंगों का सृजन किया जाता है उनमें तथा अन्यों से होने वाली भौतिक सृष्टि, **'लैंगिकी सृष्टि'** है।

(3) **विराज—'महत्तत्व'** से **'विशेष'** पर्यन्त जो तेईस तत्व हैं वे सभी लिंग देहस्थ होते हैं। उन्हें **'विराज'** कहा जाता है।
भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि—
'साहं सृजामि स्वाच्छन्द्यात् द्विधा भेद मुपेयुषी।
चेत्यचेतनभावेन चिच्छक्तिश्चेतनोऽनयोः।।

---

(1) ल.तं. (5/1-2) *यदि यह कहा जाए कि सृष्टि तो भगवान की माया शक्ति करती है फिर ऐश्वर्य शक्ति को सृष्टि का कारण क्यों कहा गया? कारण यह है कि ऐश्वर्य शक्ति माया है (भक्तिसूत्र : शाण्डिल्य3/85)

(4) *भगवती का सर्वात्मस्वरूप एवं सृष्टिस्वरूप—

*** भगवती ही निखिल सृष्टि हैं*** (सृष्टिकर्त्री एवं सृष्टि में अभेद)

'वैष्णवागम' योगियों के इस कथन के अनुरूप कि-

सृष्टिस्तु कुण्डलीरूपा* सृष्टि को लक्ष्मीस्वरूपा मानता है। **'लक्ष्मी तंत्र'** (अ.14/46-54) में कहा गया है कि भगवती कहती हैं कि —काल, देश, आकार, क्रिया, कर्ता, करण, देव, दैत्य, नाग, गंधर्व, राक्षस, विद्याधर, पिशाच, 8 प्रकार के भूत, मानव, पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप, स्थावर एव अन्य निम्न श्रेणी के सारे जीव—सभी कुछ मेरा ही स्वरूप हैं। स्वर्गवासी, नरकवासी, 14 भुवनों के निवासी, नदियाँ, द्वीप, समुद्र के निवासी विविध जीव जन्तु, उच्च नीच तत्व, विविध शब्द राशि, भोग्य-भोग के उपकरण एवं भोग स्थान—ये सभी मेरे ही स्वरूप हैं और उन सभी में मैं ही रहती हूँ। 6 कोश, चेतन-अचेतन आत्मायें, शुद्धाशुद्धमय भाव, चार पुरुषार्थ, भावाभावस्वरूप काल कलित वस्तुएं ये सभी मुझ से युक्त एवं मुझ से अयुक्त हैं।

सभी मुझ लक्ष्मी में ही लीन होकर अवस्थित हैं। मैं सभी की आत्मा हूँ— **'इत्येत् सकलं वस्तु भावाभावस्वरूपकम्।
अमन्मयं मन्मयं च लीन व स्थितम्।
सर्वात्मना सदैवाहं स्वच्छस्वच्छन्द चिन्मयी।।** (1)

(5) सृष्टि का समवायि कारण— सृष्टि के अनेक कारण हैं यथा

'उपादान कारण' 'निमित्त कारण' 'सहकारी कारण' समवायि कारण-असमवायि कारण आदि। वैष्णवागम के अनुसार सृष्टि का **'समवायि कारण'** (प्राणभूत, आत्म समवेत कारण भगवती लक्ष्मी हैं।(2)

(6) *सृष्टि का मूल तत्व एवं मूल उत्स*

सृष्टि के मूल तत्वों की संख्या—नारद जी ने अहिर्बुध्न्य से पूछा कि 'यह विराट सृष्टि कितने तत्वों से निर्मित हुई है? सृष्टि के मूल संघटक तत्वों की संख्या के विषय में तत्वविदों में दृष्टि भेद है अत: आप बताइए कि सृष्टि कितने तत्वों से निर्मित हुई है?

---

(1) ल.तं. (14/46-54) अहि.सं. (8/28-29) कारण कथितं देव।
या सा शक्ति जगद्धातुः कथिता समवायिनी।

'केचित् त्रैमूर्तिकीं सृष्टिं ब्रुवते तत्ववादिनः।
'चतुर्भुमयी मन्ये केऽप्यन्ये पाञ्चभौतिकीम्'

(7) *सृष्टि के मूल तत्व और उनकी संख्या।

सृष्टि के मूल संघटक तत्वों के विषय में भिन्न-भिन्न मत।

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
सृष्टि के मूल तत्व तीन हैं।	मूल तत्व = चार हैं।	मूल तत्व = पांच हैं।	मूल तत्व = छः हैं।	मूल तत्व = सात हैं।

(6)	(7)	(8)	(9)
मूल तत्व = आठ हैं।	मूल तत्व = नौ हैं।	मूल तत्व = दस हैं।	मूल तत्व = ग्यारह हैं।

(1)

(8) *सृष्टि का मूल स्त्रोत या जनक

सृष्टि के 'मूल कारण' के विषय में विभिन्न दृष्टियां—

(मुनि, सिद्ध, देवता और वेदों की दृष्टियां) (2)

↓

सृष्टि का जनक-अण्ड	सृष्टि का जनक-पद्म	सृष्टि का जनक-पावक	सृष्टि का जनक कायान्तर।

* सृष्टि के जनकः (अन्य दृष्टियां)

(नाना शास्त्रों की नाना दृष्टियां) (3)

1	2	3
जनक विद्या का गर्भ	शून्य	'अण्डजामपरे सृष्टिं पद्मजामपि चापरे।। पावकीमपरे सृष्टि केचित् कायान्तरोद्भवम्। विद्या गर्भमयीमेके शून्यरुपमथापरे। इत्थमुच्चाचार्थास्ते नाना शास्त्रमहोद धौ। —अहिर्बुध्न्य संहिता

(1) ल.तं.(अ.8/2-5) (2) ल.तं (अ.8/6) (3) ल.तं. (अ.8/7-8)

अहिर्बुध्यन्य की दृष्टि—

1. एक परमात्मा ही सबसे बड़ा देवता है। उसमें 6 उज्जवल गुण हैं।
2. वह मूल तत्व **'परमात्मा'** आदि-अन्त से हीन है और तटस्थ लक्षणों से स्तवन का विषय बनता है।
3. सृष्टि के मूल तत्व को कोई भी तत्ववेत्ता नहीं जान सका।
4. भगवती विष्णु-प्रिया, 'भा' या 'शक्ति' (लक्ष्मी) 'षाड्गुण्य विग्रहा' हैं और एक हैं। यद्यपि वे एक हैं तथापि तत्ववेत्तागण उनकी उपासना अनेक नामों से किया करते हैं।

* शक्ति और सृष्टि—

5. जब श्री विष्णु की **'शक्ति'** अपने **'संकल्प'** से सृष्टि करने के लिए संजिहीर्षावश संहार करने के लिए प्रवृत्त होती है तब अपने **'विज्ञानबल'** की विषमता से तत्वविदों ने न्यूनाधिक रूप से जितना देखा उतना शिष्यों को बता दिया। इसीलिए तत्वसंख्या का निर्णय नहीं हो पाया।

* स्वातंत्र्य शक्ति—

6. **'षाड्गुण्य'** वाले विष्णु की **'स्वातंत्र्य शक्ति'**, जिससे कि सृष्टि होती है, वह सबके लिए अतर्क्य, अज्ञेय एवं अनानुमेय है।
7. विष्णु के सृष्टि तत्व में प्रकारों के अनन्त होने के कारण ही किसी ने उसे एक प्रकार का माना तो अन्य ने दूसरे प्रकार का माना।
8. **'महाशक्ति'** (लक्ष्मी) ही सृष्टि की **'समवायि कारण'** हैं यथा पट का समवादिकारण तन्तु हैं। **'महालक्ष्मी'** सृष्टि का समवायिकारण हैं—

'कारणं कथितं देव सर्वज्ञ वृषकेतन।
या सा शक्तिर्जगद्धातुः कथिता समवायिनी।।'

* क्रिया-भूति, संकल्प एवं सुदर्शन

लक्ष्मीर्नाम द्विधा सा तु क्रिया-भूतिविभेदिनी।
या क्रिया नाम संकल्पः स सुदर्शन नामवाद।

* भगवती के दो रूप

↓

'क्रियाशक्ति'
(भूति को प्रवृत्त
कराने वाली
शक्ति='सुदर्शन'।।

संसार का प्रत्यक्ष कारण = **'भूतिशक्ति'**

'भूति' के भेद

↓

1	2	3
काल	अव्यक्त	पुरुष

('भूतिर्नाम जगद्रूपा कालाव्यक्तपुभात्मिका)

(1) **एवं विष्णोः प्रिया भाः सा शक्ति षाड्गुण्य विग्रह।**
नानानामभिरेकापि तत्वविधि रुपास्यते।। (8/14)

(2) ***'भूति शक्ति'**= अशुद्धा शुद्धरुपा तु सा व्यूह-विभवात्मिका 'भूति'

1	2	3	4
शुद्धा	अशुद्धा	व्यूह रूपा -अहि.8/31	विभवरूपा

लक्ष्मी **हरि की शक्ति**

↓

(लक्ष्मी का 10 हजारहवां अंश अपनी स्वातंत्र्य शक्ति से उत्पन्न हो कर दो भागों में विभाजित —(अहि.स. 8/36)

↓

(1)	(2)
'क्रिया शक्ति'	**'भूति शक्ति'**

* सुदर्शन रूपा **'क्रिया शक्ति'**
'भूति' को धारण करती है।*

* प्रलय की स्थिति *

प्रसुप्ताखिलकार्यं यत् सर्वतः समतां गतम्
नारायणः परं ब्रह्म सर्वावासमनाहतम्।
पूर्णस्तिमित षाड्गुण्यमसमीराम्बरोपमम्।।
तस्य स्तैमित्यं रूपा सा शक्तिः शून्यत्वरुपिणी।

— अहि.5/2

***प्रलय—**

जब ब्रह्मदेव सारे भूतों को अपने में उपसंहृत करके निस्तब्ध हो जाते हैं और फिर सो जाते हैं उसे ही जगत या सृष्टि का **'प्रलय'** कहा जाता है।[1]

***सृष्टि—**

अच्युताकाश में अकस्मात् चमकने वाली, परमात्मा की आत्मभूता शक्ति **विद्युत की भांति चमक** उठती है और उसी से सृष्टि होती है। यही **'लक्ष्मी शक्ति'** है।[2]

जब शक्ति से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मदेव का सिसृक्षामय रूप होता है तब जिस प्रकार वायु ज्वाला को उत्तेजित करता है उसी प्रकार वह **'संकल्प' भी उनकी सिसृक्षा को बढ़ाता है।**

तब वह चक्र दो अरों से विभूषित होकर **'उष्चक्र'** कहलाता है। इसे ब्रह्मदेव धारण करते हैं।

***उदय चक्र**

सङ्कर्षणरूप उन्मेष को सर्वदा धारण करने वाला चक्र **'उदय चक्र'** कहा जाता है।

प्रथम चक्र	द्वितीय चक्र	तृतीय चक्र	चतुर्थ चक्र
महारात्रिधर चक्र	उषश चक्र	उदय चक्र	ऐश्वर्य चक्र

पांचवां चक्र	छठवां चक्र	सप्तम चक्र
पञ्चारात्मकः 'शक्तिमहा चक्र'	षडर चक्र	'महासुदर्शन चक्र' (12 अरों से युक्त)

---

(1) संहताखिलभूतस्य स्तैमित्यं ब्रह्मणो ह्ययत्।
अप्ययः सा महारात्रि स्तत्सङ्कल्पेन धार्यते। (अहि.8/38)
*उस महारात्रि को संकल्पात्मक सुदर्शन धारण करता है। उस समय उस महारात्रि को धारण करने के कारण वह 'सुदर्शन' एक अरा वाला कहलाता है (8/39)
'शुद्धेतरात्मिकाभूति' को संकल्पमय चक्र धारण करता है।

(2) स्वातंत्र्यादेव कस्माच्चित क्वचित सोन्मेषमृच्छति। (अहि. 5/4-5)
आत्मभूता हि या शक्तिः परस्या ब्रह्मणो हरेः।
देवी विद्युदिव व्योम्नि क्वचिदुद्द्योतते तु सा। शक्ति विद्योतमाना सा।

अष्टम चक्र सहस्त्रार चक्र	विभव आदि व्यूहान्तरों को बारहों संकल्परूपी सुदर्शन धारण करते हैं।। यह वही छः अरों वाला *'षडरचक्र' है। 'षडरमहाचक्रं व्यूहान्तरविभावकम्। ऋत्वरं तत् समाख्यातं व्रतकामा उपासते।	विष्णु की महाशक्ति के आवेश से उत्पन्न
(विष्णु के अतितेज पुञ्जात्मक 'वैष्णव धाम' को जिसे 'परमव्योम' कहते हैं। उसे विष्णु का संकल्प रूप सहस्त्र अरों वाला चक्र धारण करता है।		'विभवान्तर' संज्ञक व्यूहों को धारण करने वाला।
		पद्मनाभ आदि व्यूहों को विष्णु का संकल्पधारण करता है।

(9) ***परमात्मा संकल्पवाद और सृष्टि—** भगवान वासुदेव के 'एकोऽहं बहुस्याम् के 'स्वसंकल्प' के कारण जो शक्तियां उनमें विलीन रहती हैं वे मेधाच्छादित व्योम में विद्युत के बार-बार कौंधने की भांति, भगवान के संकल्प से ही उन्मिषित हो उठती हैं। जिस 'संकल्प शक्ति' से सुषुप्त महाशक्ति जागती है उसे ही भगवान की अनिर्वचनीय 'स्वतंत्रता' ('स्वातंत्र्य शक्ति') कहते हैं।

(1)क. * स्वातंत्र्य *

'व्यनक्ति विविधान भावान् शुद्धा शुद्धान् समूर्तिकान।
तस्या उन्मेषमृच्छन्त्याः स्वातंत्र्यं यत् स्वनिर्मितम्।।(अहि. 5/6)

शक्ति 'स्वतंत्र' है (परनिरपेक्ष सर्वकर्ता है)। उसकी यह परनिरपेक्ष सर्वकर्तृत्व की शक्ति ही शक्ति का 'स्वातंत्र्य' है—

1. 'हेत्वन्तऽानपेक्ष यत् 'स्वातंत्र्यं' विश्वनिर्मितौ (ल.तं. 4/8)
2. 'स्वातंत्र्यमेव में हेतुर्नानुयोज्योस्मि किञ्चन।। (ल.तं. 3/31)
3. 'निरवधा स्वतंत्राहं नानुयोगपदे स्थित।
   विभजे बहुधात्मानं कर्तृ कर्म क्रियादिना।। (3/35 ल.तं.)
4. स्वातंत्र्यरूपा सा विष्णोः प्रस्फुरत्ता जगन्मयी।
   उदितानुदिताकारा निमेषोन्मेषरूपिणी।। (3/6 अहि.सं.)
5. स्वातंत्र्येण स्वरूपेण विष्णुपत्नीयमद्भुता।
   यतो जगद्भविष्यन्ती क्वचिदुन्मेष मृच्छति। (अहि.सं. 3/26)

ख. *'सङ्कल्प' —

'लक्ष्मीमय: प्राणरूपो विष्णो: सङ्कल्प उच्यते।
'स्वातंत्र्यमूल इच्छात्मा प्रेक्षारूप: क्रियाफल:।। (3/30)
'उन्मेषो य: सुसंकल्प: सर्वत्रा व्याहत: कृतौ।
(अहि.सं. 3/36)

'सोऽयं सुदर्शनं नाम संकल्प: स्पन्दनात्मक:।
विभज्य बहुधा रूपं भावेभावेऽवतिष्ठते। (अहि.3/39)

इस शक्त्यून्मेष की अवस्था में (प्रबोधन-काल में) लेश मात्र ही शक्ति का उन्मेष हो पाता है शेष समग्र शक्ति अव्यक्तावस्था में ही पड़ी रहती है।

अव्यक्तावस्था में शक्ति और शक्तिमान में भेद रहने पर भी उसकी प्रतीति नहीं हुआ करती। यह एक निर्वात या स्पन्दन-शून्य निर्वाणावस्था है।

जिस संकल्प की सामर्थ्य से महाशक्ति जाग्रत होती है वह भगवान का अनिर्वचनीय 'स्वातंत्र्य' है।

(10) * 'षाड्गुण्य— वैष्णवागम में 'षाड्गुण्य' भी सृष्टि-विधायक तत्वों में से एक तत्व है। 'सृष्टि' शक्ति या प्रकृति का सहज स्वभाव है। 'षाड्गुण्य' भी सृष्टि का कारक तत्व है।

'षाड्गुण्य' के भेद

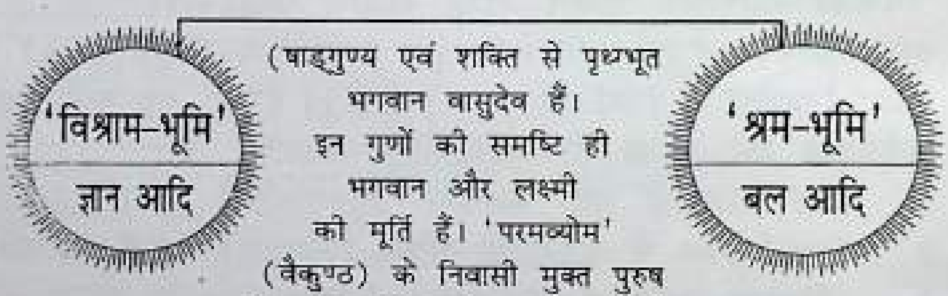

एक प्रदीप से दूसरे प्रदीप को जलाये जाने की भांति एक व्यूह से दूसरे व्यूह की अभिव्यक्ति होती है।

—

'संकर्षण'
1. ज्ञान } प्रधान
2. बल } गुण
3. अन्य गुण गौण रुप में स्थित है

'प्रद्युम्न'
1. ऐश्वर्य } प्रधान
2. वीर्य } गुण
3. अन्य गुण गौण रुप में स्थित है

'अनिरुद्ध'
1. शक्ति } प्रधान
2. तेज } गुण
3. अन्य गुण गौण रुप में स्थित है

शुद्ध सृष्टि

'प्रद्युम्न'
'प्रद्युम्न' से ही पुरुष-प्रकृति का भेद व्यक्त होता है

ऐश्वर्य योग → मानव सर्ग
ऐश्वर्य योग → विद्या सर्ग

'समष्टि पुरुष'
मूल प्रकृति
सूक्ष्म काल

(वासुदेव →)
1. संकर्षण
2. प्रद्युम्न
3. अनिरुद्ध

'व्यूहशक्ति' की सृष्टि
(बहिरंगज सृष्टि)

'सनत्कुमार संहिता' के अनुसार
↓
वासुदेव
1. भगवान के मन से उत्पन्न— श्वेतवर्ण शान्तिदेवी
2. = संकर्षण।। (शांतिदेवी+संकर्षण = शिव तत्व।

↓

(संकर्षण के वाम पार्श्व से उद्भूता) रक्त वर्णा श्री + प्रद्युम्न (ब्रह्मा) और अनिरुद्ध (पीत वर्णा सरस्वती दोनों एकत्र पुरुषोत्तम)

↓

कृष्णवर्णा रति (ये त्रिविध माया कोश है)

'संकर्षण'
↓
समस्त विश्व का उद्भव

* **संकर्षण के शरीर में विश्व की स्थिति = तिलकालवत।**
बीजभूत विश्व/अनन्तभुवन समूह के आधार
* **बलदेव ही संकर्षण हैं**

(11) * शुद्धाध्वा का सर्ग *

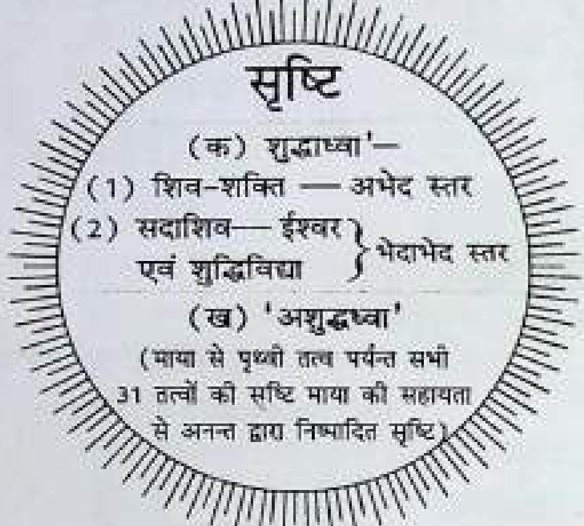

(क) **शुद्धअध्वा-**
(1) अभेद भूमिका
(2) भेदाभेद भूमिका 31 तत्वों की सृष्टि।
(ख) **अशुद्धअध्वा-**

1. **'शुद्धाध्वा'–'शिवतत्त्व'** से लेकर **'शुद्धविद्यातत्त्व'** तक के प्रमाताओं की सृष्टि **'शुद्ध अध्वा'** है।
2. **'शुद्धाध्वा'** माया से ऊपर की सृष्टि है। इसके कर्ता साक्षात् भगवान शिव हैं।
3. परमशिव की स्वतंत्र इच्छा पर आश्रित यह आदिसर्ग कर्मसिद्धान्त-निरपेक्ष है।
4. इस सर्ग का प्रमाता वर्ग मितात्मक नहीं विश्व-प्रमाता एवं चिदात्मक होता है। यह समष्टि-प्रमाता या विश्व-प्रमाता के रूप में ही अपनी अनुभूति करता है। ये सारे प्रमाता **'शुद्ध प्रमाता'** कहे जाते हैं
5. 'शांभवा: शाक्ता: मन्त्र महेश्वरा: मंत्रेश्वरा: मंत्रा— इति शुद्धोध्वा। इयति साक्षात् **शिव:** कर्ता।। ('तंत्रसार')
6. शुद्ध प्रमाताओं की दृष्टि **'शुद्धविद्या'** कहलाती है।
7. **'शुद्धाध्वा'** में अहंरूप प्रमाता एवं इदम्रूप प्रमेय चिन्मात्रविश्रान्त होते हैं।

(12) * सृष्टि के भेद *

क. 'शुद्धाध्वा'*

(क) 'अभेदभूमि' (ख) 'भेदाभेदभूमि'।।

(1) शिव (2) शक्ति **(अभेद भूमिका)**

1. सदाशिव (2) ईश्वर (3) शुद्ध विद्या **('भेदाभेद भूमिका')**

ख. 'अशुद्धाध्वा'

***(भेद भूमिका) :** 31 तत्त्वों की सृष्टि माया की सहायता से अघोर या अनन्त द्वारा की जाती है।

* 'सदाशिवतत्व' : 'मंत्र महेश्वर' *

प्रमेयरूप 'ईश्वर तत्त्व' के प्रमाता 'मंत्रेश्वर' हैं। ईश्वर तत्त्व (प्रमेय) के विमर्श को 'इदमहम्' कहते हैं।

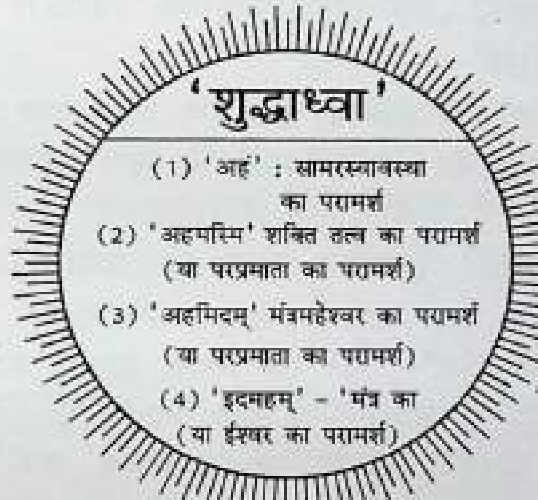

(1) 'सदाशिव तत्व में **विश्वाभास 'अहम इदम्' के रूप में होता है।** यहां पर 'अहंरूपप्रमाता' का प्राधान्य रहता है और 'इदम्रूपप्रमेय' (जगत) अप्रधान रहता है। यहां विश्वावभास अस्फुट रहता है और विश्व-परामर्श तो प्रमातृ परामर्श में छिपा रहता है अतः विश्व के प्रलय की दशा का परिचायक है। विश्व की अहं में लय होने के कारण इसे **'निमेष'** कहते हैं।

(2) शिव की **इच्छा का अन्तर्मुख स्पन्द 'सदाशिव'** एवं **बहिर्मुख स्पन्द 'ईश्वर तत्व'** कहलाता है। इसकी अभिव्यक्ति शिवेच्छा में **'क्रिया शक्ति'** के उद्रेक के कारण होती है।

* काश्मीरीय त्रिक दर्शन की दृष्टि—

'अहम्'

(1) शक्तिमान एवं शक्ति के सामरस्य में 'शिव' और 'शक्ति' का पृथक परामर्श नहीं होता अतः इस सामरस्यावस्था के परामर्श का स्वरूप केवल 'अहम' होता है।

'अनुत्तरविसर्गात्म शिव शक्त्यद्वयात्मनि।
परामर्शो निर्भरत्वादहमित्युच्यते विभोः।। [1]

*** 'अहमस्मि'—**

शक्ति की प्रधानता के कारण शक्ति तत्व के **'परप्रमाता'** के विर्मश का स्वरूप **'अहं'** के साथ **'अस्मि'** लगाने से प्रकट होता है अर्थात्

*** 'परप्रमाता' (शक्ति तत्व के प्रमाता) का—**

'अहमस्मि'—प्रलय (बोध) 'शक्ति तत्व' का द्योतक है।

'अहमस्मि'— का यह विमर्श आनन्द की स्फुटता है।

इसीलिए **'तंत्रसार'** में कहा गया है कि—परमेश्वर की आनन्द शक्ति का प्राधान्य होने पर वह **'शक्तितत्व'** कहा जाता है।

परमेश्वर की **'अभेद दशा'** में एक ही साथ दो तत्वों का अवभासन होता है—(1)अपरिमित **'अहं'**(**'प्रकाशरूप' विश्वोत्तीर्ण**) अन्तर्मुख होता हुआ **'शिवतत्व'** कहलाता है और (2) इसके विपरीत अपरिमित 'अहं' विमर्शरूप (विश्वमय) तथा बहिर्मुख होता हुआ **'शक्तितत्व'** कहलाता है। ये ही दो तत्व हैं—

**'शक्तिश्च शक्तिमांश्चैव पदार्थद्वयमुच्यते।
शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांश्च महेश्वरः।।'**

---

(1) तंत्रालोक (भाग 2 अ.3/203-204) क्या?

(2) 'अस्य जगत् स्रष्टुमिच्छां परिगृहीतवतः परमेश्वरस्य प्रथमस्पन्द एवेच्छा शक्ति तत्त्वम्।। -परा प्रावेशिका।। सदाशिव के पूर्व अत असत का विकल्प रहता ही नहीं। सदाशिव प्रथम तत्व हैं जिससे सत का ज्ञान होता है।

दोनों तत्व एक ही हैं क्योंकि शक्ति के बिना शक्तिमान एवं **'शक्तिभान' के बिना 'शक्ति' की कल्पना नहीं की जा सकती।**

शक्ति की प्रधानता होने पर शक्ति तत्व के 'पर प्रमाता' के विमर्श का स्वरूप 'अहं' के साथ 'अस्मि' लगाने से ही प्रकट होता है। पर प्रमाता का विमर्श 'अहमस्मि' वस्तुतः शक्ति तत्व का द्योतक है। 'शक्ति' है। **'अहमस्मि'** वस्तुतः शक्ति तत्व का द्योतक है। 'शक्ति' है।

* 'अहमिदम'— मंत्रमहेश्वर का विमर्श

शिव अपनी इच्छा मात्र से अभिन्न रूप में इस 'तत्व पञ्चक' को आभासित करता है और उक्त पांचों तत्वों के प्रमाता के रूप में अपने को प्रकाशित करता है।

(तत्त्वपञ्चक) (प्रमाता) 'शुद्धाध्वा'

↓

1	2	3	4	5
शांभव	शक्तिज	मंत्रमहेश	मंत्रनायक	मंत्र

1 शांभवाः मंत्रा इति	2 शक्तिजाः विशुद्धाः	3 4 मन्त्रमहेशा मन्त्रनायकाः। स्युरमी पंच गणाः क्रमात्।।

* प्रमेय (शुद्धाध्वा)

↓

1	2	3	4	5
शिव	शक्ति	सदाशिव	ईश्वर	शुद्धविद्या/सद्विद्या
'अभेद भूमिका'		'भेदाभेद भूमिका'		

'अहमिदम्'

(1) **'मंत्रमहेश्वर'** (सदाशिवदशा के प्रमाता) के विमर्श का स्वरूप **'अहमिदम्'** है।

(**'अहं'** = शिव का, **'इदम'** = विश्व का परिचायक है।)

इस तत्व-दशा के परामर्श में **'अहन्ता'** की प्रधानता एवं **'इदन्ता'** की गौणता रहती है। **अहंता के प्राधान्य** के कारण इस दशा में विश्व की प्रतीति अंकुरायमाण (पृथ्वी स्थित) बीज की भांति अस्फुट रहती है। यहां विश्व का विमर्श (विश्व की सत्ता रहते हुए भी) अहन्ता के परामर्श से आच्छादित रहने के कारण अस्फुटप्राय रहता है।

('सदेवां कुरायमाणमिदं जगत् स्वात्मनाहन्तयाच्छाद्य स्थितं रूपं सदाशिव तत्वम्' —'परा प्रावेशिका') 'अहमिदम्' का विमर्श और 'सदाशिवता—'तत्र यदा 'अहम्' इत्यस्य यदधिकरणं चिन्मात्ररूपं तत्रैवेद मंशमुल्लासयति तदा तस्या फुटत्वात् सदाशिवता—'अहमिदम्' इति। —ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी।

(13) *व्यूहत्रय और देवत्रय—

*** व्यूह और अवस्थायें ***

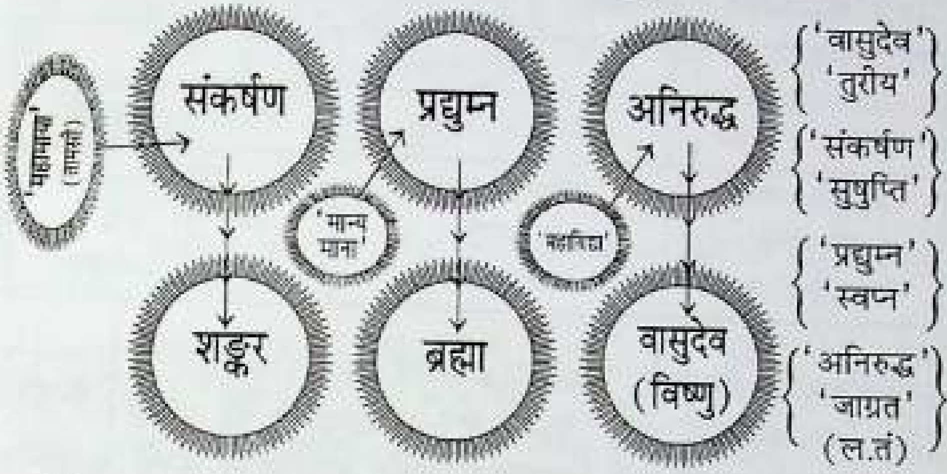

लक्ष्मी का तमोगुण प्रधानरूप = 'महामाया' (5/4)

1. लक्ष्मी के रजोगुणी 'प्रद्युम्न' के अंश से—
   (मानसी सृष्टि) (1) ब्रह्मा एवं (2) लक्ष्मी
2. लक्ष्मी के तामसी 'महामाया' के संकर्षण के अंश से—
   (मानसी सृष्टि) (शंकर सरस्वती)
3. लक्ष्मी के सतोगुणी 'महाविद्या' के अनिरुद्ध के अंश से—
   (मानसी सृष्टि) (1) विष्णु एवं (2) गौरी
4. लक्ष्मी के 'मन्यमाना' आदि रूप से (सत्वगुण से) सरस्वती।

* लक्ष्मी के → अल्पबिन्दु से 'महालक्ष्मी' (5/3) *

क. राजसिक ब्रह्मा + तामसी सरस्वती = पति-पत्नी
ख. सात्विक विष्णु + राजसिक लक्ष्मी = पति-पत्नी
ग. तामसिक शङ्कर + सात्विक गौरी = पति-पत्नी

(क) लक्ष्मी के 'महामाया' रूप द्वारा

सङ्कर्षण के अंश से → (1) शंकर (2) सरस्वती

(ख) 'महाविद्या' के रूप द्वारा

अनिरुद्ध के अंश से → (1) वासुदेव (2) उमा

भगवती लक्ष्मी के तमोगुणात्मक स्वरूप ग्रहण करने पर →
'महाकाली 'महामाया'

1	2	3
सरस्वती + ब्रह्मा	शिव + गौरी	वासुदेव + अम्बुजा
सतोगुणी विष्णु की पत्नी = रजोगुणी लक्ष्मी	तमोगुणी शिव की पत्नी = सतोगुणी गौरी	रजोगुणी ब्रह्मा की पत्नी = सरस्वती (तमोगुणी)

(1) 'लक्ष्मी तंत्र की 'लक्ष्मी'→'लक्ष्मी से महालक्ष्मी
(2) 'दुर्गासातशती' की 'महालक्ष्मी'→'महालक्ष्मी से लक्ष्मी (ध्यातव्य बिन्दु)
(3) भगवती लक्ष्मी द्वारा 'मन्यमाना' आदि रूप ग्रहण करके सत्वोन्मेष से → ब्राह्मी, सरस्वती, महाविद्या, भारती को उत्पन्न किया गया।

(1) सृजते ह्यनिरुद्धाऽत्र (2) प्रद्युम्नः पाति तत्कृतम्।
सृष्टं तद्रक्षितं चात्ति स सङ्कर्षणः प्रभुः (4/11)

(2) सृष्टि-स्थिति-प्रलय कार्य के द्वारा शास्त्र-धर्म।

'वासुदेव' जिसमें ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य एवं तेज षाड्गुण्य सम्पूर्ण रूप से विद्यमान रहता है वही भगवान वासुदेव अपने ही समान दूसरे 'वासुदेव' को प्रकट करते हैं—

'ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्य शेषतः।
उन्मिषन्ति यदा तुल्यं वासुदेवस्तदोच्यते।।''

(ल.तं. 4/13)

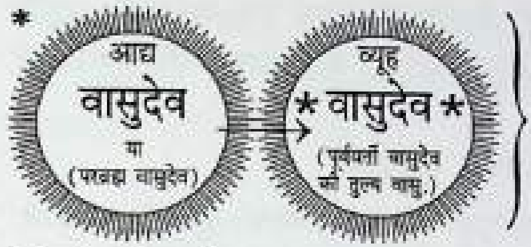

आद्य या परब्रह्म वासुदेव इनमें षाड्गुण्य (6हों गुण) संपूर्ण रूप से विद्यमान रहते हैं। व्यूहों में नहीं।

* 'शक्ति'—

'वासुदेव को जब सृष्टि करने की इच्छा होती है तब सर्वप्रथम मैं (लक्ष्मी शक्ति) प्रकट होती हूं।'

आद्य वासुदेव के षड्गुणों में से दो गुण : 'ज्ञान' एवं 'बल' के उन्मेष से 'सङ्कर्षण' का जन्म होता है और वे निखिल सृष्टि को धारण करते है।। 'सङ्कर्षण' विश्व को धारण करते हैं। उन्हें सारा विश्व अपने शरीर में एक तिलचिन्ह के समान प्रतीत होता है:

'तेषां ज्ञानबलोन्मेष 'सङ्कर्षण' उदीयते।
बिभर्ति सकलं विश्वं तिलकात्मकवत्स्वत:।। (4/14)

(14) *तत्त्व और वैष्णवागम मत—

तत्त्व दो प्रकार के हैं —(1)'चित तत्त्व' (2)'अचित तत्त्व'।
'अचित् तत्त्व' 24 प्रकार के है—(1)'प्रकृति' (2)'महत्तत्व' (3)'अहंकार' (4) 5 तन्मात्रायें (5) 5 महाभूत (6) 5 ज्ञानेन्द्रियां (7) 5 कर्मेन्द्रिया (8) 'मन'
'चित् तत्त्व' के भी दो प्रकार हैं— (1)'ईश्वर' (2)'जीव'। इस प्रकार सब मिलाकर वैष्णवागम में 26 तत्त्व स्वीकृत किए गए हैं। इनमें से जो 'प्रकृति तत्त्व' है यह व्यक्ताव्यक्त नित्य एवं प्रसवधर्मिणी है—

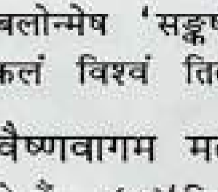

विश्राम

'इयं प्रकृतिरव्यक्ता कथिता ते सुराधिप।
व्यक्ताव्यक्तमयी सैषा नित्यं प्रसवधर्मिणी।'
'विलक्षणां सा विज्ञेया चिच्छक्तिरविनश्वरा।। [1]

तत्वों में से जो 'चित् शक्ति' है वह विलक्षण एवं अक्षर है। प्रकृति के तीन गुण हैं। ये नित्य तो हैं किन्तु साथ ही साथ सतत् परिणामशालिनी भी हैं। (1)

(15) *'प्रकृति' का यथार्थ स्वरूप

सतोगुण-रजोगुण एवं तमोगुण की साम्यावस्था को ही **'प्रकृति'** कहते हैं। प्रकृति में क्षोभ होने से जो प्रथम वैषम्योन्मेष होता है उसका नाम है **'महत्तत्व'**।

महत्तत्व की भी तीन विधायें हैं- (1) सात्विक उन्मेष को **'बुद्धि'** कहते हैं। (2) राजसिक उन्मेष को **'प्राण'** कहते हैं। (3) तामसिक उन्मेष को **'काल'** कहते हैं।(2) निरन्तर कुछ काम करते रहने ('अध्यवसाय') को **'बुद्धि'** कहते हैं। नित्य गतिशील रहने को **'प्राण'** कहते हैं। जो गतिशीलता का मूल कारण है उसे **'काल'** कहते हैं। महत्तत्व से जो विकार उत्पन्न होता है उसे **'अहंकार'** कहते हैं। (3)

(16) * व्यूहों द्वारा आत्म-विभाजन

---

(1) लक्ष्मीतंत्र:अ.16/10-12, 'प्रकृतिस्त्रिगुणा नित्यं सततं परिणामिनी। (ल.तं.16/17)

(2) वैषम्यस्य समुन्मेषो गुणानां प्रथमोहियः।
स महन्नाम तस्यापि विधास्तिस्त्रः प्रकीर्तिताः।।
सात्विको बुद्धिरित्युक्तो राजसः प्राण एव हि।
तामसः काल इत्युक्त स्तेषां व्याख्यामिमांश्रृणु

(3) बुद्धिरध्यवसायस्य प्राणः प्रयतनस्य च।।
'कालः' कलनरूपस्य परिणामस्य कारणम्।
महतोऽपि विकुर्वाण दहंकारो व्यजायत।। (ल.तं. 16/3-4)

'अहङ्कार' तत्त्व—'अहङ्कार' के तीन भेद हैं और ये भेद गुणों में वैषम्योदय के कारण हुआ करते हैं। **'तमोगुण'** से आकाशादि निर्मल तन्मात्राओं का जन्म होता है।

'सतोगुण' के उदेक से बुद्धि आदि इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं।
'रजोगुण' से कर्मेन्द्रियों का आविर्भाव होता है। **'मन'** की उत्पत्ति सतोगुण-रजोगुण के मिश्रण से होती है। (1)

*** 5 तन्मात्रायें**–
(1) शब्द (2) स्पर्श (3) रूप (4) रस (5) गन्ध

*** 5 महाभूत**–
(1) क्षिति (2) जल (3) पावक (4) समीर (5) गगन

*** 5 इन्द्रियां-कर्मेन्द्रियां**—
हाथ, पांव, गुदा, लिङ्ग और जिह्वा।

***ज्ञानेन्द्रियां**—
आंख, कान, नाक, जिह्वा एवं तचा।।

'मन': 11वीं इन्द्रिय है।

7 कार्य-कारण तत्व = महत्तत्व/अहङ्कार/रूप/रस/शब्द/गन्ध/स्पर्श
5 ज्ञानेन्द्रियां, 5 कर्मेन्द्रियां, 5 तन्मात्रायें एवं मन 'षोडशक' कहलाते हैं और मात्र **'कार्य'** एवं **'विकार'** कहे गए हैं। (2)

***प्रकृति का स्वभाव**—प्रकृति का स्वभाव इस प्रकार है—

अविवेकाऽप्य शुद्धा च सर्वजीवसमा सदा।
विषयोऽचेतना चैव सुखदुःखविमोहिनी।। (ल.तं.16)

---

(1) स तत्रापि त्रिविधो ज्ञेयो गुणवैषम्य संभवात्।
तामसाद्वियदादिस्तु तन्मात्रगण उज्ज्वलः।। 5।
जातः सत्वमुद्रिक्ताद्बुद्धीन्द्रियगणो महान्।
कर्मेन्द्रियगणश्चापि रजसादुभ्यात्मकम्।
उभयस्मात् समुदभूतमितीयं तत्त्वपद्धतिः।
अत्र प्रकृतिरेकैव मूलभूता सनातनी।। (16/6-7(ल.तं.)

(2) महदाद्यस्तु सप्तान्दे कार्यकारणरूपिणः।
तन्मात्रेभ्यः समुद्भूता विशेषा वियदादयः।
बुद्धिकर्मेन्द्रियगणौ पंचकौ मन एव च। विकारा एव विज्ञेया।

पुरुष की स्थिति—

मध्यस्थ: पुरुषो नित्य: क्रियावानप्यविह्वल:।
साक्षी दृष्टिस्तथा द्रष्टा शुद्धोऽनन्तो गुणात्मक:।।

(17) *पदार्थ—

नित्योदित, सदानन्दा, सर्वसमत्वापन्न, सर्वभावजननी, सर्वप्रत्यक्षभूता जो 'प्रतिभा' है वहीं पदार्थों के रूप में विराजमान रहती है—

नित्योदिता सदानन्दा सर्वत: समतां गता।
सर्वभावसमुद्भूति: सर्वप्रत्यक्षसम्मता।।
या ह्येषा प्रतिभा तत्तत्पदार्थ क्रमरूषिता।
उद्घृतेषु पदार्थेषु।।'

'सारे पदार्थ सक्रम है किन्तु भगवती अक्रमा हैं—
'साहमक्रमशलिनी।। (1)

(18) *सृष्टि तत्व—

पाञ्चरात्र दर्शन के अनुसार सृष्टि दो प्रकार की होती है—
(1) 'शुद्ध सृष्टि' (2) 'शुद्धेतर सृष्टि'

'जयारव्य संहिता' के अनुसार सृष्टि तीन प्रकार की है-
(1)'शुद्ध सर्ग' (2)'प्राधानिक सर्ग' (3)'ब्रह्म सर्ग'। निर्गुण ब्रह्म में उनकी निजी 'स्वातंत्र्य शक्ति' के उन्मेष से षड्गुणों का आविर्भाव हुआ करता है। भगवान जगत के कल्याणार्थ अपने को चार रूपों में विभाजित करके या चार अवतार धारण करके उदित होते है। ये हैं—(1)'व्यूह' (2)'विभव' (3)'अर्चावतार' (4)'अन्तर्यामी'अवतार। सृष्टि का प्रथम उदय 'गुणोन्मेष' कहलाता है।

भगवान की शक्ति का नाम है—'लक्ष्मी'। भगवान एवं लक्ष्मी में आभासित अद्वैतस्थिति वस्तुत: अद्वैतवाद का पोषक नहीं है—
'व्यापकावति संश्लेषादेकं तत्वमिव स्थिते।' (अहि.सं. 4/78)

(19) *शक्ति-शक्तिमान में सम्बंध

दोनों में धर्म एवं धर्मी, अहं एवं अहन्ता, चन्द्र एवं चन्द्रिका, सूर्य एवं उसके आतप के सम्बंध के समान सम्बंध है।।

---

(1) ल.तं. (18/16)

'अहिर्बुध्न्य संहिता' (6/5/18) के अनुसार **'शुद्धेतर सृष्टि'** क्रम-विकास इस प्रकार हैं–

प्रद्युम्न→ कूटस्थ पुरुष→ माया शक्ति→ नियति→ काल→ सत्वगुण→ रजोगुण→ तमोगुण→ बुद्धि (महत्तत्व)→अहंकार

1	2	
वैकारिक (सात्विक) | ज्ञानेन्द्रिय, मन	तैजस (राजस) | कर्मेन्द्रिय	भूतादि (तामस) | पंच तन्मात्रा | पञ्चमहाभूत

(यह सृष्टिक्रम सांख्यानुरुप होता हुआ भी उससे भिन्न भी है)

(20) *लक्ष्मी और सृष्टि–

सृष्टि के आरंभ में भगवती 'लक्ष्मी' सिसृक्षा का क्रियान्वयन करने के उद्देश्य से अपने को दो रूपों में विभक्त कर लेती हैं।

*** सृष्टि का आरंभ कैसे?**

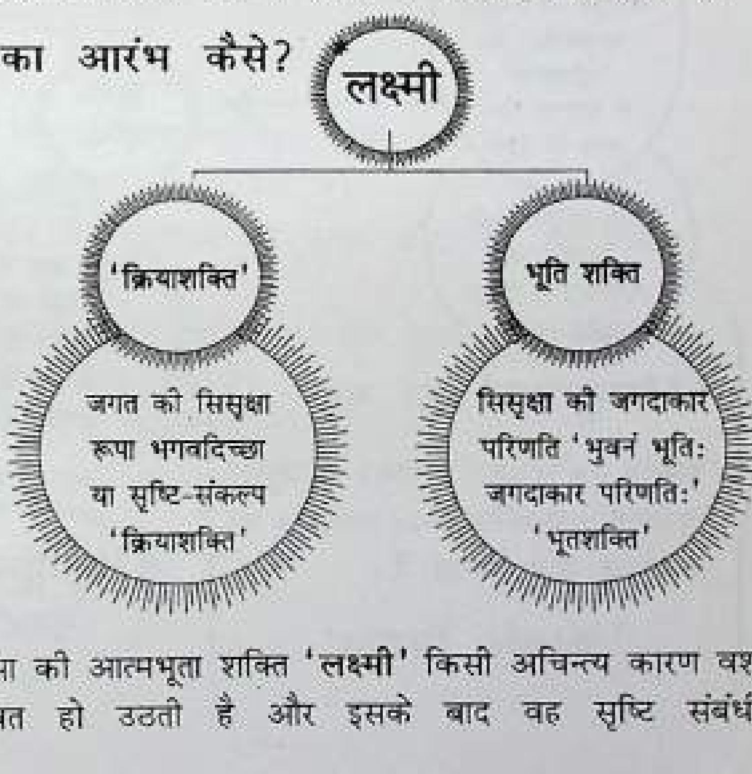

परमात्मा की आत्मभूता शक्ति **'लक्ष्मी'** किसी अचिन्त्य कारण वश कहीं उन्मिषित हो उठती है और इसके बाद वह सृष्टि संबंधी

रचना-व्यापार में प्रवृत्त हो जाती है-

'स्वातन्त्र्यादेव कस्माच्चित् क्वचित् सोन्मेषमृच्छति।
आत्मभूता हि या शक्तिः परस्य ब्रह्मणों हरेः।।'

-अहि.सं. (5/4)

भगवान की **'इच्छा शक्ति'** का प्रतिनिधित्व **'भगवती लक्ष्मी'** करती हैं इसीलिए उनका नाम भी **'इच्छा शक्ति'** या सिसृक्षा है। भगवान की **'क्रियाशक्ति'** के प्रतीक हैं—**'सुदर्शन चक्र'**।।

इच्छाशक्ति = लक्ष्मी। क्रियाशक्ति = सुदर्शन चक्र।

'अहिर्बुध्न्य संहिता' का मत— तीनों व्यूहों की उत्पत्ति भगवान वासुदेव से होती है। शंकराचार्य ने व्यूहों से व्यूहों की उत्पत्ति मानी है।

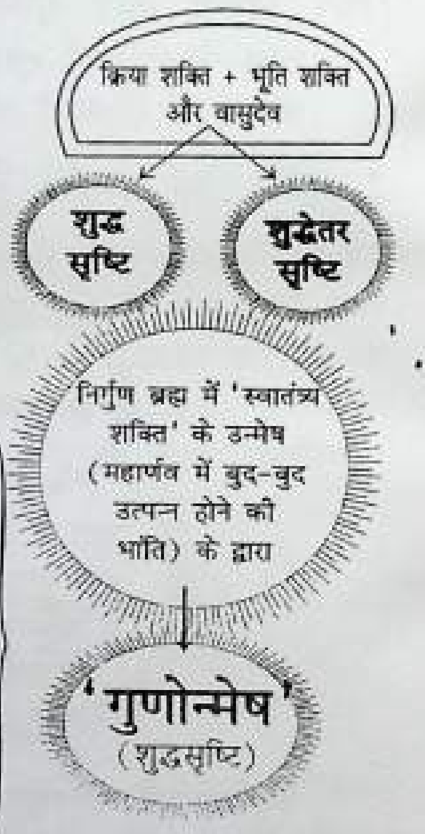

****शङ्कराचार्य का मत**

'वासुदेव'→'संकर्षण' (जीव)→'प्रद्युम्न' (मनस्तत्त्व)→अनिरुद्ध→(अहंकार) का आविर्भाव हुआ करता है।

'चतुर्व्यूह सिद्धांत'

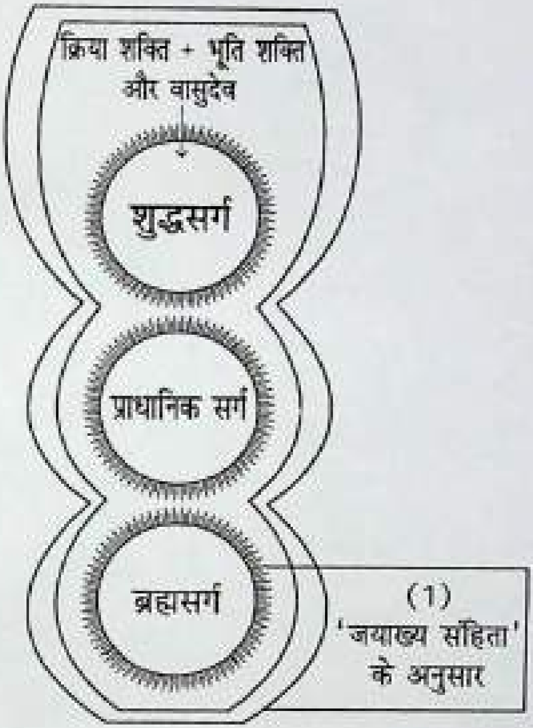

(21) *विश्व की सृष्टि—

वासुदेव में सिसृक्षा संकर्षणात्मिका शक्ति का उदय।

('अहिर्बुध्न्य संहिता' के आलोक में)

1. भगवान वासुदेव में संकर्षणात्मिका प्रभाः 1600 वर्ष तक निवास करती है।
2. दो गुणों का उन्मेष होने पर (ज्ञान, बल, गुणों का उन्मेष होने पर) वासुदेव **'संङ्कर्षण'** बन जाते हैं।
3. 1600 वर्षों के बाद **'प्रद्युम्न'**।
4. 1600 वर्षों के बाद **'अनिरुद्ध'**।

***वासुदेव**

1600 वर्ष अव्यक्त रुप में संकर्षणात्मिका शक्ति के साथ रहते हैं।
1600 वर्ष संकर्षण स्थित रहकर
फिर 1600 वर्षों बाद बन जाते हैं-'प्रद्युम्न'

***वासुदेव**

1600 वर्ष संकर्षणात्मिका शक्ति के साथ निश्चेष्ट स्थिति में रहते हैं
1600 वर्ष तक संकर्षण रुप अनन्त बन जाते हैं 'प्रद्युम्न'।

(22) *सृष्टि - क्रम

'अव्यापृता शतान्येषा शक्ति स्तिष्ठति षोडश।
संकर्षणात्मिका साक्षाद् विज्ञान बलवारिधिः।
अनन्तो भगवान विष्णुः शक्तिमान पुरुषोत्तमः।
पूर्णस्तिमित षाड्गुण्यो निस्तरङ्गर्णवोपमः। (5/32)
'षण्णं युगपदुन्मेषाद् गुणानां स्वप्रयोदयात्।
अनन्त एव भगवान वासुदेवः सनातः।
तत्र ज्ञान बलोन्मेषात् स्वसंकल्प प्रयोदितात्।
अनन्त एव भगवान देवः संकर्षणोऽच्युतः।
स्थित्वा षोडश वर्षाणि देवः शक्तिमयोऽच्युतः।
अनन्त एव भगवान 'प्रद्युम्नः' पुरुषोत्तमः।

अंशाशिवाद

अंशा शेनोदिता शक्तिः प्राद्युम्नी भगवत्प्रभा। (5/36)

वासुदेव के अंश →
= 'संकर्षण व्यूह'

'संकर्षण के अंश →
= 'प्रद्युम्न व्यूह'

= प्रद्युम्न के अंश →
= 'अनिरुद्ध व्यूह'

व्यूह स्वयमेव दूसरे व्यूह के जनक हैं।

वासुदेव
↓
संकर्षण
↓
प्रद्युम्न
↓
अनिरुद्ध
↓
व्यूहों के सम्मिलित प्रयास से विश्व-सृष्टि

(23) *सिसृक्षु वासुदेव द्वारा सृष्टि का समारंभ

—('अहिर्बुध्न्य संहिता' के आलोक में)

जब सर्वशक्तिमान भगवान वासुदेव सृष्टि की इच्छा से अपने को स्वयमेव स्वेच्छा से विभक्त करते हैं तब जिस प्रकार उदयाचल पर उदीयमान सूर्य की प्रभा विकसित होती है उसी प्रकार ही उदीयमान भगवान वासुदेव की भी प्रभा विकसित होती है। भगवान वासुदेव

से **'सङ्कर्षणात्मिका प्रभा'** निकलती है—(1) और 1600 वर्ष तक अव्यक्त रहकर यह (अहि.सं.) विज्ञान-बल के समुद्र के रूप में स्थित रहकर 1600 वर्षों तक **संङ्कर्षणात्मिका** शक्ति वासुदेव में निवास करती है। **'षड्गुणोपेत अनन्त'** इन 6 गुणों की निश्चेष्टावस्था के साथ 1600 वर्ष रहते हैं।*

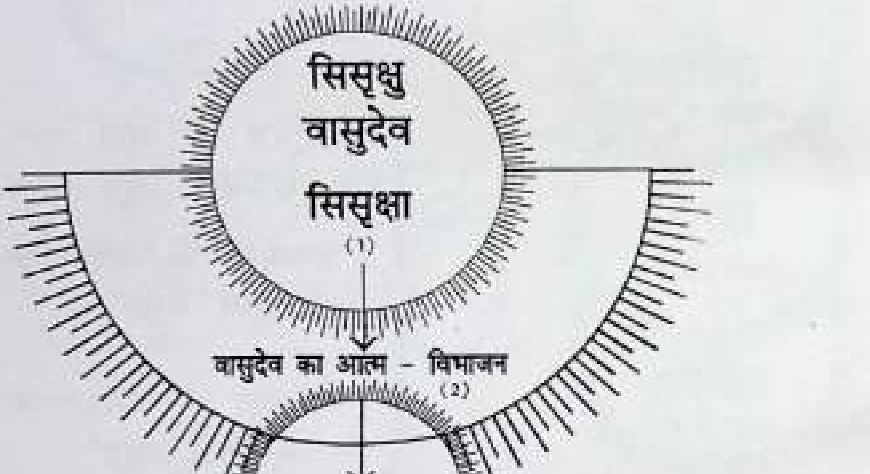

(1)सर्व शक्तिमयो देवो वासुदेवः सिसृक्षया।
विभजत्यात्मनात्मानं यः स सङ्कर्षणः स्मृतः।
भानावुदयशैलस्थे प्रभा यद्वद्विजृंभते।
उदयस्थे तथा देवे प्रभा सङ्कर्षणात्मिका।। (अहि.सं. 5/30)
अनन्तो भगवान विष्णुः शक्तिमान पुरुषोत्तमः।
पूर्णास्तिमितषाड्गुण्यो निस्तरङ्गार्णवोपमः।। (अहि.सं. 5/33)

*'अनन्त' और 'वासुदेव':

1600 वर्षों तक वही विज्ञान-बल का समुद्र **'सङ्कर्षणात्मिका शक्ति'** अप्रकट रूप से वासुदेव में निवास करती है और इस अवस्था में भगवान 'अनन्त' (जिनमें 6 गुण निश्चेष्ट, स्तिमित रहते हैं) में स्वतः प्रेरित 6 गुणों का एक साथ उन्मेष (विकास) होता है-तब वे **'अनन्त'** भगवान वासुदेव कहलाते हैं।

'माना वुदय शैलस्थे प्रभा यद्वद्विजृंभते।
उदयस्थे तथा देवे प्रभा सङ्कर्षणात्मिक।।'
सङ्कर्षणात्मिका साक्षाद् विज्ञान बलवारिधिः (5/31)
'अव्यापृताशतान्येषा शक्तिस्थितष्ठति षोडश।' (5/31)
अनन्तो भगवान विष्णु शक्तिमान पुरुषोत्तमः। (5/32)
'पूर्ण स्तिमितषाड्गुण्यो निस्तर ङःर्णवोपमः।।

—अहि.सं. 5/33)

जब स्वयं प्रेरित 6 गुणों का 'अनन्त' में एक साथ उन्मेष होता है तब वे ही अनन्त **'वासुदेव'** कहे जाते है।।

*गुणों की प्रथम स्थिति

(1) **पूर्णास्तिमित षाड्गुण्यो निस्तरंगार्णवोपमः।**
(पूर्णस्तिमित गुणावस्था)

(2) **गुणों की द्वितीय स्थिति**
षण्णां युगपदुन्मेषात् गुणनां स्वप्रचोदितात्
(1) 'ज्ञान' (2) 'शक्ति' (3) 'बल'
(4) 'वीर्य' (5) 'तेज' (6) 'ऐश्वर्य'।

(परमात्मा में स्थित 6 गुण)

2 गुणों का प्रधान उन्मेष	2 गुणों का प्रधान उन्मेष	2 गुणों का प्रधान उन्मेष
'संकर्षण'	'प्रद्युम्न'	'अनिरुद्ध'
'संकर्षण' के गुण 1. ज्ञान गुण 2. बल गुण	'प्रद्युम्न' के गुण 1. ऐश्वर्य गुण 2. वीर्य गुण	'अनिरुद्ध' के गुण 1. शक्तिगुण 2. तेज गुण

* सृष्टि-क्रम

1. वासुदेव में सिसृक्षा
2. आत्मविभाजन
3. वासुदेव से संकर्षणात्मिका प्रभा का उदय
4. 1600 वर्षों तक अनन्त इसी शक्ति के साथ निश्चेष्ट गुणों के साथ रहते हैं
5. फिर 'संकर्षण का प्रभाव

1. अतो ज्ञान-बले देवः **'संकर्षण'** उदीयते। 2. ऐश्वर्य **'प्रद्युम्नो'ऽनिरुद्धः** शक्तितेजसी।	(संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध)के गुण।[1]

(1) लक्ष्मी तंत्र (2/53-54)

वासुदेव ↓	(अंशी)
संकर्षण ↓	(वासुदेव के अंश)
प्रद्युम्न ↓	(संकर्षण के अंश)
अनिरुद्ध	(प्रद्युम्न के अंश)

एक व्यूह दूसरे व्यूह को जन्म देता है।

वासुदेव की सिसृक्षा [1]

↓

आत्म विभाजन [2]

↓

वासुदेव से **'संकर्षणात्मिका प्रभा'** का उदय होता है (यथा उदयाचलस्थ सूर्य से सूर्य प्रभा का उदय होता है [3]

↓

1600 वर्ष पर्यन्त यह **'संकर्षणात्मिका शक्ति'** (विज्ञान बल के समुद्र के स्वरूप वाली यह संकर्षणात्मिका शक्ति) वासुदेव में निवास करती है।[4]

↓

जब स्वयं प्रेरित 6 गुणों को अनन्त में एक साथ उन्मेष होता है तब वे ही भगवान अनन्त **'वासुदेव'** कहलाते हैं। ***षड्गुणोन्मेष*** [5]

(1) जिनमें स्वयं प्रेरित 6 गुणों का एक 1 ßk mUe ßk **'वासुदेव'**

(2) स्वयं प्रेरित 6 गुणों में से मात्र दो गुण : 'ज्ञान' एवं 'बल' गुणों का उन्मेष होता है तब वे ही **भगवान अच्युत** कहे जाते हैं।

(3) शक्तिमय अच्युत देव **'भगवान अनन्त'** 16 वर्षों तक स्थित रहकर हो जाते हैं।

(4) यह **'प्राद्युम्नी प्रभा'** विष्णु के अंश के अंश से प्रकट होती है अर्थात् वासुदेव के अंश संकर्षण हैं और उनके अंश से 'प्रद्युम्न' प्रकट होते है।।

(5) यह **प्राद्युम्नी भगवत्प्रभा** 1600 वर्ष पर्यन्त अप्रगट रूप से चुपचाप स्थित रहती है। फिर **पुरुषोत्तम प्रद्युम्न देव** 1600 वर्ष पर्यन्त स्थित रहकर अपने संकल्प से प्रेरित होकर वे अनन्त भगवान ही बन जाते है।।

(6) इस प्रकार **'अनिरुद्ध'** में रहने वाली शक्ति आनिरुद्धी नामक भगवत्प्रभा अंशी के अंश से उदित होती है। वह भी उसी प्रकार अप्रकट रूप में 1600 वर्ष पर्यन्त चुपचाप स्थित रहती है।

'वासुदेव'
*'संकर्षण'
'प्रद्युम्न'
*(प्रद्युम्नी प्रभा)

'अनिरुद्ध'
*(अनिरुद्धी प्रभा)
1600 वर्ष पर्यन्त तुष्ठी तुष्णीभाव में स्थित रहती है
↓
संसार की सृष्टि

(7) इस प्रकार 1600 वर्ष पर्यन्त स्थित रहकर वे शक्तिमान **'अनिरुद्ध'** अपने से पूर्ववर्ती **'प्रद्युम्न'** एवं **'सङ्कर्षण'** के साथ सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होते हैं।

(क) 'पुरुषोतम'— चारो व्यूह पुरुषोत्तम हैं–

व्यूहो एते विशालाक्षाश्चत्वारः पुरुषोत्तमाः।। [(1)]

(ख) व्यूहों की प्रकृति —'

निर्दोषा निरनिष्टाश्च निरविद्याः सनातनाः। [(2)]

(8) यही चार आत्मा वाले व्यूह अनन्त एवं अक्षर है।

(9) निस्तरंग दशा में यह **'व्यूहचतुष्टय'** सत्ता-रहित रहता है।

(10) **'गुणोन्मेष दशा'** में स्थित व्यूह—ये **'गुणोन्मेषावस्था'** में सत्तायुक्त, चिन्मय और शक्त्यात्मक रूप में अवस्थित रहते हैं।[(3)]

(11) ये अपनी स्थूलावस्था में अभिव्यक्त होकर संसारोपकार हेतु सच्चिदानन्द रूप लक्षण से लक्षित होते हैं। ये चारों व्यूह ध्यानालम्बनार्थ हैं।

****

---

(1) अहि.सं. (5/41)(2) अहि. सं. (5/41) (3) अहि. सं. (5/42-44 अन्य सम्प्रदायगत विद्वानों ने इनके अतिरिक्त अन्य और भी संकल्प-कल्पित विभवादि भेद वाले व्यूहों का वर्णन किया है। (अहि.सं. 45/45)।

साधना - पक्ष

षष्ठाध्याय

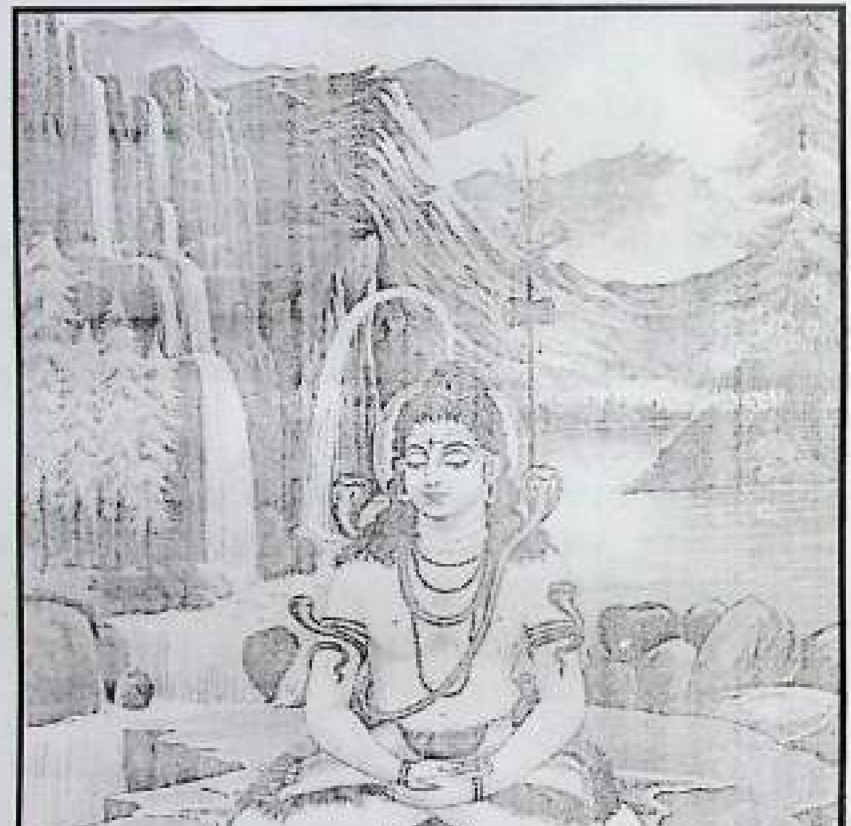

योगीश्वर श्रीशिव
(वैष्णवागम के आद्य उपदेष्टा)

(ख)

साधना-पक्ष

षष्ठ अध्याय — मुक्ति एवं मुक्ति के साधना-मार्ग
सप्तम अध्याय — वैष्णवागम का वर्ण-विज्ञान एवं मंत्र तत्व
अष्टम् अध्याय — मान्त्री साधना और उसका रहस्य
नवम् अध्याय — साध्य तत्व और भक्तिमार्ग-साधना
दशम् अध्याय — पूजा तत्व, पूजाङ्ग एवं वैष्णवागम
एकादश अध्याय — दीक्षा, भाव तत्व एवं वैष्णवागम
द्वादश अध्याय — साधना एवं पूजा के अन्य अंग।
त्रयोदश अध्याय — योग और योग-साधना।
चतुर्दश अध्याय — बन्धन और मुक्ति।

'लोकेऽस्मन् द्विविद्या निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।। (गीता)

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्।।

-हारीत - धर्मसंहिता

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

—श्रीमद्भगवद्गीता।

मयोक्तं प्रथमं ज्ञानं ज्ञानं पञ्चविधेषु च।
द्वितीयं श्रूयतां वत्स! यत्सारं कृष्णभक्तिदम्।। (नारद पञ्च)

हरिभक्तिप्रदं ज्ञानं ज्ञानं पञ्चविधेषु च
विदुषां वांछिता मुक्तिः सततं परमा सताम्।।

सा च श्री कृष्ण भक्तेश्च कलां नार्हति षोडशीम्।
श्री कृष्णभक्त संगेन भक्तिर्भवति नैष्ठिकी।।

—नारद पञ्चरात्र (2/2/1,2)

षष्ठाध्याय

मुक्ति के साधना-मार्ग

(शास्त्रीय स्वरूप)

साधना के प्रमुख मार्गों में से 'ज्ञान मार्ग', 'योग मार्ग', 'कर्म मार्ग', तपस्या, उपासना आदि अति प्रमुख हैं। वैष्णागम में 'ज्ञान मार्ग' भी स्वीकृत है।

(1) * ज्ञानमार्ग –

वैष्णवागम में 'ज्ञान मार्ग' भी स्वीकृत है। यद्यपि भक्ति-साधना के क्षेत्र में ज्ञान एवं योग के लिए कोई स्थान नहीं है और यदि यत्किंचित है भी तो मात्र साधना के रूप में न कि साध्य के रूप में।

भक्ति-साधना में कर्म-ज्ञान-योग तीनों को गौण एवं हेय रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि **भक्तिसूत्रकार** नारद ने भी कहा है कि–

* 'सा तु कर्म-ज्ञान-योगेभ्योऽप्यधिकतरा।। (25)*

नारद ने कर्म मार्ग क्या, कर्म मार्गानुवर्ती वेदों का भी परित्याग करने का निर्देश दिया है–

1. निरोधस्तु लोक-वेदव्यापारन्यासः (सूत्र 8)
2. योगक्षेमं व्यजति। (सूत्र 47) (ना.म.सू.)
3. निस्त्रैगुण्यो भवति।। (सूत्र 47) (ना.भ.सू.)
4. वेदानपि सन्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते।।

(49)(ना.भ.सू.)

*(वेदों का त्याग)

गीताकारः (वेदों के प्रति दृष्टि) 'त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।।' (गीता)

* (कर्म-ज्ञान-योग तीनों का त्याग)

5. सा तु कर्म-ज्ञान-योगेभ्योऽप्यधिकतरा (25) (ना.भ.सू.)

***योग और ज्ञान साधन हैं—शाण्डिल्य कहते हैं-**

क. योगस्तूभयार्थमपेक्षणात् प्रयाजवत।। (19)

ख. 'कर्ममार्गी, 'ज्ञान मार्गी, एवं 'योगमार्गी'—इन तीनों में से श्रेष्ठ कोई भी हो सकता है किन्तु श्रेष्ठतम तो भक्तिमार्गी ही है—

'तदेव कर्मज्ञानि योगिभ्य आधिक्य शब्दात्।।'(शा.भ.सू. 22)

ग. वेदों का ब्रह्मकाण्ड भी ज्ञान-साधना नहीं भक्ति-साधना का प्रतिपादक है—शाण्डिल्य

'ब्रह्मकाण्डं तु भक्तौ तस्यानुज्ञानाय सामान्यात्। (26)

घ. पहले ब्रह्मज्ञान होता है फिर भक्ति (शाण्डिल्य)

प्रागुक्तं च।। (2/16)

* गीताकार-ब्रह्मभूत : प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
सम : सर्वेषु भूतेषुमद्भक्ति लभते पराम्।। (18/54)

(2) ***मुक्ति के साधना-मार्ग** (शास्त्रीय स्वरूप)

प्रधान मार्ग—वैष्णवागम में योग-ज्ञान-कर्म मार्गों के प्रति आस्था एवं विश्वास होते हुए भी 'भक्ति' के प्रति सर्वाधिक आग्रह व्यक्त किया गया है।

1. ***मधुसूदन सरस्वती की दृष्टि—**

मधुसूदन जी कहते हैं-

'द्रवीभावपूर्विका हि मनसो भगवदाकारता सविकल्पक वृत्तिरूपा भक्तिः।।' (चित्त का द्रवीभाव हो जाने पर सविकल्पक वृत्ति रूप से मन का भगवदाकार होना ही 'भक्ति' है और चित्त का द्रवीभाव शून्य आत्मसाक्षात्कार होकर निर्विकल्पक मनोवृत्ति 'ब्रह्मविद्या' है।)

2. ***'रुपगोस्वामी की दृष्टि—**

'अन्याभिलाषा-शून्यं ज्ञान कर्माद्य ना वृतम।।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।' (भ.र.सि.)

* मुख्य साधना-मार्ग *

↓

1	2	3	4	5	6
कर्म मार्ग	उपासना मार्ग	भक्ति मार्ग	ज्ञान मार्ग	योग मार्ग	सर्वमार्गग्राही मार्ग

* कर्म-मार्ग *

* आचार्य शङ्कर द्वारा कर्म मार्ग का प्रतिषेध-

* आचार्य शङ्कर **'ज्ञानमार्ग'** मात्र को श्रेयस्कर मानते हैं और कहते हैं कि **'आत्मैक्य बोध'** के बिना **'मुक्ति'** संभव नहीं है। भले ही लोग कर्म करें, देवों का यजन करें, शास्त्रों की व्याख्या करें और नाना शुभ कर्म करें—

'वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्, कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः
आत्मैक्यबोधेन बिना विमुक्तिर्न सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि।।'

***मधुसूदन सरस्वती** सारे साधन मार्गों को **'योग'** के भीतर अन्तर्भूत मानते हैं—

'कर्मयोगोऽष्टाङ्ग योगो ज्ञानयोगो भक्तियोग इति चत्वारः प्रमर्थत्वेन प्रसिद्धा : योगाः।। **('भक्ति** रसायन')

* **व्यास जी श्रीमद्भगवत पुराण** में कहते हैं कि **'योग'** के तीन भेद हैं। वे उसमें **'कर्म' 'ज्ञान'** और **'भक्ति'** को भी अन्तर्निविष्ट मानते हैं-

'योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽस्त कुत्रचित्।। (11/20/6)

*योग के भेद

↓

1	2	3
'ज्ञान-मार्ग'	**'कर्म-मार्ग'**	**'भक्ति-मार्ग'**

यही कारण है कि उपजीव्य श्री मद्भागवत पुराण के अनुरूप **वैष्णवागम में 'ज्ञान' 'कर्म' 'भक्ति' और 'योग'** चारों को साधन-मार्ग के रूप में स्वीकार किया गया है।

** मुक्ति के मुख्य साधन-मार्ग

↓

1	2	3	4	5
'कर्म योग'	'ज्ञान योग'	'उपासना योग'	'भक्ति योग'	'अष्टागया षडङ्गयोग'

***कर्म-मार्ग**-वैष्णवागम के प्रख्यात ग्रंथ-**'अहिर्बुध्न्य संहिता'** (31/13-14) में कहा गया है कि स्वर्गादि फल उत्पन्न करने वाला साधन मार्ग **'प्रवर्तक कर्म'** कहा जाता है और मोक्ष का साधनभूत कर्म **'निवर्तक कर्म'** कहा जाता है-

'एकं प्रवर्तकं कर्म द्विविधं तदि होच्यते।
प्रवर्तकं च स्वर्गादिफल साधनमुच्यते।
निवर्तकारव्यं देवर्षे विज्ञेयं मोक्ष साधनम्।। (31/13-14)

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैष्णवागम कर्म मार्ग (निवर्तक कर्म मार्ग) को भी मोक्ष का साधन मानता है किन्तु ज्ञान मार्गी ऐसा नहीं मानते।

***विष्णु पुराणोक्त दृष्टि-** कर्म के प्रति विष्णु पुराण की दार्शनिक दृष्टि इस प्रकार है-

'तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।। (अ.19/41)
आयासापरं कर्म विद्यान्या शिल्प नैपुणणम्।

कर्म वही है जो बन्धन कारण न हो। विद्या वही है जो मुक्ति की साधिका हो। इसके अतिरिक्त अन्य कर्म तो मात्र परिश्रम है और अन्य विधायें मात्र कला कौशल हैं।

*** सुरेश्वराचार्य की दृष्टि-** ज्ञानमार्गी सुरेश्वराचार्य कहते हैं कि केवल कर्मों से ही मोक्ष सिद्ध हो जाता तो फिर मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान की क्या आवश्यकता रह जाती?

'मुक्तेः क्रियाभिः सिद्धत्वाज्ज्ञानं ज्ञानं तत्र करोति किम्?'(1)

उत्पत्ति, प्राप्ति, विकार और संस्कार- इन चार प्रकार

(1) नैष्कर्म्य सिद्धि (9)

के कर्मफलों में से मुक्ति कोई भी फल नहीं है क्योंकि स्वरूप-स्थितिरूप मुक्ति नित्य सिद्ध होने के कारण आत्मरूप है अतः मुक्ति कर्म साध्य नहीं है—

'चतुर्विधस्याऽपि कर्म कार्यस्य मुक्ता वसंभवान्न मुक्तेः कर्मकार्यत्वम्।। (नैष्कर्म्य सिद्धि')

अज्ञाननिवृत्ति ही **मुक्ति का स्वरूप** है इसलिए भी कर्म उसका साधन नहीं हो सकता। यदि कहिए कि 'अज्ञान की निवृत्ति कर्मों से क्यों नहीं होती?' —यह भी उचित नहीं है क्योंकि जैसे अंधकार में उत्पन्न रज्जुसर्प के भ्रम को अंधकार नहीं दूर कर सकता वैसे ही **अज्ञानोत्पन्न कर्म भी अज्ञान** का नाश करने में असमर्थ है—

'अज्ञान हानमात्रत्वान्मुक्तेः कर्म न साधनम्।
कर्मापमार्ष्टि नाऽज्ञानं तमसीवोत्थितं तमः।। [2]

सारांश यह है कि—'न मोक्षः कर्मसाधनः' (नै.सि. 28)

***महाभिषेक कर्म**—अहिर्बुध्न्य ने नारद से कहा कि जिस एक ही कर्म के अनुष्ठान मात्र से सारे प्रयोजन सिद्ध हो जायें वही है **'महाभिषेक'**।। [1]

1. श्री कृष्ण के मन्दिर के उद्यान मण्डप या मन्दिर में
2. समतल भूमि में
3. अष्टमंगलात्मक स्थान हो
4. वहाँ पर परिमाण में 8 बार चावल फैलाकर उसको बाहर से जाती पुष्प से घेर कर उपर्युक्त रीति से **महेन्द्र मण्डल** के मध्य **'सुदर्शन यंत्र'** का गंध एवं पुष्प के साथ निर्माण करना चाहिए।
5. उसके मध्य में मंत्री साधक उत्तम **यन्त्रबिम्ब** को बनाए और उसके आगे मूल मंत्र से रक्षा-तन्तु से परिष्कृत किए हुए कलश को स्थापित करना चाहिए। इसमें सुगंधित द्रव्य, जल, नवरत्न, चन्दन, अगरु, कर्पूर एवं केशर का चूर्ण डाला जाना चाहिए। उसके ऊपर अक्षत का पूर्णपात्र रखकर शुद्ध रेशमी वस्त्र द्वारा

(2) नैष्कर्म्य सिद्धि (24) (1) अहि. सं. (39/3)

परिवेष्टित करे और सुगंधित पुष्प-माला से समाकीर्ण कर धूप एवं दीप प्रदान करना चाहिए।

6. कुंभ के मुख को अच्छी प्रकार अलंकृत करें। फिर उस कुंभ के आठों दिशाओं में अष्ट केमों को अलंकृत करके उसे प्रतिष्ठापित करना चाहिए। अग्नि के प्राकार से मनोहर **'आचक्राय स्वाहा'** आदि मंत्रों से पूर्व दिशादि के क्रम से न्यास करके उनका पूजन करना चाहिए।

7. ***अग्नि कुण्ड की विधि–** आठों दिशाओं में स्थापित कलशों के पूर्व भाग में अग्नि-कुण्ड का निर्माण करना चाहिए। मध्य में कलश के पूर्व भाग में प्रासाद लक्षण का कुण्ड निर्मित करके उसे अलंकृत करना चाहिए।

8. ***अग्नि कुण्डों के लक्षण–**

1. पूर्व दिशा में चतुष्कोण अग्नि कुण्ड
2. अग्नेय कोण में त्रिकोण अग्नि कुण्ड
3. दक्षिण में - अर्धचन्द्रकार अग्नि कुण्ड
4. नैत्रत्य में - योनिलक्षण अग्नि कुण्ड
5. पश्चिम में - पद्माकार अग्नि कुण्ड
6. वायव्य दिशा में - अष्टकोणात्मक अग्नि कुण्ड
7. उत्तर दिशा में - वृत्ताकार अग्नि कुण्ड
9. ईशान कोण में - षडस्त्र कुण्ड का निर्माण करना चाहिए।

9. ***होम के लिए प्रत्येक दिशा में वैष्णव ऋत्विजों का वर्णन–** दिशाओं में होम के लिए आठ वैष्णव ऋत्विजों का वरण करना चाहिए और मध्य में साधक मंत्रवेत्ता स्वयं जलती हुई अग्नि में हवन करना चाहिए।

10. ***होम में द्रव्य तथा संख्या का प्रमाण–** प्रत्येक दिशा में घृत से एक हजार आठ हवन करे।

11. ***कुंभों के अग्निमंत्रण की विधि–** उपर्युक्त हवन कर

लेने के बाद साधक को प्रत्येक कुंभ पर **देवाधिदेव सुदर्शन का पूजन** करना चाहिए। फिर उसे स्पर्श कर साध्य (रोगी /आपदग्रस्त) नाम को मंत्र से सम्पुट करके विधान पूर्वक एक हजार आठ बार सर्वत्र प्रत्येक कुंभ पर जप करना चाहिए।

* **दिशाओं में स्थित कलश-जल से अभिषेक**— फिर भेरी शब्द तथा शंख ध्वनि करते हुए पूर्वादि दिशाओं में स्थित कलश के जल से साध्य को स्नान कराना चाहिए।

* **पूर्ण कुंभ के जल से अभिषेक का कथन**— आठों कलश से स्नान कराने के पश्चात् अच्छी प्रकार से अलंकृत मध्यस्थित पूर्ण कुंभ का जल लेकर उसी से मंत्रवेत्ता आचार्य मंत्रोंच्चारण करते हुए साध्य (पीड़ित) को स्नान करावें।

* **उक्त अभिषेक का फल**— सर्वकामना-पूर्ति फल (1) साध्य के सारे पापों का नाश। (2) सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति। (3) आयुष्य-आरोग्य-अर्थागम-पशु-प्राप्ति, पुत्र-प्राप्ति। निर्गुण का गुणवान होना, कन्यार्थी को कन्या प्राप्ति विजय, पदच्युत को पद-प्राप्ति, परम पदाभिलाषी को परमपद-प्राप्ति, अनार्थी को अन्न प्राप्ति यशार्थी को यशाप्ति, मन के सारे मनोरथों की प्राप्ति। [1]

* **अन्त में अर्चन-विधि** — इस प्रकार अभिषिक्त मनुष्य स्वर्ण, अनेक प्रकार के रत्न-वस्त्र, माला, चन्दन द्वारा साधक को पूजा करनी चाहिए। उसे सवत्सा गौ दें, अभिषेक की समस्त सामग्री एवं यज्ञशेष द्रव्य प्रदान करें।

* **ऋत्विगों एवं ब्राह्मणों को संतुष्ट करने की विधि**— यजमान ऋत्विगों स्वर्ण निष्क देकर उन्हें संतुष्ट करे। ब्राह्मणों का सत्कार भी करना चाहिए।

(4) ***ज्ञानमार्गी आचार्य शङ्कर की दृष्टि**— आचार्य शङ्कर कहते हैं कि कर्ममार्ग की सार्थकता एवं उपादेयता मात्र चित्त-शुद्ध उत्पन्न करने में है; अन्यत्र कहीं भी नहीं—

---

(1) अहि. सं. (38/23-29) (2) अहि. सं. (38/32)

'चित्तस्य शुद्धये 'कर्म' न तु वस्तूपलब्धये।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चित् कर्म कोटिमः।।

(1)'वस्तूपलब्धि मात्र ज्ञान से ही संभव है।
(2)'करोड़ो कर्मों से भी वस्तु-प्राप्ति संभव नहीं है। } (शाङ्कर दृष्टि)

(5) * रूपगोस्वामी की दृष्टि– भक्ति के निम्न लक्षण (1) 'अन्याभिलाषिताशून्य' (2) 'ज्ञान कर्माद्यनावृतम्' (3) 'आनुकूल्येन कृष्णानु शीलन'– (भक्तिरसामृत सिन्धु')

'भक्ति' के लिए आवश्यक है कि वह (1)'ज्ञान' एवं (2)'कर्म' आदि तत्वों से अनाच्छदित हो।

*'भक्ति' के लक्षण (रूप गोस्वामी की दृष्टि)
↓

1	2
'स्वरूप लक्षण'	'तटस्थ लक्षण'
'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरूत्तमा –रूप गोस्वामी	'अन्याभिलाषिता शून्य ज्ञानकर्माद्या नावृतम्।। रूप गोस्वामी

(6) *'नारद पञ्चरात्र' में प्रतिपादित दृष्टि— (वैष्णवागम-दृष्टि)
'सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्पर त्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते।।

वैष्णवागम (नारद पञ्चरात्र) में 'भक्ति' को मुक्ति से भी श्रेष्ठ कहा गया है–'श्री हरेर्भक्तिर्दास्यं च सर्व मुक्तेः परं मुने।। (2/7/4) वही ज्ञान श्रेष्ठतम है जो भक्ति प्रदान करे अतः भक्तिज्ञान उपदेष्टा ही पिता है–'पिता ज्ञानदाता तो ज्ञानं तत् कृष्णभक्ति लक्षणम् (ना.पं. 1/1/18)

'शुद्धाभक्ति' = 'साभक्तिः परमा शुद्धा कृष्णदास्य प्रदा च या'

(7) *मधुसूदन सरस्वती की दृष्टि– मधुसूदन सरस्वती कहते हैं कि 'कर्मयोग' की भक्ति में सार्थकता मात्र इतनी है कि

वह अन्तः करण की शुद्धि कर दे एवं निर्वेद उत्पन्न हो जाए।

(1) कमयोगोऽन्तः करण शुद्धि साधन त्वेन तावत पर्यन्त मनुष्ठेयः

(2) तावत् कर्माणि कुवीत न निर्विद्येत यावता। (भक्ति रसायन)

मत्कथा श्रवणदौ वा श्रद्धा यावन्न जायते।।

(भागवत पु.11/20/9)

* कर्म *

↓

1	2	3	4
नित्य	नैमित्तिक	काम्य	निषिद्ध

* पञ्चाङ्गोपासना *

↓

1	2	3	4	5
पटल	पद्धति	शतनाम	सहस्त्र	स्तोत्र

वैष्णवागम 'पञ्चाङ्गोपासना' को भी स्वीकार करता है।

(8) ***'भक्तिरस'** 'रस' 9 ही नहीं 12 हैं। **वैष्णवाचार्यो** ने 9 रसों के अतिरिक्त **'भक्तिरस'** भी माना। उनकी दृष्टि में **'श्रृंगार रस'** में अंतर्भुक्त→(1) संयोग-विप्रलम्ब श्रृंगार (2) वात्सल्य एवं (3) भक्ति—इन तीनों के आलम्बन तथा इनके प्रेम के स्वरूप में **'भक्ति'** श्रृंगार रस से पृथक एक **स्वतंत्र** रस है।

*रूपगोस्वामी की दृष्टि—

रूपगोस्वामी उत्तम दृष्टि के प्रतिपादन में कहते हैं कि—

'विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभि चारिभिः।

स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिमः।

एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्ति रसो भवेत्।। [1]

---

(1) भक्तिरसामृत सिंधु (द.वि.विभाव ल.)

स्थायी भाव	मुख्य भक्तिरस
1. शुद्धारति, शान्ति रति	शान्त रस
2. प्रीति रति/संभ्रम प्रीति	प्रीति रस
3. सख्यरति	प्रेयान रस
4. वात्सल्यरति	तत्सल/वात्सल्य रस
5. प्रियता रति/मधुरारति	मधुर रस

समस्त शक्तियों में **'आह्लादिनी शक्ति'** सर्वोच्च है। **'रस'** इसी शक्ति की किरणें हैं **'आह्लादिनी शक्ति'** राधा का आधार **'प्रेम'** है। वह प्रेमस्वरूपा है।

'राधामदनाख्यं' 'महाभाव' का मूर्त रूप है। **'देवी भगवत पुराण'** में-राधा को प्रेम की अधिष्ठात्री देवी, पंच प्राणरूपिणी प्राणाधिक प्रियतमा, सर्वाद्या, सुन्दरी तथा सर्वोत्कृष्टा कहा गया है–

'प्रेमप्राणाधिदेवी च पंच प्राणस्वरूपिणी।
प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाद्या सुन्दरी परा।। (2)

(9) ***राधा तत्व–** 'राधा' आत्माराम कृष्ण की आत्मा हैं। सारी नायिकायें इन्हीं का विस्तार हैं–

'आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका
तस्या एवांशविस्तारा: सर्वा: श्री कृष्ण नायिका:।।

(भ.म.स्कं.पु.)

गोपालतापिनी में इन्हें जगत्कर्त्री, मूल प्रकृति, रूक्मिणीरूपा, व्रजस्त्री जनसंभूता एवं पर ब्रह्म श्री कृष्ण की संगिनी कहा गया है- **'कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूल प्रकृति रुक्मिणी।**
व्रजस्त्री जनसंभूत: श्रुतिभ्यो ब्रह्मसङ्गता।।(गोपाल तापि.)

* 'मधुर रस' की अधिष्ठात्री भगवती 'राधा' हैं।*

*रस (मुख्य भक्तिरस)	*राधा तत्व-
1. शान्त 2. प्रीति 3. प्रेयान् 4. वत्सल्य 5. मधुर	अहं च ललिता देवी राधिका या च गीयते। अहं च वासुदेवाख्यो नित्यं काम कलात्मक।

(2) देवी भागवंत (स्कं.9)

(गौण भक्ति रस) 6. हास्य 7. अद्‌भुत 8. वीर 9. करुण 10. रौद्र 11. भयानक 12. वीभत्स।	सत्यं योषित् स्वरुपोऽहं योषिच्चाहं सनातनी आवयोरन्तरं नास्ति सत्यं सत्यं हि नारद' —स्कन्द पु. वृन्दा. माहात्म्य

(10) * भगवती की आराधना के उपायचतुष्टय *

ये चार उपाय इस प्रकार हैं—

स्वजाति, विहितं कर्म, सांख्यं योगस्तथैव च।
सर्वत्यागश्च विद्वद्भिरुपायाः कथिता इमे।।

(1) स्वजाति विहित कर्म (2) सांख्य का ज्ञान
(3) योग का ज्ञान सबका त्याग।। (लक्ष्मी तंत्र 15/17)

'मुक्ति' एवं **'मुक्ति के साधन'** के विषय में ऐकमत्य नहीं है। जितने दर्शन हैं उतने ही मुक्ति के साधन हैं। प्रत्येक दर्शन की स्वतंत्र दार्शनिक दृष्टि स्वसिद्धान्तानुरूप मुक्ति के स्वरूप एवं उसकी प्राप्ति के साधनों के विषय में स्वतंत्र स्थापना करती रही हैं।

*अहिर्बुध्न्य संहिताकार की दृष्टि—(वैष्णवागम की दृष्टि)

इस संहिता के अनुसार-

(1) जो 'अपरोक्ष' (प्रत्यक्ष) है वह 'हेतुमान' है और जो 'परोक्ष' है वह हेतु है।
(2) ज्ञान एवं धर्म में हेतु- हेतुमदभाव है।
(3) **'धर्म'** हेतु है और **'ज्ञान'** हेतुमान है।
(4) हेतुभूत धर्म से साक्षात ज्ञान एवं परोक्ष ज्ञान दोनों का उदय होता है।
(5) ज्ञान के हेतु **'धर्म'** के भी दो भेद हैं—
(क) आत्मा का साक्षात् आराधन।
(ख) सव्यवधान आराधन।

ब्रह्मा आदि विभूतियों के द्वारा ब्रह्मार्पणरूप से जो उपासना करते हैं वह **व्यवधान धर्म** है।

* अहिर्बुध्न्य संहिताकार का कथन है कि भगवन्मयता या भगवत्ता के दो साधन हैं—(1) **'ज्ञान'** (2) **'धर्म'**

'अत्यन्त साधनं तस्य यत् तद् द्वेधा व्यवस्थितम्।
विद्या ज्ञानमिति त्वेका धर्म इत्यपरा विधा।। (13/12)

*** ज्ञान के भेद—(1) साक्षात्कार ज्ञान (2) परोक्ष ज्ञान**

'ज्ञान' हेतुमान है और इसके दो भेद हैं—

'ज्ञानं तु हेतुमत तत्र तच्च द्वेध व्यवस्थितम्
(1) साक्षात्कार मयं चैकं (2) परोक्षं परमीर्यते।। (13/14)

***मुक्ति के साधनभूत ज्ञान के दो भेद—**

(परोक्ष ज्ञान/अपरोक्ष ज्ञान)

↓

परोक्ष	अपरोक्ष ज्ञान
ज्ञान-हेतु	(हेतुमान)

(11) * योग-मार्ग—

'अहिर्बुध्न्य संहिता' (13/27-28) में कहा गया है कि—**'बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग'** कहे जाने वाले यम नियम आदि अंगों वाले जिस चित्तवृत्ति निरोधात्मक योग का योगानुशासन उपदेश देता है वह निरन्तर **'अभ्यास'**, **'वैराग्य'** एवं **'परमात्मा'** में **'प्रणिधान'** करने से पर **ब्रह्म** के साक्षात स्वरूप का अवभास करा देता है और सिद्धि प्रदान करने वाला एवं शुद्ध अपवर्ग प्रदान कराने वाला है:

'बहिरङ्गान्तरङ्गाख्ययमा द्यङ्गकलापवान्।
चित्तवृत्ति निरोधात्मा योगो योगानुशासने।
शश्वदभ्यास वैराग्य परेश प्रणिधानतः।
साक्षात्कारावभासांख्य सिद्ध शुद्धापवर्गदः।। (1)

(12) * धर्म और पुरुषार्थचतुष्टय—

जब विभूतिमान पर ब्रह्म योगियों के द्वारा साक्षात् रूप से आराधना

(1) अहि.सं. (13/27-28)

करके प्रसन्न किया जाता है तब उसे **'साक्षात् धर्म'** कहा जाता है—

'विभूतिमत् परं ब्रह्म तदेवाव्यवधानतः।
येन प्रीणयते योगी स साक्षाद्धर्म इष्यते।।

(13/21)(अहि.सं.)

***परोक्षापरोक्ष दोनों धर्म मोक्ष साधन हैं—**

साक्षाच्च व्यवधानाच्च यत् तन्मोक्षस्य साधनम्।

पुरुषार्थान्तर्गत 'अर्थ'—धर्म काम एवं अर्थ का; **'धर्म'**—धर्म, काम एवं अर्थ का; **'काम'**—धर्म, काम एवं अर्थ का साधन है।

'धर्म' सभी साध्य पुरुषार्थों में नियमतः साधन है।

'धर्मः सर्वस्या साध्यस्य नियमे नैव साधनम्।'

(अहि.सं. 13/36)

*** विष्णुपुराणोक्त दृष्टि**—अविद्योत्पन्न क्लेशों को नष्ट करने वाला उत्तम साधन 'योग' है—

'क्लेशानां चक्षयकरं योगादन्यन्न विद्यते।। (6/7/25)

(वैष्णवागम के उपजीव्य 'विष्णु पुराण' में यह कहा गया है अतः इसे वैष्णवागम की भी दृष्टि मानना पड़ेगा।)

*** मनस्तत्व पर विजय**—मन ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण है—

'मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।। [2]

(13) * बन्धन और मुक्ति के कारण *

↓

विषयानुबन्धी मन	विषय-विरक्त मन
'बन्धाय विषयासङ्गि'	'मुक्त्यै निर्विषयं मनः।। [1]

विवेक ज्ञान-सम्पन्न मुनि चित्त को विषयों से हटाकर मोक्ष-प्राप्ति के लिए ब्रह्मस्वरूप का चिन्तन करे। जिस प्रकार अयस्कान्ति अपनी शक्ति से लोहे को खींचकर अपने में संयुक्त कर लेता है उसी प्रकार ब्रह्म-चिन्तन करने वाले मुनि को परमात्मा स्वभाव से ही स्वरूप में लीन कर देता है। आत्म-ज्ञान के प्रयत्नभूत **'यम'**, **'नियम'** आदि की अपेक्षा

(2) वि.पु. (6/7/28) (1) वि.पु. (6/7/28)

रखने वाली जो मन की विशिष्ट गति है उसका ब्रह्म के साथ संयोग होना ही **'योग'** कहा जाता है।*

जिसका 'योग' इस प्रकार के विशिष्ट धर्म से युक्त होता है उसे **'योगी'** कहते हैं।

(14) *समाधि एवं योगियों के भेद (केशिध्वजोत्म)

↓

	1	1	2
योगी	'योगयुक्त योगी'	मुमुक्षु योगी	'विनिष्पन्न समाधि योगी' (2)
समाधि	विनिष्पन्न समाधि	पर ब्रह्म प्राप्त योगी की समाधि	

जब मुमुक्षु पहले पहल योगाभ्यासारंभ करता है तब उसे— **'योगयुक्त योगी'** कहते हैं और जब उसे पर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है तो वह **'विनिष्पन्न समाधि'** कही जाती है। यदि किसी विघ्न के कारण 'योगयुक्तयोगी' का चित्त दूषित हो जाता है तो जन्मान्तर में भी उसी अभ्यास को करते रहने से वह मुक्त हो जाता है।(3)

विषयेभ्यस्समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनिः।
चिन्तयेन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूतं परमेश्वरम् ।
आत्मभावं नयत्येनं तद्ब्रह्म ध्यायिनं मुनिम्।
विकार्यमात्मनश्शक्त्या लोहमाकर्षको यथा।
आत्म प्रयत्न सापेक्षा विशिष्टा या मनो गतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो 'योग' इत्यभिधीयते।।

(वि.पु.6/7/29-31)

(15) *विनिष्पन्न समाधि योगी

'विनिषन्नसमाधि योगी' तो योगाग्नि से कर्म समूह के भस्म हो जाने के कारण उसी जन्म में थोड़े ही समय में 'मोक्ष' प्राप्त कर लेता है—

'विनिष्पन्न समाधिस्तु मुक्तिं तत्रैव जन्मनि।
प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्ध कर्मचयोऽचिरात्।।

(2) वि.पु. (6/7/32) (3) वि.पु. (6/7/34)

***योगी का आचार—** योगी को चाहिए कि अपने चित्त से ब्रह्म-चिन्तन के योग्य बनाता हुआ **'ब्रह्मचर्य' 'अहिंसा' 'सत्य' 'अस्तेय'** और **'अपरिग्रह'** का निष्कामभाव से सेवन करे। इसके अतिरिक्त संयत चित्त से **'स्वाध्याय' 'शौच' 'संतोष'** और **'तप'** का आचरण करे एवं मन को निरन्तर पर ब्रह्म में लगाता रहे। ये 5 **यम एवं** 5 नियम सकाम आचरण का विषय बनने पर पृथ्क-पृथ्क फल एवं निष्कामभाव से आचरित होने पर 'मोक्ष' दिलाते है।।

***प्राणायाम—** भद्रासन आदि आसनों में से किसी एक आसन का अवलम्बन करके यति को 'यम' 'नियम' आदि गुणों से युक्त होकर योगाभ्यास करना चाहिए।

अभ्यास के द्वारा जो प्राण वायु को वशीकृत किया जाता है उस क्रिया को **'प्राणायाम'** समझना चाहिए।

***सबीज-निर्बीज प्राणायाम—** ध्यान एवं मंत्रपाठ आदि आलम्बनों से युक्त प्राणायाम एवं निरालम्ब प्राणायाम —इस प्रकार प्राणायाम के दो भेद होते हैं।

सद्गुरु के उपदेशानुरुप योगी के द्वारा **'प्राणापानवायु'** द्वारा परस्पर एक दूसरे का निरोध किया जाता है। इनसे—(1)**'रेचक'** (2)**'पूरक'** नामक दो प्राणायाम होते हैं। इन दोनों का एक ही समय संयम करने से (**'कुंभक' नामक**) **तीसरा प्राणायाम** होता है।

जब योगी सबीज प्राणायामाभ्यासारंभ करता है तब उसका आलम्बन भगवान अनन्त का हिरण्यगर्भ आदि स्थूल रूप होता है।

(17) ***प्रत्याहार** — प्राणायाम के अनन्तर **'प्रत्याहार'** करना चाहिए।

योगी 'प्रत्याहार' का अभ्यास करते हुए शब्दादि विषयों में अनुरक्त अपनी इन्द्रियों को रोककर अपने चित्त को अनुगामिनी बना लेता है अत: इन्द्रियां वशीभूत हो जाती हैं। इन्द्रियों को वशीभूत किए बिना कोई भी योगी 'योगसाधना' नहीं कर सकता। **'प्राणायाम'** से **'वायु'** एवं **'प्रत्याहार'** से इन्द्रियों को वशीभूत करके चित्त को उसके आश्रय में स्थित करना चाहिए।

विष्णु पुराण (अं.6/अं.7) विष्णु पुराण (अं.6/अं.7)

(18) ***वैष्णवागमोक्त उपाय**—शक्र द्वारा पूछे जाने पर भगवती लक्ष्मी ने उन उपायों को बताया है जिनके करने पर वे प्रसन्न होती हैं—

'उपायाश्चतुरः शक्र श्रृणु मत्प्रीतिवर्धनान्।
यैरहं परमां प्रीतिं यास्याम्यनपगामिनीम्।। (ल.तं.15/16)

***उपाय चतुष्टय : (भगवती को सर्वाधिक प्रिय उपाय)**

↓

1	2	3	4
स्वजाति विहित कर्म	सांख्य	योग का ज्ञान	सबका त्यागा

'सर्वत्यागश्च विद्वद्भिः रुपायाः कथिता इमे। (ल.तं.15/17)

1. ***कर्माख्य उपाय**— वैष्णवागम की मान्यता है कि वैदिक कर्म के चार लक्षण हैं-

(1) स्ववर्णाश्रम के अनुरुप कर्म करना।

(2) नित्य कर्म करना यथा-सन्ध्यावन्दन, पूजा आदि।

(3) नैमित्तिक कर्म यथा पुत्रेष्टियज्ञ ज्योतिष्टाम यज्ञ आदि करना। (काम्य कर्म का निष्पादन करना।)
'चतुर्मिलनक्षणैर्युक्तं त्रिविधं कर्म वैदिकम्।।'

(4) सन्यास- **'चतुर्विधस्तु सन्यासस्तत्र कार्यो विपश्चिता।।**

(2) ***'ज्ञान' भी मोक्ष का उपाय है**— वही ज्ञान मोक्ष का उपाय है जो कि वासुदेव विषयक ज्ञान प्रदान करता हो—क्योंकि वही ज्ञान **'अपुनर्भव'** का उपाय है—

'ज्ञानं तत्त्व विवेकोत्थं सर्वतः शुद्धमव्रणम्
वासुदेवैकविषयमपुनर्भवकारणम्।। (अहि.सं.)

इस ज्ञान से जीव **भगवती में रहने का स्थान** पा जाता है
'ज्ञाने तस्मिन् समुत्पन्ने विशते मात्रनन्तरम्।।

(1) लक्ष्मी तंत्र (15/12) (2) लक्ष्मी तंत्र (15/13)

जो ज्ञान आत्म-ज्योति-प्रदर्शक है वही भगवती को प्रिय है अतः वे वही ज्ञान प्रदान करती हैं—

'उद्भाव्यामि तज्ज्ञानमात्म ज्योति-प्रदर्शकम्।
उपायास्ते च चत्वारो मत्र प्रीतिविर्धना:।। (15/14)

(3) *वासुदेव में सर्वकर्म-सन्यासस्वरूप उपाय—

पूर्वं कर्तृत्व सन्यास: फल सन्यास एव च।
कर्मणामपि सन्यासो देवदेवे जनार्दने।। (ल.तं.15/2)

(20) *ज्ञान-मार्ग

(1) सांख्य दर्शन की दृष्टि—'विवेकज ज्ञान' या 'विवेकख्याति' ही ज्ञान है। 'ज्ञान' सत्वपुरुषान्यता साक्षात्कारात्मक ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है।

'पुरुषार्थज्ञान' = 'पुरुषार्थ ज्ञानमिदं गुह्यं परमर्षिणा समाख्यातम्
—सां.का-69

*ज्ञानोदय की प्रक्रिया (सांख्य दृष्टि)—'नास्मि' 'न मे' और 'नाहम्' इन तीन सूत्रों की अनुभूति ही 'ज्ञान' है जो कि पुरुष-प्रकृति-विवेक से प्राप्त होता है—

'एव तत्वाभ्यासान्नाऽस्मि, न मे, नाऽहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।। [1]

*ज्ञान एवं ज्ञानोदय के लक्षण

(1) 'नास्मि' (2) 'न मे (3) 'नाऽहम्' —ये तीन लक्षण ही ज्ञान तथा 'ज्ञानोदय' के लक्षण हैं—

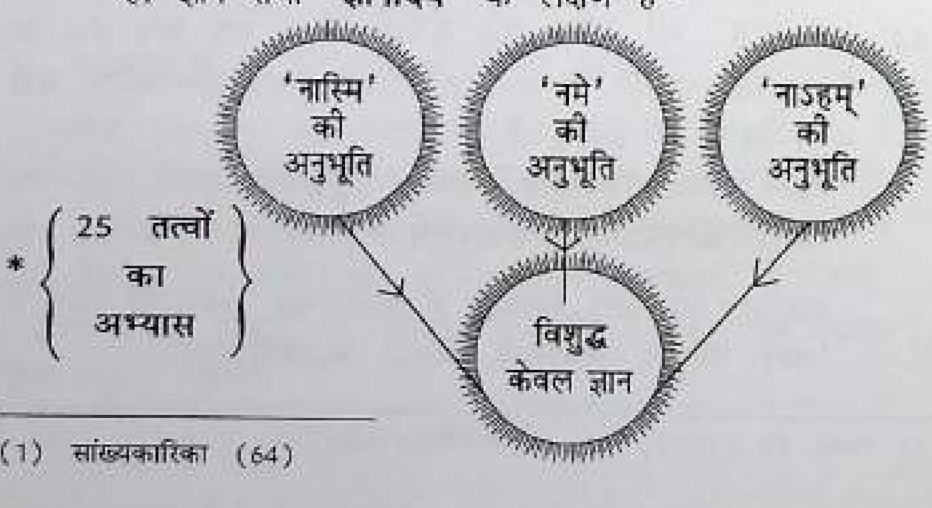

(1) सांख्यकारिका (64)

(1) **'नास्मि'** - मैं पुरुष (आत्मा) हूं अतः अध्यवसाय, अभिमान, संकल्प, आलोचन आदि व्यापार वाला मैं नहीं हूं। ये सारे व्यापार तो इन्द्रियों के एवं अन्तःकरण के हैं न कि मेरे। जो 'कर्ता' होता है वही 'क्रियावान' होता है किन्तु **मैं तो कर्ता हूँ ही नहीं। मैं तो 'पुरुष' हूँ** और इन्द्रियादि से भिन्न हूं अतः **मैं कर्ता नहीं हूँ और कर्तृत्व के सारे व्यापार भी मेरे नहीं हैं।** सारांश—'मैं व्यापारवान या क्रियाओं का कर्ता नहीं हूँ।।' **मैं निष्क्रिय हूँ अतः कर्ता नहीं हूँ।**

(2) **'न मे'**—मुझ आत्मारुप पुरुष का बुद्धि आदि प्रकृति के विकारों के साथ कोई भी अभेदात्मक या तादात्म्यक संबंध नहीं है क्योंकि बुद्धयादिक प्रसवधर्मा, परिणामी है किन्तु मैं (पुरुष) अपरिणामी हूँ अतः **बुद्धि, इन्द्रिय आदि कोई भी मेरे नहीं हैं।** [2]

(3) **'नाऽहम'**—मैं कर्ता, भोक्ता, परिणामी, बद्ध, मुक्त कुछ भी नहीं हूं।

(2) *काश्मीरीयत्रिक दर्शन की दृष्टि—

काश्मीरीय तांत्रिक शैव दर्शन में **'ज्ञान' का स्वरूप** इस प्रकार निश्चित एवं निर्धारित किया गया है—

क. **'ज्ञानं बंधः'** (प्रथमोन्मेषः सूत्र 2) (शिवसूत्र)।
ख. **'ज्ञानाधिष्ठानं मातृका'** (1/4)(शिवसूत्र)।
ग. **'ज्ञानं जाग्रत्।'** (शि.सू. 1/98)
घ. **'वितर्क' आत्मज्ञानम्।।'** (शि.सू. 1/17)
ङ. ज्ञानमन्नम्। (शि.सू. 2/9)
च. ज्ञानं बन्धः।। (शि.सू. 3/2)
छ. दानमात्म ज्ञानम्। (शि.सू. 3/28)

(ग्रंथ की पृष्ठ-संख्या बढ़ने की शंका से इन सूत्रों की व्याख्या नहीं की जा रही है)

* ज्ञानविषयक विष्णुपुराणोक्त दृष्टि—

वैष्णवागम के प्रमाणभूत ग्रंथ **'विष्णुपुराण'** में ज्ञान को मुक्ति का साधन बताते हुए कहा गया है कि इसके निम्न भेद हैं—

(2) सांख्यकारिका (64)

(1) **'साधनावलम्बन ज्ञान'** ब्रह्मभूत परम पद का प्रथम भेद है। (प्राणयामादि साधन विषयक ज्ञान ही) **'साधनालम्बन ज्ञान'** कहलाता है।

(2) **'आलम्बन विज्ञान'** ज्ञान का ही द्वितीय भेद है। क्लेश बंधन से मुक्त होने के लिए योगाभ्यासी योगी का जो साध्य रूप ब्रह्म है उसका ज्ञान ही **'आलम्बन विज्ञान'** है।

(3) **'अद्वैतमय ज्ञान'**—इन दोनों साध्य-साधनों का जो अभेदपूर्वक जो **'अद्वैतमय ज्ञान'** है वही ज्ञान का तृतीय भेद है।

(4) **'ब्रह्मज्ञान'**—उक्त तीनों प्रकार के ज्ञान की विशेषताओं का निराकरण करने पर अनुभूत आत्मस्वरूप के सदृश ज्ञान स्वरूप भगवान विष्णु का जो—निर्व्यापार, अनिर्वचनीय, व्याप्तिमात्र, अनुपम, आत्म बोधस्वरूप, सत्तामात्र, अलक्षण, शान्त, अभय, शुद्ध, भावनातीत एवं आश्रयहीन रूप है वही **'ब्रह्म नामक चतुर्थ ज्ञान'** का भेद है— (वि.पु. 22/49-51)

अन्य ज्ञानों का निरोध करके इसी ज्ञान में लीन साधक बीजारोपण करने में भी निर्बीज (वासना रहित) होते हैं। यही **विष्णु** का परमपद है। पुण्य-पाप-क्षय पूर्वक, क्लेशनिवृत्ति कर लेने पर योगी को निर्मलता प्राप्त होती है और उसे परब्रह्म का आश्रय प्राप्त हो जाता है।

(21) ***मनोनिग्रह (मन पर विजय)** — मन पर विजय पाये बिना साधना के उच्च शिखर पर पहुँचना संभव नहीं है इसीलिए भगवती लक्ष्मी कहती हैं—

1. मन को जीत लेने पर साधक सम्पूर्ण विश्व को जीत लेता है। मन पर विजय प्राप्त कर लेने पर मेरा शुद्ध तनु (स्वरूप) उन्मिषित हो जाता है।

(2) मन का दमन बड़ी कठिनाई से होता है। यह अणुस्व रूप है अतः दुर्ग्राह्य है। यह दुर्बोध भी है और दुर्दम भी। यह उत्क्रम है। हां (क) विषयों से विरक्ति एवं (ख) निरन्तराभ्यास से

इसका निग्रह किया जा सकता है। (ग) विषयों से आत्मीयता न रखना एवं उन्हें बुरे भाव से देखना ही **'तत्वज्ञान'** है। अन्य मति है **'दौरात्म्य'**—

'दौरात्म्यं विषयाणां य तत्व ज्ञानं तु तन्मतिः।।

उस **'दौरात्म्य'** को प्रज्ञा द्वारा चार प्रकार से देखना चाहिए। (1) जो है (2) जैसा है (3) जिससे है (4) जिसके लिए है—

'यो यादृशो यतो यस्मै भावोऽयमिति चिन्तयेत्।

इसी भाव से इनका चिन्तन करना चाहिए क्योंकि ये सभी विषय बंधनकारक हैं और उसका सेवन करने वाले को विषाक्त कर देते हैं—

'विषया बन्धनात्मानो विषिण्वन्ति स्वसेविनः।।

ये कभी सुख नहीं प्रत्युत दुःख ही देने वाले हैं—

'सुखमेव न ते कुर्यु दुःखं च सुवते हि ते।।

तत्वज्ञान आवश्यक है। विषयों में आसक्ति या विरक्ति रखने का निश्चय करके उनको ग्रहण करना या उनका त्याग करना ही **'तत्वज्ञान'** है—

'तत्व ज्ञानमिदं प्रोक्तं संगृह्य च विग्रह्य च।
विषयेषु च रागस्तु सुख हेतुत्व निश्चयात्— क्योंकि
'जिते मनसि वै शश्वद्विश्वं तेन विजीयते।
जिते मनसि शुद्धा में तनुरुन्मिषति स्वयम्।। (ल.तं.43/94)

इस प्रकार अपनी सिद्धि का साधक न होने वाली प्रत्येक वस्तु त्याज्य है— यही **'अभ्यास'** भी कहलाता है-

'अहेतून विषयान् कश्चिन्नाददीत स्वसिद्धये।
यदिदं तत्वविज्ञानं तस्य यच्छीलनं मुहुः।। (ल.तं.43/106)
'सोऽभ्यास इति तत्व ज्ञैस्तत्वशास्त्रेषु शब्यते।।
(ल.तं.43/107)

सूक्ष्म, महत, अणु, स्थूल, स्थिर एंव चल वस्तुओं में जिस पर चित्त स्थिर हो जाए उसी में धारणा का अभ्यास करना चाहिए। **अभ्यास और वैराग्य** में संलग्न योगियों के द्वारा ऐसा ही किया जाता है। इस

प्रकार **अभ्यास-वैराग्य** के द्वारा उद्दाम मन का दमन होता है और वह दुर्दम्य मन शान्त हो जाता है—

'अभ्यास वैराग्यांभ्यां तन्निरोधः।। (1)

*भगवती कहती हैं कि जिस प्रकार आकाशस्थित अरुन्धती तारा से पक्षी वेग पूर्वक उतरता है उसी प्रकार सूक्ष्म रुप में चित्त को धीरे-धीरे निरुद्ध करना चाहिए। महान शैल या अनन्त में चित्त को संलग्न करने पर या चक्र के परिभ्रमण करने पर जो सूक्ष्म अणु निकलते हैं उसमें मन को संयोजित करके उसके भ्रमण के समान स्वयं भ्रमण करना चाहिए।

पीपल के पत्ते के गतिमान अग्रभाग के समान मन को चलायमान नहीं करना चाहिए **बैठे होने पर चित्त को स्थिर करे** और चलते समय मन को चलायमान नहीं करना चाहिए। इससे चित्त का दमन करके **'परम योग'** को प्राप्त किया जा सकता है। यह **'पिण्ड सिद्धि'** योग है—

'इतीयं पिण्डसिद्धिस्ते।।' (ल.तं. 43/118)

संस्पर्शज भोग दुःख के केन्द्र हैं। वे सभी सदि-सान्त हैं-अतः उनमें मन को रमाना नहीं चाहिए—

'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आदिमन्तोऽन्वन्तश्च न तेषु रमयेन्मतनः।। (2)

जो सुख सादि-सान्त न हो वही सुख **मेरा ज्ञानमय शरीर है**—

'आद्यन्तविधुरं तन्मे सुखं ज्ञानमयं वपुः।।'
उसके समान विषयाश्रित सुख हो ही नहीं सकते।। (3)

---

(1) सूक्ष्मे महत्यणौ स्थूले स्थिरे च चल वस्तुनि।
यत्र तिष्ठति यच्चित्तं धार्यतेऽभ्यास एषु वै।
वैराग्याभयासयोगेन यतमानेन योगिना।
दम्यते मन उद्दामं ततः शाम्यति तद् ध्रुवम्।।
(2) शब्दान्तर के साथ यही श्लोक गीता में भी मिलता है।
(3) लक्ष्मी तंत्र (43/88) (4) विषय-सुख का सेवन वैसा ही है जैसे धूप से प्रतप्त क्रुद्ध सर्प के फन की छाया में आश्रय लिया जाए (लक्ष्मी तंत्र : 43/90)

*बौद्ध दर्शन में साधनान्तर्भूत साधन (मुक्ति के साधन)

↓

(1)	(2)	(3)	(4)
सम्मादिट्ठ	सम्मा संकप्प	सम्मा वाचा	सम्मा कम्मन्त
(5)	(6)	(7)	(8)
सम्मा आजीव	सम्मा वायाम	सम्मा सति	सम्मा समाधि

*'ज्ञान मार्ग' के साधन (आचार्य शङ्कर की दृष्टि)

आचार्य शङ्करः साधना में अन्तर्भूत ज्ञानोदय के अंगभूत साधन–

↓

1	2	3	4
नित्यानित्य वस्तु-विवेक	लौकिका लौकिक फलभोग में विराग	(साधन चतुष्टय।) षट्सम्पत्ति	मुमुक्षता

↓

1	2	3	4	5	6
शम	दम	उपरति	तितिक्षा	श्रद्धा	समाधान

*जैन धर्म में मोक्ष के साधन
(जैन दर्शनः उमा स्वामी)

↓

1	2	3
'सम्यक् दर्शन	'सम्यक् ज्ञान	'सम्यक् चारित्र्य

'अविद्या' संसार-वृक्ष का बीज है।

'अविद्या' के दो रूप हैं–

'अविद्या' — (1) अनात्मा में आत्मबुद्धि
(अर्थात् जो अपना नहीं है उसे अपना मानना।)

(2) आत्मा में अनात्म बुद्धि [1]

जीव मोहान्धकाराच्छादित होकर इस पञ्चभूतात्मक देह में 'मैं' और 'मेरापन' भाव रखता है। **'आत्मा'** तो आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी आदि सभी से पृथ्क है। कौन बुद्धिमान व्यक्ति शरीर में आत्म बुद्धि रखेगा?

मानव सारे **'कर्म'** देह के उपयोग के लिए करते हैं किन्तु जब यह देह अपने से पृथ्क है तब वे कर्म तो बंधन के ही कारण बनते हैं।

जीव सहस्त्रों जन्म पर्यन्त सांसारिक भोगों में पड़ा रहता है अतः उन्हीं की वासनारूपी धूलि से आच्छादित हो जाने के कारण मोहग्रस्त हो जाता है। ज्ञान-जल से वासना रूपी धूल धो देने पर मोह शान्त हो जाता है। [2]

ज्ञानमय निर्मल आत्मा निर्वाणस्वरूप ही है। दुखादि अज्ञानमय धर्म प्रकृति के धर्म हैं आत्मा के नहीं।

प्रकृति के संसर्ग से आत्मा अहंकार आदि से दूषित होकर प्राकृत धर्मों को अपना मानकर उन्हें स्वीकार करने लगता है

यथार्थतः तो अव्ययात्मा उनसे पृथ्क है।

'योग' ही इसके निवारण का साधन है। अविद्या-प्राप्त क्लेशों को नष्ट करने वाला साधन **'योग'** से अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है—

क्लेशानां चक्षयकरं योगादन्यन्न विद्यते।।' [3]

इन्द्रियों का वशीकरण नहीं कर पाने तक योग-साधना यथार्थतः योग-साधना नहीं और न तो उसका साधक योग साधक ही है—

'इन्द्रियाणामवश्यैस्तैर्न योगी योग साधकः।' [1]

राजा खाण्डिक्य द्वारा पूछे जाने पर राजा **केशिध्वज** ने कहा कि (1) चित्त का आश्रय ब्रह्म है जो कि 'मूर्त' और 'अमूर्त' या 'अपार' एवं 'पर' रूप से दो प्रकार का है। इस जगत में 'ब्रह्म' 'कर्म' और उभयात्मक नाम से तीन प्रकार की भावनाएं हैं।

---

(1) वि.पु.(अंश 6/7/10) (2) वि.पु.(6/7/20) (3) वि.पु.(अंश 6/7/श्लोक 25)
(1) वि.पु.(6/7/44)

(23) *भावनात्रय (त्रिविध भावनाएं)

↓

1	2	3
'कर्म भावना'	'ब्रह्म भावना'	'उभयात्मिका भावना'
देवताओं से लेकर स्थावर संगम पर्यन्त समस्त प्राणी कर्म भावना युक्त हैं।	सनक, सनन्दन आदि मुनिजन ब्रह्म भावना से युक्त हैं।	स्वरूप विषयक बोध एवं स्वर्गादि विषयक अधिकार से युक्त हिरण्यगर्भ आदि में 'ब्रह्मकर्ममयी' उभयात्मिका भावना है।(2)

जब तक विशेष ज्ञान के कर्मक्षीण नहीं होते तभी तक अहंकाणदि भेद के कारण भिन्न दृष्टि रखने वाले मनुष्यों को ब्रह्म एवं जगत की भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

जिसमें संपूर्ण भेद शान्त हो जाते हैं, जो सत्ता मात्र हैं जो वाणी का विषय नहीं है तथा **स्वयंसंवेद्य** एवं **स्वानुभवैकगम्य** है वही **'ब्रह्म ज्ञान'** कहलाता है। वही परमात्मा विष्णु का अरूप नामक परम रुप है और यह उनके विश्वरुप से विलक्षण है। (3)

'प्रत्यस्तमित भेदं यत्सत्तामात्र मगोचरम्।
वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्।। (6/7/54)

*वैष्णवागम का 'ज्ञानपाद' एवं पञ्चरात्र (ज्ञान) (5 ज्ञान)—

वैष्णवागम **'भक्ति मार्ग'** का पथानुवर्ती है तथापि **'ज्ञान'** को भी महत्व देता है क्योंकि इसमें प्रतिपाद्य विषयों में से एक ज्ञान भी है।

वैष्णवागम के प्रतिपाद्य विषय (वैष्णवागम के आलोक में)

↓

1	2	3	4
'ज्ञानपाद'	'योगपाद'	'क्रियापाद'	'चर्यापाद'

(2) वि.पु. (6/7.43-49) (3) वि.पु. 6/7/54)

1. 'सात्विक ज्ञान'—प्रथमं सात्विकं ज्ञानं द्वितीयं च तदेव च।
2. 'राजस ज्ञान'—नैर्गुण्यं च तृतीयं च ज्ञानं च सर्वतः परम। (ना.पं.)
3. 'तामस ज्ञान'—चतुर्थं च राजसिकं भक्तस्तन्नाभिवाञ्छति।

पञ्चमं तामस ज्ञानं विद्वांस्तन्नाभिवाञ्छति।। (ना.पं.)

(24) *'धर्म' मोक्ष के साधन के रूप में—

वही विभूतिमान पर ब्रह्म जब योगियों के द्वारा साक्षात् रूप से अराधना करके प्रसन्न किया जाता है तब वह **'साक्षात् धर्म'** कहा जाता है। यह समस्त सात्वतशास्त्र उसी पर ब्रह्म का अवबोधक है—

'सात्वतं शासनं सर्वं तस्यैतयावबोधकम्।। (13/22)

'धर्म' चाहे साक्षात् आराधित किया जाए या परोक्ष रूप से किन्तु इसके दोनों स्वरूप मोक्ष के साधन हैं सांख्यशास्त्र परोक्ष ज्ञान का प्रसंख्यान करता है।

वेदान्त शास्त्र अपरोक्ष ज्ञान का उपदेश देता है—

वेदान्त शास्त्र द्वारा शम, दम+एवं तितिक्षादि अङ्गों से युक्त भक्ति श्रद्धा पुरःसर अपरोक्ष ज्ञान का उपदेश दिया गया है।[1]

* योगशास्त्र—

(25) *'मोक्ष': मनःस्थिति के लक्ष्मीनारायणाकार हो जाने के रूप में*

यदि साधक का मन लक्ष्मी नारायण से तादात्म्य प्राप्त कर ले तो भी मोक्ष प्राप्त हो जाता है और साधक भवसागर से पार हो जाता है—

'लक्ष्मी नारायणाकारा भवित्री ते मनः स्थितिः।
अपायान् सपरित्यज्य पातकान् भवसागरे।। [2]

(26) *'मोक्ष'—कर्मसाम्य' के रूप में—

'लक्ष्मी तंत्र' में कहा गया है कि 'कर्मसाम्य' से मुक्ति प्राप्त होती है—इसका पूर्ण विवरण इस प्रकार है—

---

(1) अहि.सं. (13/26) (2) लक्ष्मी तंत्र (57/40)

भगवती का समीक्षण→ भगवती का 'अनुग्रह'→
'शक्तिपात'→ 'मुक्ति'।।

(27) *मुक्तिक्रम—

1. जीव पर भगवती का दृष्टिपात—
*'मया जीवाः' समीक्ष्यन्ते श्रिया दुःखविवर्जिताः (23/8)
2. भगवती का अनुग्रह→ शक्तिपात—
सोऽनुग्रह इति प्रोक्तः शक्तिपातपराह्वयः। (13/8)
3. भगवती द्वारा जीव का समीक्षण→कर्मसाम्य
कर्मसाम्यं भजन्त्येते प्रेक्ष्यमाणा मया तदा।
4. जीवों के शरीर की शुद्धि→
अपश्चिमा तनुः सा स्याज्जीवानां प्रेक्षिता मया। (13/9)
5. जीव पर शक्तिपात कब? लक्ष्मी को ही ज्ञात है अन्य को नहीं।
'अहमेव हि जानामि शक्तिपातक्षणं च तम्। (13/10)
6. शक्तिपात का उद्देश्य : 'पुरुषकार-ध्वंस' आदि
नासौ पुरुषकारेण न चाप्यन्येन हेतुना।। (13/10)
7. भगवती द्वारा जीव के प्रेक्षण का प्रेरक तत्व? स्वेच्छा।
'केवलं स्वेच्छयैवाहं प्रेक्षे कश्चित् कदाप्यहम्।'
8. भगवती के जीव-समीक्षण का फल → तन-मन-शुद्धि
(ततः प्रभृति स स्वच्छ स्वच्छान्तः करणः पुमान्।)
9. कर्मसाम्य का प्रभाव क्या होता है?

(28) * जीव का कर्मसाम्य

जीव का कर्मसाम्य

↓

'कर्मसाम्यं समासाद्य शुक्लकर्म व्यपाश्रय:।
वेदान्तज्ञानसंपन्न:। सांख्य-योगपरायण:।।
-लक्ष्मी तंत्र (13/12)

1	2	3
शुक्ल कर्माचरण 'शुल्क कर्मव्यपाश्रय:'	वेदान्त-ज्ञान सम्पन्नता	सांख्य-योग परायणता

<table>
<tr><td>4.
सम्यक् सात्वत विज्ञान से सम्पन्न होकर विष्णु की सद्भक्ति में संलग्नता</td><td rowspan="2">सम्यक् सात्वत विज्ञाना द्विष्णौ सद्भक्ति मुद्वहन्।
कालेन महता योगी निर्धूत क्लेश सञ्चय:।।
(13/13)</td></tr>
<tr><td>5.
योगी द्वारा कर्म-ध्वंस।
(वह पूर्वोक्त योगी क्लेश संचय का विनाश कर देता है। (13/14)</td></tr>
</table>

6. बंधनों से मुक्ति होने पर जीव का द्योतित हो उठना
'विधूय विविधं द्योतमानस्ततस्तत:।'

7. (उत्तरोत्तर और अधिक प्रकाशित होते जाना)
बंधनों के कटने के तारतम्य में जीव के प्रकाश में उत्तरोत्तर वृद्धि होते जाना :
'विधूय विविधं बन्धं द्योतमान स्ततस्तत:।।' (13/14)

8. लक्ष्मीनारायणात्मक ब्रह्म की प्राप्ति—
फिर जीव लक्ष्मीनारायणस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है—
'प्राप्नोति परमं ब्रह्म लक्ष्मीनारायणात्मक्।। (13/14)

9. 'पञ्चमी शक्ति' : अनुग्रहात्मिका पञ्चमीशक्ति के कार्य :
(1) जीवों की मुक्ति (2) तिरोभाव आदि

***शक्तियों का कारण :**

एषा तु पञ्चमी शक्तिर्मदीया नुग्रहात्मिका।
स्वाच्छन्द्यमेव मे हेतु स्तिरोभावादिकर्म।। (13/15)

....

सप्तम अध्याय

वैष्णव तन्त्र की देवी श्रीलक्ष्मीमाता

सप्तम अध्याय

* वैष्णवागम का वर्ण-विज्ञान एवं मन्त्रतत्त्व *

1. मातृका, वर्ण एवं मंत्र—'भोगापवर्गदा ज्ञेयास्ते तारिकादयः'
2. वैष्णवागम में वाक्तत्त्व का स्वरूप—
3. वर्ण—
4. स्वर वर्णों का स्वरूप—व्यञ्जन वर्णों का स्वरूप
5. भगवती लक्ष्मी और उनका वर्णात्मक स्वरूप—
   ॐ और लक्ष्मी
6. वैष्णवागम का वर्ण विज्ञान—शास्त्रीय स्वरूप—'नारद' तत्व
7. शब्द ब्रह्म—
8. शब्द ब्रह्म-वर्ण और मंत्र—आचार्य भास्कर राय की दृष्टि
9. वाक्चतुष्टय—
10. वाक्चतुष्टय—शास्त्रीय स्वरूप
11. मंत्र तत्व—शास्त्रीय मीमांसा
12. मंत्र।

* वैष्णवागम की दृष्टि—

'वर्णाः प्रकाशिता देवि यथावत सर्वहेतवः।।

(लक्ष्मी तंत्र)

'उदार कीर्तिरद्दाम वैभवा वर्णरूपिणी। (159) —ल.सं.

'छन्दःसारा शास्त्रसारा मंत्रसारा तलोदरी।।

'परा प्रत्यक् चितीरुपा पश्यन्ती पर देवता। —ल.सं.

'मध्यमा, वैखरीरूपा भक्त-मानस-हंसिका।। (81)—ल.सं.

'सर्वेश्वरी, सर्वमयी, सर्वमंत्रस्वरूपिणी'। (52)—ल.सं.

'महातंत्रा, महामंत्रा, महायंत्रा, महासना।। (56)—ल.सं.

'नारायणी, नादरूप, नामरूपविवर्जिता।। (70)—ल.सं.

'माध्वी' पानालसा, सत्ता, मातृकावर्णरूपिणी। (116)—ल.सं.

'मूलमंत्रात्मिका, मूलकूटत्रयकलेवरा।' (36)—ल.सं.

*भर्तृहरि की दृष्टि —

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रकृया जगतो यतः। —भर्तृहरि- 'वाक्पदीय'

'मूलमंत्रात्मिका मूल कूटत्रयकलेवरा। —ल.सं.
श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूप मुखपङ्कजा।
कण्ठाधः कटिपर्यन्त मध्यकूटस्वरूपिणी।
शक्ति-कूटैक-तापन्न-कटयधे भागधारिणी।। (ललिता सहस्त्रनाम)
'एवं सर्वे सुरा देवी मातृकां' पर्युपासते। (ल.तं. 20/51)
इयं योनिर्हि मंत्राणां विद्यानां जन्मभूरियम्।
तत्वानां तात्त्विकानां च ज्ञानानां प्रसवस्थली।। (ल.तं. 20/52)

*वर्ण विज्ञान एवं मंत्रतत्त्व

वेद की दृष्टि–

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि' तानि विदु ब्रह्मिणो ये मनीषिणः गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति चतुर्थो वाचो मनुष्याः वदन्ति।

*वैष्णवागम का वर्ण-विज्ञान एवं मंत्र तत्व–

(2) * 'मातृका' 'वर्ण' एवं 'मंत्र'

वैष्णवागम के अनुसार समस्त वर्णों का मूल 'मातृकायें' हैं और मातृकाओं का मूल 'नाद' है और नाद का मूल 'ॐकार' है। भगवती (1) 'वर्ण' (2) 'मातृका' (3) 'नाद' (4) 'वाक्चतुष्टय'–'परा' 'पश्यन्ती' 'मध्यमा' 'वैखरी' (5) 'शब्दब्रह्म' एवं (6) 'मंत्र' हैं–

(1) 'शब्दब्रह्ममयी भूत्वा मातृका मंत्रविग्रहा।। (ल.तं)
(2) 'भवामि मंत्ररूपाऽहं तत्तद्वाच्यानुकारिणी। (24/4)
(3) 'ओमित्येतत् समुत्पन्नं प्रथमं ब्रह्मतारकम्।। (24/6)
(4) 'मंत्राणां मातृका देवी, शब्दानां ज्ञानरूपिणी।।' (श्री देव्यथर्वशीर्ष)

*वाक्तत्व के तीन भेद हैं–(1)'व्यक्ता' (2)'अव्यक्ता' (3)'समाव्यक्ता'।

'व्यक्ताव्यक्त समाव्यक्ता सा विज्ञेयात्रिधा पुनः।।

(1) **व्यक्तास्वरूप**–'व्यक्ता' प्राणियों के शरीर में रहती है। वहाँ उसका उदय और अस्त होता है। वीणा, वेणु एवं मृदङ्ग आदि के द्वारा व्यक्त नाद भी उसी प्रकार का होता है।

बोलने के समय यह प्राणियों के साथ वैसी ही हो जाती है यथा बादल से पानी बरस कर सागर, सरिता एवं दरी के मुख में चला जाता है। जिस 'शब्द शक्ति' से अभिव्यक्ति होती है उसे 'व्यक्ता' कहा जाता है। इसका उदयास्त व्युत्क्रम एवं उत्क्रम से होता है। 'वाच्य' चार प्रकार का होता है।

(3) *वाच्य

↓

1	2	3	4
'शान्ता वाक्'	'पश्यन्ती वाक्'	'मध्यमा वाक्'	'वैखरी वाक्' [1]

*मातृकायें - (विष्णु की शक्तियाँ)।

मातृका जायते सेयं विष्णु शक्त्युपब्रंहिता।
विष्णुवत्तत्र पंचाशच्छक्तयः परिकीर्तिताः —(ल. तंत्र)

पश्यन्ती केवलो यः समुन्मेषः 'पश्यन्ती' सा प्रकीर्तिता।।
'मध्यमा'— 'न हिंसयन्ति संस्कारा यदा मध्याथ सा तदा।
एवं संस्कारसम्पन्ना विकल्प शत शलिनी।।
'वैखरी'— 'वैखरी नाम सा वाच्या विविधं वक्ति वर्णिनी।
'शान्ता'— 'शान्ता नाम परा या सा सर्वत्र समतां गता।।
'मध्यमा'— 'कोटि कोटि सहस्त्रांशस्तस्या वागथ 'मध्यमा'।
'वैखरी'— 'कोटि कोटि सहस्त्रांश स्तस्या वागथ 'वैखरी'।
वर्णाः पदानि वाक्यानि त्रिविधा वैखरी गतिः।।[2]

(4) वैष्णवागम में वाक्तत्व का स्वरूप—

'लक्ष्मीतंत्र' (अ.57) में कहा गया है कि —(1) भगवती लक्ष्मी दो प्रकार से प्रवृत्त होती हैं : (1) 'शब्द' (2) 'अर्थ'।

*'शक्ति' के 4 भेद चतुर्विध शब्दोन्मेष

↓

1	2	3	4
'शान्ता'	'पश्या'	'मध्या'	'वैखरी

अर्थोन्मेष के भी चार रूप हैं।

वाक्तत्व का प्रथम रूप 'परा' है जिसे ल.तं. में 'शान्ता' कहा गया है।

(1) लक्ष्मी तंत्र 57/16) (2) लक्ष्मी तंत्र (57/10)

'शब्दार्थ प्रविभागेन द्विधा लक्ष्मीः प्रवर्तते।
शान्ता पश्याथ मध्या च वैखरी चेति संज्ञया।। (59/2)

'वाक्' के चार भेद हैं

(5) * वाक्तत्व के भेद

↓

व्यक्ता	अव्यक्ता	समाव्यक्ता

(1) **'शान्ता वाक्'** — प्रत्यस्मित संस्कार वाली स्वर वर्ण आदि से रहित जो प्रथम शाब्दी स्थिति है वह शान्त साधन वाली है। उसे **'शान्ता'** कहते हैं। जो शाब्दी का असंस्कृत अर्थबोधक रूप है उसे **'शब्द'** कहते हैं। अर्थ बोधक रूप **'शब्द'** कहलाता है।

(2) **'पश्यन्ती वाक्'**—केवल समुन्मेष को **'पश्यन्ती वाक्'** कहते हैं।

(3) **'मध्यमा वाक्'**—जहाँ स्वरों के योजन से संस्कार नहीं होता वहां उसे **'मध्यमा वाक्'** कहते हैं। यह संस्कार सम्पन्न विकल्प शतशालिनी होता है।

(4) 'वैखरी वाक्'—विविध वर्णों से युक्त वाक्यों को **'वैखरी** वाक्' कहते हैं। [1]

जो **'परा'** शान्ता स्वरूप है वह सर्वत्र समत्व वाली होती है। **परा शान्ता रूप के करोड़ों हजार अंश 'मध्यमा' का रूप है।** मध्यमा के करोड़ों हवें अंश को **'बैखरी'** कहते हैं। [2]

'वाक्तत्व' वैखरी रूप में **'शब्द'**, **'पद'** एवं **'वाक्य'** 3 रूपों में रहा करता है। वाणी का जो संकोच है वही वर्णादि रूप में रहता है।

प्रतिलोम एवं अनुलोम रूप से यह शक्ति चार प्रकार की होती है। इसका उदय **'परा' 'पश्यन्ती' 'मध्यमा'** एवं **'वैखरी'** चार प्रकार का होता है। [3]

---

(1) ल.तं. (57/9) (2) ल.तं. (57/10) (3) ल.तं. (57/11-12)

(6) * 'वर्ण'—'वर्ण' विष्णु शक्तिमय है और विष्णु-संकल्प द्वारा उत्पन्न होते हैं:

'विष्णु शक्तियां वर्ण विष्णु संकल्प जृंभिताः।।

ये अनेक भावों से अधिष्ठित हैं। (अहि.सं.17)

***'समस्त वर्ण चिदंश एवं ज्योतिर्मय हैं— ***

'चिदंशाः सर्व एवैते वर्णा भास्वर विग्रहाः।। (ल.तं.25)

यद्यपि इनका अस्तित्व नित्य है तथापि ये परा दिव्य मंत्र-मूर्तियाँ हैं— 'नित्या यद्यपि ता दिव्या मंत्राणां मूर्तयः पराः।। (ल.तं)

इनके जो बोधक भाव दिए गए हैं उन **भावों से वर्णों** का चिन्तन करने से एवं शास्त्रावलोकन से मंत्रों में पूर्ण सामर्थ्य आ जाता है—

तथात्येवंविधै वर्णैर्भाविता इति चिन्तना।
भवन्ति पूर्ण सामर्थ्या मंत्राः शास्त्रनिदर्शनात्।। (ल.तं)

भावबोधकत्व यथा—

'णकारोऽमयदः शास्ता वैकुण्ठ इति कीर्तितः।।'

(7) ***'अहिर्बुध्न्य संहिता' एवं 'लक्ष्मी तंत्र' में ऐकमत्य***

'अहिर्बुध्न्य संहिता' (17वां अध्याय) एवं 'लक्ष्मी तंत्र' (25वां अध्याय) में वर्णों के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है और प्रत्येक वर्ण ('अ' से 'क्ष' पर्यन्त सभी वर्ण) किसके-किसके बोधक हैं इसका निरुपण किया गया है। इन दोनों ग्रंथों में वर्णों के बोधक स्वरूप को लेकर इतना ऐकमत्य है कि समान्यतया दोनों एकरूप दिखाई पड़ते हैं। यथा— 'वराहश्चामृताधारो वकारो वरुणः स्मृतः।
शकारः शङ्करः शान्तः पुण्डरीकः प्रकीर्तिताः।।

(अहि.सं.17/26)

'वराहश्चामृताधारो वकारो वरुणः स्मृतः।
शकारः शङ्करः शान्तः पुण्डरीकः प्रकीर्तितः। (ल.तं. 25/25)

'मातृका' से ही मंत्रों का जन्म होता है क्योंकि मंत्रों की माता मातृकायें हैं—

'ध्यायेन्मातृकां मंत्रमातरम्।। (40/14)

भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि 'मैं आदित्य में वर्णों के रूप में रहकर दिव्य वेदत्रयी हो जाती हूँ–

'आदित्यं वर्णयाम्येका तेजसा यशसा श्रिया।
आदित्यस्था च वर्णात्मा भूत्वा दिव्या मयीमयी।।

(ल.तं.5/136)

(8) *वर्ण और मातृका का स्वरूप–

'सा वाचामीश्वरी शक्तिर्वागी शाख्यस्य शूलिनः।
या सा वर्णस्वरूपेण मातृकेति विजृंभते। (वायवीय संहिता)

* वैष्णवागम की दृष्टि *

(9)(क) * स्वर वर्णों का स्वरूप *

'अ' 'अकार' – अप्रमेय है। यह प्रथम व्यापक है।
'आ' 'आकार' – आदिदेव, गोपन एवं आनन्द है।
'इ' 'इकार' – राम, इष्ट एवं इद्ध है।
'ई' 'ईकार' – पञ्चबिन्दु, विष्णु एवं माया है।
'उ' 'उकार' – भुवन, उद्गम एवं उदय है।
'ऊ' 'ऊकार' – लोकेश, ऊर्जा एवं प्रज्ञाधार है
'ऋ' 'ऋकार' – ऋतधामा, सत्य एवं अंकुश है।
'ॠ' 'ॠकार' – विष्टर, ज्वाला एवं प्रसारण है।
'ऌ' 'ऌकार' – भगवान, लिङ्गात्मा एवं तारक है
'ॡ' 'ॡकार' – दीर्घ कोण, देवदत्त एवं विराट है।
'ए' 'एकार' – जगद्योनि, त्र्यश्र एवं अविग्रह है।
'ऐ' 'एकार' – ऐरावण (ऐरावत हाथी) है।
'ओ' 'ओकार' – देवों के भोजन के रूप में सर्वत्र प्रसृत है।
'औ' 'औकार' – और्द पर्वत है। यह औषधात्मक है।
'अं' 'अंकार' – तीनों लोकों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाला सर्वव्याप्त व्योमेश है।
'अः' अःकार' – विसर्ग, सृष्टि-कर्त्ता, विख्यात एवं परमेश्वर है।

(ख) * व्यञ्जन वर्णों का स्वरूप *

कवर्ग →

'क' 'ककार' = कपिल, कराल एवं पराप्रकृति है।
'ख' 'खकार' = वेदात्मा, विश्वभावन एवं वामन है।
'ग' 'गकार' = गदध्वंसी, गदाधर एवं गोविन्द है।
'घ' 'घकार' = तेजस्वी, धर्मांशु एवं ज्योतिर्मय है
'ङ' 'ङकार' = एक दंष्ट्र, गजानन, भूतात्मा, भूतभावन है।

चवर्ग →

'च' 'चकार' = चञ्चल चक्र के समान चन्द्र किरणों से युक्त है।
'छ' 'छकार' = छन्द और छन्दपति एवं छलविध्वंसक है।
'ज' 'जकार' = मोक्षप्रद, अजित एवं शाश्वत है।
'झ' 'झकार' = मगरमच्छ, सामवेद एवं साम पाठक है।
'ञ' 'ञकार' = उत्तम नामक ईश्वर है। तत्वों का धारक है।

टवर्ग →

'ट 'टकार' = चन्द्री, आह्लादमयी और विश्व को तृप्ति प्रदान किया करता है।
'ठ' 'ठकार' = अधर की धारा और कौस्तुममणि का नेमि है।
'ड' 'डकार' = दण्ड का आधार है और विक्रम के मूसल का खण्ड है।
'ढ' 'ढकार' = विश्वरूप, श्रेष्ठकर्मा एवं अनिष्टों का विनाशक है।
'ण' 'णकार' = अभयप्रद, शास्ता एवं वैकुण्ठ है।

तवर्ग →

'त' 'तकार' = ताललक्ष्मा, वैराज और स्त्रग्धर है।
'थ' 'थकार' = धनुर्धर, भुवनपाल एवं विघ्नावरोधक है।
'द' 'दकार' = शान्तिप्रद, अवकाशदाता, बुराइयों का दमन करने वाला है।
'ध' 'धकार' = माधव का शार्ङ्ग धनुषधारण करने वाला है।
'न' 'नकार' = नर-नारायण के मार्ग को बतलाने वाला है।

पवर्ग→

'प' 'पकार' = पद्मनाभ का पवित्र पश्चिम मुख है।
'फ' 'फकार' = श्वेतनारियल का विकसित नेत्र है।
'ब' 'बकार' = नाटे कद के वामन का पूर्णांग है।
'भ' 'भकार' = निश्चित सिद्धिप्रद एवं मल्लातक है।
'म' 'मकार' = प्रधान काल एवं दुष्टों को मर्दन करने वाला कहा जाता है।
'य' 'यकार' = चार गतिवाला काल, सुन्दर, सूक्ष्म एवं शंख है।
'र' 'रकार' = सभी भुवनों का आधार एवं अग्निस्वरूप काल है।
'ल' 'लकार' = विबुध, धरणीश एवं पुरुषेश्वर।
'व' 'वकार' = अमृत का आधार, वराह एवं वरुण है।
'श' 'शकार' = शान्त, शङ्कर एवं पुण्डरीक है।
'ष' 'षकार' = अग्निरुप एवं नरसिंह तथा सूर्य है।
'स' 'सकार' = अमृत की तृप्तिरूप चन्द्रमा है।
'ह' 'हकार' = परमात्मा का प्राण और सूर्य है।
'क्ष' क्षकार' = वर्णों का अन्त एवं अनन्तेश तथा गरुड़ है।

सारे वर्ण चित् के अंश और ज्योतिर्मयरूप हैं—

'चिदंशाः सर्व एवै ते वर्ण भास्वरविग्रहाः।।

(ल.तं. 25/28)

(10) *भगवती लक्ष्मी और उनका वर्णात्मक (मंत्रात्मक) स्वरूप

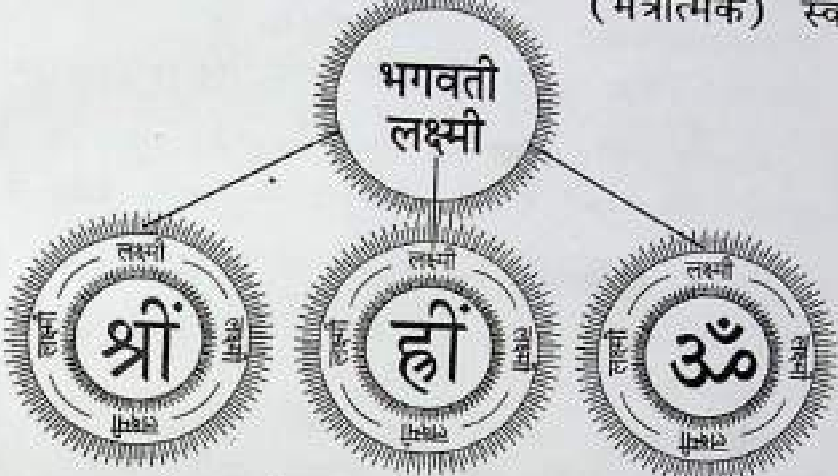

भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि मंत्रारंभ में लगने वाले — (1)'श्रीं' (2)'ह्रीं' एवं (3)'ॐ'— इन तीनों पदों में ही मैं व्याप्त हूं। ये वर्ण मेरे ही स्वरूप हैं।

'आद्ये पदत्रये वर्णाः श्रीं ह्रीं मोमिति मन्मयाः।
एष वैभिश्चतुर्भिस्तैर्मदीयं धार्यते वपुः।। (1)

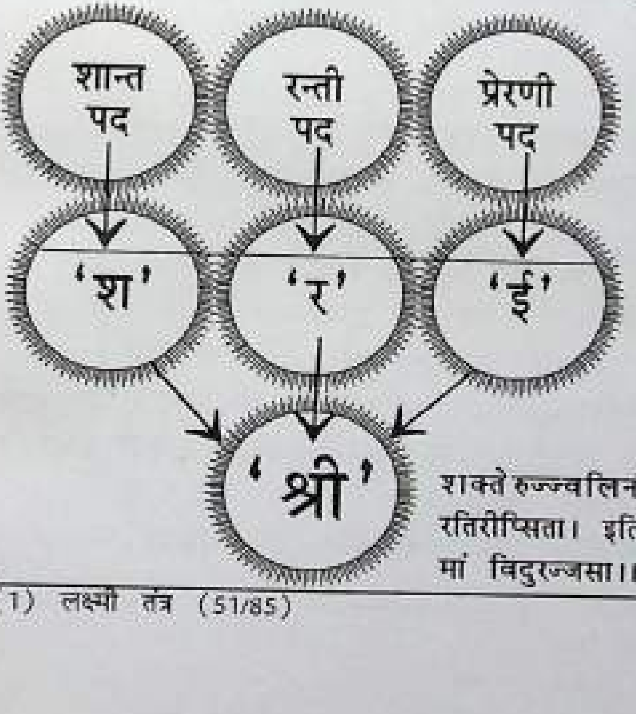

ॐ के विषय में भर्तृहरि की दृष्टि—
'अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।'
—वाक्यपदीय

शक्तेरुज्ज्वलिनी चास्मि, सान्तमा रतिरीप्सिता। इति त्र्यन्ततत्त्वज्ञाः, श्रियं मां विदुरञ्जसा।। —ल.तं. (51/139)

(1) लक्ष्मी तंत्र (51/85)

'आदिभूतभूतश्च वर्णों मे तारः प्रथम वाचकः तत्र शान्तोदितानन्दा तन्दाभ्यात्मानमात्मना।

तैलधारावदच्छिन्ना दीर्घ घण्टानिनादिनी।
प्रणवस्य शिखा सूक्ष्मा सा मे शब्दमयी तनुः।। (51/139)

भगवती शब्दात्मक शरीर वाली हैं। चूँकि शब्द का मूल नाद है और नाद का मूल 'ॐ' है अतः भगवती ॐ नामक शब्द है।

(11) ***ॐ और लक्ष्मी**—'लक्ष्मी तंत्र' (51) में कहा गया है कि भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि मेरा प्रथम 'वाचक' एवं सर्वप्रथम आविर्भूत शब्द ॐकार है।

'सर्वप्रथमोत्पन्न ॐकार मेरा प्रथम वाचक है। उसमें शान्तोदिता मैं नन्दा अपने आप ही प्रसन्न रहती हूँ—

आदिभूतश्च वर्णों में तारः प्रथम वाचकः।
तत्र शान्तोदितानन्दा नन्दाम्या त्मानभात्मतना।।
तैल धारावदच्छिन्ना दीर्घघण्टा निनादिनी।
प्रणवस्य शिखा सूक्ष्मा सा मे शब्दमयी तनुः।
तत्र ब्रह्माणि निष्णातो मा द्रागधिगमिष्यति।
आदित्यवर्णजातं मे शब्दमय्या उपस्थितम्।। (1)

***सारांश यह है कि —**

(1) लक्ष्मी का वाचक ॐकार है।
(2) ॐकार तैलधारावत अखण्ड (अविच्छिन्न) रूप में प्रवाहित होता हुआ घण्टा के दीर्घ गुञ्जन की तरह का है।
(3) प्रणव की सूक्ष्मशिखा भगवती लक्ष्मी का शरीर (तनु) या उनका स्वरूप हैः देवी का शब्दात्मक शरीर है।
'प्रणवस्य शिखा सूक्ष्मासा में शब्दमयी तनुः।।
(4) ब्रह्मज्ञान-निष्णात् व्यक्ति ही भगवती के स्वरूप को जान सकता है। आदित्यवर्ण से उत्पन्न भगवती लक्ष्मी शब्दमय देह से प्रकट होती हैं—
'आदित्यवर्णजातं में शब्दमय्या उपस्थितम्।।
(ल.तं.51/140)

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (51/138-140) (2)
आदिभूतश्च वर्णों में तार : प्रथम वाचक।

* भगवती 'शान्ता' एवं 'पश्या' आदि रूप से वैखरी वर्णों के रूप में नाद करती है—

'शान्तापश्यादि रूपेण वैखरी वर्णनादिनी।। (ल.तं. 51/141)

*वेदों का प्राण ॐ है और भगवती लक्ष्मी स्वयमेव वेद हैं—'आदित्यस्था च वर्णात्मा भूत्वा दिव्या त्रयीमयी' (51/135)

सबसे प्रथम उत्पन्न ॐ भगवती लक्ष्मी का प्रथम वाचक है ॐ — 'आदिभूतश्च वर्णो में तारः प्रथम वाचकः

1. वर्णमाला के पूर्व उत्पन्न प्रथम वर्ण = ॐ 2. सृष्टि के अस्तित्व में आने से पूर्व उत्पन्न 3. सृष्टि की प्रथम ध्वनि (नाद) 4. ओंकार स्वरूप नाद 'ॐ' 5. भगवती का वाचक 'ॐ'	भगवती लक्ष्मी 'ॐ' हैं। भगवती ही 'ॐ' हैं एवं 'ॐ' रूप उनका वाचक है।

*वैष्णवागम का वर्णविज्ञान—शास्त्रीय स्वरूप

* वैष्णवागम के अनुसार वर्णों का मूल 'नाद' है

* वर्णों की माता 'नाद शक्ति' है (या 'नाद' है) *

* 'नाद' पराशक्ति का स्वस्वरूप है।*

* स्वयमेव भगवती सर्वव्याप्त, अक्षर 'नाद' हैं—यह तो सत्य है कि समस्त वर्णों का मूल 'नाद' है किन्तु यह कोई भौतिक, नश्वर, एव सादि-सान्त ध्वनि नहीं है प्रत्युत् यह भगवती लक्ष्मी का या परा जगदम्बिका का स्वस्वरूप है—

*'जनयन्ती परं नादं तैलधारावदच्युतम्।। (ल.तं. 51/37)

* 'नाद' तत्व

'नाद' है क्या? लक्ष्मण देशिकेन्द्र कहते हैं—

'सच्चिदानन्द विभवात् सकलात् परमेश्वरात् ।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दु समुद्भवः।।

शिव और शक्ति का अन्तर्संबंध ही 'नाद' है, और यह 'नाद' 'शक्ति' से उत्पन्न होता है।

क. 'आसी च्छक्तिस्ततो नादः।।'

ख. 'परमनाद 'शब्दब्रह्म' है।

ग. 'शब्द ब्रह्म' सारे प्राणियों की चेतना है।

घ. मंत्राश्चिन्मरीचयः अर्थात् 'मंत्र' चैतन्य की किरणें हैं।

* वर्ण *

लक्ष्मी से समन्वित ये सभी वर्ण मंत्रों के कारण हैं। वर्णों की स्तुति, पूजा और ध्यान करने और सादर उनका नाम लेने से पराऋद्धि, विज्ञान एवं ज्ञान प्राप्त होता है। चराचर में ऐसा कुछ भी नहीं है। जो इनसे भावित न हो। इसीलिए कहा गया है—

'चराऽचरेस्मि स्तन्नास्ति यदमीभिर्न भावितम्।' (ल.तं)

(1) 'शिव जब शक्ति में क्षोभ उत्पन्न करते हैं। तो उससे 'नाद' की उत्पत्ति होती है और यही नाद सम्पूर्ण सृष्टि का हेतु है।

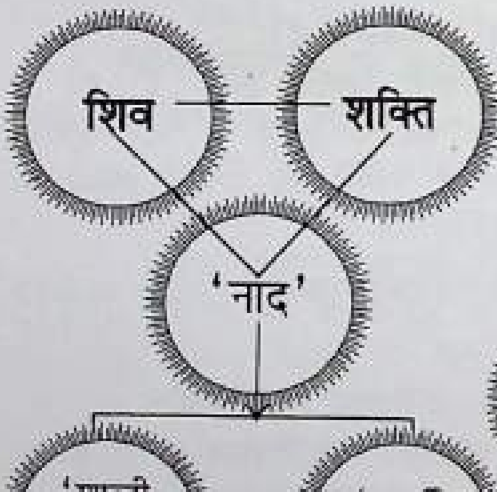

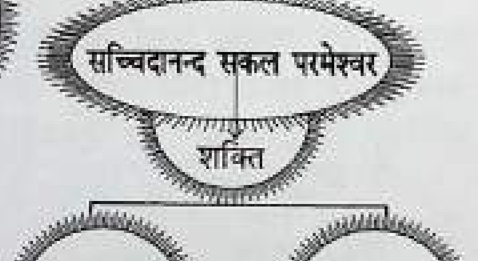

(13) ***'शब्द ब्रह्म' स्वयं लक्ष्मी जी हैं—**

'शब्दब्रह्म स्वरूपेण स्वशक्त्या स्वयमेव हि।
मुक्तयेऽखिलं जीवानामुदेमि परमेश्वरात्।। (ल.तं. 20/7)

***आचार्य शङ्कर की दृष्टि**—वाणी का मूल '**शब्दब्रह्म**' है।

***शब्द ब्रह्म**—सबका आदि '**शब्द ब्रह्म**' है किन्तु '**शब्दब्रह्म**' है क्या?

(1) जब प्रकृति '**ज्योति**' के सम्पर्क में आती है तब उसे '**चिन्मात्रा**' कहते हैं।

(2) '**चिन्मात्रा**' सिसृक्षु होने पर धनीभूत हो जाती है और '**बिन्दु**' के रूप में दृष्टिगोचर या प्रस्तुत होती है।

(3) काल रूप कारण से '**बिन्दु**' अपने को (आत्म-विभाजन के द्वारा) तीन भागों में विभक्त कर लेता है।

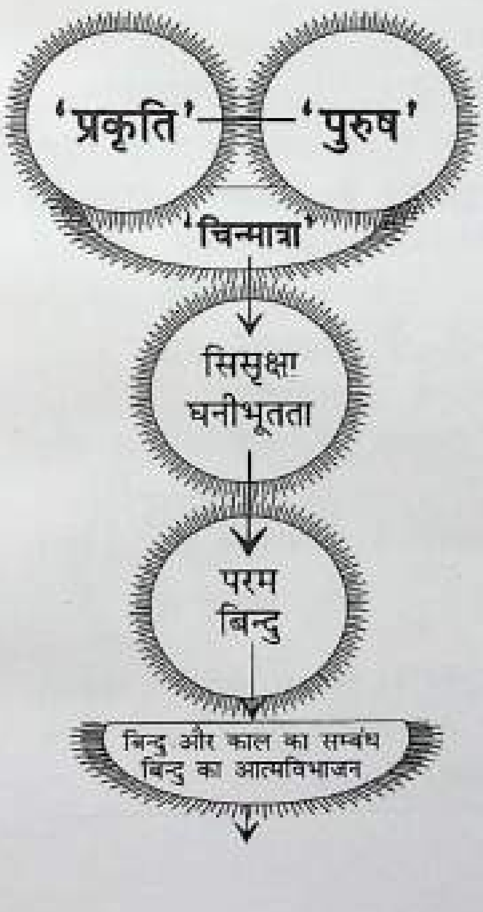

***आचार्य शङ्कर की दृष्टि—**

'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा'
ज्योतिषः सन्निधेस्तदा।
विचिकीर्षुर्घनीभूता,
क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्।।
कालेन भिद्यमानस्तु
स बिन्दुर्भवति त्रिधा।
स्थूल सूक्ष्मपरत्वेन,
तस्य त्रैविध्यमिष्यते।।
स बिन्दुनादबीजत्व,
भेदेन च निगद्यते।
तद्विस्तार प्रकारोऽयं,
यथा वक्ष्यामि साम्प्रतम्।।
बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमाना
द्रवोव्यक्तात्मको भवेत्।
स र वः श्रुतिसम्पन्नैः
'शब्द ब्रह्मेति' कथ्यते।'

—प्रपञ्चसारतंत्र

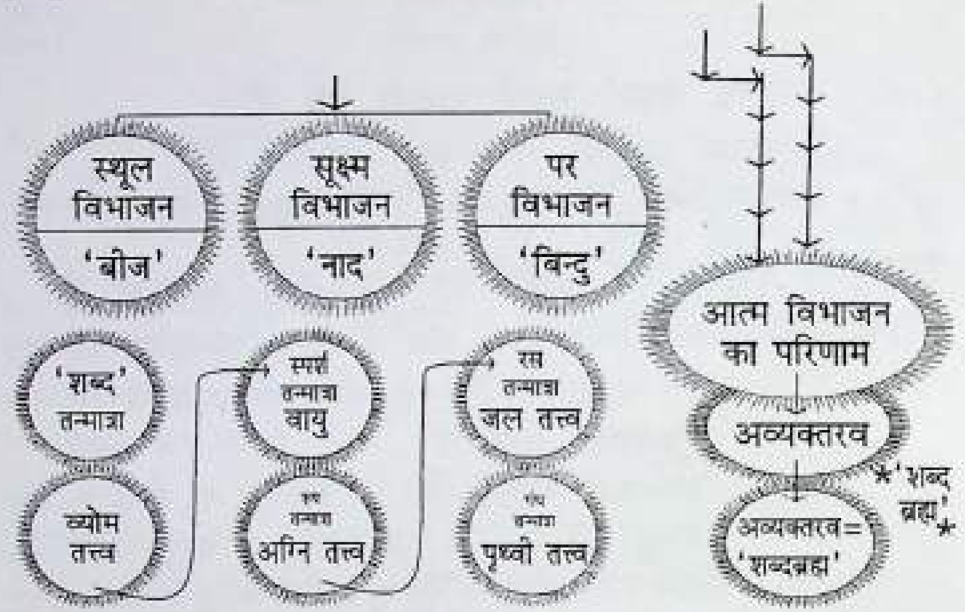

शब्दाद् व्योम स्पर्शस्तेन वायु।
स्ताभ्यां रूपाद्धहिरे तै रसाच्च।
अंभांस्ये तैर्गन्धतो भूर्धराद्या ,
भूताः पञ्च स्युर्गुणेनाः क्रमेण।। (1) —शङ्कराचार्य

*मंत्र और मातृका

मंत्रों के संघटक तत्व **'मातृकायें'** हैं। **'मातृका'** शक्ति है। **'मातृका'** मात्र ध्वनि नहीं है। यह सार्थक ध्वनिरूप **'वर्ण'** भी नहीं है। भगवती कहती हैं कि—

***'मैं मंत्रों में मातृका और शब्दों में ज्ञान हूं'—**

'मंत्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी'

सामान्यतः तो वर्णों को और वर्णमाला को **'मातृका'** कहा जाता है—**'मातृका वर्णरूपिणी'**।

'केवल मातृका' साक्षात् ब्रह्मराशि है। **'स्वच्छन्द तंत्र'** (पटल 11/श्लोक 199) में कहा गया है—

'न विद्या मातृका परा।'

'मातृका' से परे कोई विद्या नहीं है। निखिल वर्णमाला भगवती **'कुण्डलिनी'** एवं बाद में **'शब्दब्रह्म'** से आविर्भूत हुई है। इसी कारण **'शब्दब्रह्म'** की एक आख्या **'मातृकासूः'** भी है।

---

(1) प्रपञ्चसार संग्रह (प्रथम पटल)

*अकारादिक्षकारान्त सारे वर्ण मातृकायें ही हैं जोकि वर्णरूपात्मक हैं—

'अकारादिक्षकारान्ता मातृका वर्णरूपिणी'

अतः मातृकाओं की संख्या 50 है। वर्णमाला **'स्थूल मातृका'** है और यही **'वैखरी वाक्'** है। आकार **'मातृकाद्य'** एवं क्षकार **'मातृकान्त'** है।

(14) * मातृका

↓

1	2	3
'सुसूक्ष्म मातृका'	'सूक्ष्म मातृका'	'स्थूल मातृका'
(परा-पश्यन्ती) 'सूक्ष्मतर मातृका'	'मध्यमा वाक्'	'वैखरी वाक्'

'मातृका' परम देवी है। वे तालु आदि वर्णोंचारण के मुखगत स्थानों में कारण विशेषों द्वारा नाना पदाकारों एवं वर्णों के रूप में विभक्त होकर वैखरीभाव प्राप्त करती हैं।

'सूतसंहिता' के व्याख्याकार माधवाचार्य ने **'तात्पर्यदीपिका'** में लिखा है कि मातृका का **'पररूप'** परावाक् है। यह पश्यन्ती से परे बिन्दुनादात्मक है।

(15) सच्चिदानन्दविभव सकल परमेश्वर

↓

शक्ति

↓

नाद

↓

बिन्दु

'शब्दब्रह्म'
'वर्ण'
और 'मन्त्र'

* 'वर्ण' की उत्पत्ति प्रक्रिया एवं उसका आविर्भाव क्रम *

***शङ्कराचार्य की दृष्टि—**

पद्मपादाचार्य द्वारा 'विवरण' में की गयी व्याख्या के अनुसार—

1. 'मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तुभावः 'पराख्यः'(प्र.सा.तं.)
2. 'पश्चात् पश्यन्त्यथ' (प्र.सा.तं.)
3. 'बुद्धियुङ मध्यमाख्यः' (प्र.सा.तं.)
4. 'वक्त्रें वैर्ख्यथ रूरुदिषोरस्य जन्तो सुषुम्ना।' (तत्रैव)
5. 'बद्धस्तस्माद् भवति पवन प्रेरितो वर्णसङ्घः।।'(प्र.सा.तं.)

अर्थात् पद्मपादाचार्य कहते हैं—

1. 'प्रथममुदितः चैतन्यामासः भावश्च यः जगद्भावयतीति माया शक्तिर्भावः पराख्यः।' (विवरण)
2. 'चैतन्याभास विशिष्टतया प्रकाशिका माया निष्पन्दा परावागित्यर्थ।' (सस्पन्दावस्थाः पश्यनत्याद्याः।)
3. 'तत्र सामान्यस्पन्द प्रकाशरूपिणी, नादतत्वात्मिकाम् अध्यायत्मभूला धारादिनाभ्यन्तम् अभिव्यजमाना।
4. 'सामान्यज्ञानात्मकत्वात् 'पश्यन्ती' सा।' (विवरण)

*** मूलाधार चक्र से नाभिपर्यन्त = 'पश्यन्ती वाक्'**

1) 'परावाक्' = निष्पन्द है। चैतन्यामास है–
चैतन्यामास विशिष्टतया प्रकाशिका। माया निष्पन्दा परावागित्यर्थ। (सस्पन्दावस्थाः पश्यन्त्याद्याः।।)

2) 'पश्यन्ती वाक्' = सस्पन्द है। सामान्य ज्ञानात्मक है। (विवरण)

*** मूलाधार चक्र से नाभि तक अभिव्यज्यमान है।**

3) 'मध्यमा वाक्' = बाह्यान्तः कणाद्यात्मिका, हिरयगर्भ रूपिणी, बिन्दुतत्त्वमयी, नाभ्यादिहृदयान्त अभिव्यक्त विशेष स्पन्द संकल्प। 'मध्ये मा बुद्धिर्यस्याः सा 'मध्यमा'। (विवरण)

4) 'वैखरी वाक्' = विराड्रूपिर्णी, बीजात्मिकां, हृदयादास्यान्तम् अभिव्यज्यमानां, शब्द सामान्यान्तिकां वैखरी।।
विशोषेण खरत्वाद्वैखरी।
* हृदय से मुख तक अभिव्यज्यमान।।
'प्रपञ्चसार विवरण' ——पद्मपादाचार्य

(16) *आचार्य भास्करराय की दृष्टि—

शाक्त तंत्र के महान सिद्ध दार्शनिक भास्कर राय ने वाग्वृत्तियों 'पर', 'नाद' 'बिन्दु' और तदाश्रित सृष्टि पर प्रकाश डालते हुए 'प्रपञ्चसार तंत्र' का उद्धरण देकर 'ललिता सहस्त्र नाम' के (श्लोक 123)

'पराप्रत्यक्‌चितीभूता पश्यन्ती पर देवता।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानस हंसिका।। की व्याख्या की है-
('सौभाग्य भास्कर')—ललितासहस्त्रनाम)।

आचार्य भास्कर राय उक्त श्लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि-

(1) ननु शब्दार्थयोस्तादात्म्यस्यैव शक्तिः।

(2) वैरवर्यात्मक पदानां विराट् पुरुषेणैव सह तादात्म्येन शुद्ध ब्रह्म तादात्म्यं नास्त्येवेति।

(3) अत्रेदं बोध्यम्। प्रलये सृज्यमान प्राणिकर्मणामपरिपाक दशायां तादृश कर्माभिन्न मायावच्छिन्नं ब्रह्म घनीभूतमित्युच्यते।

(4) कालवशात्कर्मणां परिपाके सति विनश्यदवस्स्थः परिपाक प्राग भावो विचिकीर्षित्युच्यते। ततः परिपाकक्षणे मायावृत्तिरुत्पद्यते

(5) तादृशं परिपक्व कर्माकार परिगणित मायाविशिष्टं ब्रह्म व्यक्त पदवाच्यम्। अतएव तस्योपतिरपि स्मर्यते—
'तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तमेति।।

(6) स एव जगदंकुर कन्द रूपत्वात्कारण बिन्दु पदेन व्यवह्रियते।। तदुक्तं प्रपञ्चसारे 'विचिकीर्षुधनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुता।' मिति।

(7) अस्माच्च 'कारणबिन्दोः' सकाशात् क्रमेण 'कार्यबिन्दु' स्ततो 'नाद' स्ततो 'बीजमिति' त्रयमुत्पन्नम्।
तदिदं पर-सूक्ष्म स्थूल पदैरप्युच्यते। चिदशश्चिचिन्मिश्रोऽ-चिंदशश्चेति तेषां रूपाणि। तदुक्तं रहस्यागमे 'कालेन मिद्यमानसतु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।।' सथूल-सूक्ष्म-परत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते।
'स बिन्दु-नाद-बीजत्वभेदेन च निगद्यत।।'

(8) 'ऐते च कारणबिन्द्वादयश्चत्वारोऽधिदैवतमव्यक्तेश्वर हिरण्यगर्भ विराटस्वरूपाः।

(9) 'शान्ता' 'वामा' 'ज्येष्ठा' 'रौद्री' रूपाः।

(10) अम्बिकेच्छा-ज्ञान-क्रिया-रूपाश्च।

(11) 'अधिभूतं' तु कामरूप, पूर्णगिरि जालन्धरोऽयाणपीठ रूपा इति तु 'नित्या हृदये' स्पष्टम्।

(12) 'अध्यात्मं' तु 'कारणबिन्दुः' —
शक्तिपिण्ड कुण्डल्यादि शब्वाच्यो मूला धारस्थः।
'शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजनन व्यापार बद्धोधमां।
ज्ञात्वेत्थं न पुनर्विशन्ति जननीगर्भकत्वं नराः।।'
—इत्यादिरीत्याचार्यै र्व्यवहृतः सोऽय भविभागा व स्थः 'कारणबिन्दुः'।

(13) 'अयमेव च यदा कार्यबिन्द्वादि त्रय जननोन्मुखो भिद्यते तद्दशायाम व्यक्तः शब्दब्रह्माभिधेयो खस्तत्रोत्पद्यते। तदप्युक्तम्—
'बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद् व्यक्तात्मारवोऽभवत्।।'

(14) स 'खः श्रुति सम्पन्नैः शब्दब्रह्मेतिगीयत' इति

(15) 'सोऽयं' खः कारणबिन्दुताम्दाम्यापन्नत्वात् सर्वगतोऽपि व्यञ्जक यल संस्कृत पवन वशात् प्राणिनां मूलाधारे एवाभिव्यज्यते।। तदुक्तं—

(17) 'देहेऽपि मूलाधारेऽस्मिन्समुदेति समीरणः।
वाक्तत्व विवक्षोरिच्छयोत्थेन प्रयत्नेन सुसंकृतः।।'
स व्यञ्जयति तत्रैव शब्द ब्रह्मापि सर्वगतिमिति।।

(16) 'परावाक्'
'तदिदं कारण बिन्द्वात्मकमभिव्यक्तं 'शब्दब्रह्म' स्वप्रतिष्ठितया निष्पन्दं तदेव परावागित्युच्यते।। (परावाक्)।।

(17) 'पश्यन्ती वाक्'
'अथ तदेव नाभि पर्यन्तमागच्छता तेन पवनेनाभिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा युक्तं सामान्यस्पन्द प्रकाशरूप कार्य बिन्दुमयं सत्पश्यन्ती वागुच्यते। (मन) (पश्यन्ती)।

(18) 'मध्यमा वाक्'

'अथ तदैव 'शब्द ब्रह्म' तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तम् भिव्यज्यमानं निश्चत्मिकया बुद्धया युक्तं विशेषस्पन्द प्रकाशरूप नादमयं सन्मध्यमावागित्युच्यते। (बुद्धि)

(19) वैखरी वाक्

अथ तदेव वदनपर्यन्तं तेनैव वायुना कण्ठादिस्थानेष्व भिव्यज्यमानमकारादि वर्णरूपपरं श्रोभग्रहणयोग्य स्पष्टतर प्रकाशरूप बीजात्मकं सद्वैखरी वागुच्यते। —(वैखरीवाक्)

(20) तदुक्तमाचार्यैः

'मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्यः
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।
व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्णा
बद्धस्तस्माद्भवति पवने प्रेरिता वर्ण संज्ञा।'

(21) नित्यातंत्रेऽपि

मूलाधारे समुत्पन्नः पराख्यो नादसंभवः।
स एवोर्ध्वतयानीतः स्वाधिष्ठाने विजृंभितः।
पश्यन्त्याख्याभवात्नोति तथैवोर्ध्वं शनैः शनैः।
अनाहते बुद्धितत्वसमेतो मध्यमामिधः।।
तथा तयोर्ध्वनन्न सन्धि शुद्धो कण्ठ देशतः। वैखर्याख्य इत्यादि।

(18) * वाक्चतुष्टय *

(22) इन चतुर्विध मातृकाओं में से मानव केवल 'वैखरी वाक्' को जानता है, उसका मनन करता है और उसे ही बोलता है।

(23) श्रुतियों में भी कहा गया है—
'तस्माद्यद्वाचोऽनाप्तं तन्मनुष्या उपजीवन्ति।'
'अनाप्त'= अपूर्ण। वेदभाष्यानुसार 'अनाप्त' का अर्थ = तीनों (पूर्वोक्त) वाकों से रहित= 'अनाप्त'।।

(24) अन्य श्रुतियों में भी यही बात कही गई है—
'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि
तानि विदुर्ब्राह्मणो ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति।
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।

(25) स्कन्द पुराण के 'यज्ञवैभवखण्ड' में भी इसकी पुष्टि की गई है—
'अपदं पदमापन्नं पदं चाप्यपदं भवेत्।
पदापद विभागं च यः पश्यति स पश्यति।।
'अपदं'= गति-रहित। निःस्पन्दः 'निस्पन्दं शब्दब्रह्मैव परादि चतुष्यं जातं तदिदं पदचतुष्टयमेव ज्ञातं सदपदं ब्रह्मैव भवति।

(26) इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रुतियां एवं स्मृतियां सभी पद के चातुर्विध्य की पुष्टि करती हैं।

(27) 'सौभाग्यसुधोदय' में कहा गया है कि 'पश्यन्ती' का स्वरूप इस प्रकार है—
'पश्यति सर्वंस्वात्मनि करणानां सरणिमपि यदुत्तीर्णा।
तेनेदं पश्यन्तीत्युतीर्णेत्यत्युदीर्यते माते।।

(28) 'मध्ये स्थिता मध्यमा तदुक्तं।
'पश्यन्तीव न केवलमुत्तीर्णा नापि वैखरीव बहिः।
स्फुटतर निखिलावयवा वाग्रूपा मध्यमा तयोरस्मात्।।'
'खर' = कठिन। 'विशेषण खरः कठिनस्तस्येयं वैखरी।' सैव रूपं यस्याः।।' घनभावमापन्नेति यावत्। 'वै' निश्चयेन 'खं' कर्ण विररं। राति गच्छतीति व्युत्पत्तिः।

(29) 'सौभाग्यसुधोदय' में कहा गया है—
'प्राणेन विखराख्येन प्रेरिता वैखरी पुनः।।'
चरमामथ वक्ष्यामि रीतिं वलनिषूदन।
वैखरी चरमा रीतिः प्रयल स्थानभेदिनी।। (20/30)
(30) 'अकारः प्रथमोदेवी क्षकारोऽन्त्यस्ततः परम्।
अक्षमालेति विख्याता मातृका वर्णरूपिणी।
शब्दब्रह्म स्वरूपेयं शब्दातीतं तु जप्यत।।
(ज्ञानार्णव)
(31) वर्णों एवं नादों का मूल
सच्चिदानन्द विभवात् सकलात् परमेश्वरात।।
आसीच्छक्ति स्वतो नादः नादाद्बिन्दु समुद्भवः।।
शिव→ शक्ति→ नाद→बिन्दु। नाद→सारी वर्ण-माला एवं मंत्र

(19) *'मातृका' के दो स्वरूप

↓

1	2
वाचिकारूप	शिव की शक्ति का स्वरूप

'यज्ञवैभवखण्ड' में कहा गया है कि—

(1) जिस प्रकार शंभु दो भागों में द्विस्वरूप हैं अर्थात् (1) शिव एवं (2) शक्ति रूप में दो हैं उसी प्रकार मातृका भी (1) एक रूप में वाच्यों का वाचक (वाचिका) है और दूसरे में शक्तिमान शिव की पराशक्ति है—

यथा परतरः शंभुर्द्विधा शक्तिशिवात्मना।
तथैव मातृकादेवी द्विधाभूता सती स्वयम्।
एकाकारेण शक्तेस्तु वाचिका चेतरेण तु।
शिवस्य वाचिका साक्षाद्विधेयं पदगामिनी।।'

—यज्ञ वैभव खण्ड

'एक पञ्चाशन्मातृका वर्ण' (भास्कर राय)

(20) *वर्णोत्पत्ति के मुख्य स्थान

↓

कण्ठ	तालु	मूर्धा	दन्त	ओष्ठ	जिह्वा

(21)* वाणी एवं वर्णों की उत्पत्ति

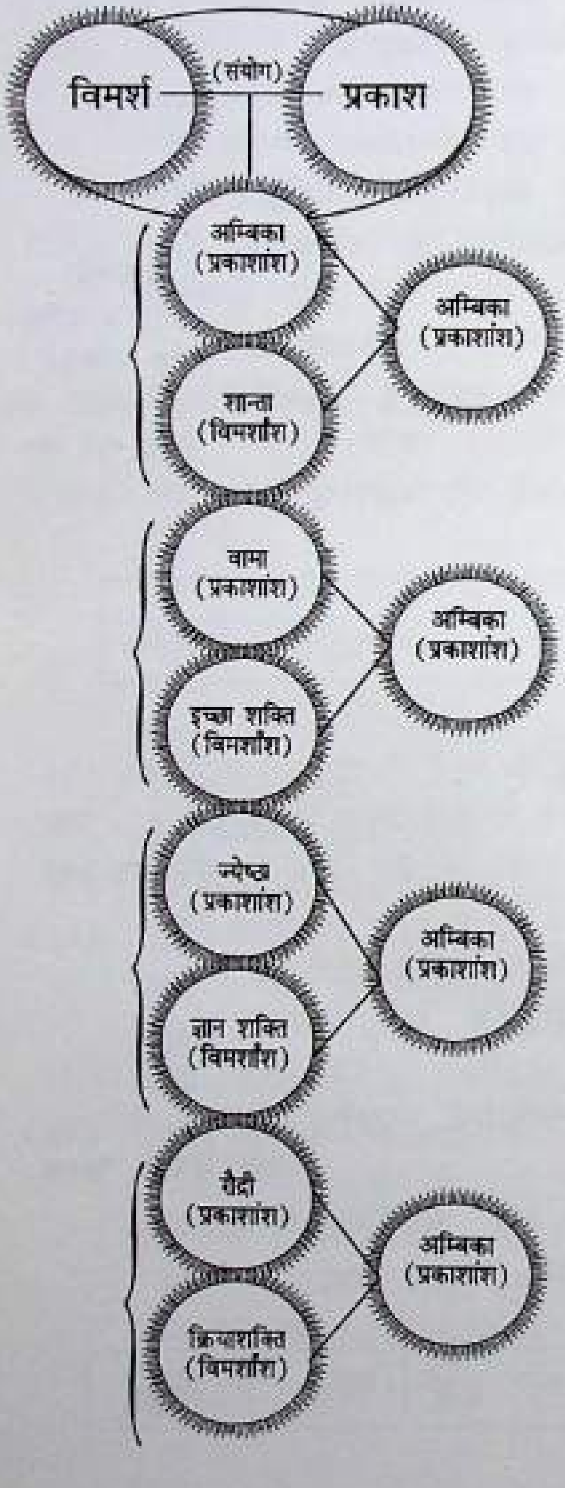

1. अम्बिका + शान्ता
(दोनों शक्तियों का सामरस्य)
2. वामा + इच्छा
(दोनों शक्तियों का सामरस्य)
3. ज्येष्ठा + ज्ञानशक्ति
(दोनों शक्तियों का सामरस्य)
4. रौद्री + क्रिया शक्ति
(दोनों शक्तियों का सामरस्य)
5. परावाक्—

1. आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमाकला।
अम्बिका रूप मापन्ना परावाक् समुदीरिता।।' (योगिनी हृदय)
2. पश्यन्ती वाक्- इच्छाशक्तिस्तदा सेयं 'पश्यन्ती' वपुषा स्थिता।।
3. ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा 'मध्यमा' वागुदीरिता। (यो.ह.)
4. ऋजुरेखामयी अत्र श्रृंगाग्रगरेखाकारा मध्यमा वागुदीरिता। (दीपिका)।
5. क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।।

—दीपिका

इत्याहुस्ते परं ब्रह्म यदनादि तथा क्षयम्।
तदक्षरं शब्द रूपं सा पश्यन्ती परा हि वाक्।।

—शिवदृष्टि

*'वाक्चतुष्टयः' शास्त्रीय स्वरूप

'पूर्ण अहं'
(इदम् से शून्य
अवस्था)-
'परावाक्'

(वाच्य + वाचक के भेद से शून्य अवस्था दृश्य (इदम्) की अनुभूति से शून्य **अहमात्मक स्थिति-'परावाक्'।**

अहमात्मक परामर्श परावाक् स्वरूप होता है। जब इसमें विभागावभासन आरंभ होता है उस समय इसके तीन भेद हो जाते हैं।

(1) स्थूल-वैखरी।
(2) सूक्ष्म-मध्यमा।
(3) सूक्ष्मतर-पश्यन्ती।

'पश्यन्ती वाक्'— जब अपने स्वातंत्र्य से यह परमेश्वरी 'परावाक्' बाह्योल्लास की आकांक्षा से चित्प्राधान्य की दशा में द्रष्टा मात्र रहती है (उसमें वाच्यवाचक रूप वर्णोदय नहीं हुआ रहता) तब उसे **'पश्यन्ती वाक'** कहते हैं।

2. **'मध्यमा वाक्'**—इसी विकास क्रम में वाच्यवाचक भाव के उदय का भी सोपान आता है। उसमें स्फुटता एवं अस्फुटता (वाच्य वाचक की स्फुटता-अस्फुटता) की मिश्रित अवस्था उदित है।
दर्शन के प्राधान्य में भी द्रष्टा और दृश्य के अन्तराल में वाच्य-वाचक भाव की स्फुटता-अस्फुटता उल्लसित होती है। यही अवस्था **'मध्यमा वाक्'** है।

3. **'वैखरी वाक्'**—जब **'स्थान' 'करण'** और **'प्रयत्न'** के **प्रभाव से वर्णों का प्रादुर्भाव** हो जाता है उस समय द्रष्टृ प्राधान्य लुप्त हो जाता है। इसके स्थान पर इस सोपान पर

दृश्य-प्राधान्य का उदय होता है। विखर (शरीर) में उत्पन्न होने के कारण इस वाणी को 'वैखरी' कहते हैं—

'दृश्यस्यैव प्राधान्यात् विखरे शरीरे भवत्वाद्वैखरी शब्दाभिधेया।।'

(विवेक: तंत्रालोक 3/236)

(23) *अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि—

इसी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि करते हुए त्रिकदर्शन के आचार्य अभिनव गुप्त पाद कहते हैं—

'विभागाभासने चास्य त्रिधा वपुरुदाहृतम्।
पश्यन्ती मध्यमा स्थूला वैखरी त्यभिशब्दितम्।। (3/236)

परावाक्—'तस्य प्रत्यवमर्शो चः परिपूर्णोऽहमात्मकः।
स स्वात्मनि स्वतन्त्रत्वाद्विभागभवभासयते।।

—(तंत्रालोक: 3/235)

मध्यमा ध्वनि क्या है? चमड़े के मृदंग आदि में कराघात

पराभूर्जन्म पश्यन्ती वल्लीगुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ।। (का.क.वि.कीरीका)

(24) *वैखरी वाक् के भेदत्रय: (अभिनव गुप्त पाद)

↓

'सूक्ष्म वैखरी' (विवक्षात्मक अनुसंधान) [1] स्थूल वर्ण माला : स्थूल शब्द (स्थूल वर्णमाला)	'पर वैखरी' अनुपाधिमान चिदात्मक स्वरूप ही वैखरी का पररूप है। [2]

(1) तंत्रालोक (अ.3/246) (2) तंत्रालोक (अ.3/247)

***वैखरी का स्वरूप –**

या तु स्फुटानां वर्णनामुत्पत्तौ कारणं भवेत्।
सा स्थूला वैखरी यस्याः कार्यं वाक्यादि भूयसा।।
अभिनव गुप्त पादाचार्य- 'तंत्रालोक' (अ. 3/244)

वैखरी–

'विखरः शरीरम तत्र भवा तत्पर्यन्तचेष्टासम्पादिका' [2]
प्रकाशांशरूप 'रौद्री' एवं विमर्शांशरूप 'क्रिया शक्ति' का संयोग ही 'वैखरी वाक्' है।

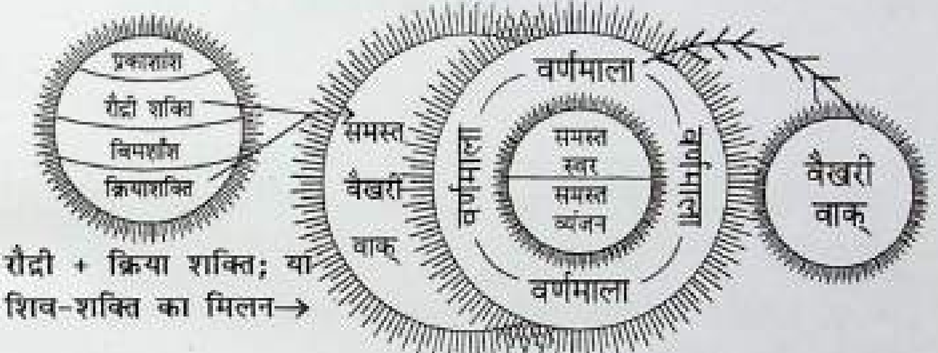

'परावाक्' रूप शब्द ब्रह्म (ओंकार या प्रणव) हृदय से मुख पर्यन्त वायु के द्वारा कण्ठादि शब्दोच्चारण के स्थानों में अभिव्यक्त होकर अकारादि स्वर एवं ककारादि व्यंजन के स्वरूप में वर्णाकार ग्रहण करके श्रुतिगम्य बनता है।

'वैखरी' 'मध्यमा' 'पश्यन्ती' 'परा' आदि सारी वाणियाँ मूलतः शक्तियां हैं। वैखरी क्या है? वैखरी शक्ति का पर्याय है–

'वैखरी नाम अभिलापरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिक लौकिक शब्दनात्मिका शक्तिरित्युच्यते।। (कामकलाविलासः टीका।) से उत्पन्न होने वाली ध्वनियों में वर्णोदय तो नहीं होता तथापि वर्णानुरूप ध्वनियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसमें कुछ वर्ण-स्फुटता एवं किंचित वर्ण-अस्फुटता विद्यमान रहती हैं। जहाँ इस स्फुटत्वास्फुटत्व का सामंजस्य परिलक्षित होता है उसे ही **'मध्यमा ध्वनि'** कहते हैं।

---

(1) ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी (1/5वि.)।

***अभिनवगुप्त पादाचार्य की दृष्टि**—अभिनवगुप्त कहते हैं—

'यत्तुचर्माऽवनद्धादि किंचित्तत्रैव यो ध्वनिः।
सा स्फुटास्फुअरूपत्वान्मध्यमा स्थूलरूपिणी।।

***'वैखरी वाक्' का स्वरूप**—

या तु स्फुटानां वर्णानामुत्पत्तौ कारणं भवेत्।
सा स्थूला वैखरी यस्याः कार्यं वाक्यादि भूयसा।।

(25) *** वैखरी के भेद**

↓

(1)	(2)	(3)
स्थूल वैखरी वाक्	सूक्ष्म वैखरीवाक्	पर वैखरी वाक्

'या तु स्फुटानां वर्णानामुत्पत्तौ कारणं भवेत्। सा स्थूला वैखरी यस्याः कार्यं वाक्यादि भूयसा।।' (तंत्रा. 3/244)	**'मध्यमा वाक्'** (हिरण्यगमर्भ शब्द) (नाद)
(स्फुट वर्णों की उत्पत्ति का कारण **'वैखरी वाक्'** है।) वैखरी अभिलापात्मक है। यह पञ्चदशाक्षरमयी है।	**'शब्दब्रह्म'** वायु के द्वारा नाभि से हृदय पर्यन्त प्रवाहित होने की अवस्था में होने वाली वाणी **'मध्यमा वाक्'** कहलाती है।

***'मध्यमा वाक्' के विकास का क्रम**

↓

1	2	3
'शब्दब्रह्म' का वायु के नाभि से हृदय पर्यन्त प्रवाह	वाणी का निश्चयात्मिका बुद्धि से एकीभाव	विशेष स्पन्दात्मक, प्रकाशात्मक तथा नाद्मयात्मक स्वरूप में वाणी की अभिव्यक्ति।

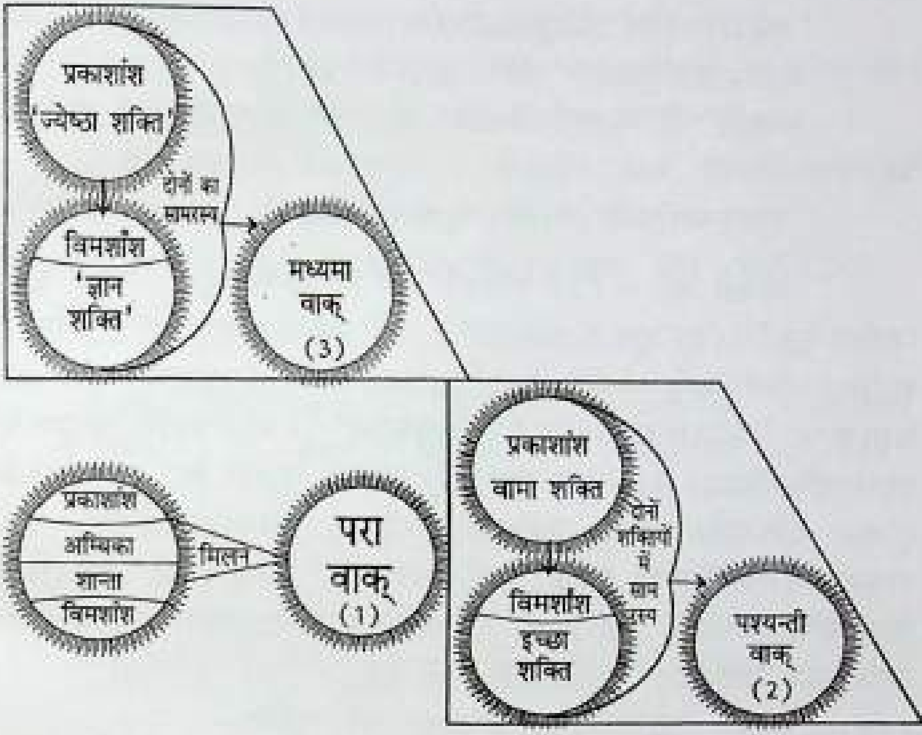

(26) *'मंत्र तत्त्व' (शास्त्रीय मीमांसा)

'मंत्र के निम्न लक्षण हैं—

1. 'पूर्णाहन्तानुसंध्यात्मा' : पूर्णाहन्तानुसंधान
2. मनन-धर्म
3. संसारक्षय करने से त्राण-धर्म—

'पूर्णहन्तानुसंध्यात्मा स्फुर्जन्मनन धमतः।
संसारक्षयकृत्त्राण धर्मतो मंत्र उच्यते।।'

'मंत्र' मूलतः तो चितिशक्ति की रश्मियाँ हैं— 'मंत्राश्चिन्मरीचयः' तथापि स्थूल दृष्टि से देखें तो ये 'नाद' और फिर 'वर्ण' की सन्तान हैं क्योंकि इनका शरीर नादवर्णात्मक है।

'ललिता सहस्त्रनाम' नामक ग्रंथ में भगवती को 'वर्णरूपिणी' कहा गया है—('उदार कीर्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी 159)। उन्हें 'नादरूपिणी' भी कहा गया है—

'वीर गोष्ठीप्रिया वीरा नैकर्म्या नादरूपिणी'। (167)

***'मंत्र'**

'मकार मननं प्राहुस्त्रकारस्त्राणमुच्यते।
मननत्राणसंयुक्तो 'मंत्र' इत्यभिधीयते।।

भगवती को **'मूलमंत्रात्मिका'** और मंत्रों के कूटत्रय से युक्त— **'कूटत्रयकलेवरा'** कहा गया है—

'मूलमन्त्रात्मिका मूल कूटत्रयकलेवरा।'

भगवती को —(1)**'मंत्रिणी'**[(1)] (2)**'वाग्भवकूट' 'मध्य कूट' 'शक्ति कूट'**[(2)] (3)**'मूल मंत्रात्मिका'**[(3)] (4)**'सर्वमंत्रस्वरूपिणी'**-(सर्वेश्वरी **सर्वमयी सर्वमंत्रस्वरूपिणी** 52)(5)**'महामंत्रा'**—(महातन्त्रा महामंत्रा महायन्त्रा महासना'56)(6)**'नादरूपा'** (नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता) (7)**'परा-पश्यन्ती-मध्यमा वैखरी रूप वाक्चतुष्टय** ('परा प्रत्यक्चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता। मध्यमा वैखरी रूपा **भक्तमानसहंसिका** 81) (8)**'भाषा'**('भाषारूपा बृहत्सेना **भावाभावविवर्जिता:** 133)(9)**'मंत्रसारा'** ('छन्द: सारा शास्त्र सारा **मन्त्र सारा तलोदरी:** 158) कहा गया है।

(27) मन्त्र *कुलार्णवतन्त्रकार की दृष्टि—

चूँकि **मंत्र**—(1) दीप्तिमान देव तत्व का मनन करने की प्रेरणा देने एवं (2) समस्त सांसारिक भयों से त्राण प्रदान करने के कारण इसे **'मंत्र'** कहते हैं—

'मनना तत्त्वरूपस्य देवस्यामिततेजस:।
त्रायते सर्वभयतस्तस्मान्मंत्र इसीरित:।। [(4)]

(28) *मंत्र-साधना का वैज्ञानिक रहस्य—

1. सुप्त मंत्रों का जप करने से सारा जपश्रम व्यर्थ हो जाता है।
2. **'मंत्र-चैतन्य'** करने के उपरान्त निष्पादित मंत्र ही पूर्ण सिद्धि प्रदान करता है अन्यथा नहीं।

---

(1) गेय चक्ररथारूढमंत्रिणी परिसेविता।। (26) (ललिता सहस्रनाम)
मंत्रिव्यम्बा विरचित विषंग वधतोषिता। (29) (ललिता सं.)

(2) श्रीमद्‌भागवकूटैकस्वरुप मुखपंकजा।
कण्ठाध:कटिपर्यन्त मध्यकूट स्वरूपिणी। (34-35)
शक्तिकूटैकतापन्न कटयधोभागधारिणी। (ललिता सं.)

(3) मूलमंत्रात्मिका मूलकूटत्रय कलेवरा।।(36) —ललिता सहस्रनाम

(4) कुलार्णव तंत्र (54)

'मंत्राश्चैतन्य संहिता : सर्वसिद्धिकराः स्मृताः।।'[1]

क्योंकि- 'चैतन्यरहिता मंत्राः प्रोक्ता वर्णस्तु केवलम्।।

3. श्रद्धा-आस्थायुक्त निष्पादित मंत्र जप-मांत्रिक मानसोल्लास।

'मानसोल्लास'→ एक अनिर्वचनीय ऊर्जोल्लास।

ऐसे मंत्र-जप का फल → सैंकड़ों, हजारों, लाखों एवं करोड़ों मंत्रों के जप से भी अधिक फल की प्राप्ति।।

*मंत्र-जप के अन्य उत्तम विधान एवं भावोद्रेक

↓

1	2	3	4	5
मंत्रजप के कारण हृदय भर आता है	कंठ अवरुद्ध हो आता है	वाग्धारा में कारुण्य का गद्गद् भाव आता है	शरीर के अंग-प्रत्यंग मानों अपने में समा नहीं पाते	आनन्याश्रु प्रवाह होने लगे

6	7
शरीर रोमोंचित हो उठता है	शरीर एक अनिर्वचनीय आवेश से युक्त हो उठता है।

'हृत्कण्ठ ग्रंथिभेदश्च सर्वांमव वर्द्धनम्।

आनन्दाश्रु च पुलको देहावेशः कुलेश्वरि।

गद्गदोक्तिश्च सहसा जायते नात्र संशयः।। [2]

(29) मंत्र-दोषों के परिहार के उपायः मंत्रों के 10 संस्कार

↓

1	2	3	4	5
'जनन'	'जीवन'	'ताड़न'	'बोधन'	'अभिषेक'
6	7	8	9	10
'विमलीकरण'	'आप्यायन'	'तर्पण'	'दीपन'	'गुप्ति'

(स्थानाभाव के कारण व्याख्या संभव नहीं है।)

●●●

(1) कुलार्णव तंत्र (15/60) (2) कुलार्णव तंत्र (15/63)

अष्टम अध्याय

श्रीलक्ष्मी माता

* अष्टम अध्याय *

* मान्त्री साधना और उसका रहस्य *

'षडध्व' में से एक अध्व मंत्र (मंत्राध्व) है। इन 6पथों (अध्वों) का परिवर्तन भगवती लक्ष्मी करती हैं—

'शब्दार्थव्यक्ति रूपायै षडध्वपरिवर्तिनि' (ल.तं.21/1) अर्थात्

(1) *'वर्ण'

'षडध्व' का परिवर्तन करने वाली शक्ति तो **भगवती लक्ष्मी हैं**—
*** 'वर्ण' सर्वकारण कारण हैं—**

'वर्णाः प्रकाशिता देवि। यथावत् सर्वहतवः' (लक्ष्मी तंत्र 21/2) वर्णों से ही मंत्र मार्ग (**'मंत्राध्वा'**) का निर्माण होता है—

वर्णों से ही मंत्रों का निर्माण होता है। भगवती सारे अध्वों की प्रवर्तिका हैं—

'विवर्ते तत्ववर्त्मना' विवर्ते मन्त्रवर्त्मना' 'विवर्तेऽहं कलाध्वना' आदि भगवती **'शब्द ब्रह्म'** (परम मंत्र) का स्वरूप धारण करके **'कलाध्वों'** का विवर्तन किया करती हैं—

*** 'मंत्र' षडध्व का एक अङ्ग है—** } **'शब्द ब्रह्ममयी भूत्वा विवर्तेऽहं कलाध्वना।'**
—ल.तं.21/6

***षडध्व ('लक्ष्मी तंत्र' के आलोक में)**
↓

1	2	3	4	5	6
'वर्णाध्व'	'कलाध्व'	'तत्वाध्व'	'मंत्राध्व'	'पदाध्व'	'भुवनाध्व'

(2) *मंत्र—

* मंत्रों की विभिन्न अवस्थायें-मंत्रों की भिन्न-भिन्न अवस्थायें होती हैं—

'तुर्यं सुषुप्तिः स्वप्नश्च जाग्रदबीजादयः क्रमात'

(—ल.तं. 21-11)

(3) * 'मंत्र' अवस्थाओं से सम्बद्ध हैं—

1.	जाग्रतावस्था-'पदमन्त्र'	क्रिया कारक संयोग से स्तुति + सम्बोधन से युक्त।।
2.	स्वप्नावस्था -'नाम मन्त्र'	नमः एवं ॐ से संयुक्त।
3.	सुषुप्ति की अवस्था-'पिण्ड मन्त्र'	इन मंत्रों के मध्य में व्यंजन भी स्वर से युक्त होते हैं।
4.	तुरीयावस्था-'बीजमन्त्र'	अनेक स्वरों के मेल से निर्मित।

(4) * 'मन्त्र' 'शब्द ब्रह्म' का 'विवर्त' है *

* वैष्णवागम की मंत्र-सम्बधिनी दृष्टि— वैष्णवागम के अनुसार 'मन्त्राध्व' शब्द ब्रह्म का विवर्त है और यह सहस्त्रों रश्मियों से ज्योतिष्मान है— 'तस्य मन्त्राध्वनो व्यक्ति' गदन्त्यामे निशामय।

शब्दब्रह्म-विवर्तोऽयं किरणयुतसंकुलः।। (ल.तं. 21/9)

(5) मंत्रों के प्रकार —(1) 'बीज मंत्र' (2) 'पिण्ड मंत्र' (3) 'नाम मंत्र' (4) 'पदमंत्र'

'क्वचिद् बीजं क्वचित्पिण्डं क्वचित्संज्ञा क्वचित्पदम्'

(ल.तं. 21/10)

इन चारों प्रकार के मंत्रों में देवताओं का निवास होता है।

*देव-मंत्रतादात्म्य—

एतच्चतुष्टयं मन्त्रं सम्पूर्णं देवतात्मनि। (ल.तं. 21-14)

मंत्र सिद्धियां प्रदान करते हैं—

'सा चतुष्टय सम्बद्धासिद्धिभिष्टां प्रयच्छति' (-ल.तं. 21/15)

(6) *मान्त्री साधना और उसका रहस्य

प्रश्न- क्या मान्त्री साधना '**भक्ति-साधना**' में अंतर्भुक्त नहीं है? यदि मंत्र-साधना भक्ति-साधना का ही एक अङ्ग है तो भक्ति-साधना एवं मांत्री-साधना दोनों को पृथक-पृथक रूप में प्रस्तुत क्यों किया गया?

उत्तर- ईसाई धर्म में मंत्र साधना नहीं है किन्तु भक्ति मार्ग तो स्वीकृत है। अतः '**भक्ति**' और '**मंत्र**' को पृथक स्वीकार किया जा सकता है।

***'भगवती 'लक्ष्मी', 'मातृका' मंत्र एवं ओम्**

एक सर्वमिदं व्याप्य स्थितं सर्वोत्तर महः।
अहन्ताहं परा तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
शब्दब्रह्ममयीभूत्वा मातृकामंत्रविग्रह। (1)
भवामि मंत्ररूपाऽहं तत्तद्वाच्यानुकारिणी।।
ओमित्येतत् समुत्पन्नं प्रथमं ब्रह्मतारकम्।। —(ल.तं. 24/2-4)

वैष्णवागम में '**मन्त्र**' को विष्णु की साक्षात् शक्ति माना गया है। '**मंत्र शक्ति**' का सर्वप्रथम प्रकाश '**नाद**' रूप में होता है। '**नाद**' को महायोगी ही सुन सकते हैं। '**नाद**' के बाद '**बिन्दु**' आता है। '**नाद**' और '**बिन्दु**' नाम और रूप की अभिव्यञ्जना करते हैं।

'**मंत्र**' वर्णों से निर्मित होते हैं। '**वर्ण**' क्या है?

(7) 'वर्ण'—सारे वर्ण चिदंश एवं ज्योतिर्मय हैं—

'चिदंशाः सर्व एवैते वर्णाः भास्वर विग्रहाः।।

लक्ष्मी शक्ति से समन्वित ये सारे वर्ण मंत्रों के आदि कारण हैं—

'कारणं सर्वमंत्राणां लक्ष्मीशक्त्युपबृंहिता।
स्तुताः सम्पूजिता ध्याता वर्णः सञ्ज्ञाभिरादरात्।
प्रयच्छन्ति परामृद्धिं विज्ञानं भावयन्त्यपि।
परस्पराङ्गभावं च मंत्रात्पत्तौ व्रजन्त्यमी।। (2)

चराचर जगत में ऐसा कुछ भी नहीं है जो इनसे भावित न हो। ये परा दिव्य मंत्र मूर्तियाँ हैं और नित्य हैं-

'चराचरेऽस्मिस्तन्नास्ति यदमीभिर्न भावितम्।
नित्या यद्यपि ता दिव्या मंत्राणां मूर्तयः पराः।।(3)

---

(1)(लक्ष्मी तंत्र (25/29) (2) लक्ष्मी तंत्र (25/30-31) (3) ल.तं. (25/32)

इसी प्रकार के भावों से वर्णों का ध्यान करना चाहिए।

जप

1. जप तो **'मंत्र'** का किया जाता है।
2. जप का भगवान के **'नाम'** एवं **'रूप'** से भी सम्बंध है क्योंकि मंत्र का मूल है **'नाद'** (भगवन्नाम)।
'नाद' के बाद आता है **'बिन्दु'** (भगवत्स्वरूप) इसीलिए मंत्र जप की प्रक्रिया इस प्रकार है-
'तज्जपस्तदर्थभावनम्' —(यो.सू.)

मंत्र-साधना का महत्व एवं योग-मंत्र का अविनाभाव सम्बंध
मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पते।
न योगेन बिना मंत्रों न मंत्रेण विना हरिः।।
—नारद पञ्चरात्र (5/10/41)

(8) *पराशक्ति का स्वरूप भी मन्त्रात्मक है।

भगवती लक्ष्मी **'मंत्रमयी'** एवं **'मंत्रस्वरूपा'** हैं। **'मन्त्र'** उन्हीं का ध्वन्यात्मक विग्रह है। **'नाम'—'रूप'** के आधार पर भगवती के दो रूप हैं—(1) निर्गुण एवं (2) सगुण।

'नाम' के आधार पर भी उनके दो रूप हैं—(1)**'नादात्मक'** (2) **'वर्णात्मक'**। उनके नादात्मक स्वरूप भी अनेक हैं यथा **'परा'**, **'पश्यन्ती'** एवं **'मध्यमा'** आदि। भगवती लक्ष्मी के नामात्मक स्वरूप के दोनों प्रकार या भेद मंत्रात्मक ही हैं क्योंकि भास्करराय कहते हैं कि **'सर्वेषु वर्णेषु नादानुस्यूताः।।'** यदि सभी वर्ण नादात्मक हैं तो सभी वर्ण मंत्रात्मक भी कहे जायेंगे क्योंकि 'नाद' ही मंत्र का मूल स्वरूप है।

भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि मुझे मंत्रमयी मानकर मेरी साधना करो-

'स्मरन् मन्त्रमयी लक्ष्मीं मामेकां परमेश्वरीम्।
एकान्तदेशमासाद्य बध्नीयाद्रुचिरासनम्।। [1]

(1) लक्ष्मी तंत्र (34/135)

अर्थात् एक ही मंत्रमयी लक्ष्मी परमेश्वरी जो मैं हूं उसी का अर्थात् मेरा स्मरण करना चाहिए और एकान्त स्थान में जाकर सुन्दर आसन पर आसीन होना चाहिए।

(9) *'मंत्र' का रहस्यात्मक पक्ष–

'मंत्र' वर्णों एवं अक्षरों (या ध्वनियों) का समुच्चय नहीं है। 'मंत्र' देवता (परमात्मा) से सम्बद्ध उसका नादात्मक स्वरूप है। 'मंत्र' के संघटक तत्व दो हैं–

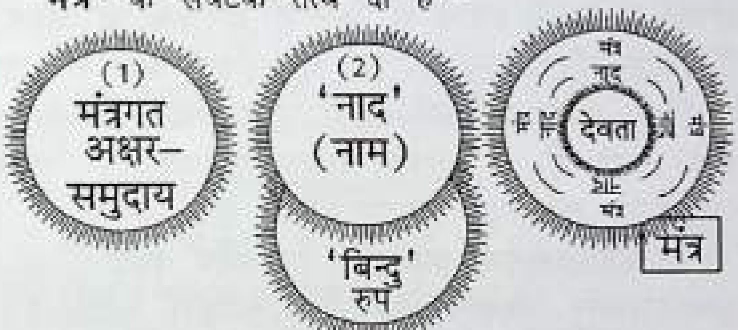

{ मंत्र-देवता का 'वाचक' है।
देवता- मंत्र का 'वाच्य' है। }

मंत्र और देवता में सम्बंध – दोनों में वाचक वाच्य सम्बंध है।

(10) *योगशास्त्र की दृष्टि

'तस्य वाचकः प्रणवः। (1/27)

'अदृष्अविग्रहोदेवो भावग्राह्यो मनोमयः।
तस्योङ्कारः स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदति।। (स्मृति)

'मंत्र' का यथार्थ स्वरूप देवता का मंत्रानुस्पूत नादस्वरूप है सभी अक्षरों में 'नाद' अनुस्पूत हैं–

(11) *वर्ण या अक्षर तथा परमाशक्ति लक्ष्मी—

इन्द्र की प्रार्थना पर भगवती 'वर्णाध्व' पर प्रकाश डालती हुई कहती हैं कि–(1)'वर्णाध्व' वह है जिसे जानने के बाद साधक मेरे समान हो जाता है—

'प्राप्नोति यत्परि - ज्ञानात् साधको मत्सरूपताम्। [1]

भगवती स्वयमेव ही अक्षर या वर्ण हैं।

भगवती इन्द्र से कहती हैं कि—मैं ही वर्ण या अक्षर हूँ।

(1) मैं प्रकाश और आनन्द का सार भाग हूँ। मैं सभी ओर समभाव से स्थित रहती हूँ। कोटि-कोटि अयुत अंशों से जब भी मैं क्षुब्ध होती हूँ तो अपनी शक्ति से स्वयमेव **'शब्दब्रह्म'** (महामन्त्र) का स्वरूप ग्रहण करती हूँ—

'शब्द ब्रह्मस्वरूपेण स्वशक्त्या स्वयमेव हि।'
मुक्तयेऽखिल जीवानामुदेमिं परमेश्वरात्।। (20/6-7)

(2) जिस प्रकार वाद्यों से शब्द निकलते हैं उसी प्रकार मैं परमेश्वर से व्यक्त होने वाली अक्षररूपा हूं। पृथक-पृथक वर्णों में मेरी स्थिति अनेकात्मक होती है—

'तदव्यक्ताक्षरं विद्धि तन्त्री शब्दो यथा कलः।
पृथग्वर्णात्मना याति स्थितये नैवधा स तु।। (20/8)

अर्थात् (1) **सारे वर्णों की समष्टि भी भगवती लक्ष्मी हैं** और

(3) सारे वर्णों का व्यष्टि रूप भी भगवती लक्ष्मी ही हैं।

अर्थात् **प्रत्येक वर्ण भगवती लक्ष्मी या शक्ति का विग्रह है।**

'मातृकायें'– विष्णु की शक्तियाँ हैं—

'मातृका जायते सेयं विष्णु शक्त्युपबृंहिता।। (20/32)

50 मातृकायें (5वर्ण) विष्णु के समान हैं—

विष्णुवत्तत्र पञ्चाशच्छक्तयः परिकीर्तिताः।। (20/32)

(4) **ये 50 शक्तियाँ ही 50 मातृकायें हैं।**

वैखरी प्रणाली (वर्णमार्ग) शरीर में बद्ध जीवों को सन्मार्ग प्रदर्शित करती हैं—

'जीवानां देहबद्धानां तत्तत्सन्मार्ग दर्शिका। (ल.तं. 20/31)

(1) लक्ष्मी तंत्र (अ. 20/3)

(5) इन वर्णमालिनी मातृकाओं में विष्णु से लेकर केशव तक 12 व्यूहान्तर रूपों का अधिष्ठान है।

(12) ***वर्णो में स्थित विष्णु से लेकर केशव तक के व्यूहान्तर (विष्णु के 12 रूप)***

↓

'केशव'	'नारायण'	'माधव'	'गोविन्द'	'विष्णु'	'मधुसूदन'

↓

'त्रिविक्रम'	'वामन'	'श्रीधर'	'हृषीकेश'	'पद्मनाभ'	'दामोदर'

(13) ***मातृका और मातृकोपासना**–[1]

भगवती **'मातृका'** हैं–वे मंत्रों की मातृका हैं–**'मंत्राणां मातृका ज्ञेया'**। मातृका का स्वरूप–

'या सा तु मातृका देवि। परतेजः-समन्विता।
तया व्याप्तमिदं विश्वं सब्रह्मभुवनान्तकम्।

***मात्रिका**

मंत्रों का मूलावयव **'मातृका'** है और **'मातृका'** स्वयं भगवती लक्ष्मी हैं। भगवती मात्रिका-निर्मित **'मंत्र'** हैं–

'मंत्ररुपमिदं शक्र विद्धि मद्रूपवेदिनाम्।। [2]

मंत्र

मंत्र क्या है? जिन शब्दों से अहन्ता का विकास होता है उसे **'मंत्र'** कहते हैं–

'स मंत्रः संस्मृतोऽहन्ता विकासः शब्दजैः क्रमैः।। [3]

सारे **'मंत्र'** भगवती के अपने स्वरूप हैं–

'सर्वे मन्त्राः मदीयाः स्युः।। (ल.तं. 18/46)

***मंत्रों की माता**

भगवती मंत्रों की माता हैं–**'मंत्राणां जननी ज्ञेया।।** (18/37)

सारे मंत्र भगवती का आश्रय लेकर विवर्तित होते हैं और अन्त

---

(1) ल.तं.(अ.20) (2) ल.तं.(18/43) (3) ल.तं.(18/45)

में उन्हीं में लय प्राप्त कर लेते हैं—

'ममाश्रिय विवर्तन्ते यान्ति चास्तं मुहुर्मयि।।

नाद के साथ जो शक्ति होती है उसे **'सूक्ष्म शक्ति'** कहते हैं।

क. जो बोध का उन्मेष है उसे **'शब्द'** कहते हैं।

ख. जो प्रथम शब्दोन्मेष है उसे **'नाद'** कहते हैं।

ग. नाद के बाद जिस शक्ति का उदय होता है उसे **'बिन्दु'** कहते हैं।

घ. नाद में जिस शक्ति का उदय होता है उसे **'द्वितीय शक्ति'** कहते हैं।

ड. प्रथम शब्दोन्मेष या **'नाद'** के साथ जो शक्ति होती है उसे **'सूक्ष्मशक्ति'** कहा जाता है।

च. **'नाद'** के बाद **'बिन्दु'** होता है। इसकी शक्ति को **'द्वितीय शक्ति'** एवं इसके बाद **'तृतीय शक्ति'** उदित होती है जिसे **'पश्यन्ती'** कहते हैं।

छ. पश्यन्ती शक्ति के बाद जिस शक्ति का उन्मेष होता है उसे **'मध्यमा'**

ज. मध्यमा के बाद जो शक्ति उदित होती है उसे **'वैखरी'** कहते हैं। ('लक्ष्मी तंत्र 18/21-27)

(14) **भगवती का नादात्मक स्वरूप 'मातृका' या 'नाद' है।**

मंत्राणां 'मातृका' ज्ञेया, शब्दानां ज्ञानरूपिणी।

ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्य साक्षिणी।।

—श्री देव्यथर्वशीषम्

भगवती मंत्रों की प्राणभूता शक्ति **'मातृका तत्व'** है। वे मातृका शक्ति हैं। वे शब्दों में शब्दों का प्राण तत्व **'ज्ञान'** हैं।

'लक्ष्मी तंत्र' (18/22) में कहा गया है कि—

जो बोध (ज्ञान) का उन्मेष है वस्तुतः वही **'शब्द'** है। शब्दोदय के साथ जो शक्ति उदित होती है वह—(1) **'शान्ता'** कहलाती है और (2) वह आत्मा की प्रथम शक्ति है।

भगवती कहती हैं—

'बोधोन्मेशः स्मृतः शब्दः' (ल.तं.18/22)

अर्थात् जो बोध (ज्ञान) का उन्मेष है वही **'शब्द'** है। **'अथर्वशीर्ष'** में कहा गया है कि शब्दों में जो ज्ञान निहित रहता है वही **'शक्ति'** का स्वरूप है अर्थात् शक्ति ज्ञानस्वरूपा है। ठीक भी है क्योंकि ब्रह्म का जो लक्षण है उसमें एक लक्षण उसकी ज्ञान स्वरूपता भी है—**'सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म'**।

'जयाख्य संहिता' में अर्चन की प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि इसके दो उपाय हैं—(1) **'समाधि उपाय'** (2) **'मन्त्रोपाय'**। **'मंत्रोपाय'** को **'समाधि उपाय'** से श्रेष्ठतर कहा गया है। ठीक भी है क्योंकि **'मंत्र' विष्णु की साक्षात् शक्ति हैं।** (विष्णु की साक्षात् शक्ति-मंत्र')

* 'नाद' = मंत्र। **'बिन्दु'** = रूप।

* **प्रभु की साक्षात शक्ति** - 'मंत्र'। प्रभु से अभिन्नतया स्थित है—**'शक्ति'**। यही **'शक्ति'**-लक्ष्मी, श्री, कमला, रति, शिवा, नारायणी, विष्णु शक्ति भी कही जाती है।

* श्रीकृष्ण मंत्र * (ना. पञ्चरात्र)

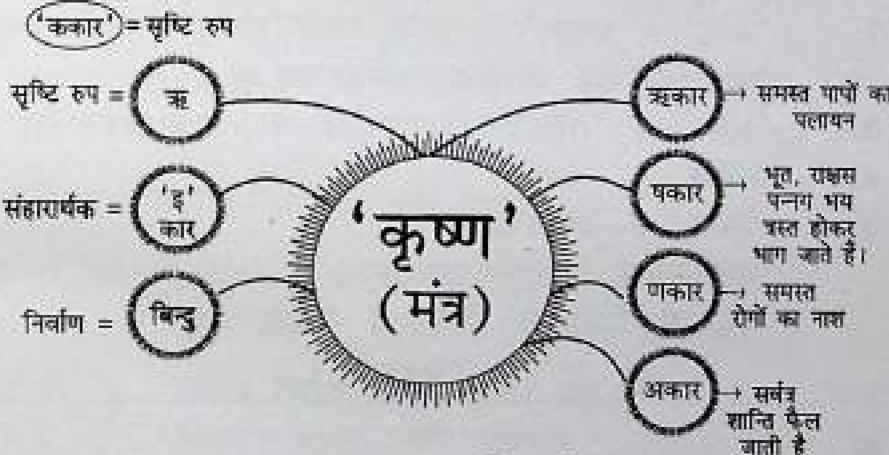

1. **ककार** = मुख **ककार** = सृष्टिकर्ता
2. **ऋकार** = नेत्र **ऋकार** = वेदवेद्य हरि
3. **षकार** = बाहु **पकार** = शिव
(सृष्टि-स्थिति एवं संहार के कर्ता शिव)
4. **णकार** = पैर **णकार** = श्वेत रूप होने के कारण-निर्वाणदायक।।

5. अकार = समस्त शरीर विसर्ग = जगद्बीज। माया।।

* मंत्र का स्वरूप

(15) * मंत्राङ्ग—

1. ऋषि - 'ऋकार' : सृष्टिसंज्ञ : स्यात् 'षिकार' : स्थितिसंज्ञक:।
   सृष्टि स्थितिभ्यां संज्ञेयं मंत्र विद्धि रुदाहतम्।।
2. 'छन्द' = 'छकार' : पदसंज्ञ: स्यात 'दकार' श्चाऽभिलाषक:।
   पदाभिलाषसंज्ञं तच्छन्द: सद्भिरूदाहृतम्।।
3. 'बीज' - 'बीजं' कारणमर्थानां जगन्निमणिरूपकम्।।
4. शक्ति - तत्व
5. देवता 6. विनियोग।

भास्करराय ने 'वरिवस्यारहस्यम्' ने बहिरङ्गों एवं अन्तरङ्गों का जो विभाजन किया है उसके अनुसार—

*मंत्राङ्ग

(1) अंतरङ्ग	(2) बहिरङ्ग
'विद्या' के वर्णों की संख्या, उद्धार, काल (मात्रा) का उच्चारण, स्थान, प्रयत्न, रूप, विभिन्न स्थितियाँ एवं आकार आदि विद्या (मंत्र) के **'आन्तर अङ्ग'** हैं।	ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, बीज, शक्ति, कीलका, न्यास, ध्यान, नियम एवं पूजा आदि विद्या (मंत्र) के **'बाह्य अङ्ग'** हैं।

*"विद्या' के अन्तरङ्ग— { 'विद्यावर्णेयत्तोद्धार: कालस्तदुच्चार:।
उत्पत्तिस्थानं तद्यत्नो रूपं स्थितिस्थानम्
आकार: स्वं परं विभाव्यमर्थोऽन्तरङ्गाणि।। } अंतरंग

*विद्योपासना के बहिरङ्ग—

{ ऋषयश्छन्दोदैवत विनियोगा बीज शक्ति कीलानि।
न्यासा ध्यानं नियमा: पूजादीनि बहिरङ्गाणि।।
बाह्यान्यङ्गानि पुन: प्रायो लोके प्रसिद्धकल्पानि।। } बहिरंग

ऋष्यादि के स्थान : मंत्र के **'ऋषि'** से शिरन्यास, मंत्र के **'छन्द'** से मुखन्यास एवं मंत्र के **'देवता'** से हृदयन्यास करना चाहिए। (अहि. 20/19)

'पराकारस्य मंत्रस्य परमात्मा ऋषि: स्मृत:।
संकर्षणस्तु सूक्ष्मस्य स्थूल्यस्याहमृषि: स्मृत:' (अहि.सं. 20/20)

राधामंत्र और उसके मंत्राङ्ग : ऋषिरस्य महादेवोऽनुष्टुपछन्दश्च कीर्तित—

राधाऽस्य देवता प्रोक्ता रां बीजं कीलकं स्मृतं।
धर्मार्थ काममोक्षेषु विनियोग : प्रकीर्तित:।। (ना.पं. 5/7/8)

*वैष्णवागम में 'साध्य' और 'साधन'—

1. **'धर्म' साधन है** } धर्म ही साधन है। यह त्रिविधात्मक है।
धर्म: सर्वस्य, साध्यस्य निममेनैव साधनम्।

2. **'मोक्ष' साध्य है** } तदेतत् त्रितयं प्रोक्तं त्रिवर्ग इति पण्डितै:।
मोक्षश्च साध्य एवेति पुरुषार्थ चतुष्टयम्।।

—अहिर्बुध्न्य संहिता (13/36-37)

धर्म

धर्म	काम	अर्थ
(साधन)		
साध्य		

(16) * देवता और उसका स्वरूप *

प्रत्येक स्तोत्र का पाठ करते समय उसके ऋषि, छन्द एवं देवता का नामोच्चारण करते हुए उनका ध्यान करना पड़ता है।

*देवता

स्तोत्र, सहस्त्रनाम, शतनाम आदि— सभी का केन्द्र एवं लक्ष्य देवता होता है। **देवता क्या है?**

कुलार्णतंत्रकार की दृष्टि— भगवान शंकर भगवती पार्वती से कहते हैं कि—(1) भक्तों के देहभाव में स्थित रहकर वर प्रदान करने तथा (2) तापत्रय आदि दुःखों का शामक होने के कारण इन्हें **'देवता'** कहा जाता है—

'देहमास्थाय भक्तानां वरदानाच्च पार्वति।
तापत्रयादि शमनाद्देवता परि कीर्तिता।। (1)

प्रत्येक मंत्र का एक देवता होता है। यही देवता परमोपास्य होता है। इसकी ही उपासना की जाती है।

* मंत्र एवं राधोपासना तथा कृष्णोपासना

1. 'रां' 'रां' राधा का बीजमंत्र है। (एकाक्षर मंत्र 'रां')	राधा (देवता)।
2. 'रांह्रीं क्लीं राधायै स्वाहा' (मंत्रसूत्र (मंत्र)	राधा (देवता)।
3. राधोपासना का महत्व- 'आराध्यं सुचिरंकृष्णं यद्यत्कार्यं भवेन्नृणाम्। राधोपासनया तत्त्वभवेत स्वल्पेन कालतः	राधोपासना (राधा)
4. 'ॐश्रीं ह्रीं क्लीं ऐं रां राधिकायै स्वाहा।।'	(ना.पं.2/5/55)राधा
5. 'ॐश्रीं ह्रीं क्लीं ऐं रां रासेश्वरी स्वाहा।।'—षोडशी महाविद्या	(ना.पं.2/5/48)राधा
6. कृष्णोपासना- 'परं श्री कृष्णभजनं ध्यानं तन्नाम कीर्तनम्।	(ना.पं.1/2/64)कृष्ण
7. 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन	हृषीकेश
8. 'तमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज।।'	(ल.तं. 24/69)हृषीकेश
9. **'कृष्ण'** का **'ककार'** सृष्टिरूप। **'लकार'** (ऋ) स्थिति रूप। **'ई'** संहाररूप। **'बिन्दु'** निर्वाण। (ना.पं8/2,3)	श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण
10. कृष्णोपासना का महत्व-'लभलम हरिभक्तिं वैष्णवैन्क्तां सुपक्वाम्'	(ना.पं.1/220)
11. ह्रीं श्रीं क्लीं रक्ष कृष्णाय नमः	श्रीकृष्ण

(1) कुलार्णव तंत्र (55)

12. 'क्लीं कृष्णाय नमः (षडक्षर मंत्र)	श्रीकृष्ण
13. नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय	श्रीकृष्ण
14. गोपी जन वल्लभाय स्वाहा	श्रीकृष्ण
15. क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।	श्रीकृष्ण
16. ॐ नमो भगवते वासुदेव (महामंत्र) (द्वादशाक्षरमंत्र)	वासुदेव (देवता)
17. 'रा' शब्द के उच्चारण से मुक्ति-मुक्ति दोनों प्राप्त 'धा' शब्द के उच्चारण से हरिपद की ओर गति 'रा शब्दोच्चारणाद्भक्तो भक्तिं मुक्तिं च राति सः। धा शब्दोच्चारणेनैव धावत्येव हरेः पदम्।। —नारद पञ्चरात्र (2/3/38)	

(16) **'कवच'**—युद्ध के क्षेत्र में एक योद्धा को जितनी आवश्यकता कवच की होती है उतनी ही आवश्यकता किसी मंत्र साधक एवं ध्यान-साधन को भी। कारण यह है कि साधना करने से साधक नीचे के तमोगुणी, आसुरी, स्थूल एवं अधोगामी वैश्विक-मानसिक स्तर को अतिक्रान्त करके सूक्ष्म, ऊर्ध्वगामी, सतोगुणी एवं आध्यात्मिक स्तर पर आरोहण करता है। इन दोनों स्तरों के मध्य उसे सूक्ष्म स्तरीय दुष्टात्माओं का सामना करना पड़ता है अतः उनसे अपनी रक्षा करने हेतु **'कवच'** आवश्यक है।

***वैष्णवागम में 'कवच' का महत्व—**

'कवच', 'न्यास', 'मुद्रा', 'कीलक' आदि तंत्र-साधना के स्वीकृत साधनाङ्ग हैं अतः वे वैष्णवतंत्र में भी स्वीकृत हैं।

'नारद पञ्चरात्र' में कहा गया है—**'राधिका कवच'** के प्रभाव से ब्रह्म सृष्टि, विष्णु पालन एवं शिव संहार करते हैं—

'कवचस्य प्रसादेन ब्रह्मा सृष्टिं स्थितिं हरिः।
संहारं चाहं नियतं करोमि कुरुते तथा।। (1)

जो इस कवच को जाने बिना **'राधामंत्र'** का जप करता है उसे सफलता कभी नहीं मिलती और पद-पद पर विघ्नों का सामना करना पड़ता है— **'इदं कवचमज्ञात्वा राधामंत्रं च यो जपेत्।**
स नाप्नोति फलं तस्य विघ्नस्तस्य पदे-पदे।। (2)

---

(1) नारद पञ्चरात्र (अ.7/28) (2) ना.प. (5/7/7)

क. **'ऋषि' - इस कवच के ऋषि महादेव हैं।**

ख. **'छन्द' इस कवच का छन्द अनुष्टुय है।**

ग. **'देवता' इस कवच की देवता भगवती राधिका हैं।**

घ. **'बीज' इस कवच का बीजाक्षर 'रां' है**

ड. **'विनियोग' -इस कवच का विनियोग धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष है।**

(18) ***'विष्णु सहस्त्रनाम'** की भाँति **'राधा सहस्त्रनाम'** आदि सहस्त्रनामों की भी स्वीकृति वैष्णवाग में है। **'नारद पञ्चरात्र'** में कहा गया है कि—**'राधा सहस्त्र नाम'** रूपी सरिता त्रैलोक्यपावनी सरिता है। महादेव कहते हैं कि मैं इस त्रैलोक्यपाविनी सरिता स्वरूप **'राधिका सहस्त्रनाम'** का पाठ नित्य किया करता हूं। यह मेरे प्राणों के समान है। इस स्तोत्र को मात्र हरिभक्ति-निरत वैष्णवों एवं पुण्यार्थियों मात्र को देना चाहिए—

'राधानाम सहस्त्राख्या नदी त्रैलोक्यपावनी।
पठयते हि मया नित्यं भक्त्या शक्त्या यथोचितम्।
मम प्राणसमं ह्येतत् तव प्रीत्या कदाचन।।' (1)

महादेव कहते हैं कि—

1. इस स्तोत्र के प्रसाद से इस भूतल पर क्या नहीं मिलता?
2. ब्रह्महत्या, सुरापान एवं चोरी आदि के पाप इसके प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।
3. इस सहस्त्रनाम के प्रभाव से सद्यः मुक्ति प्राप्त होती है। सहस्त्रनाम की इस संसार में कोई समता नहीं कर सकता।
4. स्वर्ग, पाताल, पर्वत एवं जल में न तो इससे अधिक शुभ स्तोत्र है और न इससे श्रेष्ठतर कोई अन्य तीर्थ ही है—

'स्वर्गे वाप्यथ पाताले गिरौवा जलतोऽपि वा।
नातः परं शुभं स्तोत्रं तीर्थं नातः परं परम्।। (2)

(19) ***स्तोत्र**

तांत्रिक साधना में 'सहस्त्रनाम' 'स्तोत्र' 'पटल' 'पद्धति' 'कवच' 'अर्गला' आदि अनेक तत्वों को आवश्यक तत्व स्वीकार किया गया है। **वैष्णवागम में भी उसकी स्वीकृति है।**

---

(1) ना.पं. 5/6/14-15) (2) ना.पं. (6/6)

'गोपाल सहस्त्रनाम' और 'त्रैलोक्य मङ्गल कवच' आदि का ना. पं. में अत्यन्त महत्व बताया गया है।

(20) *भक्ति एवं दास्य-भक्ति का विशेष महत्व–

वैष्णवागम में भक्ति महत्वपूर्ण तो है किन्तु भक्ति में भी दास्य भक्ति एवं न्यास (प्रपत्ति शरणागति) अत्यधिक महत्वपूर्ण है। दास्य भक्ति के विषय में महादेव कहते हैं–

'श्री हरेर्भक्तिर्दास्यं सर्वमुक्तेः परं मुने।'
'वैष्णवानामभिमतं सारात्सारं परात्परम्।। (3)

(21) *मंत्र तत्व (त्रिपुरा सिद्धान्त)–

'मंत्र' की मननात्मकता एवं त्राणात्मकता तो सर्वज्ञात है किन्तु इसके द्वारा जीवात्मा एवं परमात्मा में सामरस्य स्थापित किये जाने की सामर्थ्य का उल्लेख भी किया गया है। इसके अतिरिक्त 'त्रिपुरा सिद्धान्त' में इसकी विलक्षणता के अन्य बिन्दुओं का भी उल्लेख किया गया है। मंत्र की समस्त व्याख्या इस प्रकार है–

1. मकारं मननं प्राहुस्त्रकार स्त्राणमुच्यते।
मनन त्राण संयुक्तो 'मंत्र' इत्यमिधीयते।। ल.तं. (26/5)

वैष्णवागम में मंत्र-साधना को अत्याधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। वासुदेव की आत्म शक्ति या परात्पर महाशक्ति स्वयं 'मंत्ररूपा' हैं। भगवती कहती हैं कि–

'यथास्मि मंत्ररूपाहं यथा च ज्ञापयामि तान्।। (ल.तं.22/3)

भगवती कहती हैं–

1. श्रेष्ठ 'मंत्राध्व रूप' में मेरा विवर्तन निरन्तर होता रहता है–
'रूपं विवर्तते शश्वन्मान्त्रेण परमाध्वना।।

* मंत्र के प्रयोजन / मंत्रों का स्वरूप एवं फल	
	2. संसार में रहकर भोगों को भोगने के लिए
	3. जीवों में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए
	4. आराधना की सिद्धि के लिए एवं
	5. मानसिक आलम्बन प्रापत करने के लिए
	6. मंत्र वासुदेव आदि देवों के मूर्त रूप में विराजमान रहते हैं।

(3) ना.पं. (2/6/4)

*मंत्राध्वा का लक्ष्य	7.	सभी 'मंत्र' चिदात्मस्वरूप हैं
	8.	सभी 'मंत्र' सभी ओर जाने वाले हैं
	9.	सभी 'मंत्र' सर्वार्थ सिद्धि प्रद हैं-- अहि.सं. (22/19-20)

10. विष्णु के सभी 'मंत्र' मांत्रिकों के रक्षक, शास्त्रों में गुप्त भोग-मोक्ष प्रदायक है।

11 सभी 'मंत्र' निर्मल एवं मूर्त हैं। इनकी जाग्रत आदि चार अवस्थायें होती हैं—

उत्तारणाय जीवानां मग्नानां भवसागरे।
भोगाय भवसंस्थानां वैराग्यजननाय च।
आराधनस्य सिद्धायर्थं मानसा लम्बनाय च।
मंत्राध्वा परमोदारो मम चिद्रूपलक्षण।। (अहि.सं.)

2. 'मकारो' जीव संज्ञः स्यात् तकारस्त्वात्मसंज्ञकः।
जीवात्म संज्ञयोरैक्यं 'मंत्र' इत्यभिधीयते।

3. 'मकारं' मानसं प्रोक्तं 'त्रकारं' बुद्धिलक्षणम्।
बुद्धिमानस संयोगो 'मंत्र' इत्यमिधीयते।

(22) *मंत्राङ्ग

ऋषि	छन्द	बीज	कीलक	शक्ति	अङ्गन्यास	ध्यान

'ऋषिश्छन्दश्च बीजं च कीलकं शक्तिरेव च।
अङ्गन्यास स्ततो ध्यानं मंत्राङ्गानां च सप्तकम्।।

* * * * * * * * * * * * * * * * *

(23) *नाम तत्व—

वैष्णवागम में इन सभी का उल्लेख मिलता है।

'राम' का नाम अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रमा तीनों का कारण हैं। तुलसीदास जी कहते हैं—

बंदउँ नाम राम रघुवर को हेतु कृसानु भानु हिमकर को।
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलुदीन्ह अमी को।

नाम रूप दुई ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनिगुन भेदु सुसामुझ साधू।
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम-बिहीना।
रूपवसेस नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचाने
सुमिरिझ नाम रुप देखें। आवत हृदय सनेह विसेखें।
नाम रूप गति अकथ कानी। समुझत सुखदं न परति बखानी।
अगुन सगुन बिच नाम गुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभारवी।
राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुं, जौ चाहसि उजिआर।।
नाम जीहंजपि जगहिं जोगी। विरति विरंचि प्रपंच वियोगी।
अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।
मोरे मत बड़ नाम दुहू ते। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें।
निरगुन तें एहिं भौति बड़ा नाम प्रभाउ अपार।
कहउं नाम बड़ राम ते, निज बिचार अनुसार।
'ब्रह्म राम तें नामु बड़ वर दायक बर दानि।
राम एक तापस तिय तारी, नाम कोटि खल कुमति सुधारी।
कहौ कहां लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई
ध्यान प्रथम जुग, मखविधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें।
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना।
राम नाम कलि अभिनत दाता। हित पर लोक लो पितु माता।
नहि कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू।
मायं कुमायं अनख आलस हूं। नाम जपत मंगल दिसि दस हूं।।

(24) *साधना का मंत्रात्मक मार्ग–

शक्र ने भगवती से निवेदन किया कि आप मुझे **'मंत्र-मार्ग'** बताइए जिससे कि मैं आपके **मंत्रमय शरीर ('मंत्रमयी तनु')** या मंत्रात्मक स्वरूप की अर्चना कर सकूं। इस दिशा में इन्द्र ने लगभग बाइस प्रश्न किए।

(1) भगवती कहती हैं कि–**'उदय' के दो भेद हैं**–

1. 'नित्योदय' 2. 'शान्तोदय'। **'नित्योदय'** से अवतार होते हैं किन्तु **'शान्तोदय'** परावस्था हैं।

(2) भगवती की जो प्रत्यक्षीकरण वाली—'**अवबोधाम्किा**' '**प्रत्यक् अवमर्शिता**' है वही '**स्फुरत्तात्मिका**' और '**महानन्दा**' रूप अवमर्शिता (स्फुरत्ता) '**शब्द ब्रह्म**' है—

'**अवबोधात्मिकाया में या प्रत्यगमवर्शिता।**

सा स्फुरत्ता महानन्दा शब्दब्रह्मेति गीयते।। [1]

'**अहं बोधगम्यता**' ही यथार्थ '**प्रत्यक् अवमर्शिता**' है। देवी ने शक् के इस प्रश्न का कि—

'**कुतो मन्त्रसमुत्पत्तिः क्कच मन्त्रः प्रलीयते।**

मंत्रस्य किं फलं पद्मे केन मध्ये प्रसूयते।

उत्तर देती हुई कहती हैं कि —

'**अव बोधात्मिकाया में या प्रत्यगवमर्शिता।**

सा स्फुरत्ता महानन्दा शब्द ब्रह्मेति गीयते।।' (18/17)

अर्थात् भगवती के **अवबोधात्मक ज्ञानस्वरूप** की जो **प्रत्यक् अवमर्शिता** या अवमर्श है उसे ही महानन्दात्मक स्फुरता कहते हैं और वही '**शब्दब्रह्म**' है।

देवी ने मंत्रोत्पत्ति, मंत्रस्वरूप, मंत्र प्रकार आदि से सम्बद्ध सभी प्रश्नों के उत्तर के रूप में सर्वप्रथम '**शब्दब्रह्म**' का परिचय दिया क्योंकि उनसे उनके '**दिव्य मंत्रमयी तनु**' की भी जिज्ञासा की गई थी—

'**ब्रूहिमंत्रमयं मार्गमिदानीं विष्णुवल्लभे।**

यं विज्ञायार्चयेयं ते दिव्यां मंत्रमयी तनुम्।।' (18/2)

मंत्रस्वरूपा का परिचय मंत्र, ही तो है और '**शब्द ब्रह्म**' आदिमंत्र ही नहीं प्रत्युत् भगवती की '**महानन्दा स्फुरत्ता**' **अवबोध** एवं **प्रत्यगवमर्श** भी है। (ल.तं. 18/16)

(25) *शब्दब्रह्म का स्वरूप—

'**लक्ष्मी तंत्र**' (18/16) के अनुसार '**शब्द ब्रह्म**' का स्वरूप इस प्रकार है—

अवबोधात्मिकाया मे या प्रत्यगवमर्शिता।

सा स्फुरत्ता महानन्दा शब्द ब्रह्मेति गीयते।।'

---

(1) ल.तं. (18/17)

आचार्य शङ्कर की 'शब्द ब्रह्म' सम्बंधिनी दृष्टि—

आचार्य शङ्कर कहते हैं—

'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदम्येति बिन्दुताम्।
कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।
स्थूलसूक्ष्म पर त्वेन तस्य त्रैविध्यंमिष्यते।
स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते।
तद्विस्तार प्रकारोऽयं यथा वक्ष्यामि साम्प्रतम्।।
बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत्।
स र वः श्रुतिसम्पन्नैः 'शब्द ब्रह्मेति, कथ्यते।।

अर्थात् (1) **'प्रकृति'** तत्त्व 'ज्योति' (प्रकाश) के सम्पर्क में आने पर **'चिन्मात्रा'** कहलाती है। वह सिसृक्षु होने पर **'घनीभूत'** हो जाती है और अपनी इस घनीभूतावस्था में यह **'चिन्मात्रा रूपा प्रकृति' 'बिन्दु'** के रूप में प्रकट होती है।

'बिन्दु'—'बिन्दु' काल द्वारा विद्यमान होने पर तीन रूपों में विभाजित हो जाता है। वे तीन रूप हैं-(1)**'स्थूल'** (2) **'सूक्ष्म'** (3)**'पर'** या (1)**'बिन्दु'** (2)**'नाद'** (3)**'बीज'** ।

(26) *'परम बिन्दु' का आत्मविभाजन—

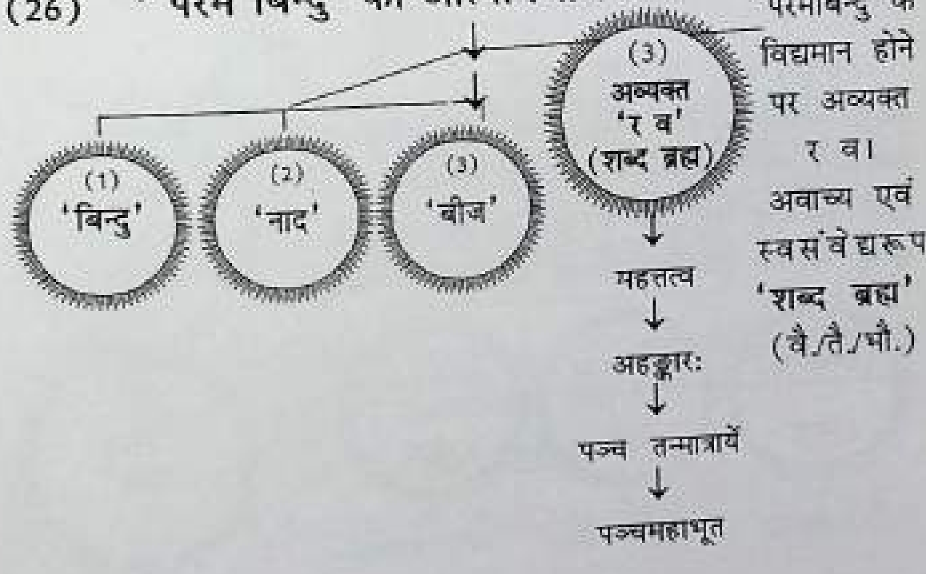

(27) *आत्म-विभाजन से सृष्टि—

(1) **'प्रपञ्चसार तंत्र'** (प्रथम पटल : 41-44)

गुणत्रय + शक्ति + काल युक्त

'अहंकार' से शब्द→आकाश→ वायु→अग्नि→जल→ पृथ्वी।

***लक्षमणदेशिकेन्द्र की दृष्टि**— लक्ष्मण देशिकेन्द्र 'शारदातिलक' (प्रथम पटल) में कहते हैं कि—

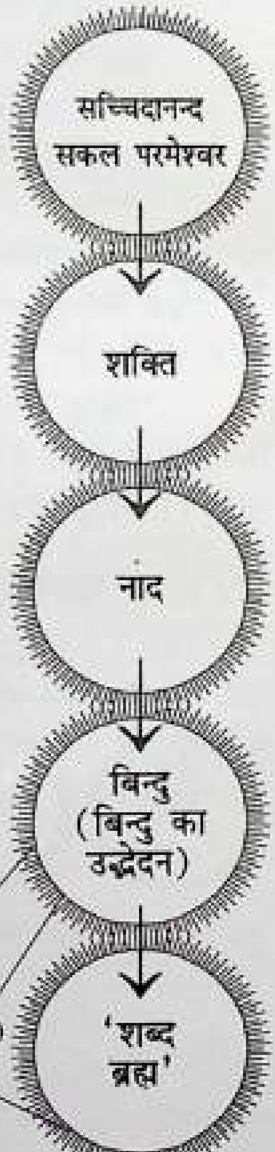

1. सच्चिदानन्द सगुण ब्रह्म से 'शक्ति' हुई। 'शक्ति' से 'नाद' हुआ। 'नाद' से बिन्दु हुआ। बिन्दु से शब्द ब्रह्म ।

'सच्चिदानन्द विभवात सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद बिन्दुसमुद्भवः।।
परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधाऽसौ भिद्यते पुनः।
बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः।
बिन्दुः शिवात्मको बीजं शक्ति र्नादस्तयोमिथः।
समवायः समाख्यातः सर्वागम विशारदैः।।
रौद्री बिन्दोस्ततो नादाज्ज्येष्ठा बीजादजायत।
वामाताम्यः समुत्पन्नाः रुद्रब्रह्मरमाधिपाः।।

—शारदातिलकम्

'प्रयोग सार' में कहा गया है—

बिन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम्'।
तयोर्योगे भवेन्नादस्तेभ्यो जातास्त्रिशक्तयः।
रौद्री बिन्दोः समुद्भूता ज्येष्ठा नादाद जायत्।
वामा बीजाद्भूच्छक्तिस्ताभ्यो देवास्त्रयोऽभवत्।।

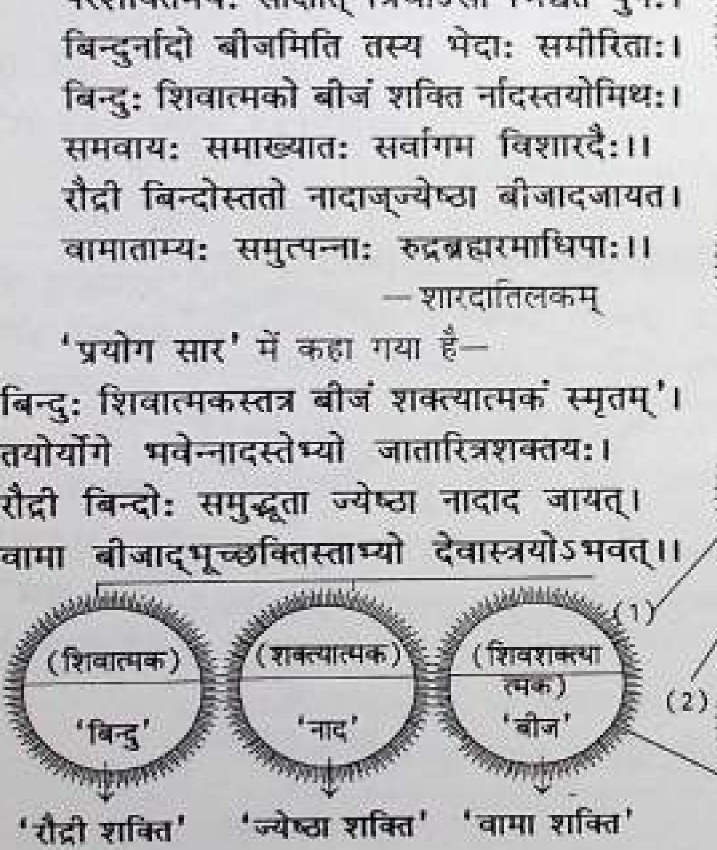

*भर्तृहरि की दृष्टि—

* अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्व यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।। (भर्तृहरि)

*शंकराचार्य की दृष्टि—

भूतादिक वैकारिक तैजसभेदक्रमादङ्कारात्।
काल प्रेरितया गुणधोषयुजा शब्दसृष्टिरथ कत्या।।
शब्दाद्व्योम स्पर्शतस्तेन वायुस्ताभ्यां रूपाद्धहरिरेतै रसाच्च।
अंभास्येतैर्गन्धतो मूर्धराद्याभूताः पञ्चस्युगुणोनाः क्रमेण।।
—शङ्कराचार्य— प्रपञ्चसार तंत्र

1. **'परशक्तिमय बिन्दु'** पुनः तीन भागों में विभाजित हो गया। उसके तीन रूप हुए (1) **'बिन्दु'** (2) **'नाद'** (3) **'बीज'**
'बिन्दु' = शिवात्मक है। **'नाद'** = शक्त्यात्मक है।
'बीज' = उभयात्मक है।
* **'पर बिन्दु'** के शक्त्यात्मक रूप (नाद से उत्पन्न बिन्दु) बिन्दु से वर्णरहित **'अखण्ड नाद'** हुआ। यही अखण्ड नाद **'शब्द ब्रह्म'** है।

(28) *'शब्द ब्रह्म' का स्वरूप

(1) 'पर बिन्दु (शक्त्यात्मक बिन्दु)' से वर्णरहित अखण्ड नाद उत्पन्न हुआ उसे ही **'शब्दब्रह्म'** कहते हैं—

'शब्दब्रह्मेति तं प्राहुः सर्वागमविशारदाः।
शब्दब्रह्मेति शब्दार्थं शब्दमित्यपरे जगुः।। (1/12)
न हि तेषां तयोः सिद्धिर्जडत्वादुभयोरपि।
चैतन्यं सर्वभूतानां शब्द ब्रह्मेति मे मतिः।।
(1/13)[1]

2. सम्पूर्ण आगम शास्त्र के विद्वान उसे ही (शक्त्यात्मक बिन्दु से उत्पन्न अखण्ड नाद को ही) **'शब्दब्रह्म'** कहते हैं।

3. कोई शब्दार्थ को **'शब्दब्रह्म'** कहते हैं।

4. कोई स्फोटात्मक शब्द को **'शब्द ब्रह्म'** कहते हैं।

---

(1) शारदा तिलकम्

किन्तु ये दोनों जड़ात्मक होने के कारण सृष्टि के योग्य नहीं है अतः वे '**शब्दब्रह्म**' नहीं है। (2)

5. ***लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं कि** —हमारा मत तो यह है कि बिन्दु से उत्पन्न होने वाला एवं समस्त प्राणियों के भीतर चैतन्य के रूप से विद्यमान अखण्ड नाद ही '**शब्दब्रह्म**' है—इस प्रकार **लक्ष्मणदेशिकेन्द्र 'शब्दब्रह्म'** के दो स्वरूपों (लक्षणों) पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं —

*शब्दब्रह्मोत्पत्ति—

1. **संज्ञानेच्छाक्रियात्मानो वह्निद्वर्कस्वरूपिणः।**
भिद्यमानात् पराद् बिन्दोरव्यक्तात्मारवोऽभवत्।।
शब्दब्रह्मेति तं प्राहुः सर्वागमविशावरदाः।।

2. **चैतन्यं सर्वभूतानां शब्द ब्रह्मेति में मतिः।।** (1/13) (3)

3. **तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।**
वर्णात्मनाऽविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः।। (14)

अर्थात् प्राणियों के शरीर के मध्य कुण्डली रूप को प्राप्त हुआ वही चैतन्य कण्ठादि स्थानों को प्राप्त करके गद्य पद्यादि के भेद से वर्णात्मकस्वरूप से आविर्भूत होता है। अतः समस्त शब्द सृष्टि कुण्डलिनी से आरंभ होती है—

'तत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।
वर्णात्मनाऽविर्भवति गद्यपद्यादिभेदत्ः।। (शारदा तिलकम्1/14)

इसी '**शब्द ब्रह्म**' से (1)'**शब्दसृष्टि**' एवं (2)'**अर्थसृष्टि**' दोनों हुई।

(29) ***शब्द ब्रह्म**— अन्यत्र 'शब्द ब्रह्म' का निर्ववचन इस प्रकार किया गया है—

शब्दब्रह्मेति शब्दावगम्यमर्थं विदुर्बुधाः।
स्वतोऽर्थां नवबोधत्वात् प्रोक्तो नैतादृशोरवः।
स तु सर्वत्र संस्यूतो आते भूताकरे पुनः।
आविर्भवति देहेषु प्राणिनामर्थ विस्तृतः।।

---

(2) शारदा तिलकम् (3) शारदा तिलकम् (1/13)

सोऽन्तरात्मा तदा देवी नादात्मा नदते स्वयम्।
यथा संस्थानभेदेन स भूयो वर्णतां गतः।
वायुना प्रेर्यमाणोऽसौ पिण्डाद् व्यक्तिं प्रयास्यति।।

*भर्तृहरि की दृष्टि—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्तेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः। (वाक्य पदीय)
शब्द ब्रह्मोत्त्पतिः राघवभट्ट कहते हैं—
'पराद् बिन्दोरित्यनेन शक्त्यवस्था रुपो यः प्रथमो बिन्दुस्त स्मादव्यक्तात्मा वर्णदिविशेषरहितोऽखण्डो नादनात्र उत्पन्नः।। ('पदार्थादर्श')

*'लक्ष्मी तंत्र' (20/6-7) की दृष्टि—

(30) *भगवती स्वयमेव 'शब्द ब्रह्म' हैं। वे कहती हैं कि—

1. प्रकाशानन्दसाराहं सर्वतः समतां गता।
कोटि कोटयुतैकांश कोटयंशे क्षुभिता सती। (20/6)

2. फिर वे कहती हैं कि जब मैं कोटि-कोटि अंश से क्षुब्ध होती हूं तब अपनी शक्ति से तथा अपनी इच्छा से **'शब्दब्रह्म'** का स्वरूप ग्रहण कर लेती हूँ। सभी जीवों की मुक्ति के लिए मेरा उदय परमेश्वर से हुआ करता है—

शब्दब्रह्मस्वरूपेण स्वशक्त्या स्वयमेव हि।
मुक्तयेऽखिल जीवा नामुदेमि परमेश्वरात्।। (ल.तं.20-7)

भगवती कहती हैं कि इच्छा के वशीभूत होकर मैं (शान्त एवं अद्यास्वरूपा लक्ष्मी) ज्ञानांश का चक्कर चलाती हूं जिससे कि मैं ही शब्दब्रह्मरूप ग्रहण करके कलाध्वों का विवर्तन करती हूँ—

'इच्छा परवर्ती साहं बोधकांशविवर्तिनी।
शब्द ब्रह्ममयी भूत्वा विवर्तेऽहं कलाध्वना।। (21/6)

(31) *'मंत्राध्व' 'शब्द ब्रह्म का विवर्त है

'शब्द ब्रह्म विवर्तोऽयं किरणायुतसंकुलः।। (21/9)

(32) ***मंत्रों की जननी**– भगवती **'प्रकाश'** और **'आनन्द'** का सार है तथा सभी मंत्रों की जन्मदात्री पराशक्ति हैं। वे समस्त शब्दों की जननी और उदयास्त से परे शक्ति भी हैं। (1)
शक्ति - 'सर्वमंत्र प्रसूः परा' 'शब्दानां जननी'

शक्ति का स्वरूप

↓

1	2
समस्त शब्दों की माता	समस्त मंत्रों की जननी

शक्ति का स्वरूप

↓

'शान्ता शक्ति'	**सर्वजननी**
(नारायण की शान्तावस्था) में स्थित शक्ति	

* शान्त उन्मेष *

1. जब **'शान्तावस्था'** में लक्ष्मी में सिसृक्षा का उदय होता है। तब उस स्वल्प उद्यम को शब्दार्थ-विभेद से **'शान्तउन्मेष'** कहते हैं।
2. शब्दोदयानन्तर अर्थोदय होता है। शब्दों की स्थूलता में अर्थप्रवृत्ति आत्मा है जो कि प्रकृतिस्वरूपा है।
3. बोधोन्मेष को **'शब्द'** कहते हैं। जो **'शब्दोन्मेष'** है।
   उसे **'अर्थ'** कहते हैं। शब्दोमय के साथ जो शक्ति उदित होती है। वह **'शान्तात्मा की प्रथम शक्ति'** होती है।
   इस आद्य शब्दोन्मेष को **'नाद'** कहते हैं। इसमें वाच्यता अत्यल्प होती है। नाद के साथ जो शक्ति होती है उसे **'सूक्ष्मशक्ति'** कहते हैं।

* **'बिन्दु'** - * नादोपरान्त जिसका उन्मेष होता है उसे द्वितीय शक्ति कहते हैं। इस द्वितीय शक्ति का नाम है **'बिन्दु'**। इसमें वाचकता अत्यल्प हुआ करती है।

---

(1) प्रकाशानन्द साराहं सर्वप्रसर्वप्रसूः परा।
शब्दानां जननी शक्ति रुदयास्तमयोज्झिता।। (18/18)

(2) व्यापकं यत्परं ब्रह्म नारायणमनामयम्।
शानता नाम यावस्था साहं शान्ताखिलप्रसूः। (18/19)

'शक्ति' के स्तर-भेद

↓

प्रथम शब्दोन्मेष- 'नाद' ('सूक्ष्म शक्ति')	नादोपरान्त उन्मेष द्वितीय शक्ति- 'बिन्दु'	तृतीय शक्ति से होने वाला उन्मेष-'पश्यन्ती'

'मध्यमा' - इसके बाद जिस शक्ति का उन्मेष होता है उसे **'मध्यमा'** कहते है।। उस समय वाच्य-वाचक का भेद मात्र संस्कारमय रहता है।

'वैखरी शक्ति'- **'चौथी शक्ति'** - मध्यमा शक्ति से उन्मेष होता है उसे **'चौथी शक्ति'** कहते है।। इसका नाम **'वैखरी शक्ति'** है। इस अवस्था में वर्ण-वाक्य श्रुतिगोचर होते रहते हैं।

(33) *भगवती की = नादात्मिका चार शक्तियां:

↓

1	2	3	4
शान्ता वाक् 'शान्ता शक्ति' का वाच्य= 'वासुदेव'	पश्यन्ती वाक् 'पश्यन्ती शक्ति' का वाच्य= 'संकर्षण'	मध्यमा वाक् 'मध्यमा शक्ति' का वाच्य= 'प्रद्युम्नव्यूह'	वैखरी वाक् 'वैखरी शक्ति' का वाच्य= 'अनिरुद्ध व्यूह' (1)

(34)* वर्ण और भगवती का स्वरूप
(भगवती का वर्णात्मक स्वरूप)

'एक पदी'। 'द्विपदी' वाच्य-वाचक युग्म के कारण देवी 'एकपदी' एवं 'द्विपदी' हैं।	'चतुष्पदी' ऊष्म, अन्तःस्थ स्वर एवं स्पर्श वर्ण के रूप में शक्ति 'चतुष्पदी' कही जाती है।	'अष्ट पदी' अष्ट वर्गों (अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, नवर्ग, पवर्ग आदि) के कारण शक्ति अष्टपदी कही जाती है।

(1) शान्तरुपाय पश्यन्ती मध्यमी वैखरी तथा।
चतूरुपा चतूरुपं वच्मिवाच्यं स्वनिर्मितम्।
वासुदेवादयः सूक्ष्मावाच्याः शान्तादयः क्रमात्।
अहमेकपदी ज्ञेया प्रकाशानन्दरुपिणी।। (ल.तं. (अ.18)

'नवपदी' जो अघोष वर्ण हैं उनके भेद से देवी को 'नवपदी' कहा जाता है।	एकपदी रूप में देवी का स्वरूप दिव्य शब्द ब्रह्ममयी पराशक्ति	**देवी का द्विपदी स्वरूप** घोष वर्णों के स्वरूप से देवी का स्वरूप है **'द्विपदी'**
देवी का चतुष्पदी स्वरूप चतुष्पदी जल से द्रव्य जाति, गुण एवं क्रिया का रूप ग्रहण करने पर देवी **चतुष्पदी** कहलाती है।	देवी का अष्टपदी स्वरूप द्विपदी+चतुष्पदी+नाम-भावद्वय को मिलाने पर **'अष्टपदी'**	देवी का नवपदी रूप अष्टपदी में अविकल्प+विकल्प मिला देने पर 8+**'एकपदी'** = **'९पदी'**
भगवती का अनन्त अक्षरों की माला का रूप-परम व्योम में दिव्या स्वरूप।	भगवती का अहन्तारूप **'पूर्णाहन्ता'** आद्या स्वरूप (2)	

(35) *मंत्रों का वैष्णवरूप

मंत्रों के अनेक स्वरूप हैं। इनमें **बौद्ध, जैन, शैव, शक्त, वैदिक, तांत्रिक, पौराणिक** एवं **वैष्णव** आदि अनेक स्वरूप अन्तर्निहित है।।

*मंत्रों का (लक्ष्मीतंत्रोक्त) वैष्णव स्वरूप

यथायोग्य ऐश्वर्य देने की क्षमता और उनका अधिष्ठातृत्व मंत्रों का **वैष्णव रूप** है। मंत्रों में जो कार्यकारणीशक्ति है वह तो भगवती पद्मजा (लक्ष्मी) हैं। वे ही लक्ष्मी मंत्रों की कार्यकारिणी शक्ति हैं। **'मंत्र'** का जो चैतन्य है उसे **पुरुषोत्तम विष्णु का स्वरूप** कहा जाता है। (1)

---

(2) लक्ष्मी तंत्र. (अ. 18/31-36)

(1) तत्तदैश्वर्यदत्वं तदधिष्ठातृमेव च।
मंत्रस्य वैष्णवं रुपं तद्विज्ञेयं विपश्चिता।।
तत्तत्कार्यकरी तस्य या शक्तिः साहमम्बुजा।
मंत्रस्य यद्धि चैतन्यं पुमांसं तं प्रचक्षते।।
'ई' अक्षर माया है, परमाशक्ति है, ज्योतिमय जगद्योनि है-
'ई' माया परमा शक्तिर्जगद्योनिर्निरञ्जना।। (ल.तं. 26/16)
'ऊ'-भी मंत्र है। यी परब्रह्म (स्तिमितशक्तिकब्रह्म) को गति प्रदान
करके उसे प्रसार (विस्तार) प्रदान करता है-
आद्यं यत् परमं ब्रह्म सूक्ष्मं स्तिमितशक्ति कम।
तारस्तत्र प्रतिष्ठाय तनोति विततां गतिम।। (26/9)

मंत्रों में फल प्रदान की सामर्थ्य को प्राकृतरूप कहते हैं अर्थात् उसे **'प्रकृति'** कहते हैं। मंत्रों में जो सुदृढ़ व्यवसायित्व है वह महत्तत्त्व का गुण बताया गया है।

मंत्रों में जो अहंयुत्व है वह गुण अहङ्कार का है।

मंत्रों का मानसिक इन्द्रियों के ज्ञान का हेतु है।

मंत्रों में जो शब्दरूपता है वह आकाश में स्थित रहती है। **मंत्र के समावेश से शरीर में जो कम्पन** होता है वह वायुरूप होता है।

मंत्र के ध्यान से जो प्रकाश निकलता है व तैजसरूप के कारण होता है। **मंत्र में जो तृप्ति का अनुभव** होता है वह जलीयरूप के कारण होता है।

जो मंत्रस्थित भाव है वह पृथ्वी का गुण है। इस मंत्रधारी को मन्त्र की सर्वगामिनी व्याप्ति का स्मरण सम्यक् रूप से करना चाहिए।

(36) *'**मंत्र**' के सामर्थ्य से शीघ्र ही **मंत्र के अनुरूप भावोद्रक** का आविर्भाव होता है। इस प्रकार **संवित्ति के सामर्थ्य से तारिका शक्ति का विस्तार** करना चाहिए।

तारिका

विद्युत के समान स्पन्दन करती हुई स्थित हैं। **'तारिका'** को प्रथमतः आकाश में देखना चाहिए। तब उसे पूर्ववर्णित चित्त के प्रकाशित आसन पर हृदयरूपी कमल की गुह्य में केन्द्र में देखना चाहिए। **स्पन्दनरत तारिका की मूर्ति में 'ह्रीं ह्रीं'** शब्द ब्रह्म का श्रवण करते हुए उसका चिन्तन करना चाहिए। तब उसमें निरन्तर स्थित **'लक्ष्मीनारायण' की युगलमूर्ति का ध्यान** करना चाहिए।

इसके उपरान्त **नारायण का भी ध्यान** करना चाहिए। **'ध्यान'** इस प्रकार करणीय है। भगवान नारायण चित्त के आसन पर समासीन हैं। वे भगवान सूर्य और अग्नि के संस्थान हैं। वे व्याधि आदि रोगों से मुक्त हैं और रक्त नेत्री हैं। उनके वस्त्र पीत कौषेय हैं। वे काञ्ची-नुपुर-शोभित हैं। उनके हार, केयूर, कुण्डल, किरीट और कटक आदि आभूषण अत्यन्त मनोज्ञ हैं। उनकी कान्ति नीले आकाश के समान है। उनके हाथों में शंख, चक्र, वर तथा अभय मुद्रा स्थित है।

उनकी प्रभा मणिवत है। उनका गांभीर्य समुद्रवत है। उनका प्रकाश भास्करवत है। उनका प्रकाश चान्द्र-कौमुदी के समान है।

प्रथमतः प्रसन्नवदन हृषीकेश का ध्यान करना चाहिए। फिर भगवान पुरुषोत्तम का 18 भोगों से अर्चन करना चाहिए।

(37) *विष्णवार्चन— भगवान विष्णु का अर्चन

अर्चन के मंत्र (लक्ष्मी)

↓

1	2	3
'पुरुष सूक्त'	'प्रणव'	षडक्षर मंत्रः 'ॐ विष्णवे नमः'
4	5	6
अष्टाक्षर मंत्र 'ॐ नमो नारायणाय'	द्वादशाक्षर मंत्र 'ॐनमो भगवते वासुदेवाय'	'जितं ते पुण्डरीकाक्ष'

इनसे या अन्य शास्त्रोक्त मंत्रों से अर्चना करनी चाहिए।

* ध्यान के विशेष नियम—

देवेश के अर्चन के समय अनेक (समस्त) अंगों में श्री **लक्ष्मी के वास का स्मरण** करना चाहिए। लयात्मक रूप से अभ्यर्चन करके **लक्ष्मी का** आवाहन करना चाहिए।

शार्ङ्गधर श्री विष्णु के वाम भाग में लक्ष्मी को आसन पर विराजमान करके शास्त्रोक्त विधि से विविधोपचारों से उनका पूजन करना चाहिए।

(38) *'पुरुष सूक्त' और 'लक्ष्मी सूक्त'

पूजन के समय नारा,यण की स्तुति हेतु **'पुरुष सूक्त'** एवं भगवती लक्ष्मी की स्तुति हेतु 'लक्ष्मी सूक्त' को ग्रहण करना चाहिए एवं इन्हीं के द्वारा भगवान विष्णु एवं भगवती लक्ष्मी की स्तुति या पूजा करनी चाहिए यथा—

उपचार	पुरुष सूक्त
आह्वान	ॐ सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात स भूमिं सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठदशांगुलम् ॥1॥
आसन	ॐ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्ने नातिरोहित ॥2॥

मूर्धा पर पुष्पार्पण	ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।3।।
पाद्य	ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः। ततो विष्वङ्. व्यक्रामत्साशनानशनेअभि।।4।।
आचमनीय	ॐततो विराऽजायत विराज अधि पुरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमयो पुरः।।5।।
स्नान	ॐ तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्। पशून तांश्चक्रे वायव्या नाख्यान् ग्राम्याश्चये।।6।।
परिधान (अधोवस्त्र)	ॐतस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरेतस्माद् यजुस्तास्मादजायत्।।7।। आदि —पुरुष सूक्त

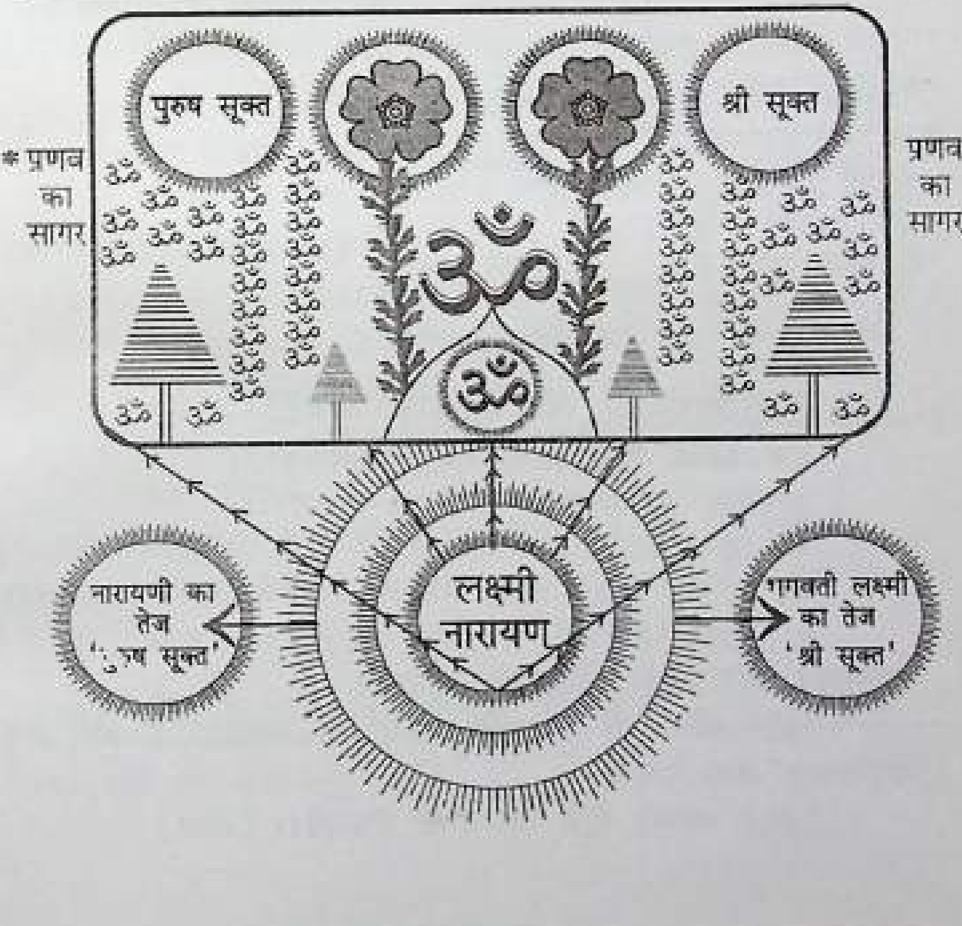

'आवाभ्यामुत्थितं तेजः शब्दब्रह्म महोदधिः।
मथ्य मानात्ततस्तस्माद्भूत सूक्तद्वयामृतम्।'

—लक्ष्मी तंत्र (36/62)

वैष्णवागम में -

(1) 'पुरुष सूक्त' एवं
(2) 'लक्ष्मी सूक्त' का
अन्यतम महत्व है।

'पुरुषस्य हरेः सूक्तं मम सूक्तं तथैव च।
अन्योन्य शक्तिसम्पृक्तमन्योन्यार्ण परिष्कृतम् नारायणार्थमव्यक्तं पौरुषं सूक्त निष्यते।
अन्यन्मदार्षकं सूक्तं श्री सूक्तं यत् पचक्षते'

—लक्ष्मी तंत्र (36/74)

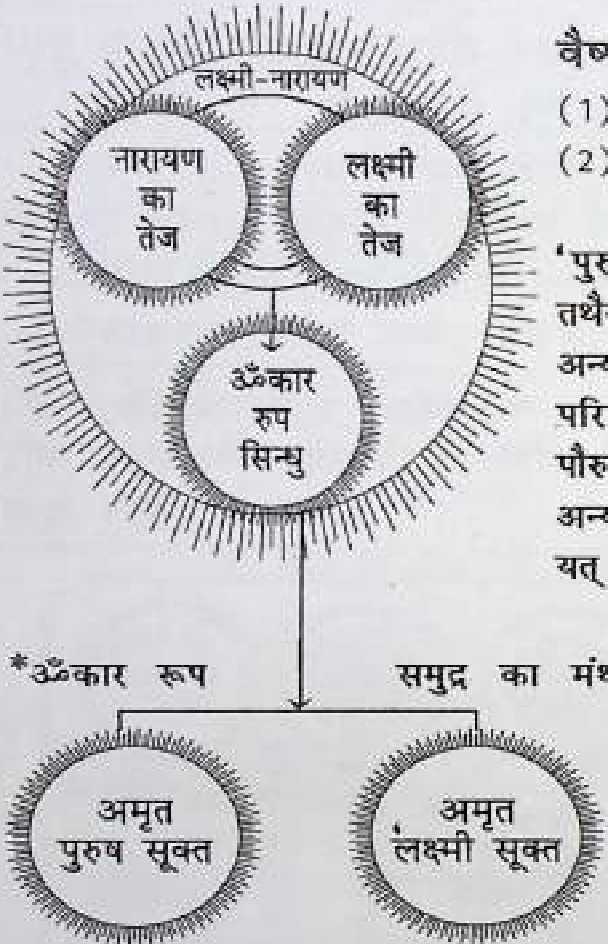

(लक्ष्मीतंत्र - वैष्णवागम)

(39) ***तारिकाविद्या की साधना- (मांत्री साधना)**

मम विद्या परा शक्तिर्नित्यं मद्धर्मधर्मिणी।
हल्लेखा परमाविद्या मत्स्वरूपा पुरन्दर।।

अर्थात् मेरी दिव्य पराशक्ति नित्यरूप से मेरे धर्मों को धारण करती है। यह हल्लेखा (ह्रीं) जोकि परमोत्तम विद्या है—मेरा (लक्ष्मी का) ही स्वरूप है।

***तारिका और अनुतारिका का स्वरूप—**

'ह्रीं' और 'श्रीं' भगवती लक्ष्मी के स्वशरीर हैं अतः इन्हें 'सनातनतनु' कहा गया है—

'द्वेएते कथिते देवि तव तन्वौ सनातने।। (26/2)

भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि तारिकानुतारिका दोनों शक्तियाँ मेरे शरीर में सदैव विद्यमान रहती हैं और समस्त मनोरथों को पूर्ण करती हैं–

'मम तन्वाविमे शक्ती तारिका चानुतारिका।
दुहाते सकलान् कामानुभे एते पुरन्दर। [1]

तारिका विद्या की साधना करने वाले को लौकिक-पार लौकिक दोनों भोगों की प्राप्ति होती है–

'तामिमां तारिकां विद्यां भजमानो यथाविधि।
ऐहिकामुष्मिकान् भोगानक्षयान् प्रतिपद्यते।। (ल.तं. 26/43)

तारिका-अनुतारिका शक्तियाँ समस्त ज्ञानों में संस्थित रहा करती हैं और ये दोनों विष्णु प्रिया हैं। इन्हें 'परनिष्ठा' कहा जाता है। इनके चिन्तन से 'परमागति' प्राप्त होती है–

'उभे एते विचिन्त्याथ गच्छन्ति परमां गतिम्।। (26/7)

*'ह्रीं' का विलक्षण स्वरूप–

'इयं या परमा शक्ति वैष्णवी सर्वकामदो

सारे वर्ण चिदंश एवं ज्योतिर्मय होते हैं–

'चिदंशा: सर्व एवैते वर्ण भास्वर विग्रहा:।। (ल.तं. 25/29)

इन्हीं वर्णों से सारे मंत्र निर्मित होते हैं–'तारिका' 'ह्रीं' है। ह+र+ई+बिन्दु से इसका निर्माण होता है। यही 'ह्रीं' तारिका मंत्र कहा जाता है। यह भगवती के रूप में रहती है और भगवती के चिदानन्द की सत्ता है। यही ब्रह्मज्ञानियों की निष्ठा–

'सत्ता पूर्णा चिदानन्दामम मूर्तिर्निरन्तरा।
इयं सा परमा निष्ठा या सा ब्रह्मविदां ध्रुवा।।' (25/38)

1. 'ह्रीं' में निष्ठा रखने वाले लक्ष्मी में प्रवेश करते हैं।
2. समाधिस्थ साधक इसी सनातनी, अविनश्वर तारिका का समाधि में ध्यान करते हैं।
3. शब्दार्थमय जगत में मनुष्य इसी मंत्र से ओत-प्रोत रहते हैं।
4. शैवों के अन्तिम तत्व शिव का (मेरा) ज्ञान इसी के द्वारा होता है।
5. इसकी दूसरी मूर्ति है अनुतारिका अर्थात् 'श्रीं'

(40) * मंत्र और क्षेत्र क्षेत्रज्ञ सद्भाव *

---

(1) अहि. सं. (25/37-41)

1. मंत्रों के बीजाक्षरों को **'जीव'** कहा जाता है।
2. शेष अक्षरों को **'क्षेत्र'** कहा जाता है।
3. स्वरों को **'क्षेत्रज्ञ'** कहा जाता है।
4. बीज मंत्रों, नाम मंत्रों एवं षदमंत्रों को **'क्षेत्रज्ञ'** कहा जाता है।
5. **'अ'** अक्षर से रहित मंत्रों को भी 'क्षेत्र' तथा केवल स्वर को भी **'क्षेत्रज्ञ'** कहा जाता है।
6. प्रथम मात्रा को **'जीव'** कहते हैं।
7. दूसरे अक्षरों के सहित जो अक्षर हैं (अतिरिक्त अक्षर हैं) उन्हें **'शरीर'** कहते हैं। एक मात्रा में संस्कारित **'जीव'** अद्भुत होता है
8. उच्चारण के योग्य अक्षर **'क्षेत्र'** हैं। जिनमें स्वर नहीं होते उन्हें **'पिण्ड'** कहते हैं। प्रथम वर्ण **'जीव'** और शेष वर्ण **'पिण्ड'** कहते हैं। प्रथम वर्ण 'जीव' और शेष वर्ण 'क्षेत्र' कहे जाते हैं।[1]
9. जिन मंत्रों में बीजाक्षर नहीं होते उनमें प्रथम अक्षर **'बीजमंत्र'** कहलाता है यथा **'गं गणपतये नमः'** में **'गं'** वर्ण **बीजमंत्र** है। प्रथमाक्षर में अनुस्वार लगाने से **'बीजमंत्र'** बनते हैं।
10. प्रसन्न एवं सम्मुखी मंत्र भुवनाध्वों से पार उतारते हैं।
11. पदाध्व से पग पग पर वैराग्य होता है। तब क्रमशः 'तत्वाध्व' 'कलाध्व' 'वर्णाध्व' एवं 'पदाध्व' में प्रवेश होता है।
12. **प्रसन्न मंत्रों से सभी बंधनों का उच्छेद हो जाता है** और फिर शाश्वत ब्रह्म लक्ष्मी नारायण पद की प्राप्ति होती है—

    'मंत्रप्रासादमासाद्य निर्धूताशेषबन्धनः।
    लक्ष्मीनारायणाख्यं तद्विशति ब्रह्म शाश्वतम्।। [2]

* षडध्व मंत्रों के स्वरूप *

1. भगवती कहती हैं कि मैं **मंत्रस्वरूपा** हूँ—

   'यथास्मि मंत्ररूपाऽहं' (ल.तं. 22/3)

   ***'मंत्र'** वासुदेव आदि देवों के मूर्त रूप में विराजमान रहते हैं।
2. सभी **'मंत्र'** चिदातमस्वरूप सभी ओर जाने वाले एवं सर्वार्थ सिद्धिप्रद हैं—

   'वासुदेवादि देवानां मूर्तिभावं व्रजत्यसौ।
   मन्त्राः सर्वे चिदात्मानः सर्वगाः सर्वसाधकाः।। (22/20)

●●●

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (21/16-22) (2) लक्ष्मी तंत्र (21/28)

'साध्य तत्त्व' और भक्तिमार्ग-साधना

नवम अध्याय

नवम अध्याय

'साध्य तत्व' और भक्तिमार्ग-साधना

*साध्य तत्व —

1. 'न कृष्णात् परो देवः नैव कृष्णात् परः पुमान' —(ना.प.)
2. परमात्मा स्वयं कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः —(ना.पं.)
3. नास्ति विष्णोः परं सत्यं नास्ति विष्णोः परं पदम। —(ना.पं.)

*भक्ति तत्व —

भक्ति और उसके सम्बंध में नारद की दृष्टि —

1. अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः।1।। सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपा।।2।। अमृतस्वरूपा च ।। 3।।
2. यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।।4।।
3. यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते नोत्साही भवति।।5।।
4. यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति। 6।।
5. सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्! निरोधस्तु लोकवेदव्यापार-न्यासः।
6. नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणो परम व्याकुलतेति। (19) सा तु कर्मज्ञान योगेभ्योऽप्यधिकतरा। (ना.भ.सू.25)

—देवर्षिनारद— नारद भक्तिसूत्र

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्त कुत्रचित्।

—श्रीमद्भागवत पुराण

'श्री हरेर्भक्तिर्दास्यं च सर्वमुक्तेः परं मुने —ना.पंच

श्रवणं, कीर्तनं विष्णोः, स्मरणं, पादसेवनम्।
अर्चनं, वन्दनं, दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम्।। (नवधा भक्ति)

—श्री मद्भागवत पुराण

'हरिभक्तेः परान्नास्ति मोक्षश्रेणी नगेन्द्रजे' —ना.पं.

'नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवं विधे द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।

भक्त्या त्वनन्दया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।।

(गीता:11/53-54)

'न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्भमोर्जिता।।

(श्रीमद्भागवत 11/14/20)

'अथातो भक्ति जिज्ञासा। सा परानुरक्तिरीश्वरे'— शाण्डिल्य

—शाण्डिल्य भक्तिसूत्र (1/1-2)

'वैष्णवानां मतं शस्तं सर्वेभ्योऽपि च नारद।
न वैष्णवात् परो ज्ञानी ब्रह्माण्डेषु च ब्रह्मण:।।'

(ना.पं.2/8/37)

स पिता ज्ञान दाता यो ज्ञानं तत् कृष्णभक्तिदम्
सा भक्ति: परमा शुद्धा कृष्णदास्यप्रदा च यत्।
तदेव दास्यं शस्तं यत् साक्षाच्चरणसेवनम्।
नित्यं गोलोकवासं च पुरत: स्तवनं हरे:।।
शश्वन्निमेष-रहितं तत्पादं पद्मदर्शनम्।
शश्वत्तत्सार्धमालाप सेवा-कर्म नियोजनम्।।'

—नारद पंचरात्र 1/1/20-21)

* साध्य तत्व और भक्ति मार्ग-साधना *

* साधना और 'साध्य' *

*'साधना' किसी 'साध्य' को पाने के लिए की जाती है। यहाँ 'साध्य' भगवान विष्णु हैं।

(1) *'विष्णु'—यह समस्त सम्प्रदाय ही 'वैष्णव' (भगवान विष्णु से सम्बद्ध) कहा गया है अतः इस सम्प्रदाय के मुख्य इष्ट देव विष्णु ही हैं। वे ही 'नारायण' भी कहे जाते हैं—

निर्दोषो निरधिष्ठेयो निरवद्यः सनातनः।
विष्णुनारायणः श्रीमान् परमात्मा यपसतपः।।' (ल.तं.1/1)

(2) *वासुदेव —भगवान 'वासुदेव' विष्णु के अवतार श्री कृष्ण हैं। 'महाभारत' (शान्ति.अ. 347/2 श्लोक 94) के अनुसार 'वासुदेव' का अर्थ इस प्रकार है—

'सर्वेषा माधेयो विष्णुरैश्वर्यविधिमास्थितः
सर्वभूतकृतावासो वासुदेवेति चोच्यते।'

'वासुदेव'— वैष्णवागम के मुख्य साध्यों में भगवान वासुदेव हैं। चूँकि महाविष्णु के प्रत्येक रोम में अनेक विश्व निवास करते हैं अतः उन्हें 'वासु' कहते हैं। उन 'वासु' का भी देव होने के कारण श्री कृष्ण को 'वासुदेव' कहते हैं—

'यस्य लोमसु विश्वानि तेन 'वासुः' प्रकीर्तितः।
तस्य देवोऽ श्री कृष्णो 'वासुदेव' इतीरितः।। (ना.पं. 2/6/26)

(2) श्री कृष्ण और राधा की उपासना में श्रेष्ठता-क्रम—

'नारद पञ्चरात्र' (2/6) में कहा गया है कि जो साधना अत्यधिक काल पर्यन्त निष्पादित करने पर सफल होती है और तभी श्री कृष्ण प्रसन्न होते हैं वही साधना राधा जी की, की जाने पर भगवती राधा श्री कृष्ण की अपेक्षा स्वल्पकाल में सिद्ध कर देती हैं और सारे अभीष्ट पदार्थ प्रदान कर देती हैं—

'आराध्य सुचिरं कृष्णं यद्यत्कार्यं भवेन्नृणाम्।
राधोपासनयातच्च भवेत् स्वल्पेन कालतः।। [1]

(1) ना० पञ्च० (2/6/31)

*वैष्णवागम में साध्य तत्व (परमोपास्य इष्टदेव)

* भगवान के अवतार

भगवान के अवतार

1	2	3	4
व्यूहा-वतार	विभवा-वतार 39	अर्चा-वतार	अन्तर्यामी अवतार
	पद्मनाम ध्रुव कपिल आदि	मन्दिर में मूर्ति के रूप में स्थित	प्रत्येक जीव के हृदय में

(3) ***भगवती लक्ष्मी** — भगवान विष्णु की समवायिनी परमाशक्ति होने के कारण भगवती लक्ष्मी की भी पूजा का विधान है। विष्णु की उपासना के समान ही पञ्चरात्रमत में भगवती लक्ष्मी की भी पूजा की जाती है। **'लक्ष्मी तंत्र'** में इनकी उपासना का सविस्तार वर्णन किया गया है—

'नारायणः समविता तस्याहन्ता तु या परा
तद्धर्मधर्मिणी लक्ष्मीः शक्तिः सा भावरूपिणी।
सर्वकार्यकरी सैव शक्तिर्वितनुते जगत्।। (ल.तं.36/40)

यही शक्ति उपास्य भी है—

'एकैवैषा परादेवी बहुधा समुपास्यते।।'

(4) ***भगवती राधा**— भगवती राधा वासुदेव की आत्मभूता परमाशक्ति हैं अतः उपास्या भी हैं। वे भगवान श्री कृष्ण की **'आह्लादिनी शक्ति'** हैं। उनके अनेक स्वरूप हैं। वे सृष्टि के आरंभकाल में **'मूल प्रकृति'** के रूप में थीं। वे ही **'राधा'** सर्वशक्तिस्वरूपा भी दुर्गा हैं।

वे ही श्री कृष्ण परमात्मा की परम बुद्धि हैं। वे ही ऐन्द्रगृह की स्वर्गलक्ष्मी हैं।

वे ही राजगृहों में लक्ष्मी एवं घर-घर में गृहलक्ष्मी हैं। वे ही ग्रामदेवता, जल में सत्यस्वरूपा, भूमि पर गन्धस्वरूपा, नभ में शब्दस्वरूपा, चन्द्र में शोभास्वरूपा, अग्नि में दाहिका शक्ति है।

श्री कृष्ण के वक्षस्थल पर जो भगवती **'राधा'** हैं और जो उनके वामांश से उत्पन्न हुई हैं वही **'महालक्ष्मी'** हैं और वैकुण्ठ में श्री नारायण के वक्षस्थल पर रहती हैं। विद्वानों की परम देवी भगवती सरस्वती (जो माया से समुद्रकन्या के रूप में उत्पन्न होकर विष्णु के वक्षस्थल पर निवास किया करती हैं। इन्होंने ही देवी के तेज से आविर्भूत होकर दैत्यों का संहार किया था। वे ही श्री कृष्ण की आज्ञा से दक्ष प्रजापति की कन्या बनीं। दक्ष के यज्ञ में भस्म होकर ये ही पर्वतराज की पार्वती बनीं।।

(5) *विश्व-सृष्टि और भगवती राधा—

भगवती राधा **'सृष्टि-बीज'** हैं। उनके बिना जगत की सृष्टि संभव नहीं है—

सृष्टिबीज स्वरूपासा नहि सृष्टिस्तया बिना।।

बिना मिट्टी के कुंभार घड़ा कैसे बना सकता है और बिना स्वर्ण के स्वर्णकार कुण्डल कैसे बना सकता है?

'बिना मृदं घटं कर्तुं कुलालश्च न च क्षमः।
बिना स्वर्ण स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः।।

उनकी भक्ति तथा उनके दास्य को अवश्य प्राप्त करता है

'तस्यापि मायया सार्धं सर्वं विश्वं महामुने।
विष्णुमाया भगवती कृपां यं यं करोति च। (ना.पं 2/6/32)
*** सृष्टिकाले च सा देवी मूल प्रकृतिरीश्वरी।।** (ना.पं.2/6/25)

(1) ना.पं. (2/6/28-29) (2) ना.पं.(2/6)

(6) * साधना का भक्ति मार्ग * (एक शास्त्रीय विवेचन)

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि मुझे सर्वाधिक प्रिय तो भक्त हैं—

'तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः'

—(गीता 6/46-47)

(7) * भक्ति का स्वरूपं *

भगवद्विषयक असह्य एवं परम व्याकुलता —ना.सू.

*नारद की दृष्टि—यदि परमात्मा का थोड़ा भी विस्मरण व्याकुलता उत्पन्न कर दे तो वही भक्ति है।

'नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।'[1]

* भक्तिगत भाव— सम्बंध *

↓

	1	2	3	4	5
भावात्मक सम्बंध	दास्य भाव/ प्रीति रस	साख्य रस प्रेयोरस/ सख्य भाव/	वात्सल्य रस वात्सल्य भाव	माधुर्य भाव मधुर रस/ उज्ज्वल रस/दाम्पत्य प्रेम	शान्त भाव शान्त रस/ शान्तिरति/

'वेद' और 'भक्ति' में श्रेष्ठ कौन है? (नारद की दृष्टि)

'वेदानपि संन्यस्यति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते।। (49)

'कर्म' 'ज्ञान' और 'भक्ति' में श्रेष्ठतर कौन?	शाण्डिल्य की दृष्टि— 'तदेव कर्मिज्ञानियोगिभ्य आधिक्य शब्दात्।।' (शा.भ.सू. 22) (भक्ति ही श्रेष्ठतर है।)

---

(1) नारद भक्ति सूत्र (19)

(8) *** नवधा भक्ति**

↓

1	2	3	4	5	6	7
श्रवण भक्ति	कीर्तन भक्ति	स्मरण भक्ति	पाद-सेवन	अर्चन भक्ति	वन्दन भक्ति	दास्य भक्ति

8	9
साख्य भक्ति	आत्मनिवेदन

गौण भक्ति

↓

1	2	3
आर्त भक्ति	जिज्ञासा भक्ति	अर्थार्थिता भक्ति

(सूत्र 72)

'मुक्ति' और 'भक्ति' में श्रेष्ठ कौन? 'मुकुति निरादरि भगति लुभाने।' (तुलसी दास)

* **'प्रेमरूपा भक्ति'**– कर्म, ज्ञान एवं योग से भी श्रेष्ठतर है– ऐसी नारद की दृष्टि है–

सा तु कर्म-ज्ञान-योगेभ्योऽ प्यधिकतरा।। (ना.भ.सू. 25)

कर्म और भक्ति : (नारद का मत) –

स कर्मफलं त्यजति, कर्माणि संन्यसति ततो निर्द्वन्द्वो भवति।।

(भ.सू. 48)

(9) ***परमात्मा के विभिन्न स्वरूप**

('परमात्मा–'शब्दातिगः शब्दसहः')–(विष्णु सहस्त्रनाम)

↓

1	2	3
निर्गुण निराकार	सगुण निराकार	सगुण साकार
4 सांकेतिक	5 विश्वरूप	6 अवतार

7	8	9	10
समग्र	परिच्छिन्न	अंशावतार	पूर्णावतार

(10) *भक्ति मार्ग —

'मोक्षकारण सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी'। —शंकराचार्य

शङ्कराचार्य की दृष्टि में 'भक्ति' का स्वरूप—

क. स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।

ख. स्वात्म तत्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः।

*"भक्ति' और 'प्रपत्ति' वैष्णवागम के श्रेष्ठतम साधन-मार्ग हैं।

श्री कृष्ण की भक्ति का इतना महत्व है कि इसकी समतुल्यता संभव ही नहीं है। इसीलिए कहा गया है कि कृष्णभक्ति अतुलनीय है। साधना में 'तपस्या' अत्यन्त श्रेष्ठ साधन है तथापि प्रश्न उठता है कि—

'आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्?
नाराधितो यदि हरिस्पपसा ततः किम्?
अन्तर्वहिर्यदि हरिस्पपसा ततः किम्? (ना.पं.)

यदि कृष्ण जी की आराधना कर ली गयी तो तप से क्या?

यदि कृष्ण की उपासना नहीं की गई तो तप से क्या?

यदि बाहर और भीतर कृष्ण भगवान की सत्ता का अनुभव हो गया है तो तप से क्या? यदि बाहर भीतर भगवान की सत्ता का अनुभव ही नहीं हुआ तो तप से क्या?

'नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्? (ना.पं.)

अच्युत के कृपा-कटाक्ष को प्राप्त करने हेतु 'भक्ति' ही एक मात्र साधन है—

'नूनमच्युतकटाक्षपातने कारणं भवति'

भारत में तो केवल कृष्णमंत्रोपासक भक्त ही 'जीवन्मुक्त' हो सकते हैं— 'कृष्णमन्त्रोपासकस्य जीवन्मुक्तस्य भारते।' अतः

'ध्यायन्ते वैष्णवाः कृष्णं कृष्णश्च वैष्णवांस्तथा'।

(11) *यौगिक सिद्धियां एवं भक्ति—ना.पं. (द्वि. अष्टम्/5)

में कहा गया है कि

1. योग की 17 सिद्धियाँ हैं।
2. ये सभी कृष्ण भक्ति में व्यवधान डालने वाली हैं।
3. ये भक्तों के लिए अभीष्ट नहीं हैं।

4. **'कृष्ण भक्त'** तो कृष्ण की भक्ति और उनके दास्यभाव को ही चाहता है–

'कृष्णभक्ति व्यवहितं भक्तानां नाभिवाञ्छितम्।
कृष्ण... भुग्भोक्तुं करोति दासतां मुने।। (2/8/5)

'नारद पञ्चरात्र' (2/8/24-26) में कहा गया है कि–

'तन्त्र वही है और मन्त्र भी वही है जिससे 'कृष्णभक्ति' आविर्भूत होती है। वही बन्धु है, वही पिता है, वही मित्र है,वही माता है, वही भ्राता है, वही पति है, वही पुत्र है जो कि श्री कृष्ण का साक्षात्कार करा सके–

'तत्तन्त्रं स च मन्त्रः स्यात् कृष्णभक्तिर्यतो भवेत्।
स एव बन्धुः स पिता सा मैत्री जननी च सा।
स च भ्राता पतिः पुत्रो यः कृष्णवर्त्म दर्शयेत्।।(1)

इसमें कहा गया है कि निखिल चराचर विश्व जल के बुलबुले के समान हैं अतः प्रकृति से परे राधेश्वर श्री कृष्ण का भजन करो–

'जल बुदबुदवत सर्वं विश्वं च सचराचरम्।
भज राधेश्वरं विप्र। श्री कृष्णं प्रकृतेः परम्।।
क्योंकि-'स गुरुः, परमो वैरी भ्रष्टं वर्त्म प्रदर्शयेत्।' (2)

'सहस्त्रदल पद्म' में स्वयं हरि निवास करते हैं। निरञ्जन परमात्मा समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित हैं।

'सहस्त्रदल पद्म च हृदयस्थो हरिः स्वयम्।
सर्वेषां प्राणिना विप्र! परमात्मा निरञ्जनः।।(3) (ना.पं.2/8)

नारद के यह प्रश्न करने पर कि आपने योग के प्रसंग में भक्ति की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है फिर भगवन! **योग और भक्ति में श्रेष्ठतर कौन है?** महादेव कहते हैं–

1. सभी योगी सनातन ज्योतिरुप का ध्यान करते हैं। निर्गुण का शरीर योगिजन नहीं मानते क्योंकि शरीर प्रकृति-निर्मित होता है और ब्रह्म प्रकृति से परे एवं निर्गुण है। देह गुण-निर्मित है फिर निर्गुण से देह

---

(1)नारद पञ्चरात्र 2/8/24) (2)नारद पञ्चरात्र(2/8/15 (3)नारद पञ्चरात्र(2/8)

होना कैसे संभव हो सकता है? योग के विद्वानों ने इसे ही 'योगशास्त्र' कहा है। कुमार एवं अन्य वैष्णव इसे स्वीकार नहीं कर सकते–

'इति सर्वं योगशास्त्रं योगविद्भिः प्रकीर्तितम्।
वैष्णवास्तं न मन्यन्ते कुमाराद्यावयं द्विज।। (1)

श्री कृष्ण नित्यशरीरी हैं और उनमें भी तेज है। उसी तेज से श्री कृष्ण की सनातन मूर्ति स्थित है–ऐसा ही वैष्णवों का मत है–

'कृष्णो नित्यः शरीरी च तस्य तेजो हि वर्तते।
तेभ्योऽभ्यन्तर एवाद्य कृष्णमूर्तिः सनातनः।। (2)

सभी योगी भक्ति पूर्वक उसी तेज का ध्यान करते हैं। अतः कालान्तर में अपनी भक्ति की परिपक्वता से योगी भी वैष्णव हो जाते हैं। **वैष्णवजन सदैव भगवान के तेज का ध्यान करते हैं।** यदि भगवान देह-हीन हो तो दासों का दास्य कैसे संभव होगा?

'तेजोभ्यन्तररूपं च ध्यायन्ते वैष्णवाः सदा।
दासानां च कुतो दास्यं विना देहेन नारद!'

निष्कर्ष – भगवान महादेव कहते हैं कि वैष्णवों का मत ही श्रेष्ठतर है। ब्रह्मा के इस ब्रह्माण्ड में वैष्णवों से अधिक ज्ञानी कोई नहीं है–

'वैष्णवानां मतं शस्तं सर्वेभ्योऽपि च नारद।
न वैष्णवात् परो ज्ञानी ब्रह्माण्डेषु च ब्राह्मणः।। (3)

(12) *वैष्णवों के ज्ञान की सर्वोच्चता की स्थापना (प्रतिपादन)

'नारद पञ्चरात्र' में कहा गया है कि–

'न वैष्णवात् परो ज्ञानी ब्रह्माण्डेषु च ब्राह्मणः।। (4)

'नारद पञ्चरात्र' में कहा गया है कि –**'श्री कृष्ण'** की सेवा से बढ़कर न कोई श्रेष्ठतर धर्म है न तप। वैष्णव के लिए परिश्रम व्यर्थ होता है। कृष्णमन्त्रोपासक तीर्थपूत है। उसका तीर्थों में स्नान करना, उपवास करना, वेदाध्ययन में तप करना यह सब विडम्बना मात्र हैं। पूर्वकर्म के कारण वैष्णव का जो पाप है, वह तो कृष्णमन्त्र के ग्रहण मात्र से वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे अग्नि में तृण। अग्नि परम पवित्र है, शुद्ध जल परम पवित्र है, भारतवर्ष

---

(1) ना.पं. (2/8) (2) ना.पं. (2/8/34)
(3) नारद पञ्चरात्र (2/8/37) (4) ना.पं. (9/2/23)

परम पवित्र है तथा तुलसी दल परम पवित्र तीर्थ है किन्तु जो कृष्णभक्तिनिष्ठ है वह अनायास ही सब को पवित्र कर देता है:

'नहि धर्मो नहि तपः श्री कृष्ण सेवनात् परम्।
परिश्रमं च विफलं तपसा वैष्णवस्य च।।

कृष्ण मन्त्रोपासकस्य तीर्थपूतस्य पुत्रक।
तीर्थ स्नानमनशनं वेदेषु च विडम्बनम्।।

पूर्वकर्मानुरोधेन यत्पापं वैष्णवस्य च।
मन्त्रग्रहणमात्रेण नष्टं वह्नौ यथा तृणम्।।

पवित्रः परमो वह्निः पवित्रं चामलं जलम्।
पवित्रं भारतं वर्षं तीर्थं यत्तुलसीदलम्।
पुनाति लीलयैतानि शुद्धः कृष्णपरायणः।।

श्री कृष्ण की एवं उनकी भक्ति का तो कहना ही क्या उनके तो भक्तों की भी महिमा अतुल्य होती है क्योंकि उनके तो पदरज से सारी पृथ्वी पवित्र हो जाती है अतः श्री कृष्ण के भक्त (सेवक) से बढ़कर तीनों लोकों में कोई नहीं है—

'भक्तस्य पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा।
न हि पूतस्त्रिभुवने श्री कृष्ण सेवकात् परः।। (2)

'नारद पञ्चरात्र' में कहा गया है कि अच्युत का कृपाकटाक्ष प्राप्त करने का श्रेष्ठतम साधन 'भक्ति' मात्र है और चतुर्वर्ग के लिए गुरुभक्ति रखने वाला ही श्री हरि की भक्ति का अधिकारी होता है—

'नूनमच्युतकटाक्षपातने कारणं भवति भक्तिरञ्जसा।
तच्चतुष्टयफलाप्तये ततो भक्तिमानधिकृतो गुरौ हरौ।। (3/1/16)

'नारद पञ्चरात्र' में श्री शुकदेव कहते हैं कि—वही पिता 'पिता' है जो ज्ञान दे। 'ज्ञान' भी वही है जो श्री कृष्ण भगवान की भक्ति प्रदान करे। 'भक्ति' भी वही है जो श्री कृष्ण की शुद्ध सेवा प्रदान करने वाली हो। वही 'सेवा' प्रशंसनीय सेवा है जो श्री कृष्ण भगवान के चरणों की सेवा हो। श्री कृष्ण भगवान के समक्ष उनकी स्तुति करना ही नित्य गोलोकवास

(2) ना.पं. (9/2/23)

है। निर्निमेष उनके पादपद्मों का साक्षात्कार करना, सदैव उनके संबंध में वार्तालाप करना, अपने को उनकी सेवा में समर्पित करना एवं निरन्तर उनकी सेवा में उनके समीप रहना भक्तों की अ यन्त आह्लादकारी एवं वांछित वस्तु है। यही वेदों का सारभूत तत्व है। (1)

'नारद पञ्चरात्र' का दृढ़विश्वास है कि भगवान श्री कृष्ण का मत वेदों का सार है–

'वेदसारं कृष्णमतं ममापि नहि कल्पना।।

'नारद पञ्चरात्र' (4/8/72) में कहा गया है कि हरिभक्ति से उत्तम मोक्षप्रद कुछ नहीं है। वैष्णवों से अधिक प्रिय भगवान के लिए अन्य कुछ नहीं है। भगवान कहते हैं–

'हरि-भक्तेः परा नास्ति मोक्षश्रेणी नगेन्द्रजे।
वैष्णवेभ्यः परं नास्ति प्राणेभ्योपि प्रिया मम।।

अर्थात् वैष्णव भक्त भगवान के लिए प्राण से भी अधिक प्रिय है।

जिसके वंश में वैष्णव का जन्म होता है उसके वंश के जितने भी पूर्व पितर हो चुके हैं वे सभी निर्मल होकर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं–

'ते हि यान्ति निर्वाणतां हरेः।। (4/8/174)

(13) *भक्त का विशेष महत्व–

जो श्री कृष्ण-भक्ति में निष्ठा रखता है और उनका भक्त है उससे महत्तर कोई नहीं है। उससे श्रेष्ठतर न तो आत्मा है, न प्राण है, न ब्रह्मा है और न शिव ही हैं। श्री कृष्ण भक्तों के प्राणस्वरूप हैं और भक्त श्री कृष्ण के प्राणस्वरूप हैं। यदि वैष्णव श्री कृष्ण का ध्यान करते

स पिता ज्ञानदाता यो ज्ञानं तत् कृष्णभक्तिदम्।
सा भक्तिः परमा शुद्धा कृष्णदास्य प्रदा च या।
तदेव दास्यं शस्तं यत् साक्षाच्चरणसेवनम्।।
नित्यं गोलोकवासं च पुरतः स्तवनं हरेः।।
शश्वन्निमेषरहितं तत्पाद पद्म दर्शनम्।
शश्वत्तत्सार्धमालापसेवा कर्मनियोजनम्।।
तेन सार्धं भविच्छेदस्थानं परमशोभनम्।
भक्तानां वञ्छितं वस्तु सारभूतं श्रुतौश्रुतम्।।

—नारद पञ्चरात्र (1/1/18-2)

हैं तो त्रिलोकी का अधीश्वर होने पर भी श्री कृष्ण अपने भक्तों से का ध्यान करते हैं।[1]

संसार के भवसागर से पार होने के लिए हरिभक्ति सुदृढ़ नौका है। 'गुरु' ही पर ब्रह्म तथा नौका का कर्णधार है–

'सुपक्व हरिभक्तिश्च तरणी भव तारणे।
गुरुदेव परं ब्रह्म कर्णधारस्वरूपक:।।' (ना.पं.1/2)

श्री कृष्ण से विमुख, मूढ़, नराधम द्विज को तो तीर्थ, दान; तप, पुण्य एवं व्रत भी कभी पवित्र नहीं करते–

'श्री कृष्णविमुखं मूढं द्विजमेव नराधमम्।
तीर्थं, दानं, तपः, पुण्यं, व्रतं नैव पुनाति तम्।।' (ना.पं)

पूर्व जन्म के प्रभाव से ही लोग गृहस्थ होकर भी भक्ति में अनुराग रखने पर श्री कृष्ण के चरणकमल को प्राप्त करने के लिए अभीष्ट तप करता है। श्री कृष्ण का 'भजन', 'ध्यान', 'कीर्तन' उनके 'चरणोदक' का पान और 'नैवेद्य' का भक्षण सभी के लिए अभीष्ट है।[2]

(14) *'भक्ति' मुक्ति से भी श्रेष्ठ है–

'नारद पञ्चरात्र' (2/7/4) की मान्यता है कि श्री हरि की 'भक्ति' और उनका दास्य सभी मुक्तियों से श्रेष्ठतर है–

'श्रीहरेर्भक्तिर्दास्यं च सर्वमुक्तेः परं मुने।
वैष्णवानामर्मभतं सारात्सारं परात्परम्।। (ना.पं.)

---

(1) तत्परो हि प्रिया नास्ति कृष्णस्य परमात्मनः।
न हि भक्तात् परश्चात्मा प्राणाश्चावयवादयः।।
न लक्ष्मी राधिका वाणी स्वयंभुः शंभुरे च च।
भक्त प्राणों हि कृष्णश्च कृष्णप्राणा हि वैष्णवाः।
ध्यायन्ते वैष्णवाः कृष्णं कृष्णश्च वैष्णवांस्तथा —नारद पञ्चरात्र (1/2)

(2) प्राक्तनादनुरागी च गृही संसार सं वृतः।
तपः करोति श्री कृष्णपाद पद्मार्थमीप्सितम्।
परं श्री कृष्ण भजनं ध्यानं तन्नाम कीर्तनम्।
तत्पादोदक नैवेद्य भक्षणं सर्ववांछितम्।। —नारद पञ्चरात्र (1/2)

महादेव 'नारद पञ्चरात्र' (5/6/22) में कहते हैं कि 'वैष्णव भक्त मेरे प्राण के समान हैं। मैं उनकी रक्षा के लिए त्रिशूल धारण करता हूँ'— 'मम प्राण वैष्णवा हि तेषां रक्षार्थमेव हि।

शूलं मया धार्यते नान्यथा मैत्रकारणम्।।

हरि भक्ति द्विषामर्ये शूलं संधार्यते मया।।'

*'भक्ति' के नौ भेद हैं

(15) नवधा भक्ति ('श्रीमद्भागवत पुराण' 7/5/52)

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् —श्रीमद्भागवत पुराण

भक्ति विषयक शास्त्रीय दृष्टि

(16) ***'ज्ञानोत्तरा भक्ति'**—पहले 'भक्ति' कि पहले 'ज्ञान'? ज्ञान और भक्ति का क्रमात्मक तारतम्य— काश्मीरीय शैव तांत्रिक (त्रिक दर्शन) यह मानते हैं कि 'ज्ञानोत्तरा भक्ति' भी होती है जो कि ब्रह्म ज्ञान के बाद रसचर्वणा के उद्देश्य से उदित होती है।

(17) *'ब्रह्म ज्ञान' और 'भक्ति' में क्रमवर्तित्व का नियम—

क. आचार्य शङ्कर : (1)पहले भक्ति (साधन) (2)ज्ञान (साध्य)

ख. शाण्डिल्य —'शाण्डिल्य भक्तिसूत्र' : (2/16)
(भक्तिसूत्रकार): (1) पहले ब्रह्मज्ञान (साधन)
(2) भक्ति (साध्य)

प्रमाण— 'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।
(गीता: 18/54)

(18) *'नारदीया भक्ति' के एकादश अङ्ग

↓

1 'गुण महात्म्य सक्ति'	2 'रूपा सक्ति'	3 'पूजा सक्ति'	4 'स्मरण सक्ति'	5 'दास्या सक्ति'	6 'सख्या सक्ति'
7 'कान्ता सक्ति'	8 'वात्सल्या सक्ति'	9 'आत्मनिवेदना सक्ति'	10 'तन्मयता सक्ति'	11 'परमविरहा सक्ति'	

वैष्णवागम में स्वल्पाधिक समस्त नारदीया आसक्तियां पाई जाती हैं और **'ज्ञानोत्तरा भक्ति'** के भी स्थल दृष्टिगोचर होते हैं।

(19) *श्री कृष्ण की स्तोत्रपाठात्मक साधना—

एक बार पार्वती जी ने भगवान शिव से पूछा कि क्या ऐसी भी कोई पद्धति है जिसके द्वारा भगवान श्री कृष्ण बिना जप, बिना सेवा एवं बिना पूजा के भी प्रसन्न हो सकें। यदि ऐसी कोई भी पद्धति हो तो उसे बताइए—

'विना जपं विना सेवां विना पूजामपि प्रभो।
यथा कृष्णः प्रसन्नः स्यात्तमुपायं वदाधुना।।

भगवान शिव ने भी यथाप्रश्न उनसे कहा—

विना जपं विना सेवां विना पूजामपि प्रिये।
यथा कृष्णः प्रसन्नः स्यात्तमुपायं वदामि ते।।

भगवान शिव ने पार्वजी जी से कहा कि जप, सेवा आदि बिना किसी स्तोत्र के अपना फल प्रदान नहीं करते या सिद्ध नहीं होते—

'जप सेवादिकं चापि विना स्तोत्रं न सिद्ध्यति।।'

भगवान श्री कृष्ण 'कीर्तिप्रिय' हैं। उन्होंने कहा 'जप' तो तन्मयतासिद्धि के लिए किया जाता है। सेवा अपने आचार से सम्बंध रखती है किन्तु जो 'स्तुति' है वह मन को अत्यन्त प्रसन्न करने वाली है अतः श्री कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए उसी प्रसादनकरी स्तुति या स्तोत्र को प्रयोग में लाना चाहिए।

(20) *ध्यान —(1) अमृतसिन्धु के मध्य में एक मनोहर 'रत्नद्वीप' है। यह 'रत्नद्वीप' नौ रत्नों से निर्मित नव खण्डों वाला है। इसी नव खण्डात्मक रत्नद्वीप के मध्य में एक अनुत्तम एवं अत्यंत मनोरम 'मणिगृह' है। वहाँ एक रत्नजटित कुट्टिम है जिसके चारों ओर मनोहर वनमालायें हैं और उसके चतुर्दिक चौंसठ मणिस्तंभ स्थित हैं। वहीं कमललोचन भगवान श्री कृष्ण सिंहासन पर विराजमान हैं।

वे सुन्दरतम भगवान श्याम सुन्दर अनर्घ्य रत्नों से जड़ित किरीट एवं कानों में माला धारण किए हुए हैं। वे अपनी मनोहर मुस्कानों से सुशोभित हो रहे हैं। उनका मुख पद्मवत मनोज्ञ है। वे सखियों से घिरे हुए हैं। उनके वामांग को उनकी स्वामिनी ने आलिङ्गित कर रखा है और इस स्थिति में भगवान श्री कृष्ण परमानन्द के साक्षात विग्रहवत दृष्टि-गोचर हो रहे हैं। ऐसे सुन्दर, सुशोभित एवं परमानन्द के विग्रह को वहां अपने सामने समासीन कल्पना करके उनके सामने उनकी स्तुति करनी चाहिए। साधक को चाहिए कि वह यह स्तुति विजितेन्द्रिय होकर पूर्ण तन्मयता के साथ करे। इस स्तुत्यात्मक भगवत्स्तोत्र को सुनकर भगवान श्री कृष्ण बिना पूजा, बिना सेवा एवं बिना जप के मात्र ध्यानात्मक स्तोत्र-पाठ से ही प्रसन्न हो उठते हैं। वह स्तोत्र इस प्रकार है–

'कृष्णं कमल पत्राक्षं सच्चिदानन्दविग्रहं।
सखीयूथान्तरचरं प्रणमामि परात्परं।।

श्रृंगाररसरूपायाय परिपूर्णसुखात्मने।
राजीवारुणनेत्राय कोटिकन्दर्परूपिणे।।

वेदाद्यगमरूपाय वेदवेद्यस्वरूपिणे।
अवाङ्मनसविषय निज-लीला प्रवर्तिने।।

नमः शुद्धाय पूर्णाय निरस्तगुणवृत्तये।
अखण्डाय निरंशाय निरावरणरूपिणे।।
संयोगविप्रलम्भाख्य भेदभाव महाब्धये।
संदश विश्वरूपाय चिंदशाक्षररूपिणे
आनन्दांशस्वरूपाय सच्चिदानन्दरूपिणे।
मर्यादातीतरूपाय निराधाराय भक्षिणे।
मायाप्रपञ्चदूराय नीलाचलविहारिणे।
माणिक्य-पुष्परागाद्विलीलाखेलप्रवर्तिने।
चिदन्तर्यामिरूपाय ब्रह्मानन्दस्वरूपिणे।
प्रमाणपथदूराय प्रमाणाग्राह्यरूपिणे।
माया-कालुष्यहीनाय नमः कृष्णाय शंभवे।।

....

क्षरायाक्षररूपाय क्षराक्षरविलक्षणे।
तुरीयातीतरूपाय नमः पुरुषरूपिणे।
महाकामस्वरूपाय कामतत्वार्थवेदिने।।
दशलीला विहाराय सप्ततीर्थविहारिणे।
विहाररसपूर्णाय नमस्तुभ्यं कृपानिधे।।
विरहानलसन्तप्तभक्त-चित्तोदयाय च।
आविष्कृत-निजानन्दविमलीकृत मुक्तये।
द्वैताद्वैत-महामोहतमः-पटलपाटिने।
जगदुत्पत्तिविलय-साक्षिणेऽविकृताय च।
ईश्वराय, निरीशाय, निरस्ताखिलकर्मणे।
संसारध्वान्तसूर्यास्त पूतनाप्राणहारिणे।।
रासलीला-विलासोर्मिपूरिताक्षरचेतसे।
स्वामिनीं नयनाम्भोज भावभेदैकवेदिने।।
केवलानन्द नमः कृष्णाय वेधसे।
स्वामिनी-हृदयानन्दकन्दलाय तदात्मने।।
संसारारण्य-वीथीषु परिभ्रान्तामनेकधा।
पाहि मां कृपया नाथ तद्वियोगाधिदु:खितां।
त्वमेव मातृपित्रादिबन्धुवर्गादयश्चये।

विद्यां, वित्तं, कुलं, शीलं, त्वत्तोमे ऽास्ति किञ्चन।
यथा दारुमयी योषिच्चेष्टते शिल्पिशिक्षया।
अस्वतन्त्रात्वया नाथ तथाहं विचरामि भोः।
सर्वसाधन-हीनां मां धर्माचार पराङ्मुखाम्।
पतितां भवपथोधौ परित्रातुं त्वमर्हसि।
माया-घ्रमण यंत्रस्था मूर्ध्वाधोमयविह्वलाम्।
अदृष्ट निज संकेतां पाहि नाथ् दयानिधे।
अनर्थेऽर्थदृशं मूढां विश्वस्तां मयदस्थले।
जागृतव्ये शयानां मामुद्धरस्व दयापरः।
अतीतानागतभवसन्तान विवशान्तराम्।
बिभेमि विमुखीभूय त्वत्तः कमललोचन।
माया लवण पाथोधिपयःपानरतां हि मां।
त्वत्सान्निभ्य सुधासिन्धुसामीप्यं नय माऽचिरं।
त्वद्वियोगार्तिमासाद्य यज्जीवामीति लज्जया।
दर्शयिष्ये कथं नाथ मुखमेतद्विडम्बनं।।
प्राणनाथ! वियोगेऽपि करोमिप्राणधारणं।
अनौचितीं महत्येषा किं न लज्जयतीहि मां?

....

किं करोमि? क्व गच्छामि? कस्याग्रे प्रवदाम्यहं?
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते वृत्तयोब्धौ यथोर्मयः।
अहं दुःखाकुली दीना दुःखहा नभवत्परः।
विज्ञाय प्राणनाथेदं यथेच्छसि तथा कुरु।
ततश्च प्रणमेत्कृष्णंभूयोभूयः कृताञ्जलिः।
इत्येतद्गुह्यमाख्यातं न वक्व्यं गिरीन्द्रजे।
एवं यः स्तौति देवेशि! त्रिकालं विजितेन्द्रयः।
आविर्भवति तच्चित्ते प्रेमरूपी स्वयं प्रभुः।।

—'माहेश्वर तन्त्र' उत्तर खण्ड 'पुरुषोत्तमस्तव' (पटल 47)

(21) *** एकादशी व्रत का पालन—** भगवान विष्णु को एकादशी व्रत का पालन करना अत्यन्त प्रिय है अतः इस व्रत के अखण्ड पालन को वैष्णव भक्ति का एक अपरिहार्य अङ्ग स्वीकार किया गया है। इस संदर्भ में 'नारद पञ्चरात्र' में कहा गया है कि 'यदि कोई वैष्णव प्रमादवश एकादशी तिथि पर भोजन कर लेता है तो उसकी विष्णुपूजा वृथा हो जाती है और वह घोर नरक में पड़ता है एवं पितृ-हत्या, ब्रह्म-हत्या और मातृगमन के भारी पापों का भागी बनना पड़ता है। एकादशी को वैष्णवों को कभी भोजन नहीं करना चाहिए। [1]

(22) ***वैष्णवागम में स्वीकृत भक्ति का आदर्श स्वरूप—** यद्यपि वैष्णवागम में 'वैधी भक्ति', 'साधन भक्ति' एवं 'गौणी भक्ति' भी स्वीकृत है तथापि 'प्रेमा भक्ति' एवं 'भाव भक्ति' का स्वर उदग्र है। गोपियों के प्रेम को भी आदर्श रूप में स्वीकार करने की प्रवृत्ति वैष्णवागम में अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है।

गोपियों के प्रेम का स्वरूप— प्रेम क्या है?

'आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम 'काम'। कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे 'प्रेम' नाम। कामरे तात्पर्यनिज संभोग केवल। कृष्णसुख तात्पर्य प्रेम तो प्रबल। आत्मसुखदुःख गोपी ना करे विचार। कृष्णसुख हेतु करे सब व्यवहार। लोकधर्म, देहधर्म कर्म। लज्जा, धैर्य, देह सुख आत्म सुख मर्म । सर्वत्याग कर ये करे कृष्णोरभजन। कृष्णसुख हेतु करे प्रेमेर सेवन। इहाके कहिए कृष्णे दृढ़ अनुराग। स्वच्छ धौत वस्त्र जैसे नाहि कोन दाग अतएव काम प्रेमे बहुत अंतर। काम अंधतम प्रेम निर्मल भास्कर। अतएव गोपीगणे नाहि कामगंध। कृष्णसुख हेतु मात्र कृष्णोर संबंध। — श्री चैतन्य चरितामृत

नारद ने ब्रज की गोपियों को ही 'प्रेम का आदर्श' माना है।[2]

---

(1) वैष्णवो यदि भुञ्जीत एकदश्यां प्रमादतः।
विष्ण्वर्चनं वृथा तस्य नरकं घोर माप्नुयात्।
वरं पितृ वधं, ब्रह्मन् मातृर्णागमनं वरम्।
एकादश्यां वैष्णवस्तु न भुञ्जीत कदाचन।। (5/9/19-20)

(2) 'यथा व्रजगोपिकानाम् (सूत्र 21)

(23) *साधना के विभिन्न मार्गों में 'प्रपत्ति' और उसका महत्व

षड्विधा शरणागति

(1) 'आनुकूल्यस्य संकल्पः'
(2) 'प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्'
(3) 'रक्षिष्यतीति विश्वासो'
(4) 'गोप्तृत्ववरणं तथा' (1)
(5) 'आत्म निक्षेप'
(6) 'कार्पण्यं'

'आनुकूल्यस्य-सङ्कल्पः,
प्रातिकूल्यस्य-वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति-विश्वासो,
गोप्तृत्व-वरणं तथा।।
— (17/60)

'आत्म-निक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः'

*शरणागति-प्राप्ति का फल—

1. मामेकं शरणं प्राप्य मामेवान्ते समश्नुते।। 59
2. एवं मां शरणं प्राप्य वीतशोकमयक्लमः।। 61
3. निरारंभो निराशीश्च निर्ममो निरहंकृतिः।
   मामेव शरणं प्राप्य तरेत् संसार सागरात्।। 62

(1) अपने को किसी कर्म या क्रिया का कर्ता न मानने वाला
(2) संसार से कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा न रखने वाला।
(3) किसी से भी आसक्ति न रखने वाला।
(4) कभी भी अहंकार न करने वाला।
(5) भगवान की शरण में जा चुकने वाला

} भव-सन्तरण का अधिकारी व्यक्ति (2)

—संसार-सागर को तर जाता है।

(1) लक्ष्मी तंत्र (अ.17) (2) लक्ष्मी तंत्र (अ.17)

(24) *साधना के अन्य उपाय (मार्ग) एवं 'शरणागति' में तुलना—

यदि हम 'शरणागति मार्ग' की अन्य साधना मार्गों की तुलना करें तो हम पायेंगे कि—(1)सत्कर्मनिरत कर्मयोगी', (2)सांख्यविद 'ज्ञानयोगी' (3)योग शास्त्रज्ञ-अष्टाङ्गयोगी—शरणागत के कोटि अंश की भी बराबरी नहीं कर सकते।

'सत्कर्मनिरतां शुद्धाः सांख्ययोगविदस्तथा।
नार्हन्ति शरणस्थ कलां कोटितमीमपि।।' (17/63)

(1) 'आनुकूल्यस्य-सङ्कल्पः'—

आनुकूल्यमिति प्रोक्तं सर्वभूतानुकूलता।
अन्तःस्थिताऽहं सर्वेषां भावानामिति निश्चयात्।। (17/66)

* आनुकूल्यस्य संकल्प के अंग

↓

1	2	3
सर्वभूतानुकूलता	भगवान के प्रति	समस्त प्राणियों के हृदय में भगवती के वास का निश्चय

*'प्रतिकूल्यस्यवर्जनम्' के अंग

↓

1	2
भगवती की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए निष्पादित कार्य की भाँति सभी भूतों के प्रतिक्रिया-निष्पादन	किसी भी प्राणी के प्रतिकूल आचरण न करना। (1)

---

(1) गयीव सर्वभूतेषु ह्यानुकूल्यं समाचरेत्।
तथैव प्रातिकूल्यं च भूतेषु परिवर्जयेत्।। (ल.तं. 17/67)

* 'कार्पण्य'

↓

(1)	(2)
कुल, शील, जन्म, शरीर, शक्ति धन एवं रूप के अभिमान का त्याग 'कार्पण्य' कहलाता है 'त्यागो गर्वस्य 'कार्पण्य'। श्रुतशीलादि जन्मनः। अंग सामग्र्यथसम्पत्तेरशक्तेरपि कर्मणाम्।	कार्पण्य में गर्व नहीं अपितु दीनता रहा करती है। अंग सामग्री एवं सम्पत्ति के न रहने पर भी कर्म होते रहते हैं। 'इति वा गर्व हानिस्त छैन्यं कार्पण्यमुच्यते। 'ऐसा शक्ति के सुपसदत्व एवं शाश्वत कृपा से साधित होता है

जब ऐसा दृढ़ विश्वास हो जाता है कि परमेश्वर प्रथम 'ईश' एवं 'भक्ति' के सम्बंध से रक्षा नहीं करेगा तब आनुकूल्य-संकल्प से भी रक्षा नहीं करेगा। वह केवल 'शरणागति' से रक्षा करेगा। जब ऐसा विश्वास दृढ़ हो जाता है तब सभी दुष्कृत्यों का विनाश हो जाता है।[1]

* आत्म-निक्षेप *

केशव द्वारा संरक्षित अपने को समझकर फल की कामना नहीं करना एवं अपने को केशवार्पित कर देना 'आत्मनिक्षेप' है—

'तेन संरक्ष्यमाणस्य फले स्वाम्यवियुक्तता।
केशवार्पणपर्यन्ता ह्यात्मनिक्षेप उच्यते।। (17/74)

* 'गोप्तृत्ववरण' क्या है?

'अप्रार्थितो इन गोपयेदिति तत्प्रार्थना मतिः।
गोपायिता भवेत्येवं गोप्तृत्ववरणं स्मृतम्।। (17/76)

* 'आत्मनिक्षेप' के दो अङ्ग हैं—

(1) केशव द्वारा अपने को संरक्षित समझकर फल की कामना न करना
(2) केशव को अपने को समर्पित कर देना 'आत्मनिक्षेप' है

---

(1) स विश्वासो भवेच्छक् सर्वदुष्कृतनाशनः।

नियम-(1) वह परमात्मा बिना प्रार्थना के और बिना दीनता पूर्वक पुकारे कभी रक्षा नहीं करता। मन ही मन प्रार्थना करना-'गोप्तृत्व का वरण' है। बोलकर प्रार्थना करने पर ही परमात्मा रक्षा करता है।

***'आत्मनिक्षेप' क्या है?**

भगवान के सामने अपनी आत्मा को रख देना **'आत्मनिक्षेप'** है। अपने को दीनहीन समझना **'कार्पण्य'** है।

6 उपायों को ही 'षड्‌विधा शरणागति' कहते हैं। शरणागति के मार्ग को गुप्त रखना **गोप्तृत्ववरण है। वरण का गोप्तृत्व ही 'गोप्तृत्ववरण'** है।

***'न्यास' के अन्य पर्याय–**

'आत्म निक्षेप' के अन्य पर्याय हैं पांचों अंगों सहित न्यास का आचरण करना। इनका त्याग 'शरणागति' एवं 'सन्यास' है। (1)

***'उपाय' और 'अपाय' –**

पूर्ववर्णित उपायत्रय ठीक नहीं है। आनुकूल्य-संकल्प के अतिरिक्त जिन उपायों का वर्णन किया गया था उनसे मुक्ति पाने हेतु **'अपाय'** का आचरण करना पड़ता **है**–

'विनिवृत्तिरपायत:।।' (17/77)

'षडङ्गोपाय' तो शरणागति है। 'षडङ्गशरणागति' ही सर्वोच्च साधन है। **'कार्पण्य'** से भी उपायों की विशेष निवृत्ति होती है–

'कार्पण्येना प्युपायानां विनिवृत्तिरिहोदिता।।' (17/78)

* 'गोप्तृत्ववरण'–

'गोप्तृत्व वरणं नाम स्वाभि प्रायनिवेदनम्।।

इष्ट से अपने अभिप्राय को कहना गोप्तृत्व का वरण है।

भगवान करुणेश है और संसार के संचालक है जब वह सबका रक्षक है तब भक्त की रक्षा क्यों नहीं करेगा? आत्मीय परमात्मा में आत्मा जीव का समर्पण **'आत्मनिक्षेप'** है।

'हिंसा' 'स्तेय' 'मिथ्या भाषण' आदि 'अपाय' हैं–

'हिंसास्तेयादय: शास्त्रैरपायत्वेन दर्शिता:।।' (17/81)

*कर्म– सांख्यादिक उपाय' है–

'कर्मसांख्याद: शास्त्रैरुपायत्वेन दर्शिता:

---

(1) तेन संरक्ष्यमाणस्य फले स्वाम्यवियुक्तता।
केशवार्पणपर्यन्ता ह्यात्मनिक्षेप उच्यते।। (17/74)

***अपायोपाय दोनों का त्याग— 'अपाय' एवं 'उपाय' दोनों का** परित्याग करके **'मध्यमावृत्तिरूपा शरणागति'** को ग्रहण करके तदनुसार आचरण करता हुआ—**'भगवान रक्षा करेगा'** —ऐसा विश्वास रखता है वह जितेन्द्रय हो जाता है। इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य करती हैं। जीवात्मा को उनसे कुछ भी लेना-देना नहीं है।

* उपायापाय के मध्य की स्थिति *

1. निषिद्ध कर्म को स्वीकार करना एवं
2. विहित कर्म को अस्वीकार करना

} 'अपाय' का स्वरूप*

कर्म में अपायोपाय रूपता का यही स्वरूप है।

1. विहित कार्य को स्वीकार करना
2. अविहित कार्य को अस्वीकार करना

} 'उपाय' का स्वरूप*

अपायोपाय दोनों का ग्रहण→ पतन और विनाश। (17/92)

*कर्म के प्रकारत्रय

↓

1	2	3
उचित कर्मों के साधन ज्योतिष्टेम आदिकार्य	अनर्थ के साधन हिंसादिक कार्य	अनर्थपरिहार्थ निष्पादित कर्म-

↓

1	2
प्रायश्चित्तात्मक कर्म (चान्द्रायण व्रत आदि) ↓ सारे अनर्थों का ध्वंस	नित्य नैमित्तिक कर्म (क्रियमाण कर्म)

'अपाय-उपाय' का त्याग करके **'मध्यमा वृत्ति-ग्रहण'**→ जितेन्द्रयता का उदय।

'अपयोपाय-संत्यागी मध्यमां स्थितिमास्थितः।
रक्षिष्यतीति निश्चित्य निक्षिप्तस्वस्वगोचरः।। (17/82)

वैदिकी निष्ठा = त्रिपथगामिनीस्वरूपा

↓

1	2	3
प्रथम पथ- 'उपाय' मार्ग	द्वितीय पथ- 'अपाय' मार्ग	तृतीय पथ- 'मध्यमा' मार्ग

वैष्णवागम (ल.तं. 17/91) का सारांश

वैष्णवागमानुयायी कहते हैं कि (1) वैदिकी निष्ठा त्रिपथ-गामिनी है। इसमें (1) 'उपाय' (2) 'अपाय' एवं (3) 'मध्यमा' तीन मार्ग हैं। इसमें स्थित होकर जगत के स्वामी की 'प्रपत्ति' में जाना चाहिए—

'एषा सा वैदिकी निष्ठा ह्युपायापाय मध्यमा।
अस्यां स्थित्तो जगन्नाथं प्रपद्येत् जनार्दनम्।। (17/91)

क. शास्त्रानुकूल कर्मों का निष्पादन→भवसागर में **संतरण**

'सकृदेव हि शास्त्रार्थ कृतोऽयं तारयेन्नरम् (17/92)

ख. **उपायापाय दोनों कार्यों का निष्पादन→ अधः पतन** (17/92)

यदि जानते हुए भी 'अपाय' कर्म करने पड़ें या स्वयमेव हो जाएं तो इसका प्रायश्चित तुरन्त ही कर लेना चाहिए। प्रायश्चित्तोपरान्त **'शरणागति'** ग्रहण करना चाहिए—

'प्रायश्चित्तिरियं सात्र यत्पुनः शरणं श्रयेत्।। (17/93)

***'कर्मवाद' कहां तक ग्राह्य और कहीं तक अग्राह्य?**

(1) लोक-संग्रह (2) मर्यादा-स्थापन

(3) भगवत्प्रीति(भगवती की प्रीति) (4) विष्णु का मनः प्रसाद को लक्ष्य में रखकर वैदिक आचरण करना उचित है और उसका अतिक्रमण करना अनुचित है—

'संग्रहाय च लोकस्य मर्यादास्थापनाय च।
प्रियाय मम विष्णोश्च देवदेवस्य शार्ङ्गिणः।।

मनीषी वैदिकाचारं मनसापि न लङ्घयेत्।
यथा हि वल्लभो राज्ञो नदीं राज्ञा प्रवर्तिताम्।। (17/95-96)

***वैदिक मर्यादा में गहन निष्ठा**— भगवती कहती हैं कि—

1. जो मनुष्य वेदनिर्मित मर्यादा का अतिक्रमण करता है उसे मैं अपनी आज्ञा का अतिक्रमण मानती हूं। ऐसा करने वाला मेरा प्रिय भक्त ही क्यों न हो तथापि वह मेरे लिए अप्रिय हो जाता है। (1)

***अपाय-उपाय दोनों का त्याग**— मात्र शरणागति का ग्रहण

1. जो उपायों का त्याग करके चतुर्थ उपाय 'शरणागति' का आश्रय ग्रहण करता है उसके सभी पाप रूपी क्लेशों का नाश हो जाता है।
2. अपायोपाय-विनिर्मुक्त 'मध्यमा स्थिति' ही संसार-संतरण का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है—

(1) एवं विलङ्घयन् मर्त्यो मर्यादां वेदनिर्मिताम्।
प्रियोऽपि न प्रियोऽसौ में मदाज्ञाव्यतिवर्तनाम्।। (17/98)

अपायोपाय-निर्मुक्तां मध्यमास्थितिमास्थिता।
शरणागतिर्ग्यैषा संसारार्णवतारिणी।। (ल.तं. 17/101)

***भगवती का शरण-ग्रहण**— उपायों को न कर सकने पर भी भगवती की शरण में जाना चाहिए—

'मामेकां देवदेवस्य महिषीं शरणं श्रयेत्।
उपायाद्विरतः शश्वन्मां चैव शरणं व्रजेत्।। (17/103)

भगवती कहती हैं कि—मेरे शरणापन्न जीव के सारे पाप अत्यल्प हो जाते हैं और वह भगवती का पद प्राप्त कर लेता है।

---

(1) एवं विलंघयन् मर्त्यो मर्यादां वेदनिर्मिताम।
प्रियोऽपि न प्रियोऽसौ मे मदाज्ञाव्यतिवर्तनाम्।। (17/98)

***उपायासक्त व्यक्ति –**

(1) प्रथमतः भोग प्राप्त करता है और फिर
(2) विरक्ति होने पर परम पद प्राप्त करता है।

'अन्ते विरक्तिमासाद्य विशते परमं पदम्।। (17/105)

उपाय सरल है शरणागति ही कठिन है–

'उपायः सुकरः सोऽयं दुष्करश्च मतो मम।।'

'शरणागति' के अनुयायी–'अकाम' –'सकाम' दोनों अनुयायी इस मार्ग को आत्मसाक्षात्करणार्थ अपनाते हैं।

भगवती के मंत्रमयात्मक शरीर की मंत्रों से अर्चना।

भगवती अन्त में कहती हैं कि–

'अर्चनीया नरैः शश्वन्मम मन्त्रमयी तनुः।
'मन्मयैरर्चयेन्मंत्रैर्मामिकां मान्त्रिकीं तनुम्।। –ल.तं 17/107)

***'नवधा भक्ति'**

अर्थात् भगवती के मंत्रमय शरीर की मंत्ररूप से निरंतर अर्चना करनी चाहिए।। भक्ति–साधना में नवधा भक्ति यथेष्ट रूप में प्रचलित है। नवधा भक्ति के कतिपय उदा. देखिए–

1. भजन, ध्यान, कीर्तन, पादोदक नैवेद्य भक्षण आदि–सभी वैष्णवागम की भक्ति साधना में स्वीकृत है।

***निर्गुण–सगुण में समन्वय–**

वैष्णवागम निर्गुण ब्रह्म की नहीं सगुण–साकार, अवतारी श्री कृष्ण एवं अवतार लेने वाले विष्णु को केन्द्र में रखकर साधना में अग्रपद हुआ था तथापि वह कभी निर्गुणवाद को भूल नहीं पाया, उसके विष्णु एवं कृष्ण दोनों निर्गुण भी हैं–

'निर्लिप्तं निर्गुणं कृष्णं परमं प्रकृते परः।'
परमात्मा स्वयं कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः।। (ना.पं.)

विष्णु निराकार भी हैं–

परः पराणां परमः परमात्मात्म–संस्थितः।
रूप–चर्णादिनिर्देशि विशेषणविवर्जितः।। (वि.पु. 1 अंश/10)

....

पूजातत्त्व, पूजाङ्ग और वैष्णवागम

दशम अध्याय

भगवान नारायण और भगवती लक्ष्मी
(वैष्णवागम के मूल वक्ता-श्रोता)

* दशम अध्याय *

* पूजातत्त्व, पूजाङ्ग एवं वैष्णवागम *

1. पूजा (शास्त्रीय स्वरूप)
2. पूजातत्त्व-पूजा के पाँच भेद-
3. वैष्णवागम की दृष्टि-
4. पूजा-द्रव्य-
5. 'षोडशोपचार'-
6. 'अर्चन'-
7. 'धूप-दीप'-
8. 'पुष्प'-
9. 'गन्ध'-
10. 'नैवद्य'-

'घण्टां गन्धाक्षत सुमनकैरर्चितां वादयानः।
तदुद्दीप्तं सुरभिघृतसंसिक्त कर्पूररक्तं
दीपं दृष्ट्या स्तुति विशदधीः पद्मपर्यन्त मुच्चैः
दत्त्वा पुष्पांजलिमपि विधायार्पयित्वा च पाद्यं
सा चा संकल्पयेत्तद्धि पुलमपि तदास्वर्णपात्रे निवेद्यम्।

सुरभि तरेण दुग्ध हविषा मुश्रुतेन शिता समुदंशकैरुचिर कृत्य विचित्र वासैः। दधि, नवनीत, नूतन सितोपलपपनिका। घृतगुड़ नारिकेल कदली फल पुष्प रसैश्च।।

—(ना.पं.3/8) (11-12)

*पूजा एवं आराधना विधि-विषयक शाङ्कर दृष्टि—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचरा प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विविधोपभोग रचना, निद्रा समाधि स्थितिः।
संचारः पदयोः प्रदक्षिण विधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्।

*स्तुति, जप, पूजा, ध्यान विषयक अभिनवगुप्ताचार्य की दृष्टि—

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके,
सकल शब्दमयी किल ते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो,
मनसिजासु बहिः प्रसरासु च।।
इति विचिन्त्य शिवे। शमिताशिवे।
जगति जातमयत्नवशादिदम्।
स्तुति जपार्चनचिन्तनवर्जिता
नखलु काचन काल कलास्ति मे।।

—अभिनव गुप्तपादाचार्य

*पूजा और पूजा के भेद -

पूजामूलापि भक्ति स्याद, विना पूजां न भक्तिमान।
सा पूजा त्रिविधा प्रोक्ता चोत्तमामध्यमाऽधमा।
सात्विकी त्रिविधा पूजा राजसी त्रिविधा शिवे।
तामसी त्रिविधा पूजा तासां भेदं वदाम्यहम्।।

—भावचूड़ामणि

पूजा तत्त्व

(1) (पूजा का शास्त्रीय स्वरूप) 'कुलार्णव तंत्र' में कहा गया है कि--(1) चूंकि यह पूर्वजन्म का अनुशासन करती है।(2)यह जन्ममृत्यु का निवारण करती है और (3)अपने समस्त कर्मों का फल प्रदान करती है। अतः इसे 'पूजा' कहा जाता है।'

*(पूजा के लक्षण)

पूर्व जन्म का अनुशासन करना	जन्म-मृत्यु का निवारण करना	कर्मों का फल प्रदान करना

पूर्व जन्मानुशमनाज्जन्ममृत्युनिवारणात्।
सम्पूर्णफल दानाच्च पूजेति कथिता प्रिये।। [1]

*आदर्श या यथार्थ पूजा का स्वरूप—

(1) 'विज्ञान भैरव' (त्रिकाम्नाय का ग्रंथ) की दृष्टि—

1. पुष्पादिक उपचारों से की गई पूजा पूजा नहीं है।
2. निर्विकल्प 'परम व्योम' में ('पर चिदाकाश', 'बोध भैरव' में) आदर एवं श्रद्धा के साथ लय प्राप्त कर लेना चिर विश्रान्ति प्राप्त कर लेना ही 'पूजा' है—
   'पूजा नाम न पुष्पाद्यैर्या मतिः क्रियते दृढा।
   निर्विकल्पे परे व्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लयः।। [2]

(2) **संकेतपद्धतिकार की दृष्टि—** 'संकेत पद्धति' नामक ग्रंथ में कहा गया है कि—

क. बाह्यवर्ती पुष्पादिक उपचारों या द्रव्यों से की गई पूजा यथार्थ पूजा नहीं है।

---

(1) कुलार्णव तंत्र (70) (2) वि.भै. (144)

ख. समस्त जागतिक पदार्थों में अद्वय दृष्टि अर्थात् सबकी, परममहिमामय स्वात्मस्वरूप में परम प्रतिष्ठा ही 'परापूजा' है—

'न पूजा बाह्य पुष्पादि द्रव्यैर्या प्रथिताऽनिशम्।
स्वे महिम्नाद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थितिः।।

(3) अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि— ('तंत्रालोक')

पूजा } आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं कि रूप, रस आदि विभिन्न बाह्य भाव पदार्थों की देश, काल आदि से अपरिच्छिन्न निरुपाधिक स्वतंत्र, स्वच्छ भैरवाकार परसंवित् से अर्थात् 'बोध भैरव' से अभेदरूप में प्रतिष्ठा ही 'पूजा' है।

'पूजा नाम विभिन्नस्य भावौधस्यापि संगतिः।
स्वतंत्र विमलनन्त भैरवीय चिदात्मना।। (4/121)

अभिनवगुप्त— तन्त्रालोक

(2) *जप और पूजा—

पञ्चोपचार, षोडशोपचार या षट्त्रिंशोपचार पूजन मात्र ही पूजा का सर्वांगीण स्वरूप नहीं है। उसके साथ मंत्रजप का भी मणिकांचन योग होना चाहिए।

*'जप है क्या?

जन्मान्तरसहस्त्रेषु कृत पाप प्रणाशनात्।
परदेव प्रकाशाच्च जप इत्यभिधीयते।। (कु.तं.17/34)

*साधक और पूजा—

चूँकि पूजा एक साधना है अतः पूजारंभ के पूर्व ही व्यक्ति को 'साधक' की भूमि में साधनाधिकार प्राप्त कर लेना चाहिए। अन्यथा प्रवेश करके (यह साधनाहीन) पूजा व्यर्थ हो जाती है। साधक कौन है?

'सारं संग्रहणाच्चैव धर्ममार्ग प्रवर्तनात्।
करण ग्रामनियमात् साधकः सोऽभिधीयते।। (कु.तं. 17/28)

***पूजा तथा भक्त—**

पूजा का भक्ति से अटूट सम्बंध है। पराशक्ति के द्वारा भगवान का भजन करने के कारण इस भगवद्भजन में 'मन' वाणी एवं शरीर से रहने के कारण साधक सम्पूर्ण दुःखों को अति क्रान्त कर जाता है। इसीलिए उसे 'भक्त' कहते हैं—

'भजनात् परया भक्त्या मनोवाक्कायकर्मभिः।
तरत्यखिलं दुःखानि तस्माद्भक्त इतीरितः।। (कु.तं. 17/29)

***अद्वैतभाव और पूजा —**

पूजा में (1)'**पूजक**' (2)'**पूज्य**' एवं (3)'**पूजन**' तीन अंगों का सन्निवेश होने के कारण द्वैतभाव तो रहता है किन्तु पूजा के द्वैत का अद्वैत में विलय ही पूजा का चरम उद्देश्य है अतः—

'अद्वैतं भावयेन्नित्यं द्वैतं गुरुणा सह।
आत्मवत् सर्वभूतेभ्यो हितं कुर्यात् कुलेश्वरि।।

***वाणी, मन एवं शरीर की पवित्रता और पूजा**

सिद्धि क्यों नहीं मिलती? 'कुलार्णव तंत्र' (15/77) में कहा गया है—'जिह्वा दग्धा परान्नेन, करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।
मनो दग्धः परस्त्रीभिः, कार्यसिद्धिः कथं भवेत्?'

यदि दूसरे का अन्न खाते-खाते जीभ जल गई और दूसरों से दान लेते-लेते हाथ जल गए एवं दूसरों की स्त्रियां देखते-देखते मन जल गया तो सिद्धि कैसे प्राप्त हो? इसी त्रिविध पावित्र्य के साथ की गई पूजा को यथार्थ पूजा कहते हैं। अन्यथा '**पूजा**' पूजा नहीं। बाह्य प्रदर्शन मात्र बनकर रह जाती है।

(4) *आदर्श पूजा : उत्पल भट्ट की पूजा संबंधिनी दृष्टि—

उत्पल भट्ट ने 'शिवस्तोत्रावली' में कहा है कि—उच्चार, करण, ध्यान प्रभृति प्रयलसाध्य 'आणवोपाय' या अन्य उपायों से सम्पन्न की जाने वाली 'पूजा' यथार्थ पूजा नहीं है। 'अनुपाय प्रक्रिया' द्वारा सहजविधि से सम्पन्न होने वाली पूजा अर्थात् सहजरूप में स्वात्मस्वरूप बोध

भैरव का साक्षात्कार ही भक्तों की यथार्थ पूजा है–

ध्यानायास तिरस्कार सिद्धस्त्वत्स्पर्शनोत्सवः।
पूजाविधिरिति ख्यातो भक्तानां स मदाऽस्तु में। [1]

(5) *आदर्श पूजा : भट्टनारायण की पूजा संबंधिनी दृष्टि–

भट्ट नारायण 'स्तवचिन्तामणि' में कहते हैं कि हे भगवन्। मैं पुष्पादि से तो नित्य आपकी पूजा करता हूँ किन्तु आप मेरे लिए वह स्थिति आविर्भूत कीजिए कि जिससे मैं आपके समक्ष उस ज्ञानरूपी दीपक को लेकर उपस्थित हो सकूं जो कि मल से, अज्ञान रूपी तैल से सिंचित वासना रूपी वर्तिका को, धर्माधर्मप्रभृति जागतिक परम्परा को आगे बढ़ाने वाले समस्त संस्कारों को भस्म कर दे। (भाव यह कि भेद बुद्धि का त्याग करके अद्वय स्वात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही यथार्थ पूजा है।)

'मलतैलाक्त संसार वासना वर्तिदाङिना।
ज्ञानदीपेन देव त्वां कदा नु स्यामुपस्थितः।। (श्लोक 113)

(6) *आदर्श पूजा : योगिनी हृदयकार की दृष्टि–

'योगिनी हृदय' (3/2-2) में कहा गया है कि–

(1) * पूजा के तीन भेद हैं–

'परा पूजा' का स्वरूप– समस्त जागतिक पदार्थों में अद्वय दृष्टि रखना तथा महिमान्वित स्वात्मस्वरूप में उन सभी पदार्थों की प्रतिष्ठा करना ही परा पूजा है।

*पूजा के तीन भेद हैं। परा पूजा अद्वैतभावापन्ना पूजा है–

'प्रथमाद्वैतभावस्था सर्वप्रसर गोचरा।।
'द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया।।
'एवं ज्ञानमये देवि! तृतीया तु परा परा।।
'परा चाप्यपरा गौरि तृतीया च परापरा।।

–यो.ह.

---

(1) शिवस्तोत्रावली (17/4)

*पूजा के भेद :

↓

(उत्तमा पूजा)	(अधमा पूजा)	(मध्यमा पूजा)
'परा पूजा' अद्वैतभावापन्न पूजा उत्तमा पूजा / उत्तमा प्रथमा पूजा -भेद	'अपरा पूजा' चक्रपूजा अधमा पूजा / द्वितीय पूजा-भेद भेद प्रथामात्रसारा पूजा। चक्रावरणार्चनारूपा पूजा। / मध्यमा पूजा	'परापरा पूजा' मध्यमा पूजा / तृतीय पूजा-भेद 'एवं ज्ञानमये देवि! तृतीया तु परापरा' -यो.ह.

***प्रथमा पूजा का विधान**

जहां-जहां भी मन जाय और बाहर-भीतर जहां भी मन स्थिर हो जाए वहीं वही परावस्था स्थित है—

'यत्र यत्र मनोयाति बाह्ये वाभ्यन्तरे प्रिये।
तत्र तत्र परावस्था व्यापकत्वात् क्व यास्यति?'

क्योंकि—

'तत्र तत्राक्ष मार्गेण चैतन्यं व्यज्यते प्रभोः। तस्य तन्मात्र धर्मित्वा चिच्ल्लयाद्भरिता स्थिता।'

विज्ञानभैरव की दृष्टि—

'चिल्लयलक्षणाद्वैत प्रथा ही परा पूजा है। -विज्ञान भैरव।।

बाह्यस्यान्तरे धाम्न्यद्वये चिल्लय भावनामयी मध्यमा।। परापरात्मत्वात्

मध्यमा पूजा
'परापर पूजा'
(तृतीया पूजा)

प्रथमा पूजा—
यत्र यत्र मनोयाति बाह्ये वाभ्यन्तरे प्रिये। तत्र तत्राक्षमार्गेण चैतन्यं व्यज्यते प्रभो।।'

....

उत्तमा सा परा ज्ञेया

*पूजा तत्व

*पूजा के भेद- पञ्चप्रकारार्चा

पूजा च पञ्चधा प्रोक्ता तासां भेदान श्रृणुष्व मे।
अभिगमनमुपादानं योगः स्वाध्याय एव च।
इज्या पञ्च प्रकारार्चां क्रमेण कथयामि ते।। (ना.पं. 4/10/20)

***पूजा का अन्तिम लक्ष्य है लक्ष्मी एवं विष्णु से तादात्मय प्राप्त** करना। इसी लिए वह ध्यान करता है—

'अहं स भगवान विष्णुरहं लक्ष्मीः सनातनी।।
'अहं देवी न चान्योऽस्मि'।। (ल.तं. 35/91)

***मरीचि के अनुसार आराधना : आराधना के 4 प्रकार हैं—**

(1) 'जप' (2) 'अग्नि होम' (3) 'अर्चना' (4) 'ध्यान'

'वैष्णवागम' में अराधना की दोनों प्रक्रियायें स्वीकृत हैं।

अराधना की प्रक्रियायें-

(1) अमूर्त (2) समूर्त।

'अमूर्त प्रक्रिया' = अग्नि में आहुति डालकर की जाने वाली देवाराधना। 'मूर्त प्रक्रिया' = प्रतिमा-पूजन द्वारा देवाराधना।

(8) *वैष्णवागम में पूजा के पांच प्रकार

पूजा के पांच भेद (वैष्णावागम के अनुसार)

↓

1	2	3	4	5
'अभिगमन'	'उपादान'	'योग'	'स्वाध्याय'	'इज्या'
देवता के स्थान को स्वच्छ करना लीपना निर्माल्य हटाना	गंध, पुष्प आदि पूजा सामग्री का संग्रह करना	इष्ट देव की आत्म रूप से भावना करना	मंत्रार्थ का अनुसंधान करते हुए जप करना, सूक्त, स्तोत्र आदि का पाठ,	उपचारों के द्वारा अपने आराध्य देव की पूजा इज्या है

			शास्त्राध्ययन, नाम-रूप-लीला-धाम का कीर्तन करना	ये 5 प्रकार की पूजायें क्रमशः (1) सृष्टि (2) सामीप्य (3) सालोक्य (4) सायुज्य एवं (5) सासृप्य मुक्ति देने वाले हैं।

'ज्ञानामृतसार संहिता' (वैष्णवागम) में कहा गया है कि परमात्मा की सेवा की 6 विधियां हैं।

(9) *परमात्मा सेवा की विधियां : 6 विधियां

↓

1	2	3	4	5	6
'स्मरण'	'कीर्तन'	'प्रणति'	'पादवन्दन'	'अर्चन'	'समर्पण'

(10) *नवधा भक्ति (श्री मद्भागवत)

↓

1	2	3	4	5	6
'श्रवण भक्ति'	'कीर्तन भक्ति'	'स्मरण भक्ति'	'पाद सेवन'	'अर्चन भक्ति'	'वन्दन भक्ति'

7	8	9
'दास्य भक्ति'	'सख्य भक्ति'	'आत्मनिवेदन भक्ति'

(11) आचार्य शंकर की मानस पूजा का स्वरूप—

'आत्मा त्वं, गिरिजा मतिः, सहचरा, प्राणा शरीरं गृह। 'पूजा' ते विविधोपभोग रचना, निद्रा समाधि स्थिति। संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः, स्तोत्राणि सर्वागिरो। यद्यत कर्म करोमि तत्दखिलं शंभोतवाराधनं।	आचार्य शंकर की पूजा का स्वरूप

* **वैष्णवागमोक्त पूजा का स्वरूप**—'अभिगमन' 'उपादान' 'स्वाध्याय' 'योग' 'इज्या' के रूप में जो वैष्णवों की पञ्चार्या का जो उल्लेख प्राप्त होता है उसका स्वरूप इस प्रकार है—

1. 'अभिगमन'—देवता के स्थान पर मार्जन, उपलेपन और निर्मालय आदि को हटाना 'अभिगमन' कहलाता है।

   'ततोऽभिगमनं नाम देवता स्थानमार्जनम्।
   उपलेपन निर्माल्य दूरीकरणमेव।। (4/10/21)

2. 'उपादान'—गन्ध, पुषादि का चयन ही 'उपादान' है।
   उपादानं नाम गन्ध पुष्पादि चयन तथा।। (ना.पं. 4/10/22)

3. 'योग'—योगोनाम स्वदेहस्य स्वात्मत्वे नैव भावना।।
   (स्वदेह में अपनी आत्मा की भावना करना योग है।)[1]

4. 'स्वाध्याय'—स्वाध्यायों नाम मन्त्रार्थसन्धान पूर्वको जपः।।
   1. मंत्रार्थसंधान पूर्वक मंत्र का जप ही 'स्वाध्याय' है।
   2. सूक्तस्तात्रादिपाठस्तु हरि संकीर्तनं तथा
   3. तत्त्वादिशास्त्राद्यमासः स्वाध्यायः परिकीर्तितः।

5. 'ईज्या'—स्वदेव के यथार्थ पूजन को 'इज्या' कहते हैं-
   'इज्या नाम स्वदेवस्य पूजनं तु यथार्थतः [2]
   इसे ही 'पञ्चप्रकारार्चा कथिता तव सुव्रते।।'

---

(1) ना.पञ्च.(4/10/22) (2) ना.पं. (4/10/24)

इनका सम्बंध मुक्तियों से है जो निम्नाङ्कित हैं—

(1) सार्ष्टि मुक्ति (2) सामीप्य मुक्ति (3) सालोक्य मुक्ति (4) सायुज्य मुक्ति और (5) सारूप्य मुक्ति

'सार्ष्टि-सामीप्य-सालोक्य-सायुज्य-सारूप्यंदा क्रमात्।।

—(नारद पञ्चरात्र 4/10)

(12) *पञ्च प्रकारार्चा-विधि (उपचार-विधान)

इस अर्चा-विधान में (1) आवाहन (2) पाद्य (3) आचमन (4) अर्घ्य (5) मधुपर्क (6) पुनः आचमन (7) स्नानार्थ जल देना (8) वस्त्र देना (9) उत्तरीय देना (10) यज्ञोपवीत देना (11) भूषण देना (12) जल देना (13) गन्ध देना (14) पुष्प देना (15) धूप देना (16) दीप देना (17) नैवेद्य समर्पित करना (18) पुनः जल देना।[3]

पञ्चविध अर्चा में प्रयुक्त उपचारों के क्रियान्वयन के समय प्रयुक्त मंत्रों का विवरण इस प्रकार है—

1. **आवाहन-मंत्र = 'अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च।**
   यद्यत्पूर्ण भवेत्कृत्यं तथाप्यभिमुखो भव।।
2. **पाद्य-मंत्र = यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्द संभवः।**
   तस्मै ते परमेशाय पाद्यं शुद्धाय कल्पये।
3. **आचमन-मंत्र = देवानामपि देवाय देवानां देवतात्मने।**
   आचामं कल्पयामीश चात्मनां शुद्धिहेतवे।।
4. **अर्घ्य-मंत्र = तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दसंभवम्।**
   त्रापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्।।
5. **मधुपर्क-मंत्र = सर्वकल्मष ह्री नाय परिपूर्ण मुखात्मने।**
   मधुपर्कमिदं देव। कल्पयामि प्रसीद मे।।
6. **स्नानार्थ-जल-दान=परमानन्दबोधायं निमग्ना निजमूर्तये।**[1]
   साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीशते।।
7. **वस्त्र-दान = मायाचित्रपदाच्छिन्न निजगुह्योरुतेजसे।**
   निरावरण विज्ञाय वासस्ते कल्पयाम्यहम्।।

---

(3) ना.पं. (4/10/1-19) (1) नारद पञ्चरात्र

8. यज्ञोपवीत समर्पण=यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोत मखिलं जगत्।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये।।
9. आभूषण-समर्पण=स्वभावसुन्दराङ्गाय नाना शक्त्या श्रयायते।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित।।
10. गन्ध-समर्पण - परमानन्द सौरभ्य परिपूर्ण दिगन्तरम्।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर।।
11. पुष्पार्पण - तुरीय वन सम्भूतं नाना गुणमनो हरम्।
सुमन्द सौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तम्।।
12. धूपार्पण - वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः।
आघ्रेयः सर्व देवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।। [2]
13. दीप-दान - सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः।
सब्राह्याम्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।
14. नैवेद्यार्पण - सत्पात्रसिद्धं सुभगं विविधानेकभक्षणम्
निवेदयामि देवेश सानुगाय गृहाणतत्।।

इसके बाद 'समस्त देवदेवेश सर्वतृप्तिकर परम्।
अखण्डानन्दसम्पूर्ण गृहाण जलमुत्तमम्।।
-पढ़कर जलार्पण करना चाहिए। [3]

(13) *वैष्णवागम की दृष्टि —

(1) *प्रथम सोपान : शक्ति का ध्यान

पूजा और अक्षमाला— अक्षमाला को किसी शुभपात्र में स्थापित करके अर्घ्य पुष्पादि से पूजा करके उसे शुद्ध करना चाहिए। अस्त्र मंत्र से उसे जलाकर, कवचमंत्र से पिण्ड बनाकर श्रीबीज से उसका आप्यायन करना चाहिए। फिर परमामृतरूपिणी शक्ति से उसे भावित करना चाहिए। परमामृतरूपिणी शक्ति चतुर्भुजी और लक्ष्मी से एकाकार एवं द्वितीय लक्ष्मीवत हैं। उनका जन्म ब्रह्मद्वार के कमल से हुआ है और वे वहीं रहती भी है।। उन **'परावैष्णवी शक्ति'** का जो कि लक्ष्मीमयी एवं लक्ष्मी से अभिन्न है। दीपशिखा के रूप में ध्यान करना चाहिए।

---

(2) नारद पञ्चरात्र (4/10) (3) नारद पञ्चरात्र (4/10)

यहां '**ब्रह्मरंध्र**' को ही **ब्रह्मद्वार** कहा गया है। इसका चिन्तन '**द्वादशान्त**' में करना चाहिए और फिर हृत्पद्म में करना चाहिए। फिर '**हृत्पद्म**' से उठकर ब्रह्मरंध्र से निकल गई हैं। -ऐसा ध्यान करना चाहिए।

फिर ध्यान करना चाहिए कि यह शक्ति धीरे-धीरे उल्लसित होकर माला में स्थित हो गई है और(1) स्थूल (2) सूक्ष्म (3) परस्वरूप वाली शक्ति है।

(2) *द्वितीय सोपान (माला में वैष्णवी शक्ति का ध्यान)

वहां पर भगवती लक्ष्मी के 'ह्रीं' का ध्यान करना चाहिए माला के मनकों में सूत्र में एवं माला में माला संस्थित वैष्णवी शक्ति का ध्यान करना चाहिए।

'मां ध्यायेत् तारिकाकारां तत्र शक्तौ सुरेश्वर!
मणीन् सूत्रं तथा मालां मालास्थां वैष्णवीमपि।। (1)

*(1) सारांश -पूजा-क्रम में-

1. सर्वप्रथम **ब्रह्मरंध्रस्थ (द्वादशान्तस्थ) परा वैष्णवी शक्ति (परामृतरूपिणी शक्ति) का द्वादशान्त में,** फिर हृत्कमल में ध्यान करना चाहिए। फिर उस शक्ति का ब्रह्मरंध्र से निकलकर माला में **प्रवेश करने की कल्पना करनी चाहिए।**
2. फिर लक्ष्मी का तारिकाकारा के रूप में ध्यान करना चाहिए।
3. माला के मनकों, धागों एवं सम्पूर्ण माला के वैष्णवी शक्ति का ध्यान करना चाहिए।
4. उसके उपरान्त **समस्त जगत को एकार्णव में विलीन एवं मायामय** कल्पित करना चाहिए और यह कल्पना करनी चाहिए कि यह संस्कृत माला **लक्ष्मीनेयी है।** (2)

एकार्णवी कृतं सर्वं मायां ध्यायेत् सुरेश्वर।
मया दत्तां विभाव्यैनां संस्कृता मक्षमालिकाम्।।

(ल.तं. 40/9)

---

(1) ल.तं. (40/8) (2) ल.तं. (40/9)

(3) *तृतीय सोपान —जप का समाचरण

तृतीय सोपान में जपारंभ करना चाहिए।

(1) अनुन्मिषत् (2) पर (3) सूक्ष्म (4) स्थूल (5) आत्मा—

इन पांचों को लक्ष्मीनारायण का आकार होने की भावना करनी चाहिए एवं (क)'तुरीयातीत' (ख)'तुरीया' (ग)'सुषुप्ति' (घ)'स्वप्न' एवं (ङ)'जाग्रत' —इन पांचों अवस्थाओं को लक्ष्मीनारायण का आकार मानें एवं 'अवस्था पञ्चक' के समान ही उसके कर्ता और करणादिकर्ता का उन्मेष एवं उसमें करण बाह्यक का स्मरण करना चाहिए।[1]

(4) *मंत्राक्षर एवं समस्त स्थूल पदार्थों में लक्ष्मी नारायण की कल्पना

मंत्राक्षर एवं समस्त स्थूल पदार्थों को लक्ष्मी नारायण का ही स्वरूप मानना चाहिए।

हृत्पद्म के मध्य स्थित श्री लक्ष्मी के मुखारविन्द से निःसृत एवं लक्ष्मी से अभिन्न 'वर्णात्मिका-वैष्णवी शक्ति' का ध्यान करना चाहिए।[2]

(14)(5) *माला, जप, मंत्र एवं लक्ष्मी में तादात्म्य का चिन्तन।

माला और जप तथा मंत्र एवं लक्ष्मी में कोई भेद नहीं है। लक्ष्मी को लता के रूप में एवं मंत्रों को उस लता के पुष्पों के रूप में कल्पित करना चाहिए—

'मन्मयीं संस्मरेन्मालां जप्यमंत्रमयीं ततः।
लतायामिव पुष्पाणि मंत्रान् वै तत्र संस्मरेत्।। (ल.तं. 40/15)

---

1. जपं समाचरेत पश्चात् पूर्वोक्तेन विधानतः।
अनुन्मिषत् परं सूक्ष्मं स्थूलमात्मानमेव च।।
लक्ष्मीनारायणाकारं पञ्चकं भावयेदिदम्।
तुर्यातीतं तथा तुर्यं सुषुप्ति स्वप्न जागरा:।
अवस्थापञ्चकं तद्वत् तत्कर्तृकरणदिकम्।।
कर्त्रुन्मेषं तथा तत्स्थं करणं बाह्यकं तथा।
मन्त्राक्षरं तथा स्थूलं सर्वं तत्तन्मयं स्मरेत्।।

2. हृत्पुण्डरीक मध्यस्थां मन्मुखाम्भोज निःसृताम्।
स्मरेच्छब्दमयीं शक्तिं वैष्णवीं मदभेदिनीम्।
तस्या विनिर्गतां ध्यायेन्मातृकां मंत्रमातरम्।। —लक्ष्मीतंत्र (40/13-14)

(15)(6)*मनकों के स्पर्श से उत्पन्न स्फुरण, हृदय के लय एवं माला की गति में मन्त्रनार्थ की कल्पना के साथ जप

***साधना के इस सोपान पर तादात्म्यत्रय**

↓

1	2	3
माला के मनकों के संस्पर्श से उत्पन्न स्फुरण एवं	हृदय के लय तथा	माला की गति में मंत्रनार्थ की उपस्थिति की कल्पना।।

स्फुरणं मणिसंस्पर्शे हल्लयं च तदत्यये।
भावयन् मंत्रनाथस्य जपं कुर्याद्विचक्षणः।। [1]

(7) ***जप का फल**— हृद्भास्वरूप, भीतर-बाहर की संसृति के क्रमोत्क्रम से एक बार जप करने का फल एक करोड़ जप के समान होता है।[2]

(8) ***जप-समर्पण**— भगवती के मंत्रों का जो जप किया जाए उस समस्त मंत्र-जप का भगवती को समर्पित कर देनी चाहिए—
'जपं समाप्य विधिवन्नयस्येन्मयि जपं कृतम्।
शक्तिं तां मन्मुखान्तस्थां जपरूपां विचिन्तयेत्।।
'जपरूपा शक्ति भगवती लक्ष्मी के मुख में ही संस्थित है'— ऐसा चिन्तन करना चाहिए।

(9) **धूप, दीप, अर्घ्य एवं घण्टानाद—**
धूप, दीप एवं अर्घ्य के अतिरिक्त आवाह्न में, अर्घ्य में, नैवेद्य में एवं प्रीणन में घण्टानाद करना चाहिए। बिना पूजा के घण्टानाद न करे और बिना घण्टानाद के पूजा न करें। लोक और परलोक दोनों में कार्य की सिद्धि के लिए जो शक्ति है वही घण्टी की अधिष्ठात्री शक्ति 'वागेश्वरी सरस्वती' हैं।
वाणी में ही समस्त मंत्र विद्यमान हैं। मंत्रों में समस्त वाच्य विद्यमान हैं। घण्टा-नाद करने से बछड़ों की भाँति मंत्र घण्टीरूपी माता के समीप दौड़े चले आते हैं—
'वाचि मंत्राः स्थिताः सर्वे, वाच्यं मंत्रेषु चाखिलमा।
एतस्यां चाल्यमानायां मंत्रा वत्सा इव द्रुतम्।। (ल.तं. 40/22)

(1) ल.तं. (40/16) (2) हृदभास्वरूप संसृति बहिरन्तः क्रमोत्क्रमात्। इति स्मरन् जपैदकवारं तत्कोटि सम्मितम्।। (ल.तं. 40/17)

(10) *ब्रह्माण्ड का अधोमुखी पद्म के रूप में ध्यान —

साधक को चाहिए कि वह अब लोक एवं कुलों से पूर्ण ब्रह्माण्ड को अधोमुखी पद्म के रूप में कल्पित करे। उस कमल नाल के ऊपर वृत्त पद्म का चिन्तन करना चाहिए। वह कमल अष्ट दलात्मक है और शुभ तथा श्वेत कर्णिका एवं केसरों से युक्त हैं। उस कमल के मध्य अष्टभुजी घण्टा देवी हैं।

—ऐसा भी चिन्तन करना चाहिए—उनके मुख्यत: चार हाथों में –पाश, शंख, पद्म एवं अंकुश हैं। शेष चार हाथों में अक्षसूत्र विज्ञान की पुस्तक एवं अभय तथा वरमुद्रा है।

वे भगवती कमलासन पर आसीन है। उनके नेत्र पद्मवत है। वे कमलों की माला पहने हैं। उनके वस्त्र पीले एवं श्वेत हैं। देवी अनुलेपयुक्त हैं। वे मंत्रसमूह का उद्गिरण कर रही हैं। ब्रह्मादि देव उनकी स्तुति कर रहे हैं। दो बार दीर्घ **'ह्रीं'** का उच्चारण करके **घण्टी बजाना चाहिए।**

*पूजन का फल—

इस प्रकार के पूजन से साधक को **मंत्रसिद्धि** प्राप्त होती है। इसके बाद गुरुओं को या लक्ष्मीनिष्ठ वैष्णवों को बुलाकर लक्ष्मी का मंत्र बोलते हुए नैवेद्य एवं अर्घ्य समर्पित करना चाहिए। फिर अग्निगता अग्निषोममयी लक्ष्मी रूपा परादेवी का **तर्पण** करना चाहिए।(1)

तर्पण, हवन, काम्या हुतिअर्पण, विष्वकसेन अर्चन, लोकपालो के अर्चन, पितरों के तर्पण, अनुयाग एवं पञ्चकृत्यों का निष्पादन करना चाहिए।(2)

(16) *उपचार और पूजा—

भारतीय साधना-शास्त्र के अनुसार पूजा विषयक जो उपचार-विधान है उसमें-(1)**'पंञ्चोपचार'** (2)**'षोडशोपचार'** (3)**'षट्त्रिंशोपचार'** आदि स्वीकृत हैं। वैष्णवागम सभी उपचारों का विधान करता है।

लक्ष्मी तंत्र के 36हवें अध्याय में षोडशोपचार पूजन की सविस्तार विवेचना की गई है।

---

(1) ल.तं. (40) (2) ल.तं. (40)

*भगवती की मानसोपचार पूजा–

भगवती का 'ध्यान' करके मानसोपचारों से उनकी पूजा करनी चाहिए। फिर देवी को पीठ पर स्थापित करके मंत्रों से उनकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए। फिर मूल मंत्र पढ़कर पाद्यादि समर्पित करना चाहिए।

पुष्पाञ्जलि–

देवी को 'धूप' 'दीप' और 'नैवेद्य' समर्पित करके मंत्र का जप करना चाहिए। फिर तुलसीपत्र के साथ शुक्ल पुष्पों से वैष्णवमंत्र के जपपूर्वक भगवती को पांच बार पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए।

करवीर, श्वेतप्रसून, बक एवं काञ्चन पुष्पों की ही पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए। पूजा में मात्र श्वेत एवं लाल पुष्पों का ही प्रयोग करना चाहिए। [1]

पूजा-द्रव्य

नियम–

(1) जितने द्रव्य हों उतनी ही संख्या में सोने, चांदी, तांबे, मरकत या भृगादि के पात्र होने चाहिए।

(2) 'आसन' के लिए 5 पुष्प; स्वागत के लिए 6 पुष्प; 'पाद्य' के लिए श्यामाक, दूर्वा, विष्णुकान्ता और चार पल (16 तोला) जल की व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

(3) 'अर्घ्य जल' में पुष्प, अक्षत, गन्ध, दूर्वा, तिल और श्वेत सरसों डालना चाहिए।

(4) 'आचमन' हेतु जायफल, लौंग, कक्लोल एवं 6 पल जल होना चाहिए।

(5) 'मधुपर्क' के लिए कांसे के पात्र में घृत, मधु या दही के साथ एक पल जल होना चाहिए।

(6) 'आचमन के लिए - 50 पल शुद्ध जल होना चाहिए।

जल -

निर्मलेनोदकेनाथ सर्वत्र परिपूर्णता।
सलिलं गर्हितं सर्वं त्यजेत्पूजाविधौ हरेः।।

(7) 'आभरण'- स्वर्णादि और मुक्तादि रत्नों के आभरण होने चाहिए।

---

(1) ना. पञ्च. (5/9/12-16)

(8) पूजा के लिए चन्दन, अगरु, कर्पूर, पद्मगंध एवं नाना प्रकार के कम से कम 50 पुष्पों का प्रयोग करना चाहिए।
'धूप' एवं गुग्गुल कांसे के पात्र में रखकर समर्पित करना चाहिए।

(9) **'नैवेद्य'** - अपने भोजनार्थ जो पदार्थ या व्यञ्जन सर्वोत्तम लगे उन्हीं-उन्हीं को जर्नादन को समर्पित करना चाहिए।
नैवेद्य चार प्रकार का होना चाहिए। [1]

(10) **'आरती'** - आरती कपूर से करनी चाहिए या चार अंगुल के दीपपात्र में कपास के सूत्र की वर्तिका डालकर उससे ही आरती करनी चाहिए।

(11) **'जप'** - 7 बार मंत्र-जप करना चाहिए और फिर अभिवादन करना चाहिए।

(12) **'दूर्वा और अक्षत'** - 100 से अधिक नहीं होने चाहिए। ऐसी पूजा करने से साधक हरि-पुर (वैकुण्ठ) में जाता है।[2]

* * * * * * * * * * * * * * * * * *

***पादोदक के प्रति श्रद्धा** - प्रत्येक वैष्णव को भगवान या शाल ग्राम का चरणोदक सादर ग्रहण करे क्योंकि--

'विष्णोः पादोदकं पीतं कोटि जन्माधनाशनम्।
तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ बिन्दु निपातनात्।

यदि भगवान का पादोदक पृथ्वी पर गिर गया तो आठ गुना अधिक पाप भी लगता है। इसके अन्य फल भी हैं-

अकाल मृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णोः पादोदकं पुण्यं शिरसा धारयाम्यहम्।।

(4/11/20 ना.पं)

***भगवान के कतिपय मंत्र**-- श्री कृष्ण एवं विष्णु से सम्बद्ध अनेक मंत्र हैं जो कि जपे जाने चाहिए यथा-

1. **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**
2. **'ॐ नमो भगवते गोपीजलवल्लभाय स्वाहा क्लीं।'**
3. **'ॐ नमो नन्दपुत्राय स्वाहा' (दशाक्षर मंत्र)**

---

(1) ना. पञ्च. (4/9/10) (2) ना.पं. (4/9/11-14)

4. 'ॐ नमो भगवते रुक्मिणी वल्लभाय स्वाहा।'
5. 'लीलादण्डधरो गोपीजन संसक्त दोर्दण्डबालरूप मेघ श्याम विष्णवे स्वाहा' (29 अक्षरां का मंत्र)
6. 'ॐ नमो भगवते श्री गोविन्दाय।' (द्वादशाक्षर मंत्र)
7. 'ॐ शार्ङ्गधनुषे हुंकट् नमः' (अस्त्र मुद्रा प्रदर्शन सहित)
8. गोकुल नाथाय नमः।।
9. (गोपाल मंत्र) 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्री कृष्णाय श्री गोविन्दाय श्री गोपीजनवल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं।' 'क्लीं कृष्णाय' आदि।

(17) *षोडशोपचार के अङ्ग *

↓

1 आवाहन	2 आसन	3 मूर्धा पर पुष्पार्पण	4 पाद्य	5 आचमनीय	6 स्नान	7 परिधान
8 उत्तरीय वस्त्र	9 गन्धानुलेप	10 माला आभूषण	11 दीपक	12 धूप	13 मधुपर्क	
14 नैवेद्य	15 अनुवासन (सुगंधित द्रव्य)	16 नमस्कार	17 पुष्पांजलि	18 पूजा समर्पण		

* गृहीत पूजन के प्रकार *

↓

1 'अन्तर्याग (मानसिक पूजन)	2 'बहिर्याग' (बाह्य पूजा) (वैधी पूजा)

वैष्णवागम में पूजन के दोनों प्रकार स्वीकृत हैं।

*(गृहीत) मुख्य स्तोत्र—

↓

1	2
भगवान विष्णु की पूजा हेतु स्वीकृत स्तोत्र 'पुरुष सूक्त'	भगवती लक्ष्मी की पूजा हेतु स्वीकृत स्तोत्र 'लक्ष्मी सूक्त'।

***भगवान विष्णु का ध्यान**—पूजा की **'अन्तर्यागात्मक पद्धति'** में भगवान विष्णु का ध्यान इस प्रकार विहित माना गया है—

'विष्णुं विश्वात्मकं देवं नारायणमनामयम्।
भावयेत् परमात्मानं शंखचक्रगदाधरम्।।
चतुर्भुजं पीत वस्त्रं पुण्डरीकनिभेक्षरम्।
उदितं संस्मरेद्देवं स्वशक्तेः स्पन्दनात्मनः।
सम्यग् ध्येयं यथै तत्ते तथा भूयो निबोधमे।

मंत्रों से अङ्गन्यास भी करना चाहिए और मुद्राओं को भी प्रदर्शित करना चाहिए।

ध्येय ब्रह्म षाड्गुण्यसम्पन्न, चिदानन्दधन एवं सर्वरूप है। वही जगदात्मा है। वही नारायण एवं अहं है तथा भगवती उनकी **'अहन्ता'** है—

'अहमित्येव यः प्रोक्तः पद प्रत्ययोर्द्वयोः।
नारायणः स भविता तस्याहन्ता तु या परा' (40)
तद्धिधर्मिणी लक्ष्मीः शक्तिः सा भावरूपिणी।
सर्वकार्यकरी सैव शक्तिर्वितनुते जगत्।।

—लक्ष्मी तन्त्र (36/40-41)

*अर्चन

एवंध्यात्वाऽर्चयेन्मंत्रीस्यादङ्गैः प्रथमा ऽऽवृत्तिः
द्वितीया महिषीमिस्तु तृतीयायां समर्चयेत्।

—नारद पञ्चरात्र (3/11/22)

(1) अभीष्ट फल प्रदान करने (2) चतुर्वर्ग रूप धर्माकाममोक्ष का फल प्रदान करने एवं (3) समस्त देववर्ग को नन्दित करने के कारण इस साधना-क्रिया को **'अर्चन'** कहा जाता है—

अभीष्ट फल दानाच्च चतुर्वर्गफलाश्रयात्।
नन्दनात् सर्व देवानार्चनं समुदाहृतम्।। (1)

***स्मरणकीर्तन, मंत्र जप—**

वैष्णवागम में भगवान के स्मरण कीर्तन आदि को नवधा भक्ति का अङ्ग माना गया है। भक्ति में ये तत्त्व अनिवार्य हैं—

'स्मरणं कीर्तनं विष्णोः कलौ मंत्रजपादिषु।
दानं तु प्रीतये तस्य नान्यथा गतिरिष्यते।। (ना.पं. 4/11/24)

***शालग्राम के जल के प्रति श्रद्धा—**

शालग्रामशिलातोयं न पीत्वा यस्तु मस्तके।
प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा स निगद्यते।। (ना.पं. 4/11/19)

पूजन 5,16,64 उपचारों से भी किया जाता है। **'अन्तर्याग'** एवं **'बहिर्याग'** दोनों भगवती की पूजा से ही सम्बद्ध हैं। पूजा का जो क्रम **'बहिर्याग'** में अपनाया जाता है वही क्रम **'अन्तर्याग'** में भी आत्मीकृत किया जाता है—'यः क्रमोऽभिहितो बाह्ये स सर्वो मानसेऽत्र तु।

फिर मानसिक रूप से (1) पुष्प (2) अर्घ्य (3) दीप (4) धूप (5) माल्य (6) विलेपन (7) पाद्य एवं (8) आचमन समर्पित करना चाहिए—

'पुष्पमर्घ्यं तथा दीपं धूपं माल्यं विलेपनम्।
चेतसा सादरेणैव पाद्यमाचमनं ततः।। —(ल. तं. 36/133)

*अर्चन

↓

(दिन)	(रात्रि)	(रात दिन)
नित्यार्चन	नैमित्तिकार्चन	काम्यकर्म पूर्त्यर्थ अर्चन

नित्यार्चनं दिने कुर्याद्रात्रौ नैमित्तिकार्चनम्।
उभयोः काम्य कर्माणि चेति शास्त्रस्य निर्णयः।।
(कु.तं. 11/8)

***आत्मसमर्पण पूर्वक अर्चन**

समर्प्यात्मानमुद्वास्य तं स्वहृत्सरसीरुहे।
विन्यस्य तन्मयो भूत्वा पुनरात्मानमर्चयेत।। (2)

(1) कुलार्णव तंत्र (उल्लास 17/71) (2) ना.पं. (3/11/27)

धूप-दीप

*कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि—

'धूप'

1. दुर्गन्ध से उत्पन्न महादोषों को धूत (ध्वंस) करता है।
2. परमानन्द प्रदान करता है अतः **'धू'** (धूत) **'प'** (परमानन्द) मिलाकर इसे **'धूप'** कहा गया है—

'धूताशेषमहादोषपूति गन्धप्रभावतः।
परमानन्द-जननाद 'धूप' इत्यभिधीयते।।

'दीप' 1. दीर्घ अज्ञान से उत्पन्न घने अंधकार और मिथ्या अहङ्कार को नष्ट करता है और

2. पर तत्व के प्रकाश को उद्घाटित करता है अतः इसे **'दीप'** कहते हैं—

'धूप' **'धूताशेषमहादोषूति गन्धप्रभावतः।**
परमानन्द-जननाद् 'धूप' इत्यभिधीयते।।

'दीप' **'दीर्घाज्ञानमहाध्वान्ताहङ्कारपरिवर्जनात्।**
पर तत्व प्रकाशाच्च 'दीप' इत्यभिधीयते।।

'नारद पञ्चरात्र' ('वैष्णवागम') में धूप-दीप के मंत्र इस प्रकार दिए गए हैं—

1. **'धूप' का मंत्र -**

'वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।। (1)

2. **'दीप' का मंत्र -**

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।। (2)

सारे के सारे उपचार भगवद् भक्ति एवं दास्य भाव की परिपुष्टि या प्रेम की अनन्यता के लिए ही तो होते हैं। अतः दास्य एवं भक्ति सर्वोपरि है'

---

(1) ना.पञ्च.(4/10/17) (2) ना.पं. (4/10/18)

*'नारद पञ्चरात्र' में कहा गया है कि—

(18) *सारी मुक्तियों में श्रेष्ठ मुक्ति 'दास्य' एवं 'हरिभक्ति' है–

श्रीहरेर्भक्तिर्दास्यं च सर्वमुक्तेः परं मुने।
वैष्णवानामभिमतं सारात्सारं परात्परम्।
निर्वाणमोक्षदं वत्स कर्ममूलनिकृतनम्।
निर्वाणमोक्ष मेवेदं मोक्षविद्भिः प्रकीर्तितम्।। (पा.ना.पं. 7/4-6)

*कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि—

'पुष्प'

पुष्प में 'पु' का अर्थ पुण्य का संवर्धन, पाप के समूह का विनाश एवं पुष्कल धन-प्रदान और 'प' का अर्थ है पाप निराकरण। पुष्कल का 'पुष' और 'पाप' का 'ष' मिलकर 'पुष्प' बनता है—

'पुण्य संवर्द्धनाच्चापि पापोधपरिहारतः।
पुष्कलार्थ, प्रदानाच्च पुष्पमित्यमभिधीयते।। [1]

* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *

'नारद पञ्चरात्र' इस उपचार के अर्पण के इस समय निम्नांकित श्लोक के पढ़ने का वैष्णवागमोक्त विधान प्रस्तुत किया है—

पुष्पार्पण-मंत्र—

तुरीय वन सम्भूतं नानागुणमनोहरम्।
सुमन्द सौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम्।। [2]

'पुष्प' एवं पुष्पार्पण, गंध एवं गन्धार्पण आदि **स्थूल भी हैं और प्रतीकात्मक भी हैं**। पञ्चोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार आदि द्वारा पूजा (भी) **भौतिक एवं सांकेतिक भी है।**

*औपनिषदिक दृष्टि—

'भावनोपनिषद' में इस प्रतीकात्मक रहस्य का इस प्रकार उद्‌घाटन किया गया है—

---

(1) कुलार्णव तंत्र (उल्लास 17/6) (2) ना.पं. (4/10/16)

1. 'सलिल' - सलिलं सौहित्यकरण सत्वं कर्तव्यमकर्तव्यमिति भावना युक्त।
उपचार : उपचार- अस्ति नास्तीति कर्तव्यता उपचार:।।
2. 'आवाहन'- बाह्याम्यन्त: करणानां रूप ग्रहणयोग्यताऽस्त्वि त्यावाहनम्।
3. 'आसन' - तस्य बाह्यम्यन्त: करणानामेकरूपविषयग्रहणमासनम्।

*षोडशोपचार—

4. 'पाद्य' - रक्त शुक्ल पदैकीकरणं पाद्यम्।
5. 'अर्घ्य' - उज्ज्वलदामोदानन्दासनं दानमर्घ्यम्।
6. 'आचमनीय' - स्वच्छं स्वत: सिद्धमित्याचमनीयम्।।
7. 'स्नान' - चिच्चन्द्रमयी सर्वाङ्गश्रवणं स्नानम्।
8. 'वस्त्र' - चिदग्निस्वरूप परमानन्दशक्ति-स्फुरणं वस्त्रम्।।
9. 'ब्रह्मसूत्र' - प्रत्येक सप्तविंशतिधा भिन्नत्वेनेच्छा ज्ञान क्रिया।

*गन्ध (कुलार्णावतंत्रकार की दृष्टि)—

गंभीर और अपार दौर्भाग्य से उत्पन्न क्लेशों का विनाश करने के कारण तथा धर्म और ज्ञान को प्रदान करने के कारण इसे 'गन्ध' कहते हैं—

गंभीरापार दौर्भाग्य-क्लेशनाशन-कारणात्।
धर्म-ज्ञान-प्रदानाच्च गन्ध इत्यभिधीयते।।

* * * * * * * * * * * * * * * * * *

*वैष्णवागमोक्त विधान -

'नारद पञ्चरात्र' में भगवान को गन्ध अर्पित करते समय इस मंत्र को पढ़ने का विधान किया गया है—

'परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्ण दिगन्तरम्।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर।। (1)

ऽऽत्मक ब्रह्मग्रंथिमद्रसतन्तु ब्रह्मनाड़ी ब्रह्मसूत्रम्।

10. 'विभूषण'- स्वव्यतिरिक्त वस्तु सङ्गरहितस्मरणं विभूषणम्।
11. 'गन्ध' - स्वच्छस्वपरिपूरणानुस्मरणं गन्ध:।

---

(1) ना. पञ्च. (2/10/15)

12. 'कुसुम' – समस्त विषयाणां मनसः स्थैर्येणानुसंधानं कुसुमम्।

13. 'धूप' – तेषामेव सर्वदा स्वीकरणं धूपः।

14. 'दीप' – पवनावच्छिन्नोर्द्ध ज्वलन सच्चिदुल्का ऽऽकाश देहो दीपः

15. 'नैवेद्य' – समस्त यातायातवर्ज्यं नैवेद्यम।

16. 'ताम्बूल' – अवस्थात्रयै की करणं ताम्बूलम्।
मूलाधारादाब्रह्मरन्ध्र पर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रादा

17. 'प्रदक्षिणा' – मूलाधार पर्यन्तं गतागतरूपेण प्रादक्षिण्यम्।।

18. 'नमस्कार' – तुर्यावस्था नमस्कारः।।

19. 'बलिहरण' – देहशून्य प्रमातृतामिनज्जनं बलिहरणम्।।

20. 'होम' – सत्वमस्ति कर्तव्यमकर्तव्य मौदासीन्यनित्यात्म विलापनं होमः

21. 'ध्यान' – स्वयं तत्पादु का निमज्जनं परिपूर्ण ध्यानम्।।

'फल' एवं मुहुर्तत्रयं भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति। तस्य देवताऽऽत्मैक्य सिद्धिः। चिन्तितकार्याण्यत्नेन सिध्यन्ति।। (2)

*'नैवेद्य'— 'नारद पञ्चरात्र' में कहा गया है कि—

'स पादोदक नैवेद्यं नित्यं मुक्ते च यः पुमान्।
स वैष्णवो महापूतस्तन्मंत्रोपासकः शुचिः। –1/2/24

*कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि—

'नैवेद्य'— निवेदन के योग्य। अपने इष्ट को जो भोजन निवेदित करते हैं उसमें चतुरंग भोजन निवेदित किया जाता है। इसमें जल, अग्नि, दूध एवं घृतपक्व पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार कटु-अम्ल-लवण-तिक्त-कषाय-मधुर रूप षड्रसयुक्त पदार्थ होते हैं।

---

(2) भावनोपनिषद्

इसे ही 'नैवेद्य' कहते हैं। इससे देवता को तृप्ति की अनुभूति होती है—

चतुर्विधं कुलेशानि द्रव्यञ्चषड्रसान्वितम्।
निवेदनाद्भवेत्तृप्ति नैंवेद्यं समुदाहृतम्।। (1)

* * * * * * * * * * * * * * * * * * *

*वैष्णवागम की दृष्टि—'नारद पञ्चरात्र' में नैवेद्य को अर्पित करते समय मंत्र पढ़ने का विधान किया गया है—भगवान का 'पादोदक' एवं 'नैवेद्य' सभी भक्तों को वाञ्छित रहता है—

'तत्पादोदक नैवेद्यभक्षणं सर्ववाञ्छितम्।। (ना.पं. 1/2/64)

'ध्यान' — 'ध्यान' निर्विषयं मनः'

प्रत्यय की एकतानता ही 'ध्यान' है। योगसूत्रकार महर्षि पतञ्जलि कहते हैं— 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।। (विभूति पाद/2)

(तत्र तस्मिन् देशे यत्र चित्तं धृतं तत्र प्रत्ययस्य ज्ञानस्य या एकतानता विसदृश परिणाम परिहार द्वारेण यदेव धारणायाम लम्बनीकृतं तदालम्बनतयैव निरन्तरमुत्पत्तिः स ध्यामुच्यते।।') (2)

'एकतानता' का अर्थ है एक विषय प्रवाह
नागोजीभट्ट कहते हैं कि—

'तत्र देशे चतुर्भुजादिध्येय।
कारवृत्ति प्रवाहो वृत्यन्तराव्यवहितो ध्यानम्।।
ध्येयाकारवृत्ति-प्रवाह ही 'ध्यान' है (3)

साधकों का कर्तव्य है कि वे भगवान भजन, कीर्तन एवं ध्यान तीनों करें— 'परं श्रीकृष्णभजनं ध्यानं, तन्नामकीर्तनम् (ना.पं.1/2/63)

'दध्यौ कृष्णपदाम्भोजं परं कल्पतरुं शुक' (ना.पं. 1/2/53)

* * * * * * * * * * * * * * * * * * *

---

(1) कुलार्णतंत्र (उल्लास 17/80) (2) भोजदेव ('राज मार्तण्ड)
(3) भावागणेश (योगसूत्रवृत्ति)

(दीक्षा भाव तत्त्व एवं वैष्णवागम)

एकादश अध्याय

वैष्णव-तन्त्रशास्त्र के परमाराध्य

भगवान विष्णु

* एकादश अध्याय *

* दीक्षा, भावतत्त्व एवं वैष्णवागम *

दीक्षा

क्षपयित्वा मलं सर्वं ददाति च परं पदम्।
दीक्षेति तेन तत्वज्ञैर्वर्ण्य ते वेदपारगैः।।
तथैवाचार्यरूपेण दीक्षाख्येनापरेण तु।
यद्यति क्लेश कर्मादीनीक्षयत्यखिलं पदम्।। —ल.त.(41/6-5)
(दीक्षाभेद) दीक्षा सा त्रिविधा तावत् स्थूल सूक्ष्म परात्मना।
पुनर्दीक्ष्यविभेदेन त्रिविधा सा चतुर्विधा।
समयी पुत्रकश्चैव तृतीयः साधकस्तथा।
आचार्य श्चेतिक्षीक्ष्यास्ते तेषामन्यत्र विस्तरः।।
महा मण्डल यागेन ह्वनाद्वाथ केवलात्।
वाचा केवलया वापि दीक्षैषा त्रिविधा पुनः।। —ल.त.(41/7-9)

*दीक्षार्हता का निकष—

(दीक्षाक्रम) इत्येवं सम्प्रपन्नाय शिष्यायाच्छल वादिने।
प्रत्यक्षाभिः परोक्षाभिरुपाधिभिरने कधा।
शोधितायैकरूपाय रहस्याम्नायगोपिने।
अशठायानसूयाय लोभमोहाद्यसेविने।
संवत्सरं परीक्ष्यैवं परितः परितो धिया।
निष्कम्पाय वदेद्विधां यावती यादृशी च सा।। -अहि.सं.(20/11-13)
शुद्धतत्वाध्ववर्गस्य मंत्रग्रहणमिष्यते।
एषा 'दीक्षा' भवेन्मांत्री 'तत्वदीक्षां' निबोधमे।
इत्थं शिष्यतनुस्थानां तत्वानां जडरूपिणाम्।
आहत्याशु सम्बोधं दीक्षा ध्यानमयीत्वियम्।।
पूर्णाहुति धृतेनैव तारयैव तु पातयेत्।
एषा 'दीक्षा' भवेन्मांत्री सर्वमंत्रनियोजनी।। —ल.त. (41)
श्रृणु देवि! प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
विना दीक्षां न मोक्षः स्यात् प्राणिनां शिवशासने।।
सम्प्राप्ते षोडशे वर्षे दीक्षां कुर्यात् समाहितः।
वसेन्मंत्रैर्यथा विद्धमयः सौवर्णतां व्रजेत्।।
दीक्षाविद्धस्तथा ह्यात्मा शिवत्वं लभते ध्रुवम्।। —शाक्तानन्द तरङ्गिणी।।

(1) * दीक्षा और वैष्णवागम

- 'विना दीक्षां न मोक्षः स्यात् प्राणिनां शिवशासने'—शाक्तानन्द तरंगिणी

***दीक्षा - कुलार्णव तंत्र की दृष्टि—**

1. चूँकि यह क्रिया दिव्यता प्रदान करती है,
2. जन्म जन्मान्तर के कल्मषों का क्षालन करती है, इसी कारण इसे 'दीक्षा' कहा जाता है—

'दिव्यभावप्रदानाच्च क्षालनात् कल्मषस्य च।
दीक्षेति कथिता सद्भिर्भवबन्ध विमोचनात्।। [1]

***वैष्णव भागवतमत**

भगवती लक्ष्मी स्वयं दीक्षा हैं—'लक्ष्मीतन्त्र' (41/5) में कहा गया है कि आचार्य रूप से एवं 'दीक्षा' के नाम से मैं ही स्थित रहती हूँ—

'तथैवाचार्यरूपेण दीक्षाख्येना परेण तु।। [2]

(2) 'दीक्षा' क्लेश, कर्मादि का ध्वंस करती है और परम पद देती है।

दीक्षा क्लेश, कर्माशय एवं अनेक दुरितों की विनाशिका है—

1. यद् द्यति क्लेश कर्मादीनीक्षय त्यखिलं पदम्।
2. क्षपयित्वा मलं सर्वं ददाति च परं पदम।
   दीक्षेति तेन तत्वज्ञैर्वणयते वेदपारगैः।। (41/6)

***दीक्षा के भेद —**

समयी पुत्रकश्चैव
तृतीयः साधक स्तथा।
आचार्य श्चेति
दीक्ष्यास्ते तेषामन्यत्र
विस्तरः।।

—लक्ष्मी तंत्र
(41/8)

---

(1) कुलार्णव तंत्र (51) (2) लक्ष्मी तंत्र (41/5)

* **दीक्षादान की पद्धति**—दीक्षा-दान की अनेक पद्धतियां हैं

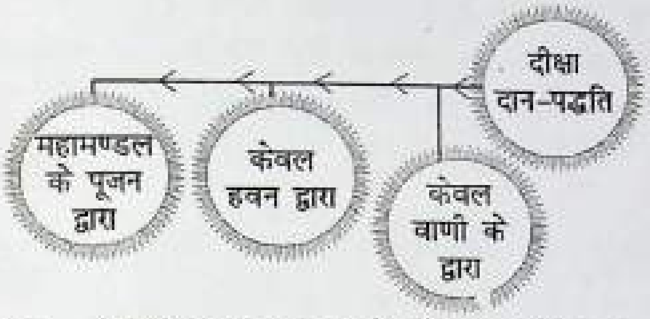

महामण्डल योगेन,
हवनद्वाथ केवलात्
वाचा केवलया वापि,
दीक्षेषा त्रिविधा पुनः
—लक्ष्मी तंत्र
(41/9)

(3) *दीक्षा-ग्रहण करने के पात्र शिष्य

(तेलगू भाषा में प्रकाशित संस्करण के अनुसार)

मोक्ष पाने हेतु दीक्षाधिकार (1) ब्राह्मण (2) क्षत्रिय एवं (3) वैश्य तीनों को है—

मोक्षार्थ दीक्षिता भूमौ सन्ति वर्णत्रयेषु च।
'तेषां मध्ये महाभागा विष्णु पादार्पिताशयाः।।'

1. संसार में परम एकान्तवासी 108 मुनि हैं जोकि काण्व शाखा और माध्यन्दिन शाखा के एवं पाञ्चरात्रपरायण हैं—

क. **'परमैकान्तिनो लोकें मुनयोऽष्टौ शतं हि ते।**
काण्व माध्यन्दिनविदः पञ्चरात्र परायणाः।। (41/4)

ख. कात्यायन मुनि-प्रोक्त सूत्र, वर्म एवं क्रिया के अनुयायी
शरणागतिधर्म के ज्ञाता, भागवती एवं विष्णु के मंत्र-जप में तत्पर कात्यायन मुनि प्रोक्त सूत्र, कर्म एवं क्रिया के अनुयायी भी इस दीक्षा के पात्र हैं।

2. काश्यप, गौतम्, भृगु, आश्वलायन एवं अंगिरा आदि श्रेष्ठ मुनि को भी दीक्षाधिकार है।

3. अन्य भक्तों को भगवान नारायण एवं नारायणी की पूजा का अधिकार नहीं है। भले ही वे हरि के भक्त हों।

4. 'भागवत' कौन हैं? दूसरे देवों के भक्तों को भी 'भागवत' कहा जाता है।

5. अन्य सम्प्रदाय के भागवत लक्ष्मी एवं नारायण की अर्चना करते हैं तो राजा एवं राष्ट्र दोनों को दोष लगता है।
6. काश्यपों को छोड़कर अन्य निरक्षर लोग भी दीक्षा के अधिकारी हैं। (कश्यप गौत्रीय लोग नारायण-नारायणी की अर्चना के अधिकारी नहीं हैं।)[1]

*दीक्षाधिकारी शिष्य– (लक्ष्मी तंत्र)

↓

1	2	3
दृढ़ संकल्पवाला	दीर्घकाल-पर्यन्त परीक्षित	संसाराग्नि परितप्त शरणापन्न

आनीय दृढसंकल्पं चिरकालपरीक्षितम्।
आचार्यः प्रणतं शिष्यं संसारानलतापितम्।।

(ल.तं.41/10-11)

(1) सर्वप्रथम पृथक-पृथक प्रायश्चित्तो के द्वारा पापात्मा शिष्य को शुद्ध किया जाए। फिर भलीभांति शिष्य को स्नान कराकर, स्वच्छ वस्त्र पहनाकर एवं पवित्र शरीर वाला बनाकर दीक्षास्थल में ले जाना चाहिए। बालिकाओं एवं स्त्रियों को पञ्चगव्य से पवित्र करना चाहिए। उनकी अञ्जलि को पुष्पों से भरकर, उनकी आंखों पर नए वस्त्र की पट्टी बांधकर फिर पांव से शिर पर्यन्त तक की लम्बाई का धागा काटना चाहिए। तीन तत्व (सत्व, रज एवं तम) के अनुरूप उन धागों में 3-3 गांठे लगाना चाहिए तथा शिर से पांव तक उन तीन तत्वों की भावना करनी चाहिए।

(2) ईशकाल से भूति पर्यन्त जो 27 तत्व हैं वे ही 'ग्रंथियां' हैं। इन ग्रंथियों में गुण श्रय (सत्व-रज-तम) विद्यमान हैं।

(3) **माया, विद्या एवं क्रिया के स्वरूप वाले** जो हैं उन्हें **'पाश'** कहते हैं।(हवन-विधान एवं अन्य**→)**

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (41 / तेलगू सं. 1-12)

(4) *देह का छेदन एवं भोगों का निर्मूलीकरण–
कालुष्य-पूर्ण इस भौतिक देह का छेदन करके हवन करने से भोगों का निर्मूलीकरण होता है।

(5) *ललाट में चिद्रूप ईश्वर का ध्यान–हवन के साथ ही सर्वतोमुख चिद्रूप ईश्वर का भ्रुवद्वय में ध्यान करना चाहिए। सिन्दूर-पुञ्ज के समान दृष्टिगत ईश्वर का भ्रूद्वय में ध्यान करणीय है– 'सिन्दूरपुञ्जसङ्काशं प्रधानं भ्रूयुगे स्मरेत्।। (41/20)

(6) *तालुमूर्धा एवं तालु में ध्यान–
तालुमूर्धा में चन्द्ररश्मि के समान 'बुद्धि' का एवं तालु में प्रसूनाम अहंकार का ध्यान करना चाहिए।

(7) *तालु एवं कानों के मध्य ध्यान–तालु एवं कानों के मध्यवर्ती स्थान में मन का 'हीरे' के आकार में ध्यान करना चाहिए।

(8) *ज्ञानेन्द्रियों का ध्यान –कण्ठ एवं हृत्पद्म के मध्यवर्ती स्थान को बराबर पांच भागों में विभक्त करके उनमें कान, आंख, नाक, जीभ एवं त्वचा का ध्यान करना चाहिए।

(9) *पञ्च कर्मेन्द्रियों का ध्यान –हृदय एवं नाभि के मध्यवर्ती भाग को पांच समान भागों में विभक्त करके पञ्च कर्मेन्द्रियों का ध्यान करना चाहिए।

(10) *पञ्च तन्मात्राओं का ध्यान– नाभि एवं मल द्वार के अग्र भाग तक को 5 भागों में बराबर विभाजित करके उनमें 5 तन्मात्राओं का चिन्तन करना चाहिए।

(11) *पञ्च महाभूतों का ध्यान –दोनों जांघों से चरणों के मध्य में पञ्च तत्वों का चिन्तन करना चाहिए।

(12) *ॐ के साथ बीजमंत्रोच्चारण सहित पञ्चमहाभूतों का ध्यान– अपने-अपने बिम्बों के सहित तारों के आकार वाले पञ्च महाभूतों का ॐ के साथ बीजमंत्रोच्चारण करते हुए चिन्तन करना चाहिए-

1. ॐ लं पृथिव्यै नमः। 2. ॐ वं सलिलाय नमः।

3. ॐ रं अग्नये नमः। 4. ॐ हं आकाशाय नमः।
5. ॐ यं वायवे नमः।
तत्वाहुति के समय 'स्वाहा' पद-प्रयोग करें—
यथा- ईशाय स्वाहा। कालाय स्वाहा। पृथिव्यै स्वाहा।

(12) ***अद्वैतभावः गुरु-लक्ष्मी की एकता**—हवनान्त में गुरु एवं **लक्ष्मी की एकाकारता**—हवन के अन्त में गुरु को चाहिए कि वह स्वयं को **लक्ष्मी** से एकाकार कर ले—
'गुरुः सम्पात होमान्ते स्वयं लक्ष्मीमयो भवन्। [1]

पूर्णाहुति—**'ह्रीं वौषट्'** मंत्र के साथ पूर्णाहुति देना चाहिए। होमान्त में ग्रंथियों से युक्त सूत्र दृढ़ होता है। फिर दो मिट्टी की प्यालियों में बंद मद निवेदन करना चाहिए और शिष्य के आंखों की पट्टी खोल देना चाहिए।
गुरु से पुस्तक प्राप्त करके शिष्य को गुरु को प्रणाम करना चाहिए। शिष्य को अग्नि के समीप होकर **'ह्रीं स्वाहा'** मंत्र से हवन करना चाहिए। इस प्रकार अंगोपांगों एवं लक्ष्मी सहित सभी परिवार के पूजन, जप एवं हवन का अधिकार शिष्य को प्राप्त हो जाता है—
'अधिकारी भवत्यैवं जपेऽग्नौ श्रवणोऽर्चने।। [2]

(1) *शुद्धयर्थ हवन एवं मांत्री दीक्षा*

1. दीक्षा में अध्वशुद्धि के लिए आद्य मूल मंत्रों से हवन करना चाहिए। दीक्षा की दिशा में अध्वों के शुद्धयर्थ आद्यमूल मंत्रों से हवन एवं 11 बार तिल की आहुति, फिर **'ह्रीं'** मंत्र से घी द्वारा पूर्णाहुति करने से **'मांत्री दीक्षा'** सिद्ध होती है। यह समस्त मंत्रों का नियोजन करने वाली दीक्षा है भोगेच्छुकों को यही दीक्षा देय है—
'एतावत्यधिकारे तु शिष्यान् भोगैकलम्पटान।।
मंत्र के प्रार्थियों को **'प्राकृत'** एवं **'ईप्सित'** मंत्र देना चाहिए। प्रकृति से संभूत समस्त संमुख मंत्र सिद्ध होते हैं। इसके तत्वों का शोधन भी

(1) ल.तं. (41/26) (2) ल.तं. (41/30)

आवश्यक है। शुद्ध तत्त्वाध्ववर्ग का मंत्र ग्राह्य होता है यही 'मांत्री दीक्षा' है—

'शुद्धतत्वाध्ववर्गस्य मंत्रग्रहणमिष्यते।
एषा दीक्षा भवेन्मांत्री' (ल.तं. 41-35)

*'अहिर्बुध्न्य संहिता'(अ. 20/11-13)में प्रतिपादित दृष्टि—

* दीक्ष्य-दीक्षाधिकार के नियम *

'अहिर्बुध्न्य संहिता' में दीक्षा विषयक दृष्टि इस प्रकार है—

इत्येव सम्प्रपन्नाय शिष्यायाच्छलवादिने।
प्रत्यक्षाभिः परोक्षाभिरुपाधिभिरनेकधा।
शोधिक्तायैकरूपाय रहस्याम्नायगोपिने।
अशठायथानसूयाय लोभमोहाद्यसेविने।
संवत्सरं परीक्ष्यैवं परितः परितो धिया।
निष्कम्पाय वदेद्विद्यां यावती यादृशी च सा।

—अहिर्बुध्न्य संहिता (20/11-13)

***दीक्षित शिष्य के कर्तव्य** —दीक्षित शिष्य को चाहिए कि वह अपनी आत्मा एवं आत्मीय कही जाने वाली समस्त वस्तुओं को गुरु को अर्पित करके यह सोचे कि अब मैं कृतार्थ हो गया—

'सम्यगित्थं गृहीतेन मंत्रेणानेन मंत्रवित्।
कृतार्थं मन्यमानः स्वं गुरवेऽथ निवेदयेत्।
आत्मानमथ चात्मीयं यत् किंचिदुत विद्यते।
विना पापमनिष्टं च सर्वं तस्मै निवेदयेत्।
एवं निवेद्य मन्वीत कृतार्थोऽहमिति स्वयम्।।'

—अहिर्बुध्न्य संहिता (20/43-45)

(4) ***'तत्वदीक्षा' : 'ध्यानमयी दीक्षा'**

ॐ के साथ तत्त्व का नाम और 'शोधय' जोड़कर 10 आहुतियाँ ध्यानपूर्वक अग्नि में डालनी चाहिए।

मंत्र का स्वरूप— ॐ ईश तत्त्वं शोधय स्वाहा।'

'ॐकालतत्वं शोधय स्वाहा। ॐभूमितत्वं शोधय स्वाहा'–

इस प्रकार **पृथ्वी से लेकर ईश्वर तक के तत्वसमूह का शोधन** करना चाहिए और हवनादि व्यापार में दीक्षित होने वाले शिष्य का नाम जोड़ना चाहिए।

1. गुरु के समीप शिष्य को **'पद्मासन'** में बैठना चाहिए और शिष्य के अन्तःसंस्थ होने पर,
2. साधक अपने को लक्ष्मीमय देखे। और शिष्य का लक्ष्मीमय होने पर उसे लक्ष्मी-हस्त से स्पर्श करे।

अपने को लक्ष्मी मानकर शिष्य को लक्ष्मी-नेत्रों से देखना चाहिए

'निरीक्ष्य लक्ष्मी-नेत्राभ्यां लक्ष्मीहस्तेन संस्पृशेत्।।

शिष्य का **लक्ष्मीहस्त से स्पर्श** भी करना चाहिए। भूमि से ईश्वर पर्यन्त और फिर ईश्वर से भूमिपर्यन्त **तत्वों का उपसंहार** करके फिर उनका सृजन करे।

इसे ही **'ध्यानमयी दीक्षा'** भी कहते हैं–

'दीक्षा ध्यानमयी त्वियम' (41/40)

(5) *'चाक्षुषी दीक्षा'

1. मृतिका की दो प्यालियों में पाशसूत्र रखकर, कुण्ड के निकट जाकर, **'सूत्र'** को प्यालियों से बाहर निकाल कर रखें। **साङ्गतारिका (ह्रीं)** से एक हजार हवन करके फिर एक सौ बार जप करें। इसके बाद एक पुष्प लेकर अनेक बार मंत्र से अभिमंत्रित करना चाहिए। उस पुष्प से शिष्य के हृदय पर **'ह्रीं हुं फट'** बोलकर **'ताडन'** करना चाहिए। फिर यह भावना करनी चाहिए कि शिष्य भू तत्व में प्रविष्ट कर गया। फिर बुद्धि से उसके भोगों का भोग करा देना चाहिए।
2. **भूमि के सभी भोगों को भोगने के बाद उसका उद्धार करके उसे जलतत्व से संयुक्त कर देना चाहिए।** यहां पर जल को **लक्ष्मी एवं नारायण का स्वरूप** समझना चाहिए। अंगों के साथ तारा (ह्रीं) से हवन करके उसकी **पार्थिव ग्रंथि का उच्छेद** कर देना चाहिए। स्त्रुवा में रखकर फिर स्त्रुचि को गोधृत से पूर्ण करके हवन-कुण्ड में डाल देना चाहिए।

3. कुण्ड की प्रज्वलित अग्नि में **'तारिका'** को **'परभाव'** में स्थित समझकर सूक्ष्म जल तत्व का क्रामण करके जलतत्व से हवन करना चाहिए।
4. उस सूक्ष्म अग्नि का क्रामण करके फिर पूर्णता से हवन करना चाहिए। इस प्रकार का हवन करके **परा और अपरा** से पूर्णहुति करना चाहिए।

प्रकृति को पुरुष के निकट लाकर पुरुष में ईश्वर को लाना चाहिए। ईश्वर में उस परमतत्व को लाना चाहिए जो 27 तत्वों के समूह से भिन्न होता है। स्थूल, सूक्ष्म एवं पर आकार वाली शक्ति ईश्वररूपिणी है। पुरुष ईश्वरतत्व से निकल कर नीचे जाता है। इससे वह अशुद्ध हो जाता है—

'पुरुषो हीश्वरात्तत्वादधो यातो यातोऽशुचिः।।

5. गुरु के परम तत्व को पाकर वह शिष्य पवित्र हो जाता है। दीक्षा प्राप्त करने पर वह विश्वात्मा शिष्य **'विश्वचक्षु'** हो जाता है।
6. भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए **'पूर्णाहुति'** प्रदान करना चाहिए। तब शिष्य एवं घृतपूर्ण स्त्रुचि दोनों में **सकल एवं निष्कल का ध्यान** करके दोनों का एकीकरण करके गुरु स्वयं **परातीत ध्यान** में स्थित हो जाए। ध्यान में विज्ञानशब्दात्मा के उत्तम **'पश्यन्ती'** रूप को देखे।
7. **शिष्य के पूर्ववर्ती देह का पतन**—फिर अनाहनाद के रूप में **तारिका (ह्रीं) के परम भाव** का श्रवण करना चाहिए। उसके शिष्य को एकाकार करके **'ह्रीं वौषट्'** बोलकर पूर्णाहुति प्रदान करे। **फिर समझे कि शिष्य के पूर्वदेह का पतन हो गया। फिर 'ॐ ह्रीं नमः'** बोलकर अनेक बार हवन करना चाहिए। अनेक बार में कम से कम 108 बार और उससे भी अधिक यथाशक्य अधिकाधिक हवन करना चाहिए।
8. **शिष्य का लक्ष्मीमयत्व**—उक्त हवनोपरान्त पूर्णाहुति प्रदान करके महापूर्ण का क्षेपन करना चाहिए। फिर गुरू अपनी आत्मा शिष्य एवं भगवती सनातनी लक्ष्मी का दूध में मिश्रित दूध की भाँति एकीकरण करके **शिष्य को विज्ञान के द्वारा लक्ष्मीमय कर** दे।[1]

---

(1) ल.तं. (41/55)

9. फिर विज्ञान वायु से आकर्षित करके क्रम से इस मंत्र को गुरु उस शिष्य को सुनाये या उसके कान में कहे। गुरु अपने हृदय में मुझे स्थापित करके शिष्य को **'ह्रीं' मंत्र का उपदेश दे।** गुरु को चाहिए कि वह अंग एवं उपाङ्गदि सहित सभी शास्त्रीय क्रम का, मंत्रगुप्ति आदि सामयिक धर्म का शिष्य को उपदेश दे।'

10. फिर **'ॐ विष्णवे नमः'** कह कर शिष्य की मूर्धा, पीठ और हृदय का स्पर्श करे। शिष्य गुरु से मुद्रा सीखकर भगवती की आराधना करे।

*अभिषेक और मुक्ति—

11. गुरु **'ह्री'** का उच्चारण करके एक घड़ा ले। उसमें जल भरकर इष्टानुसार **'ह्री'** का साङ्गोपाङ्ग **मानसिक** जप करे। फिर गुरु प्रसन्नान्तरात्मापूर्वक शिष्य का **'अभिषेक'** करे। इससे शिष्य संसार-सागर से उत्तीर्ण होने वाला स्वरूप प्राप्त कर लेता है।[2]

*गुरु-पूजन—

12. इसके बाद (दीक्षोपरान्त) आधार शक्ति आदि मंत्रोच्चारण पूर्वक गुरु को आसन पर आसीन कराये।

फिर अर्घ्यादि द्वारा पूजन करके स्वर्ण-रत्न आदि से गुरु का पूजन करें। यह पूजन **'आशित मंत्र'** से एवं बाद में निम्न श्लोक से पूजन करना चाहिए।

'अज्ञानगहनालोकसूर्यसोमाग्नि भूर्तये।
दुःखत्रयाग्नि-सन्तापशान्तये गुरवे नमः।। (41/64)

*मंत्र-जप—

गुरुपूजनोपरान्त शिष्य को तब तक मंत्र का जप करना चाहिए जब तक कि अभीष्टाप्ति न हो जाए। दीक्षा एवं मंत्रदान (अहिर्बुध्न्य संहिता' के आलोक में)— **अहि.सं.के अनुसार दीक्षोपरान्त मंत्र देने का नियम** इस प्रकार है—

'दीक्षया दीक्षयित्वाथ पात्रयित्वाथवाधिया।
संस्कारेणाथर्वणेन यद्वा संस्कृत्य मंत्रतः।
मंत्रोऽयमुपदेष्टव्यो गुरुणा गुरुसेविनः।। (20/46) [3]

---

(2) ल.तं. (41/61) (3)अहिर्बुध्न्य संहिता।

(6) *'दीक्षा और उसका सामान्य परिचय

'दिव्य ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पाप-क्षयं यतः।
तेन दीक्षेति लोकेऽस्मिन् कीर्तिता तंत्रपारगैः।।' (शा.त.)

1. 'दीक्षा' शक्ति है—'इयं दीक्षा सर्वतंत्रे शक्तिर्या परिकीर्तिता।।'

2. दीक्षा के कार्य—
'सा च दीक्षा समुदिष्टा दान-शाक्तानन्दतरङ्गिणी
क्षपण लक्षणा।।'—नेत्र तंत्र

3. दीक्षा का समय—
सम्प्राप्त षोडशे वर्षे दीक्षां कुर्यात् समाहितः।
वसेन्मंत्रैर्यथा विद्धमयः सौवर्णतां व्रजेत्।।
दीक्षाविद्धस्तथा ह्यात्मा शिवत्वं लभते ध्रुवम्।।
—शाक्तानन्दतरंगिणी: दि.उ.4।।

सारांश यह है कि सोलह वर्ष की अवस्था में दीक्षा कर दी जानी चाहिए और यदि यथार्थ दीक्षा प्राप्त हो जाती है तो दीक्षा से शिवत्व अवश्य प्राप्त हो जाता है।

4. **दीक्षा की आवश्यकता**—यदि हजारों उपचारों से भी देवता की अर्चना क्यों न की जाए, चाहे वह भक्तियुक्त भी क्यों न हो तथापि वह अर्चना यदि अदीक्षित व्यक्ति द्वारा निष्पादित की गई हो तो वह स्वीकृत नहीं होती—

'उपचार सहस्त्रैस्तु अर्चितां भक्तिसंयुताम्।
अदीक्षितार्चनं देवा न गृह्णन्ति कदाचन।। [1]

5. दीक्षा का फल—दीक्षा-प्राप्ति करने से दीक्षित व्यक्ति को अखण्डित मुक्ति पाने का फल प्राप्त होता है। इसके साथ ही साथ उसे भोग भी प्राप्त होते हैं—

सर्वेषामेव दीक्षाणां मुक्तिः फलमखण्डितम्।
अविशेषाद् भवत्येषा प्रासङ्गिक्यस्तु भुक्तयः। [2]

---

(1) शा.त.(2/16) (2) शा.त.(2/24)

6. **दीक्षा के फल में भिन्नता**

1. दीक्षा : ब्राह्मण : ब्रह्मलोक की प्राप्ति।
2. दीक्षा : क्षत्रिय : ऐन्द्र लोक की प्राप्ति।
3. दीक्षा : वैश्य : प्राजापत्य लोक की प्राप्ति।
4. दीक्षा : शूद्र : गन्धर्वनगर की प्राप्ति। (3)

7. **दीक्षा देने के लिए उपयुक्त काल एवं नियम-पालन-**

न तिथिर्न व्रतं पूजा न स्नानं न जप क्रिया।
दीक्षायां कारणं ज्ञानं स्वेच्छा प्राप्ते च सद्गुरौः।। (4)

8. **दीक्षा के प्रमुख कार्य : दीक्षा के प्रधान कार्य**

1	2	1	2
दान	क्षपण	ज्ञान सद्भाव	मलत्रय का ध्वंस
(नेत्र तंत्र)		'कुलार्णव तंत्र'	

1		2
परम निष्कृति		बल
पाशच्छेद	निरोध	पराशुद्धि
परम विश्लेष	पराशुद्धि	मुक्ति
'मृगेन्द्रागम' : क्रियापाद		

'पाञ्चरात्र' मुख्यतः सवर्णों को ही दीक्षा का अधिकारी मानता है तथापि **शूद्रों को भी दीक्षाधिकार** प्राप्त हैं। शूद्रों के लिए ब्राह्मणों की सेवा ही धर्म है। (1)

चूंकि **वैष्णवागम में वर्णव्यवस्था** का पूर्ण समर्थन किया गया है अतः सन्यास-धर्म केवल ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के लिए ही स्वीकृत है। सन्यासी निर्वाण-प्राप्त होता है किन्तु **'परमव्योम'** प्राप्त नहीं कर पाता। 'निर्वाण' है-

दीपज्योति के समान शान्त हो जाना। (अहि.बु.सं.)

***पाञ्चरात्र-भक्त की विशेषता-**

पाञ्चरात्र-भक्त कोरा भक्त नहीं होता अपितु वह योगी और यंत्र-मंत्र

(3) शा.त.(2/25-26 (4) शा.त. (2/73)

विशेषज्ञ होता है। उसे कर्ममार्ग एवं ज्ञानमार्ग से भी कोई परहेज नहीं है। वह कर्म-ज्ञान-उपासना-भक्ति-योग आदि साधनाओं के अमृत-बिन्दुओं को अपने मधुकोष में एकत्रित करने वाली मधुमक्षिका समझना चाहिए।

शिष्य द्विजाति का हो तो सर्वोत्तम है—

'विनयव्रतशाली च द्विजातिः संस्कृतः शुचिः।। (अहि.सं. 20/8)

उसे ब्रह्मचारी, व्रतधारी, जगत के अंगारों के मध्य अपने कर्मों के दाह से दुखी एवं शरणापन्न होकर यह कहने वाला होना चाहिए कि—

'संसाराङ्गरमध्यस्थः पच्यमानः स्वकर्मभिः।
भवन्तं शरणं प्राप्त उपसन्नोऽस्म्यधीहि भोः। (अहि.सं.)

शरणागति का प्राधान्य—दीक्षार्थी को भी शरणागत होकर आचार्य के पास जाना चाहिए।

7. **दीक्षा-क्रम एवं दीक्षा के नियम—** शिष्य को गुरु के सामने यह शपथ लेनी पड़ती है कि शिष्य के जो गुण निर्धारित हैं वे उसमें हैं और वह वैष्णवागम के रहस्यों को गुप्त रखेगा—

'शोधितायैकरूपाय रहस्याम्नायगोपिने। (अहि.सं. 20/12)

1. शूद्रः सूश्रूषयां तेषां भगवत्कर्म साधनात्।
अराग रोषलोभः सब्दनैर्याति हरेः पदम् ।। (अहि. सं)

(7) *न्यास – विधान और दीक्षा —

दीक्ष्य को अन्य तांत्रिकों की भांति प्रथमतः 'अङ्गन्यास' करना पड़ता है और इस न्यास-क्रिया में **'मातृका'** एवं **मंत्रों का उच्चारण द्वारा** शिष्य के विभिन्न **अंगों** पर स्वर-व्यंजनों तथा देवताओं **की प्रतिष्ठा** की जाती है। फिर उसे **'सुदर्शन मंत्र'** दिया जाता है। नियम यह है कि (1) **'दीक्षार्थी'** सर्वप्रथम अपने शरीर में मातृकाओं के द्वारा देवी का न्यास करे। जिस मंत्र की दीक्षा देनी हो उस मंत्र के वर्ण से **'अङ्गन्यास'** एवं **'करन्यास'** कराया जाए। तीन रूप वाले मंत्र से तीन बार प्रकोष्ठ को शुद्ध करना चाहिए। दोनों हाथों के तलवे एवं उंगलियों का भी **'न्यास'** करना चाहिए। दोनों हाथों की मध्यमांगुलियों से दोनों हाथों के तलवे में आदि एवं अन्त में प्रणव लगाकर **'तारक'**

(ॐकार) 'तारिका' और लक्ष्मी (श्रीं) से न्यास करना चाहिए। फिर प्रणव को आदि में एवं अंत में लगाकर सोम (सकार) से अंगुष्ठ के मध्य में रहने वाले पर्व का न्यास करना चाहिए। इसी प्रकार बिन्दु-समन्वित 'प्राण' (हकार) वाले मंत्र से तर्जनी के पर्व का एवं तृतीयादि वर्णो का अन्य उंगलियों के पर्वों में न्यास करना चाहिए। लाङ्गल परमास्त्र से उंगलियों के ऊर्ध्व भाग में न्यास करना चाहिए।

***ऋष्यादि न्यास—**

अङ्गन्यास-कर के न्यास के बाद मंत्र के ऋषि से **शिर का न्यास**। मंत्र के छन्द से **मुख का न्यास** एवं मंत्र के देवता स्वरूप अनाद्यन्त नारायण के नाम से **हृदय का न्यास** करना चाहिए।

इसके अनन्तर जो **'सुदर्शन मंत्र'** दिया जाता है उस मंत्र के तीन ऋषि हैं—

(1) मंत्र के पर रूप के ऋषि = 'परमात्मा'
(2) मंत्र के सूक्ष्मरूप के ऋषि = 'संकर्षण'
(3) मंत्र के स्थूल रूप के ऋषि = 'अहिर्बुध्न्य' है। [1]

मंत्र की भांति **शरीर के भी तीन रूप हैं—**

क. **'स्थूल शरीर'** ख. **'पुर्यष्टक'** ग. **'आणव'**

न्यासोपरान्त शरीर के उक्त भेदत्रय की भावना करनी चाहिए। जो निम्नांकित हैं (1) **'पर'** (2) **'सूक्ष्म'** (3) **'स्थूल'**

1. **'स्थूल देह'**- अंग, प्रत्यंग एवं कोश वाला प्रत्यक्ष मांसल देह।
2. **'सूक्ष्म देह'**- अष्ट पुरियों से निर्मित सूक्ष्म देह।
3. **'परदेह'**- परमाणु निर्मित देह।

'अथर्वाङ्गिरस' की पांच शाखायें हैं उसमें यह दिव्य कृतान्त मंत्रराज (सुदर्शन) सार रूप से निहित है।

फिर चक्र के मध्य में स्थित अक्ष्म में (जो सोम-सूर्य एवं अग्न्यात्मक हैं) उसमें अपनी **आत्मा को स्नान करायें**। बिना वस्त्र के उसे वहां करें और **पूर्व शरीर का त्याग करें**।

---

(1) पराकारस्य मंत्रस्य परमात्मा ऋषि स्मृतः।
संकर्षणस्तु सूक्ष्मस्य स्थूलस्याहमृषिः स्मृतः।। (अहि.सं.(20/20)

इसके बाद 'पर' 'सूक्ष्म' एवं 'स्थूल' भाव में रहने वाले 'सनातन मंत्रराज' में उसी क्रम से अपनी आत्मा को प्रवेश कराकर हाथ एवं शरीर में पुनः न्यास करना चाहिए।

*शिष्य का गुरु द्वारा अवेक्षण—

अपने को मंत्रात्मक शरीर, मंत्रात्मा एवं मंत्र-सारथि के रूप में विष्णु-संकल्प से उत्पन्न 'सुदर्शन' रूप को धारण करके वह आचार्य अग्नि, सूर्य एवं सोमात्मक नेत्रों से शिष्य को देखे। (1)

*शरीर-दहन—

फिर स्थूल, सूक्ष्म एवं पर भाव से अपने में सुदर्शन बुद्धि करते हुए पूर्वोक्त क्रम से शिष्य की आत्मा को उसका पूर्व पापमय शरीर जलाकर परमात्मा में स्नान करके पूर्वोक्त सभी क्रम करे।

*नव्य शरीर-निर्माण—

मन से शिष्य की देह को उस-उस क्रम से जलाकर नवीन शरीर बनायें और उसके शरीर में पूर्वोक्त क्रम-योग से बुद्धि द्वारा 'मंत्र-न्यास' करे। (2)

ऐसा कर लेने पर शिष्य को अंग सहित अर्थ, ज्ञान एवं माहात्म्य सहित 'मंत्रराज' का उपदेश देना चाहिए। इस प्रकार 'मंत्रराज' को ग्रहण कर लेने पर उसके चित्त में स्वयं एक दैवी चमत्कार के समान प्रत्यय उत्पन्न हो जाएगा—

एवं गृहीतमात्रे तु मंत्रनाथे सनातने।
उत्पद्यते स्वयं चित्ते प्रत्ययो देवनिर्मितः।। (3)

*गुरु को सर्व समर्पण—

गुरु से मंत्र ग्रहण कर लेने पर शिष्य गुरु को अपनी आत्मा एवं सभी आत्मीय पदार्थों को निवेदित कर देना चाहिए।

'कृतार्थं मन्यमानः स्वं गुरवेऽथ निवेदयेत्।
आत्मानमथ चात्मीयं यत् किंचिदुत विद्यते।
एवं निवेद्य मन्वीत कृतार्थोऽहमिति स्वयम्।। (4)

---

(1) अहि.सं. (20/37-38) (2) अहि.सं. (20/40)
(3) अहि.सं. (20/41-42) (4) अहि.सं. (20/43-45)

इस प्रकार की बुद्धि से मंत्र-गृहीता शिष्य के हृदय में मंत्र स्वयं प्रकाश उत्पन्न करता है।

मंत्र-दीक्षा के विषय में अनेक आदर्श भी स्थापित हैं।

1. शिष्य मंत्र-ग्रहण करके लोक-कल्याण करे।
2. किसी क्षुद्र व्यक्ति के लिए या अपने हित के लिए या लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए इस मंत्र का प्रयोग न करे क्योंकि यह सब क्षुद्र कार्य हैं।[1]
3. त्रैलोक्य की रक्षा के लिए भूचक्र के कल्याण के लिए राष्ट्र, राजा या अनेक राज समूहों के कल्याण के लिए इसका प्रयोग करे। किसी के अभाव (विनाश) के लिए इसका अनुष्ठान कदापि न करें।

पर्वत, नदी-तीर, विष्णु मंदिर, आश्रय, सिद्धालय या ग्राम मन्दिर ***साधना के स्थान हैं।** एक लक्ष बार या अधिक बार जप करने से **'मंत्रनाथ'** प्रसन्न होते हैं–

पर्वत के ऊपर, नदी के तट पर, विष्णु मन्दिर में या ऋषियों के आश्रय में या कि किसी सिद्ध स्थान में या गोष्ठ में या अग्नि होम वाले घर में इससे अनुष्ठान करे। चन्द्रायण आदि तीन कृच्छ्र व्रतों से या 10 लाख गायत्री जप से या तीन ब्रह्म कूर्च से उत्पन्न स्नान से जैसा कि **'सात्वत शास्त्र'** में कहा गया है शुद्ध होकर एक दिन पर्यन्त विष्णु की प्रतिमा का आपादन्त दर्शन करें।[2]

***भोजन**– भिक्षा, हविष्यान्न, यावक, गोमूत्र में पकाए गए जव खाकर या दूध पीकर, या हविष्यान्न खाकर या जैसी शक्ति हो उसके अनुसार शरीर का निर्वाह करते हुए मंत्रज्ञ पुरुष इस मंत्र का छः लाख जप करे और साठ हजार मंत्र से हवन करे फिर उतने ही मंत्र से देवता का तर्पण कर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

इस दिशा में **'पुरश्चरण'** करणीय है जिसके अंग हैं–

(1)**'जप'** (2)**'हवन'** (3)**'तर्पण'** एवं (4)**'ब्राह्मण-भोजन'**[3]

---

(1) अहिर्बुध्न्य संहिता (2) अहिर्बुध्न्य संहिता (3) अहिर्बुध्न्य संहिता

***परशुरामकल्पसूत्रकार की दृष्टि–**

परशुराम ने दीक्षा के तीन भेद बताए हैं–

'दीक्षास्तिस्त्रः शाक्ती शाम्भवी मांत्री चेति।

(1) तत्र 'शाक्ती' शक्ति प्रवेशनात् (2) शांभवी चरणविन्यासात्।

(3) 'मान्त्री' मंत्रोपदिष्ट्या सर्वाश्च कुर्यात्। (प.दीक्षाविधि 32)

(1)'शाक्ती दीक्षा' (2)'शांभवी दीक्षा' (3)'मान्त्री दीक्षा।

(8) ***भाव तत्व–**

'भावस्तु मानसो धर्मः स हि शब्दः कथं भवेत्?
तस्माद्भावो न वक्तव्यो दिंमात्रं समुदाहतम्।
यथेक्षुगुड माधुर्य जिह्वया ज्ञायते सदा।
तथाभावो विभावश्च मनसा परिभाव्यते।। [1]
'भावहीनास्तु ये मन्त्राः शक्तिहीनास्तु कीलिताः।। [2]

अर्थात् 'भाव' मानस-धर्म है अतः शब्दवाच्य नहीं है। गुड़ की मिठास अनुभूति का विषय है। उसे जिह्वा रस के माध्यम से जान तो लेती है किन्तु शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर सकती। जो मंत्र भाव हीन होते हैं उन्हें शक्तिहीन एवं कीलित मंत्रों की भांति निष्फल मानना चाहिए। 'तच्चित्तत्व एवं तन्मयत्व' ही 'भाव' है। अतः कहा गया है कि– 'मच्चित्तो मन्मयो भूत्वा गुर्वादिष्टेन वर्त्मना' (ल.तं. 24/38)। इस भावपूर्ण मनःस्थिति को साधना में अत्यधिक महत्ता दी गई है।

***महाभाव और भाव–**

'महाभाव' तो भक्ति या मंत्र-योग की चरम भूमिस्वरूपा 'समाधि' की दशा है। किन्तु 'भाव' महाभाव की रश्मियां या अंग हैं। 'महाभाव' तो एकात्मक है किन्तु वही–'सख्य' 'दास्य' 'कान्ता भाव' (माधुर्य) 'वात्सल्य' आदि भावों के आधार पर नानारुपात्मक हो जाता है–

'एक एव महाभावो नानात्वं भजते यतः।
उपाधिभेदभावेन भावभेदो भविष्यति।

---

(1) कौलावली तंत्र (उल्लास 11) (2) नेत्र तंत्र (अष्टमोऽधिकार : 59)

आनन्दघन सन्दोह : प्रभुः प्रकृति रुपधृक/रसरूपः स एवात्मा स प्रभुः परमो महान।।

(9) ***लक्ष्मीनारायणात्मक सामरस्य**—'सामरस्य' ही साधना का उच्चतम सोपान है। 'लक्ष्मी तंत्र' में इसका प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि —

'साधकस्य ततः सम्यक् सद्विवेकिनि चेतसि।
लक्ष्मीनारायणाख्यं तत् सामरस्यं प्रकाशते।। (2)

यह 'सामरस्य' भी भाव की सिद्धावस्था में ही संभव है। अन्यथा नहीं। 'गौणी' या 'वैधी' भक्ति इसका स्पर्श नहीं कर सकती।

यह परमात्मारसरूप है। अतः उसके रसस्वरूप का साक्षात्कार ही यथार्थ 'भावतत्व' है। 'रसो वै सः'(श्रुति) के अनुरूप वैष्णवागम भी घोषित करता है कि—

'द्रवीभूतरसः कृष्णः प्रियाभावात्मकस्तुयः।।
(माहेश्वर तंत्र पटल 51)

(10) ***भावसोपानारूढ सन्तों की भावानुभूतियां**—

इसी भाव को अभिव्यञ्जित करते हुए **कबीर** ने कहा था—

'माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो दहुं दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।
माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि के मन का मनका फेर।

भावात्मात्मक सोपान पर अधिरूढ़ होकर किया गया जप जापक को जप्य ही बना देता है अतः कबीर अपनी भावात्मक अनुभूति को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि—

'तूँ तूँ करता तूँ भया मुझ में रही न हूं।
वारी तेरे नाम पर जित देखूं तित तूँ।।'

इसी भावात्मक सोपान पर आरुढ़ होकर जब तुलसीदास सियाराम को ढूँढते हैं तो उन्हें वह केवल मन्दिर में ही नहीं प्रत्युत् सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है और तब 'वह' कह उठते हैं—

'सिया राम मय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी।'

---

(2) ल.त.(24/41)

लेकिन इस भावात्मक सोपान पर पहुंचने के लिए कबीर को इस स्थिति से गुजरना पड़ा था–

'अंषडियां झाई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।

जीभडियां छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि।।

शेख करीद (15हवीं सदी) इसी भावात्मक स्थिति में कहते हैं कि अगर कोई मेरे इस शरीर को चीरे तो इसमें से रत्ती भर भी रक्त नहीं निकलेगा। जो शरीर रब के रंग में रंग गया उसमें फिर रक्त नहीं रहता–

'फ़रीदा रती रतु न निकलै जे तनु चीरै कोइ।

जो तन रते रब सिउ तिन तन रतु न होइ।।

यह भाव विदग्धता और भाव निमज्जता योगियों के लययोग की लयात्मक समाधि के समान है। भाव के बिना सारी साधना अधूरी है।

*कौलावलीतंत्रकार की दृष्टि –

'कौलावली तंत्र' मे कहा गया है कि–

'बहुजपात्तथा होमात् कायक्लेशात्तु विस्तरैः।

न भावेन विना चैव तंत्रमंत्राः फलप्रदाः।।

'भावत्रय'– तांत्रिकों ने भाव के तीन भेद माने।

***भावत्रय**

↓

(1)	(2)	(3)
'पशुभाव'	**'वीरभाव'**	**'दिव्यभाव'**

(11) *भावों में श्रेष्ठता का क्रम

↓

(1)	(2)	(3)
'पशुभाव' (प्रथम सोपान)	**'वीरभाव'** (द्वितीय सोपान)	**'दिव्यभाव'** (तृतीय सोपान)

***रुद्रयामलतंत्रकार की दृष्टि**–'रुद्रयामल' में कहा है कि

1. आदौ भावं पशोः कृत्वा पश्चात्कुर्यावश्यकम्।
2. वीरभावं महाभावं सर्वभावोत्तमोत्तमम्।।
3. तत्पश्चादति सुन्दरं दिव्य भावं महाकलम्।

*साधक और भाव

↓

1	2	3	4
तामसिक साधक (पशुभाव)	राजसिक साधक (वीर भाव)	सात्विक साधक (दिव्य भाव)	भावातीता वस्था

***रुद्रयामल तंत्र की दृष्टि**–

सर्वे च पशवः सन्ति तलवद्भूतले नराः।
तेषां ज्ञान-प्रकाशाय वीरभावः प्रकाशितः।
वीरभावं सदा प्राप्य क्रमेण देवता भवेत्।।

1. द्वैतभावात्मक = **'पशुभाव'** : तामसिकावस्था:
2. द्वैताद्वैतभावात्मक = **'वीरभाव'** : राजसिकावस्था:
3. अद्वैतभावावात्मक = **'दिव्यभाव'** : सात्विकावस्था:

भागवत धर्म के श्रवण या **लक्ष्मी की** महत्ता सुनने के उपरान्त साधक का साधनात्मक कर्तव्य यह होता है कि **उसकी मनः स्थिति लक्ष्मी नारायणकार** हो जाए। 'लक्ष्मी तंत्र के अन्त में (उसके अन्तिम अध्याय 57हवें अध्याय में) इसी मनः स्थिति को **लक्ष्य के रूप में स्वीकार** किया गया है।

*** मनःस्थिति लक्ष्मीनारायणकार हो जाए ***

अत्रि अनुसूया से कहते हैं कि–

'लक्ष्मीनारायणाकारा भवित्री ते मनःस्थितिः।। (1)

(आपकी मनः स्थिति लक्ष्मी नारायणाकारा हो जायेगी।) और 'आप सभी पातकों से मुक्त होकर भाव सागर से पार हो जायेंगे।(2)

....

(1) लक्ष्मी तंत्र (57/40) (2) ल.तं. (57/40)

साधना एवं पूजा के अन्य अङ्ग एवं वैष्णवागम

द्वादश अध्याय

वैष्णवतन्त्रोपदेष्टा

भगवान शिव

* द्वादश अध्याय *

साधना एवं पूजा के अन्य अङ्ग एवं वैष्णवागम

1. साधना का क्षेत्र
2. ध्यान तत्व
3. मुद्रा
4. न्यास -न्यासों के प्रकार
5. अक्षमालिका
6. जप - जप के अङ्ग-जप और मंत्र-चैतन्य
7. जप-सिद्धि में तारतम्य
8. अभिषेक -नैवेद्य
9 तर्पण-जप-होम (हवन)
10. श्रवण-कीर्तन-नृत्य-गायन एवं वैष्णवों का महत्व
11. शालग्राम -पादोदकपन का महत्व
12. एकादशी व्रत-विष्णु का महत्व
13. द्वादश शुद्धि

*'न्यास' –

एतन्महोपनिषदं देवानां गुह्यमुत्तमम्।
अभीष्टार्थ-प्रदं सद्यः सर्वपापप्रणाशनम्।
अवाच्यमेतत् सर्वस्मै नाभक्ताय कदाचन।
भक्तोऽसि में स्थिरश्चेति वक्ष्यामि हितकामया।

–अहिर्बुध्न्य संहिता (37/23-24)

यद्येन काम कामेन नासाद्यं साधनान्तरैः।
मुमुक्षुणां यत् सांख्येन योगेन न च भक्तिः।
प्राप्यते परमं धाम यतो नावर्तते पुनः।

तेन तेना प्यते ततन्यासे नैव महामुनेः।
परमात्मा च तेनैव साध्यते पुरुषोत्तमः।।

—अहिर्बुध्न्य संहिता (37/25-26)

*भगवन्नाम—

कलौ गंगा मुक्तिदात्री, कलौ गीता परागतिः।
नास्ति यज्ञादि कार्याणि, हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ विमुक्तये नृणां नास्त्येव गतिरन्यथा।।

—ना. पञ्चरात्र

*जप —

जपेल्लक्ष चतुष्कं तु जपान्ते होममाचरेत्।
वर्मणास्त्रेण दिग्बंध कृत्वा दुष्टनिबर्हणम्।
प्रारभेत जपं पश्चात् पयोऽन्नफलभुक सदा।।

—लक्ष्मी तंत्र (48/12)

(1) ***साधना का क्षेत्र—**

वैष्णवागम के औदार्य ने किसी भी साधक को किसी भी क्षेत्र में किसी भी भाव से किसी भी जाति में रहकर, जीवन की किसी भी अवस्था में किसी भी साधना मार्ग का अनुसरण करने का अधिकार दिया है।

***वैष्णवागम द्वारा साधना के स्वीकृत क्षेत्र एवं साधनाधिकार**

↓

1				2			
वर्णानुगत नियम (साधनाधिकार)				आश्रमानुगत नियम (साधनाधिकार)			
ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्रह्मचर्य	गार्हस्थ्य	वानप्रस्थ	सन्यास

3					
साधनापथगत नियम (साधनाधिकार) ↓					
1 कर्ममार्ग	2 ज्ञानमार्ग	3 उपासना मार्ग	4 भक्तिमार्ग	5 योगमार्ग	6 सर्वमार्ग-समन्वित मार्ग
			7 वेदमार्ग	8 भागवत मार्ग	9 वैदिक-भागवत मिश्रित मार्ग।

कर्ममार्ग ↓

1	2	3
तपस्या	देवोपासना	यज्ञ

(1) ***वैष्णवागम :** समस्त भारतीय साधनाओं का आदर्श प्रतीक ***वैष्णवागम की विशेषता** यह है कि इसने वैष्णवों की भांति मात्र **'भक्ति'** ही नहीं, ज्ञानमार्गियों की भांति केवल **'ज्ञान'** ही नहीं, योगमर्गियों की भांति केवल **'योग'** ही नहीं, कर्ममार्गियों की भांति केवल यज्ञादिक **'कर्म'** ही नहीं, वैदिक ऋषियों की भांति केवल देवस्तुति एवं देवोपासना ही नहीं **प्रत्युत सभी साधना-मार्गों को श्रेयस्कर मानते हुए उनके समन्वय का 'मध्यम मार्ग' स्वीकार किया।**

(2) ***वैष्णवागम की दूसरी विशेषता** यह भी है कि इसने योग, सांख्य, वेदान्त, पाशुपत दर्शन, भागवत धर्म आदि के सिद्धान्तों एवं साधना-पथों का सम्मान तो किया किन्तु सिद्धान्त एवं साधना (दर्शन शास्त्र) के क्षेत्र में मौलिक सिद्धान्तों एवं साधनाओं का भी सन्निवेश किया।

(3) ***वैष्णवागम की तृतीय विशेषता** यह है कि इसने शैवागम, शाक्तागम, बौद्धागम, जैनागम की भांति वेदों के विरुद्ध विष-वमन करके संकुचित सम्प्रदायवाद की स्थापना नहीं की प्रत्युत सभी साधना-मार्गों को हृदय से लगाकार और सारी साधना-पद्धतियों को समादृत करके साधना का एक नया मार्ग खोला जिसे आगे चलकर सैकड़ों वर्षों तक मध्ययुगीन भारतीय निर्गुणपंथी सन्तों ने अपना कर भारतीय-साधना एवं सिद्धान्त दोनों पक्षों को एक विराट स्वरूप देकर समग्र भारतीय चिन्तन को हस्तामलकवत प्रस्तुत करते हुए भारतीय एकता को संपुष्ट किया।

(2) *ध्यान तत्त्व—

वैष्णवागम में ध्यान का अत्यधिक महत्व स्वीकार किया गया है। श्री कृष्ण के ध्यान का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

'ध्यायन्ते सन्ततं सन्तो योगिनो वैष्णवाः तथा।
ज्योतिरभ्यन्तरे रुपमतुलं श्यामसुन्दरम्
ध्यायेत्तं परमं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्।
निरीहमतिनिर्लिप्तं निर्गुण प्रकृतेः परम्।। —ना. पञ्चरात्र

*ध्यान की परिभाषा—कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि—

इन्द्रियों के संताप के जितने कारण हो सकते हैं । मन के द्वारा ही उनका नियंत्रण होता है। इस प्रकार सब पर नियंत्रण करके हृदय में इष्ट देव का नित्य चिन्तन 'ध्यान' कहलाता है—
'यावदिन्द्रियसन्तापं मनसा सन्नियम्य च।
स्वान्तेनाभीष्टदेवस्य चिंतनं ध्यानमुच्यते।।' (1)

---

(1) कुलार्णव तंत्र (36)

(4) *ध्यान- चित्त की कर्मसंस्कारों से निवृत्ति-

'तत्र ध्यान जमनाशयम्।। (यो.सू. 4/6)

(5) *ध्यान- विषय-शून्यता-'ध्यानं निर्विषयं मनः।'

(3) *'मुद्रा'-

'मुद्रा' मांत्रिक एवं यौगिक दोनों साधनाओं में अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। 'मुदं राति ददाति इति मुद्रा।'

***आचार्य जयरथ की दृष्टि**- आचार्य जयरथ 'मुद्रा' की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ऐसा योगी जो कुल (शरीर) में अवस्थित तो दृष्टिगत होता है किन्तु 'शैवसमावेश' के परामृत से जिसका अस्तित्व आप्लावित है एवं चिदैकात्म्य की दृढ़ता से जो देहभाव विस्मृत कर चुका हो उसकी उठने-बैठने की निखिल व प्रक्रिया ही 'मुद्रा' बन जाती है। वस्तुतः हाथ आदि अंगों से बनायी जाने वाली नियत आकृतियां ही मुद्रा नहीं हैं-(1)

'नादो मन्त्रः स्थितिर्मुद्रा ...।' कथन से भी इसी तथ्य की परिपुष्टि होती है कि किसी प्रकार की स्वयंभू एवं स्वाभाविक स्थिति की आख्या ही 'मुद्रा' है। कृत्रिम अङ्ग विन्यास से निर्मित कोई भावशून्य-अनुभाव या शरीराकृति मुद्रा नहीं है।

(4) आचार्य अभिनवगुप्तपाद की दृष्टि- आचार्य अभिनव गुप्त की भी यही दृष्टि है कि -

'कुले योगिन उद्रिक्तभरैवीय परासवात्।

घूर्णितस्य स्थितिर्दे हे मुद्रा या काचिदेव सा।। (2)

'वैष्णवागम' एवं अन्य समस्त तांत्रिक साधनाओं में मुद्राओं का अत्यन्त महत्व बताया गया है। योगशास्त्र एवं नृत्यशास्त्र तथा अभिनय आदि में भी मुद्राओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।(3)

---

(1) आचार्य श्री जयरथ : तंत्रालोक-टीका-'विवेक' में कहा गया है कि-'कुले शरीरे सत्यपि। प्राप्तपरमेश्वरैकात्म्यस्य योगिनः। अतएव तत्रैव दाढर्यादिस्मृतदेहभावस्य, या काचन उत्थितत्वादिरूपा, देहे स्थितिः। सैव चिच्छक्ति प्रकृतिरूपा वास्तवी मुद्रां न तु नियतकरादिनिर्वर्त्यसंनिवेशादिरूपा इत्यर्थः।।

(2) श्री तन्त्रा लोक (आह्निक चतुर्थ/200)

(3) लक्ष्मी तंत्र (34/1) में कहा गया है कि इसके ज्ञान से महीयसी मंत्रसिद्धि प्राप्त होती है- 'मुद्राकोश प्रवक्ष्यामि मंत्रकोशस्य वासव।

येन विज्ञातमात्रेण मन्त्र सिदिद्धिर्महीयसी। (लक्ष्मी तंत्र)'

मुद्रा— 'कुलार्णवतन्त्र' में कहा गया है—

'मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च।
तस्मान्मुद्रा इति ख्याता दर्शिता व्याःकुलेश्वरि।

(देवों प्रसन्ता देने एवं मन को द्रवित करने के कारण इसे मुद्रा कहा जाता है)

'लक्ष्मी तंत्र' में अनेक मुद्राओं का उल्लेख किया गया है और साधना में उसके आत्मीयकरण को अनिवार्य कहा गया है। **प्रमुख मुद्रायें** निम्नांकित हैं—

(1)महाश्रीमुद्रा (2)शक्तिमुद्रा (3)योनिमुद्रा (4)लक्ष्मी मुद्रा (5)कीर्तिमुद्रा (6)जया मुद्रा (7)माया मुद्रा (8)हृदय मुद्रा (9)शिरोमुद्रा (10)शिख मुद्रा (11)कवच मुद्रा (12)नेत्र मुद्रा (13)अस्त्र मुद्रा (14)उपाङ्ग मुद्रा (15)कौसतुममुद्रा (16)वनमाला मुद्रा (17)पद्ममुद्रा (18)पाश मुद्रा (19)कूर्म मुद्रा (20)अनन्त मुद्रा (21)पृथिवी मुद्रा (22)क्षीरार्णव मुद्रा (23)धर्मादिमुद्रा (24)धामत्र मुद्रा (25)चिद्मासन मुद्रा (26)क्षेत्रेशादि मुद्रा (27)श्री बीजमुद्रा (28)जय मुद्रा (29)विजय मुद्रा (30)यामुन मुद्रा (31)शंखनिधि मुद्रा (32)पद्मनिधि मुद्रा (33)गणेश मुद्रा (34)वागीश्वरी मुद्रा (35)गुरुमुद्रा (36)पितृगणों की मुद्रा (37)सिद्ध मुद्रा (38)वर एवं अभय मुद्रा (39)विष्वक्सेन मुद्रा (40)आवाहन मुद्रा (41)विसर्जन मुद्रा(42)कामधेनु मुद्रा ।

* **मुद्राओं का प्रयोग —भगवती कहती हैं कि मुद्राओं का प्रयोग दो प्रकार का होता है।**

1. **प्रथम प्रकार**– प्रथम प्रकार अध्यात्मसंविदाकार है– और
2. **द्वितीय प्रकार**– द्वितीय प्रकार वाक्कर्म एवं चित्तोत्पन्न होता है[1]

***मुद्रासाधन के फल** –

भगवती कहती हैं कि जो विधान का ज्ञाता साधक विधिवत

---

(1) द्विप्रकारं तु मुद्राणां प्रयोगं विद्धि वासव।
अध्यात्मं संविदाकारं बाह्यं वाक्कर्म चित्तणम्।। (ल.तं.(34/90)

मुद्रा-बंधन प्रदर्शन करता है उससे **सभी प्रसन्न रहते हैं** और उसे सिद्धियां प्राप्त होती हैं। [2]

परा, त्रिलोकजननी की '**महायोनिमुद्रा**' अत्यन्त शक्तिशाली है। इसके निम्नांकित प्रभाव हैं–

1. सर्ववशीकरण 2. क्षण मात्र में क्षोभोत्पत्ति
3. समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति
4. निष्काम में भी कामोत्पत्ति। [3]

(6) *न्यास–'नीयते सम्यगनेनेति न्यासः।।'

*कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि–

(1) न्यास से उपार्जित चित्त का अंगों में विनिवेश करने के कारण एवं (2) सब प्रकार से रक्षा करने के कारण इस क्रिया को '**न्यास**' कहते हैं।

न्यासोपार्जित चित्तानामङ्गेषु विनिवेशनात्।
सर्वरक्षाकरादेवि 'न्यास' इत्यभिधीयते।। [1]

***न्यास आवश्यक क्यों है? 'कुलार्णवतंत्र'** (15/47) में कहा गया है कि जो मूढात्मा न्यासों को बिना किए हुए ही मंत्र का जप करते है वे उसी प्रकार सारे विघ्नों से संक्षुब्ध रहते हैं यथा व्याघ्रों को हिरणों के सुकुमार बच्चे–

'अकृत्वा न्यासजालं यो मूढात्मा प्रजपेन्मनुम्।
बाध्यते सर्वविघ्नैश्च व्याघ्रैर्मृगशिशुर्यथा।। [2]

न्यास, कवच, मंत्रों के छन्द, ऋषि, उच्चारण के साथ मंत्र का जप करने वाले साधक को देखकर विघ्न उसी प्रकार भाग जाते हैं यथा सिंह को देखकर हाथी–

'यो न्यास कवचच्छन्दो मंत्रं जपति तं प्रिये।
विघ्ना दृष्ट्वा पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः।। [3]

---

(2) अनेन विधिना मुद्रां यो बहनाति विधनवित्।
तेनेदं मुद्रितं सर्वं पुनर्भवसिद्धये।। (ल.तं.34/91)

(3) क्षुभ्यन्त्यमदनास्ताश्च साकामायास्तु का कथा।।
(कामशून्य व्यक्तियों में भी कामोत्पत्ति)

(1)कु.तं. (56) (2) कु.तं. (15/47) (3) कु.तं. (15/46)

*न्यास की महिमा (वैष्णवागम की दृष्टि)

न्यास करने के निम्नांकित फल एवं प्रभाव होते हैं—

*1. मंत्रधारी भगवती से परिपूर्ण हो जाता है—
'एवं नासि कृते मन्त्री साक्षालक्ष्मीमयोभवेत्।। (35/76)

*2. ध्यानोत्पन्न बल का आश्रय लेकर साधक सभी अधिकारों भागी हो जाता है—
'सर्वाधिकारभागी स्यादाश्रित्य ध्यानजं बलम्।। (77)

*3. न्यास करने वाले ध्यानी में समस्त सिद्धियों का आविर्भाव हो जाता है—
ध्यायिनः सर्व सिद्धीनामा विर्भावश्च जायते।। (77)

*4. न्यासी दुष्टों के मध्य भी निर्भय रहता है—
न्यस्ताङ्गो निर्भयस्तिष्ठेद्देशे दुष्टसमाकुले।। (78)

*5. न्यासी अपमृत्युओं एवं औपसर्गिकों पर भी विजय पा लेता है।
'विजयेतापमृत्युंश्च सर्वांश्चैवोपसर्गिकान्।।'

*6. 'मंत्रधारी को यथाविधि ध्यान करके चित्त में भगवती का 'मंत्रमयी परमेश्वरी' के रूप में ध्यान करना चाहिए।

*7. 'मैं ही विष्णु और मैं ही सनातनी लक्ष्मी हूं'—इस प्रकार की भावना से युक्त योगी संसार में कभी जन्म नहीं लेता—
अहं स भगवान् विष्णु रहं लक्ष्मीः सनातनी।
इत्येवभाववान योगी भूयो नैव प्रजायते।। (1)

*न्यासों के प्रकार

*न्यासों के तो अनगिनत प्रकार हैं।

1. 'लक्ष्मी तंत्र' (वैष्णवागम) में कर न्यास, अङ्गन्यास, हस्त न्यास, विग्रह न्यास, षडङ्गन्यास आदि का वर्णन किया गया है।

---

(1) ल.तं. (अ. 35/78-80)

2. 'नारद पञ्चरात्र' में 'तत्व न्यास' मूर्ति 'पञ्जर न्यास' संहृति न्यास, सृष्टि क्रम न्यास, स्थिति न्यास, षडङ्गन्यास, सायक न्यास, मंत्रवर्ण न्यास आदि का वर्णन किया गया है।

3. 'अहिर्बुध्न्य संहिता' (वैष्णवागम) में—बीजाक्षरन्यास, मूबीजाक्षर न्यास, प्रणव न्यास, सुदर्शन नरसिंहमंत्र न्यास, वायु मण्डल विन्यास आदि का उल्लेख किया गया है।

*'न्यास' की आवश्यकता एवं उपयोगिता—

शंकरारण्य मुनि 'श्री विद्यारत्नसूत्र' (गौड़पाद-प्रणीत) की व्याख्या करते हुए 'दीपिका' में कहते हैं कि—

'अङ्गन्यास से शरीर की अशुद्धि दूर होना साधना की प्रथम आवश्यकता है अतः इसे नित्यप्रति करना चाहिए।'

'अङ्गन्यासेन परिशुद्ध दूरीकृत दुरिस्यादावश्यकत्वादतो नित्य मेवाऽवश्यं न्यासः कर्त्तव्यः।।

'लक्ष्मी रत्नकोश' में भी कहा गया है कि शा. अशुद्धि दूर करने के लिए न्यास करना आवश्यक है—

'त्वङ्गमज्जारक्त संयुक्तं शरीरम पवित्रकम्।
न्यासेनानेन शुद्धयर्थ मजस्त्रं न्यासमाचरेत्।।

लक्ष्मीरत्नकोशकार कहते हैं कि —

शरीर की सारी धातुएं-त्वक्, मज्जा, रक्त आदि सभी अशुद्ध हैं। अतः शरीर अशुद्ध है। न्यास से शरीर शुद्ध हो जाता है इसलिए न्यास अवश्य करना चाहिए-

'त्वङ्गमज्जारक्त संयुक्तं शरीमपवित्रकम्
न्यासेनानेन शुद्धयर्थ मजस्त्रं न्यासमाचरेत।।

(7) *अक्षमाला - कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि—

अक्षमाला को 'अक्षमाला' क्यों कहते हैं? इसे 'अक्षमाला' इसलिए कहते हैं क्योंकि

1. अक्षमाला अनन्तफल प्रदान करती है।
2. अशेष कल्मषों को क्षपित करती है तथा
3. माता की भाँति लाभ प्रदान करती है उसे इसी लिए **'अक्षमाला'** कहते हैं–

'अनन्तफलदानाच्च क्षपिताशेषकल्मषम्।
मातृकात्मतया लाभकरणादक्षमालिका।। [1]

*'अक्षमाला' का अर्थ–

'अ' से 'क्ष' तक के **समस्त वर्णों** का प्रत्याहार 'अक्ष' कहलाता है। अक्ष वर्णों का प्रयोग किए जाने के कारण इसे **'अक्षमाला'** कहा जाता है। अनुलोम-विलोम भाव से अक्ष वर्णों की गणना मंत्र से जानकर लोग मंत्र-संख्या का पता लगाते हैं–

'आदि क्षान्ताक्षवर्णत्वादक्षमालेति कीर्तिता।
अनुलोमविलोमाभ्यां गणयेन्मंत्रवित्तमः।। (15/49)

मंत्र-संख्या की गणना हेतु प्रयुक्त साधन और उनके फल
मंत्र संख्या का पता लगाने हेतु–

1. उंगलियों का प्रयोग करने पर - एक अंक का लाभ होता है।
2. रेखाओं का प्रयोग करने पर - दस गुना लाभ होता है।
3. मणियों का प्रयोग करने पर - करोड़ गुना लाभ होता है।
4. माणिक्य का प्रयोग करने पर - अनन्त गुना लाभ होता है।

एकैकमंगुलीभिः स्याद्रेखाभिर्दशधा फलम्।
मणिभिः शत साहस्त्रं माणिक्योऽनन्तमुच्यते।। [2]

---

(1) कुलार्णव तंत्र (58) (2) कुलार्णव तंत्र (15/50)

*जपार्थ प्रयुक्त माला-संख्या एवं अंगुष्ठ-अंगुली प्रयोग—

↓

30 मणि का प्रयोग	26 बार मनकों के सहारे से किया गया जप→	25 माला जप→	15 माला जप→	50 माला प्रतिदिन जप→
धन प्राप्ति	पुष्टि-प्राप्ति	मोक्षाप्ति	अभिचार	सारी सिद्धियों की प्राप्ति
'अंगुष्ठों' का सहारा लेकर किया गया जप	'तर्जनी' का सहारा लेकर किया गया जप→	'मध्यमा' का सहारा लेकर निष्पादित जप→	'अनामिका' का सहारा लेकर किया गया जप→	'कनिष्ठा उंगली' का सहारा लेकर किया गया जप→
		धन प्राप्ति	शान्तिकर्म में साफल्य	स्तंभन आकर्षण (1)

*अक्षमाला का स्तवन : अक्षमाला से जप करने के पूर्व उसकी स्तुति भी करनी चाहिए जो इस प्रकार है

'ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामिद्दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्धयर्थं प्रसीद मम सिद्धये।
ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि
साधय-साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

इस मंत्र को पढ़कर देवी के वामहस्त में जप को निवेदित करना चाहिए—

'गुह्यातिगुह्य गोप्त्री त्वं गृहाणस्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्व प्रसान्महेश्‍वरि।।

*भगवान का अर्चन—

श्री कृष्ण का इस प्रकार ध्यान करते हुए मन्त्री (साधक) को

(1)कुलार्णव तंत्र (उल्लास 15/52)

पहले अंगपूजा, आवरण पूजा और फिर उनकी महिषियों के साथ द्वितीयावरण पूजा करनी चाहिए फिर उसके बाद तृतीयावरण की पूजा करनी चाहिए—

'एवं ध्यात्वाऽर्चयेन्मन्त्री स्यादङ्गैः प्रथमाऽऽवृत्तिः।
द्वितीया महिषीभिस्तु तृतीयायां समर्चयेत्।।' [2]

*भगवान को (भोजन करने के पूर्व) भोग लगाने का विधान—

यदि कोई श्री कृष्ण भगवान को बिना भोग लगाये स्वयं खाता है, तो विद्वज्जन उसके अन्न को 'विष्ठा' के समान तथा जल को 'मूत्र' के समान कहते हैं। सुअर, म्लेच्छ, चाण्डालो में भी अधम लोग अपना भक्ष्य खाते हैं किन्तु जो ब्राह्मण नित्य अभक्ष्य का भोजन करता है वह उनसे भी पतित हैं। [3]

'ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च सन्ततं कृष्ण सेवनम्।
नित्यं ते भुञ्जते सन्तस्त न्नैवेद्यं पादकोकम्।
न दत्वा हरये यस्तु यदि भुक्ते द्विजाधमः।
अन्नं विष्णसमं मूत्र समं तोयं विदुर्बधा।

(8) *'जप' के अवयव (भास्कर राय मखिन के अनुसार)

↓

1	2	3	4	5	6
मंत्रोच्चारण (वर्णोच्चारण)	अवस्थायें	6 शून्य	7 विषुव	9 चक्र	16 प्रकार से मंत्रार्थ चिन्तन

योगशास्त्र जप के विषय में यह सिद्धान्त स्थापित करता है कि—
'तज्जपस्तादर्थ भावनम्।।

सारांश— यह है कि जिस देवता के मंत्र का जप किया जाए उसके स्वरूप का ध्यान भी किया जाए।

---

(2) ना.पं. (3/11/22) (3) ना.पं. (1/2/43)

* जप के अङ्ग *

↓

1	2
(देवता के नाम का उच्चारण) देवता के मंत्र का जप (जप्य मंत्र का उच्चारण)	(देवता के स्वरूप का ध्यान) जप्य का भावनः अर्थभावना। जप से संबद्ध (देवता का ध्यान)

'लक्ष्मी तंत्र' (14/21) जो साधक तारिका के अग्निषोमात्मक मंत्र का जप करता है वह वाच्य वाचक नामक रूप को अतिक्रान्त करके मोहरूप यामिनी को पार करके **'लक्ष्मीमयी तारिका'** के स्वरूप का हो जाता है।(1)

***मंत्र-चैतन्य की आवश्यकता**— जिन मंत्रों के बीज सोते रहते हैं या प्रसुप्त हैं वे कोई फल प्रदान नहीं करते।

'सुप्त बीजाश्च ये मन्त्रा न दास्यन्ति फलं प्रिये।।

किन्तु-

'मंत्राश्चैतन्य-सहिताः सर्वसिद्धिकराः स्मृताः।।' (15/60)

* 'जप' और मंत्र चैतन्य' —

चैतन्ययुक्त मंत्रोच्चार का प्रभाव प्रामाणिक है। एक बार के उच्चारण से ही उक्त लक्षण अभिव्यक्त होते हैं। जहां इस प्रकार सद्यः प्रत्यय परिलक्षित होता है वहां यह मान लिया जाना चाहिए कि गुरु-परम्परा का क्रमागत प्रभाव यहां विद्यमान है-

'सकृदुच्चरितेऽप्येवं मंत्रे चैतन्यसंयुक्ते।
दृश्यन्ते प्रत्यया यत्र पारम्पर्य तदुच्यते।। (15/64)

चैतन्य से रहित मंत्र केवल **'वर्ण'** होते हैं। ऐसे मंत्र अरबों-खरबों जप के बाद भी फल प्रदान करने में असमर्थ होते हैं—

चैतन्यरहिता मंत्राः प्रोक्ता वर्णस्तु केवलम्।
फलं नैव प्रयच्छन्ति लक्ष कोटि जपादपि।। (कु.तं. 15/61)

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (अ. 57/21)

(9) *मंत्रार्थ, मंत्र-चैतन्य एवं योनिमुद्रा का महत्व

'कुलार्णवतंत्र' (15/59) में कहा गया है कि—

मंत्रार्थं मंत्र चैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।
शतकोटि-जपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते।। (2)

* जप के अवयव *

एवमवस्थाशून्य विषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थाश्च स्मरतोऽर्णोच्चारणं तु जपः।।

—वरिवस्यारहस्यम्

1. जप करने के पूर्व जप-संकल्प एवं मंत्र का निश्चय।
2. देश का स्मरण
3. स्थिर आसन-ग्रहण
4. जप संख्या की पूर्ति
5. जपे हुए मंत्र को आराध्य देव या आराध्य देवी के वाम हस्त में जल के साथ जपार्पण आवश्यक है—

'एतज्जपिष्यामीत्यादौ संकलय मंत्रवित्तमः
स्थिरासनो जपित्वाऽथ देव्यै सोदकमर्पयेत्।।' (1)

(10) *जप में मंत्रोच्चारण की प्रक्रिया

↓

1	2	3
जोर से बोलकर किया गया जप=	'उपांशु जप' = मध्यम	'मानस जप' = उत्तम
'अधम जप'	श्रेणी का जप	श्रेणी का जप

'उच्चैर्जपोऽधमः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमः स्मृतः।
उत्तमो मानसो देवि त्रिविधः कथितो जपः।।' (2)

---

(2) कुलार्णव तंत्र (उल्लास 15/59) (1) कु. तं. (15/53) (2) कु.तं. (15/54)

जप की व्यर्थता	अति शीघ्रतापूर्वक किया गया जप→	अत्यन्त देर तक खींचकर किया गया जप→	अक्षराक्षर जोड़ जोड़कर निष्पादित मंत्र जप→	कोई सिद्धि न देने वाला जप[3]
	व्याधिग्रस्तता	तप का क्षय	सिद्धि का बाधक	

क. मन से न किये गए स्तोत्र का फल→ (समस्त स्तोत्र-पाठ एवं मंत्र-जप व्यर्थ) [4]

ख. वाणी द्वारा बोल (अत्यल्प फल) बोलकर किया गया मंत्र जप →

*'लक्ष्मी तंत्र' में जप विषयक दृष्टि —

'लक्ष्मी तंत्र' (57/22) में कहा गया है कि निस्तरङ्ग महानन्द संवित् तारा महोदधि में शुद्ध होकर वह साधक सभी मंत्रों एवं उनके भाव तथा न्यास आदि से संयुक्त हो जाता है। नियम यह है कि वह शक्ति जैसी है योगी साधक उसी रूप से उसकी उपासना करके तथा उससे आप्यायित एवं स्वच्छ होकर मंत्र देवता को सामान्य या विशेष भाव से देखकर उनका चिन्तन करे। इस प्रकार युक्त होकर उस शास्त्रोक्त संस्थान-संस्कारशालिनी देवी का नित्य पूजन करके उसका जप करे। उसके सभी भावों से मंत्र देवता को भावित करे एवं सर्वदर्शी होकर जप करे। यही सर्वोत्तम जप है—

तैस्तैर्भावैः समेताश्च भावयन्मंत्रदेवताः।
जपेत् सर्वदर्शी यज्जपोऽयं परमः स्मृतः।। [5]

*जप-सिद्धि में तारतम्य

↓

सिद्ध-सिद्ध मंत्र का जप	सिद्ध मंत्र का जप	सिद्धसुसिद्ध मंत्र का जप	सिद्धारि मंत्र
मंत्र जप करने से तत्काल सिद्धि प्राप्त होती है	दुगुना संख्या में जप करने से सिद्धि प्राप्त होती है	आधी संख्या में जए करने से से सिद्धि प्राप्त	बंधु-बांधवों का विनाश [1]

(3) कु. तं. (15/55) (4) कु.तं. (15/56) (5)ल.तं. (57/25)
(1) कुलार्णवतंत्र (15/81-83)

1. 'अरिसिद्ध मंत्र' → पुत्र की मृत्यु।
2. 'अरि साध्य मंत्र' → पत्नी की मृत्यु।
3. 'अरि सुसिद्धमंत्र' → कुटुम्ब का नाश।
4. 'अरि-अरि मंत्र' → जप कर्ता की मृत्यु।

1	2	3
'सिद्धार्ण मंत्र'	'साध्य मंत्र'	'सुसिद्ध मंत्र'
=बान्धव हैं।	=सेवक बन जाते हैं और जपकर्ता की सेवा करते हैं।	=जप-कर्ता को पुष्टि प्राप्त होती है। [1]

(11) ***ॐकार का जप**—वैष्णवागम में ॐकार को लक्ष्मी का स्वरूप माना गया है। '**लक्ष्मीतंत्र**' में '**तारा**' '**तारिका**' एवं वेदान्त की भाँति ॐकार के जप का विधान है—

'नित्यं योगपरो भूत्वा सम्यग्ज्ञानसमाधिमान्
दशलक्षं जपेन्मौनी 'तारं' संसार तारकम्।। [2]

*जप एवं तत्सम्बद्ध अन्य आनुषंगिक कार्य

1. दशांश हवन (पत्रों, समिधाओं या गोघृत द्वारा हवन) 10 लाख का दशांश= 1 लाख हवन भी करना चाहिए। देवी ने उसका उल्लेख किया है।	'हवन' के बाद 'तर्पण' एवं ब्राह्मणभोजन का शास्त्रों में विधान है तथापि यहां भगवती लक्ष्मी ने—'तर्पण' एवं ब्राह्मण भोजन की उपेक्षा करते हुए मात्र प्रतिदिन 10 लाख जप करने की आज्ञा दी है— 'दशलक्षं जपेन्मौनी तारं संसारतारकम्।।' (1) जप्यमंत्र = ओंकार

2. **प्रतिदिन निष्पाद्य मंत्र की जप संख्या** = (ॐकार) 10 लाख
3. **शारीर स्थिति**—सम्यक् ज्ञान एवं समाधि से युक्त होकर
4. **वाक्शक्ति का उपयोग**—आन्तर जप। मौन व्रत।।
5. **जप का 1/10 हवन**—दशांश जुहुयात् पर्णैः समिद्भिः सर्पिषाऽथवा।

(1) कुलार्णवतंत्र (15/85-86) (2) लक्ष्मी तंत्र (24/39)

पुरश्चरण और वैष्णवागम-साधना–

वैष्णवागम में जप के साथ होम, तर्पण आदि का भी विधान किया गया है।

पुरश्चरण के पञ्चाङ्ग

↓

1	2	3	4	5
जप	होम	तर्पण	मार्जन	विप्रभोजन

'लक्ष्मी तंत्र' (24/35) में तांत्रिक पुरश्चरणविधान को स्वीकार किया गया है और कहा गया है कि–

लब्धानुज्ञस्ततः कुर्वन् पौरश्चरणिकं विधिम्।
महानदीतटं गत्वा सिद्धक्षायतनं तु वा।। (24/35)

अर्थात् शिष्य गुरु की आज्ञा लेकर प्राप्त मंत्र 'ॐ' के पुरश्चरण के लिए किसी महानदी के किनारे या सिद्धस्थल पर जाए।

'पुरश्चरण' क्या है?

जप-होमौ-तर्पणं-चामिषेको विप्रभोजनम्।
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते।।

(जप/होम/तर्पण/मार्जन/विप्रभोजन।)

इसके लिए योगी को आवागमन-शून्य पलाश के जंगल में समतल भूमि में रहकर, ब्रह्मचर्य पूर्वक एवं तीनों संध्याओं में स्नान करके तथा जितेन्द्रिय रहकर पुरश्चरणात्मक अनुष्ठान करना चाहिए। इस समय एक बार भोजन करना चाहिए। कुशासन पर बैठना चाहिए। काश या सन के कपड़े, काश की चटाई या काश पर शयन करना चाहिए। हाथ में पलाश का दण्ड धारण करना चाहिए। काले मृग के या चमड़े से बने वस्त्र पहनना चाहिए। साधक को भगवती में चित्त स्थिर करके एवं अपने को भगवती के समान समझकर गुरुपदिष्ट मार्ग का आचरण करना चाहिए।

नित्य याग-हवन करना चाहिए। 10 लाख प्रणव का (प्रतिदिन) मंत्र जपना चाहिए। जप मौन व्रत के साथ होना चाहिए।

अब जप का दशांश (पत्रं, समिधा या घृत) से हवन करना चाहिए इससे देवी प्रसन्न हो उठती हैं—

दशांशं जुहुयात् पर्णैः समिद्भिः सर्पिणापि वा।
प्रीता तस्य प्रकाशोऽहमहन्ता वैष्णवी परा।।
साधकस्य ततः सम्यक् सद्विवेकिन चेतसि।
लक्ष्मीनारायणरव्यं तत् सामरस्यं प्रकाशते। (1)

'जप' की प्रक्रिया —भगवती लक्ष्मी के जप करने की प्रक्रियान्तर्गत

1. स्थान-चयन 2. ब्रह्मचर्य 3. इन्द्रिय जप 4. महानदी या सिद्ध क्षेत्र का चयन 5. मौन व्रत 6. पुरश्चरण 7. पलाश के जंगल में स्थिति 8. एकान्त स्थान (आवागमन शून्य स्थल) 9. त्रिकाल स्नान 10. योग की समाधि आदि साधना का अभ्यास 11. कृष्णमृग के चर्म से निर्मित वस्त्र के धारण 12. कुशासन पर स्थिति 13. काश की चटाई पर शयन 14 एक समय भोजन एवं 15. प्रतिदिन 10 लाख ओंकार के जप करने के नियमों के साथ 16. 'मच्चित्तो मन्मयो भूत्वा गुर्वादिष्टेन वर्त्मना' —के भावात्मक पथ का भी अनुगमन करना चाहिए। (2)

*'नारद पञ्चरात्र' (5/4/22-23) में कहा गया है कि—

1. जब तक साधक का मन श्री हरि के मुस्कानों में लयीभूत नहीं हो जाता तब तक उसे 'कामबीज' का जप करना चाहिए।
2. उसके अनन्तर (कालान्तर में) यथासमय भक्तिपूर्वक उसे अष्टादशार्ण मन्त्र का जप करना चाहिए—

'यावन्मनो विलयमेति हरेरुदारे,
मन्दस्मिते जपतु तावदनङ्गबीजम्।।
अष्टादशार्णमथवापि दशार्णकं वा,
मंत्रं शनैरथ जपेत्समयेस्वनिष्ठः।। (3)

3. 'जप' श्री कृष्ण का ध्यान करते हुए करना चाहिए। चार लाख जप एवं चालीस हजार घृत से हवन करना चाहिए—

ध्यात्वैवं परमात्मानं विशत्यन्तं मनुं जपेत्।
चतुर्लक्षं हुनेदाध्यैश्चत्वारिंशत्सहस्त्रकम्।'

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (24/40-41)
(2) लक्ष्मी तंत्र (अ. 24) (3) नारद पञ्चरात्र (5/4/22)

(12) *'पूजा' और उसके प्रकार

'यावत् तत् परमं शान्तं न विजानन्ति सुन्दरि।
तावत् पूजा, जप, ध्यान, होम, लिङ्गार्चनादिकम्।
विदिते तु परे तत्वे सर्वाकारे निरामये।
क्व पूजा क्व जपो होमः क्व च लिङ्गपरिग्रहः।। ('प्रभाकौल')

* * * * *

न पूजा बाह्य पुष्पादिद्रव्यैर्या प्रथिताऽनिशम्।
स्वे महिम्न्यद्वये धम्नि सा पूजा या परा स्थितिः।।
('संकेत पद्धति')

(12) *'पूजा' के पांच प्रकार* (ना.पं. के आलोक के में)

↓

1	2	3	4	5
अभिगमन	उपादान	योग	स्वाध्याय	इज्या

(13) *अभिषेक* कुलार्णवतन्त्रकार की दृष्टि—

1. 'अभिषेक' के 'अ' के द्वारा अहंभाव का हरण
2. 'भि' के द्वारा भीति का निराकरण
3. 'षे' के द्वारा सेचन क्रिया होने
4. 'क' के द्वारा कम्म एवं आनन्द वृत्तियों द्वारा सुख पहुंचने के कारण अर्थात् चार अर्थों के क्रियान्वयन के कारण इस क्रिया का 'अभिषेक' कहते हैं।

'अहम्भाव हरादभीतिमथनात् सेचनादपि।
कम्मानन्दादिजननादभिषेक इति स्मृतः।। [1]

*वैष्णवागम में नैवेद्य का महत्व— वैष्णवागम में नैवेद्य-सेवन का अन्यतम महत्व बताया गया है। 'ना.पञ्च' (1/2/69-77) में कहा गया है कि एक महापातकी एवं महामूर्ख कान्यकुब्ज ब्राह्मण था जो कि स्वप्न में भी श्रीकृष्ण की पूजा नहीं करता था किन्तु एक बार उसने भगवान का नैवेद्य खा

---

(1) कुलार्णव तंत्र (17/52)

लिया। उसके पुत्र ने भी मार्ग में भुक्तावशेष नैवेद्य पृथ्वी पर गिरा देखकर उसे खा लिया। विप्र का जुष्ट उसकी पत्नी ने खा लिया। कालान्तर में उस ब्राह्मण-पुत्र को व्याघ्र खा गया। मृत्युपरान्त (नैवेद्य) के प्रताप से ब्राह्मण, ब्राह्मण पुत्र, ब्राह्मण-पत्नी एवं व्याघ्र सभी जीवनमुक्त हो गए।

(14) *नैवेद्य—'नारद पञ्चरात्र' (1/2/66) में नैवेद्य के विषय में एक आख्यान आता है कि—

पूर्व जन्म में भयानक दोषों या गुरु-दोष के कारण एक अत्यन्त तामसी ब्राह्मण त्रिगुणतीत श्री कृष्ण भगवान को नहीं जानता था। अज्ञान से, ज्ञान से, या पूर्व जन्म के सत्सङ्ग से उसने श्रीकृष्ण भगवान का नैवेद्य खा लिया। तब वह सभी पापों से रहित एवं मुक्त होकर दिव्य यान से गोलोक चला गया—

'स च मुक्तो भवेत् पुत्र मुच्यते सर्वपातकात्।
स याति दिव्ययानेन गोलोकं लोकमुत्तमम्।। (2)

'नैवेद्य' एवं 'प्रसाद' दोनों का अमित प्रभाव है।

(15) *'तर्पण'—(कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि)—

तत्वात्मक देव और समस्त परिवार से आवृत महादेव के अभिनव आनन्द को उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया को 'तर्पण' कहा जाता है।

'तत्वात्मकस्य देवस्य परिवारवृतस्य च।
नवानन्द प्रजनना 'तर्पणं' समुदाहृतम्।। (1)

'नारद पञ्चरात्र' (5/4:1/3) में कहा गया है कि जो भी भक्ति सहित श्री कृष्ण की **पूजा एवं मंत्र से होम** करता है वह सूर्य के समान द्युतिमान एवं देवों का भी पूज्य बन जाता है। जो प्रतिदिन **प्रात:काल श्वेतशर्करा और जल से श्री हरि का तर्पण** करता है वह इन्द्र के समान वैभव प्राप्त करके 'परमपद' प्राप्त करता है—

'सितशर्करोत्तरण्यः प्रतिपत्या तर्पयेद्दिनमुखे दिन शस्तम्।

(16)*जप-होम — मंत्रों में से किसी भी मंत्र को ग्रहण करके **'जप'-'होम'** करने से साधक सर्वथा शुद्ध और विमल बुद्धि होकर योगी हो

---

(2) नारद पञ्चरात्र (1/2/67)   (1) कुलार्णवतंत्र (उल्लास 17/72)

जाता है। वह मन को नियंत्रित करके और चित्त को आत्मध्यान में लगाकर **'ब्रह्मसायुज्य'** प्राप्त कर लेता है—

'अङ्गीकृत्यैक मेषां मनुमय जप होमार्चनाधैर्मनूना'

(17) ***'न्यास', 'जप', 'होम', 'पूजा', 'तर्पण', 'मंत्र-दीक्षा, और 'विनियोग'** को भी वैष्णवागम में सर्वत्र अङ्गीकृत किया गया है—

न्यास-जप-होम-पूजा-तर्पण-मंत्राभिषेक-विनियोगानाम्' [2]

इस प्रकार वैष्णवागम **वैधी-गौणी भक्ति के साथ कर्मकाण्ड के विधान को भी स्वीकार करता है।**

'तर्पण' का विधान इस प्रकार है। शर्करा-मिश्रित दुग्ध की भावना से जल के द्वारा हरि का तर्पण करके साधक को पुरुषोत्तम श्री कृष्ण का ध्यान करना और अर्थज्ञान पूर्वक मंत्र का 108 जप करना चाहिए—

तर्पयित्वा खण्ड-मिश्रदुग्धबुद्ध्वा जलैर्हरिम्।
जपेदष्ट शतं मन्त्री भावयन् पुरुषोत्तमम्।। [3]

(18) ***भगवन्नाम—** केवल हरि का नाम ही मनुष्यों की मुक्ति का साधन है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं है। कलियुग में **'गंगा'** ही मुक्ति दात्री है। **'गीता'** ही परम गति है। **'हरि'** का नाम मात्र ही मुक्ति का अन्यतम साधन है—

'कलौ गङ्गा' मुक्तिदात्री, कलौ 'गीता' परा गतिः।
नास्ति यज्ञादि कार्याणि हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ विमुक्तये नृणां नास्त्येव गतिरन्यथा।।

—(नारद पञ्चरात्रः 4/8/9)

(19)*श्रवण और कीर्तन—

दोनों हाथों की विशेष रूप से संशुद्धि करके हरि के नामों का एवं गुणों का संकीर्तन करना चाहिए-

'करयोः सर्व शुद्धिनामियं शुद्धिर्विशिष्यते।
तन्नाम कीर्तनं चैव गुणानामपि कीर्तनम्।। [1]

---

(2) ना.पं. (5/4/24) (3) नारद पञ्चरात्र (3/11/25)

(1) ना.पञ्चरात्र (4/11/3)

ऐसा इसलिए करना चाहिए क्योंकि–

'स्मरणं कीर्तनं विष्णोः कलौ मन्त्रजपादिषु।
दानं तु प्रीतये तस्य नान्यथा गतिरिष्यते।। (2)

(20) *नृत्य और गायन–

जो केशव के समक्ष श्री हरि के दिन नृत्य एवं गायन नहीं करता वह अग्नि में दग्ध होने या रसातल में गिरने जैसी गति प्राप्त करता है। (3)

(21) *वैष्णवों का महत्व–

यथा हरि–भक्ति से प्राप्त मोक्ष से उच्चतर कुछ नहीं है। उसी प्रकार वैष्णवों से अधिक भगवान को कोई प्रिय नहीं है। वे उनके प्राण हैं–

'हरिभक्तेः परात्रास्ति मोक्ष–श्रेणी नगेन्द्रजे।
वैष्णवेभ्यः परं नास्ति प्राणेभ्योऽपि प्रिया मम।।
वैष्णवेषु च सङ्गो में सदा भवतु सुन्दरि।
यस्य वंशे क्वचिद्दैवाल्वैष्णवो रागवर्जितः।
भवेत्तद्वंशके ये ये पूर्वेस्युः पितरस्त था।
निर्मलास्ते हि यान्ति निर्वाणतां हरेः।। (4)

वैष्णवों के दर्शनमात्र से पापी पापरहित और निर्मल हो जाते हैं–

बहुना किमिहोक्तेन वैष्णवानां तु दर्शनात्।
निर्मलाः पाप–रहिताः पापिनः स्युर्न संशयः।। (ना.पं.4/8/175)

*भक्त और वैष्णवों का महत्व–

वैष्णवागम में भगवान के भक्तों एवं वैष्णवों की जो महिमा स्वीकृत की गई है वह अन्यतमा है। ब्रह्म कहते हैं–

भक्त के चरण की धूल से पूरी पृथ्वी पवित्र हो जाती है। अतः श्री कृष्ण के सेवक या भक्त से श्रेष्ठतर कोई भी नहीं है–

'भक्तस्य पादरजसा सद्यः पूज्या वसुन्धरा ।
नहि पूतस्त्रिभुवने श्रीकृष्णोसेवकात् परः।।'
–(नारद पञ्चरात्र 1/2/23)

---

(2) ना.पं. (4/11/24) (3) ना.पं. (4/11/23) (4) ना.पं. (4/8/162-74)

'भक्त-प्राणो हि कृष्णश्च कृष्ण-प्राण हि वैष्णवा:।। —(ना.प.)

(22) *शालग्राम का महत्व—

वैष्णवागम में शालग्राम एवं तुलसी का अन्यतम महत्व बताया गया है। शालग्राम शिला के जल को मस्तक पर लगाकर न पीने या उसे फेंक देने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है।

(23) *पादोदकपान—

पादोदकपान न करने या उसके एक भी बिन्दु को गिराने से अष्टगुणित पाप लगता है और भगवान के पादोदकपान से करोड़ों जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है—

'विष्णो: पादोदकं पीतं कोटिजनमाघनाशनम्।।

इसे सिर पर धारण करने से अकाल मृत्यु एवं समस्त व्याधियों का क्षय हो जाता है। श्री हरि के चरण पर निवेदित तुलसीदल एवं नैवेद्य ग्रहण करने से हत्या, चोरी आदि पाप के फल नष्ट हो जाते हैं।

(24) *शालग्राम-पूजन—'नारद पञ्चरात्र' (1/2/24) में कहा गया है—

'शालग्रामशिला नक्रे करोति कृष्णपूजनम।'

(25) *तुलसी दल-सेवन—'नारद पञ्चरात्र' (1/2/21) में तुलसी दल को इस प्रकार महत्वाङ्कित किया गया है—

'पवित्रं भारतंवर्ष तीर्थं यत्तुलसीदलम्।। (1/2/24) में कहा गया है— 'तत्पादोदक, नैवेद्यं नित्यं भुक्ते च यः पुमान्।
स वैष्णवो महापूत स्तन्मन्त्रोपासकः शुचि:।।

श्री कृष्ण पादार्चन, भजन, ध्यान एवं कीर्तन—

तपः करोति श्री कृष्ण पादपद्मार्थभीप्सितम्।
परं श्री कृष्णभजनं ध्यानं तन्नामकीर्तनम्।
—नारद पञ्चरात्र (1/2/63)

(26) *नदियों की महत्ता— वैष्णवागम गंगा-यमुना आदि सात नदियों को अत्यन्त पवित्र मानता है अतः तत्सम्बद्ध मंत्र के पढ़ने से पाप क्षरण होने में विश्वास रखता है । वह तीर्थ मंत्र इस प्रकार है—

> **'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि ! सरस्वति !**
> **नर्मदे ! सिन्धु ! कावेरि ! जलेऽस्मिन सन्निधिं कुरु**
> **एष तीर्थमनुः प्रोक्तो दुरितौधविनाशनः।।**

—(नारद पञ्चरात्र 3/6/9-10)

(27) *वर्णाश्रम व्यवस्था में आस्था— वैष्णवागम वैदिक परम्परा का पथानुवर्तन करते हुए वर्ण-व्यवस्था एवं आश्रम-व्यवस्था को भी स्वीकार करता है। इस प्रकार—

> **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत बाहू राजन्यः कृतेः।।**

और **'पद्भ्यां शूद्रोऽजायत'** की श्रौत मान्यता की भी पुष्टि करता है।

(28) *एकादशी व्रत—

वैष्णव-परम्परा में एकादशी के दिन व्रत रखना आवश्यक ही नहीं **अनिवार्य है।** यदि कोई वैष्णव प्रमादवश **'एकादशी तिथि' को भोजन कर लेता है** तो उसकी **विष्णु-पूजा व्यर्थ हो जाती है** और वह **घोर नरक** में पड़ता है और वह **'पितृहत्या' 'ब्रह्महत्या'** और **'मातृगमन'** के भारी पापों का भागी होता है। अतः एकादशी को वैष्णव को कभी भोजन नहीं करना चाहिए।[1]

भगवान महादेव नारद से इसी प्रसंग में कहते हैं—

> **'वैष्णवो यदि भुञ्जीत एकादश्यां प्रमादतः।**
> **विष्णवार्चनं वृथा तस्य नरकं घोरमाप्नुयात्।।**
> **वरं पितृवधं ब्रह्मन्। मातृणां गमनं वरम्।**
> **एकादश्यां वैष्णवस्तु न भुञ्जीत कदाचन।।** [2]

अर्थात् यदि कोई वैष्णव एकादशी तिथि पर भोजन करता है तो उसकी विष्णु की पूजा निरर्थक हो जाती है और व प्रमादी घोर नरक में जाता है। भले ही पिता की हत्या करने या मातृगमन करने का कलंक लग जाए—वह क्षम्य है

---

(1) ना.पं. (5/9/1-21) (2) ना.पं. (5/9/19-21)

किन्तु एकादशी के दिन भोजन करने का कलंक नहीं लगना चाहिए। इस तिथि पर भोजन नहीं करना चाहिए।

(29) *भगवान विष्णु का महत्व— वैष्णवागम में यदि सर्वोपरि महत्व का निर्णय किया जाए तो, विष्णु से अधिक किसी भी अन्य देवता का उतना महत्व नहीं है। श्री कृष्ण भी तो श्री विष्णु के ही अवतार हैं। अतः उनका महत्व भी तत्वतः श्री विष्णु का ही महत्व है।

'नारद पान्चरात्र' (4/3) में विष्णु को ही 'परम सत्य', 'परम पद', 'परम ज्ञान', 'परम मंत्र', 'परम तप' आदि सब कुछ कह दिया गया है

'नास्ति विष्णोः परं सत्यं नास्ति विष्णोः परं पदम्।
नास्ति विष्णोः परं ज्ञानं, नास्ति मोक्षो ह्यवैष्णवः।।

नास्ति विष्णोः परो मंत्रोः नास्ति विष्णोः परं तपः।
नास्ति विष्णोः परं ध्यानं, नास्ति मंत्रो ह्यवैष्णवः ।।

(किन्तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं जपैर्बहुविस्तरैः।
वाजपेयसहस्त्रै : किं भक्तिर्यस्य जनार्दने।।)

सर्वतीर्थमयो विष्णुः, सर्वशास्त्रमय प्रभुः।
सर्वक्रतुमयो विष्णुः, सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।। (3)

(30) *'द्वादश शुद्धि' और अपराध—वैष्णवागम में साधना के क्षेत्र में एवं सामाजिक आचार के क्षेत्र में शुद्धियों का विधान किया गया है। इसमें (क) मन्दिर में प्रवेशार्थ निम्नाङ्कित द्वादश शुद्धियों का विधान किया गया है—

मन्दिर की प्रदक्षिणा, पाद शोधन, भगवत्पूजनार्थ पत्र-पुष्प चयन, हस्त-प्रक्षालय, हरि नाम का संकीर्तन, गुणों का कीर्तन श्रीकृष्ण के प्रति अपने वचनों को शुद्ध करना, भगवत्कथा-श्रवण, भगवान के उत्सव देखना, दोनों कानों एवं नेत्रों की शुद्धि, भगवान का पादोदक ग्रहण एवं निर्माल्य

(3) ना.पं. (4/3/ 199-203)

की माला-ग्रहण आदि क्रियाओं से अनेक **'अंगों की शुद्धि'** हो जाती है।

श्री हरि को प्रणाम करने से **'शिर की शुद्धि'**, गंध-पुष्प-निर्माल्य को सूंघने से या श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित पुष्पों, पत्रों आदि को सूंघने से **'घ्राणेन्द्रिय की शुद्धि'** हो जाती है।

ललाट पर गदा का चिह्न धारण करने एवं मूर्द्धा पर धनुष-बाण का चिह्न धारण करने से ललाट एवं मूर्द्धा की शुद्धि हो जाती है।

हृदय पर नन्दक (कृष्ण की तलवार) का चिह्न एवं दोनों भुजाओं पर शंख-चक्र का चिह्न धारण करने से भी **'शरीर पवित्र'** होता है।

कतिपय अन्य आचार के नियम—भगवान के मन्दिर में कभी किसी यान पर बैठकर या पैरों में जूता पहनकर नहीं जाना चाहिए। भगवान के उत्सव में मदिरापान नहीं करना चाहिए। भगवान को प्रणाम किए बिना उनके सामने खड़ा नहीं होना चाहिए। अशुद्ध वस्त्र पहनकर या जूठे मुंह भगवान की वन्दना नहीं करनी चाहिए। भगवान की प्रदक्षिणा एवं उन्हें प्रणाम दोनों हाथ जोड़कर करना चाहिए।

भगवान के सामने पांव नहीं फैलाना चाहिए और उनके सामने धोती आदि नहीं बांधनी चाहिए। उनके सामने लेटना, सोना, खाना, झूठ बोलना, जोर से बोलना, किसी के प्रति वैर दिखाना, रोना, किसी को डांटना, किसी के प्रति अनुग्रह करना, किसी नारी को अपमानित करने या कठोर वाक्य से उसे पीड़ा पहुंचाने पर निन्दा पर स्तुति करना, अश्लील भाषण करना, अधोवायु का स्खलन करना, भगवान को अनिवेदित वस्तु को खाना आत्मप्रशंसा करना, गुरु से अशिष्ट या अधिक बोलना आदि कार्य श्री विष्णु के प्रति किये गए 32 अपराध हैं।

....

त्रयोदश अध्याय

वैष्णवागम के योगशास्त्रोपदेष्टा भगवान विष्णु

त्रयोदश अध्याय

योग और योग-साधना

*योग का स्वरूप —'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।।

—योगसूत्रकार महर्षि पतञ्जलि

*योगभाष्यकार व्यास की योग विषयक दृष्टि—

'योगः' समाधिः। स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः।

1 क्षिप्त मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमयः।।

2. सर्वशब्दाग्रहणात्संप्रज्ञातोऽपि 'योग' इत्याख्यायते।।

3. चित्तं हि प्रख्या, प्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम।

क. प्रख्यारूपं हि चित्त सत्वं रजस्तमोभ्यां संसृष्टमैश्वर्य विषय प्रियं भवति।

ख. तदेव तमसाऽनुविद्धमधर्माज्ञानावैराग्या नैश्वर्योपगं भवति।

ग. तदेव प्रक्षीण मोहावरणं सर्वत—
प्रद्योतमानमनुविद्धं रजोमात्रया धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपगं भवति।

घ. तदेव रजोलेशमलापेतं स्वरूप प्रतिष्ठं सत्वपुरुषा न्यतारख्यातिमात्रं धर्ममेघ ध्यानोपगं भवति।
तत्परं प्रसंख्यानमित्याचक्षते ध्यायिनः।।

ङ. चिति शक्ति, सत्व शक्ति (बुद्धि) और योग—
चितिशक्तिरपरिणमिन्य प्रति संक्रमा दर्शिता विषया शुद्धा चानन्ता।
सत्वगुणात्मिका चेयमतो विपरीता 'विवेक ख्यातिरिति'।।

च. अतस्तस्यां विरक्तं चित्त तामपि ख्याति निरुणद्धि।
तदवस्थं चित्तं संस्कारोपगं भवति स 'निर्बीजः समाधिः'।
न तत्र किंचित्संप्रज्ञायत इत्यसंप्रज्ञातः।

छ. द्विविधः स योगश्चित्त वृत्तिनिरोध इति।।

*योग की पहचान— 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।।'

योगराहित्य की पहचान— 'वृत्तिसारूप्यमितरत्र।'

*तत्ववैशारदीकार वाचस्पतिमिश्र की दृष्टि—

*'भूमयोऽवस्था वक्ष्यमाणा—

'मधुमती-मधुप्रतीका-विशोका-संस्कार शेषास्ताश्चितस्य।
तासु सर्वासु विदितः सावभौमश्चित्त वृत्तिनिरोधलक्षणो योगः।।'

वाचस्पति मिश्र— तत्ववैशारदी

(1) * योग *

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।।'

-महर्षि पतञ्जलि (योगसूत्र)

(अहिर्बुध्न्य संहिता के आलोक में)

***योग का स्वरूप –'अहिर्बुध्न्य संहिता' में (31/15)**

'योग' को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि 'योग' जीवात्मा और परमात्मा का संयोग है। इस योग के आठ अङ्ग हैं जिनसे आत्मा का साक्षात्कार होता है–

संयोगो 'योग' इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।
अष्टाङ्ग एष कथितो येनात्मा दृश्यतां गतः।। (1)

***योग के लक्षण (तुलनात्मक दृष्टि)**

↓

1	2	3	4	5
जीवात्मा और परमात्मा का संयोग	अष्टाङ्ग -त्व	आत्म साक्षात्कार	'समाधि' 'योगः समाधि'	निरुध्यन्ते यस्मिन् प्रमाणादिवृत्तयो -ऽवस्था शेषेचित्तस्य सोऽवस्था विशेषो योगः।।
(वैष्णवागम की दृष्टि)	(योग सूत्रकार) की दृष्टि	('तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम) -योगसूत्र	-योग भाष्यकार की दृष्टि	

— तत्व वैशारदी (2)

अष्टाङ्गन्यस्य वक्ष्यामि पृथक् तानि निशामय।
यमश्च नियमश्चैव मासनं तदनन्तरम्।।
प्राणायामस्ततः प्रोक्तः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं तथा समाधिश्चाप्यङ्गान्येतानि नारद।। (31/16-17)

(1) 'यम'– 'यम' की परिभाषा इस प्रकार है–
'सत्यं, दया, धृतिः, शौचं, ब्रह्मचर्यं, क्षमार्जवम्।
मिताहार स्तथास्तेय महिंसेति 'यमा' दश।।

---

(1) अहिर्बुध्नय संहिता (31/15) (2) योगवर्तिकार विज्ञानभिक्षु की दृष्टि—वृत्तयस्तासा निरोधस्तासां लयारव्योऽधिकरणस्यै वावस्था विशेषः अभावस्यास्मन्मते अधिकरणावस्था विशेषरुपत्वात् स योग इत्यर्थः ।। —योगवर्तिक

*'यम'

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
सत्य	दया	धैर्य	शौच	ब्रह्मचर्य	क्षमा	आर्जवो	मिताहार	अस्तेय	अहिंसा

(2) *'नियम'—नियम की परिभाषा इस प्रकार है—

'सिद्धान्तश्रवणं दानं मतिरीश्वरपूजनम्।
सन्तोषस्तप आस्तिक्यं ह्रीर्जपश्च तथा व्रतम्।
एते तु 'नियमाः' प्रोक्ता दश योगस्य साधकाः।।

(10 नियम)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
सिद्धान्त	श्रवण	दान	ईश्वर पूजन	संतोष	तप	आस्तिक्य	ह्रीं	जप	व्रत

(3) *'आसन'—यह तृतीय योगाङ्ग है। मुख्य आसन 11 हैं—

'चक्र', 'पद्मासन', 'कूर्म', 'मायूर', 'कौक्कुट', 'वीरासन', 'स्वतिक', 'भद्र', 'सिंहासन', 'मुक्तासन', 'गोमुख'।।

वैष्णवागम योग को जीव का ब्रह्म के साथ योजन होना स्वीकार करता है— 'तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवो ब्रह्मणि योजनात्।।

—नारद पञ्चरात्र

(4) *प्राणायाम—

(2) नाड़ी-शोधन (नाड़ी-शुद्धि)—प्राणायाम की सिद्धि के लिए प्रथम कार्य है—'नाड़ी-शोधन' (नाड़ी-शुद्धि)—फिर देहाग्नि सहित देहस्य वायु के द्वारा 'प्राणायाम' करना चाहिए। 'प्राणायाम' का अभ्यास करने हेतु आवश्यक है

(1) 'नाड़ी शोधन' (2) 'देहाग्नि' (3) देहस्थ वायु का अभ्यास

प्राणायाम प्रसिद्ध्यर्थं नाड़ीशुद्धिमनन्तरम्।
देहस्थवायुभिः कुर्यात् साग्निभिश्च तपोधन।। [1]

(1) अहि.सं. (31/1-47)

***शरीर तत्व** —योग-साधना में शरीर का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसे ही ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना गया है क्योंकि—

'यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे।।

***शरीर का मान—**

सभी प्राणियों का शरीर (स्वस्थ रहने पर) अपनी अपनी उंगलियों के प्रमाणनुरूप होता है और पायु स्थान से दो अंगुल परे एवं मेढ्र स्थान से दो अंगुल नीचे शरीर का मध्यम भाग है।

चतुष्पादों का आग्नेयमण्डल 'चतुष्कोण', मनुष्यों का आग्नेयमण्डल त्रिकोण एवं पक्षियों का आग्नेमण्डल वृत्ताकार होता है।

***नाड़ी-कन्द—**

मेढ्र से 9 अंगुल ऊपर सभी नाड़ियों का **'कन्द'** है। इसकी उंचाई चार अंगुल है और लम्बाई भी चार अंगुल है। इसकी मोटाई भी चार अंगुल है। यह मेद, मांस, अस्थि एवं रक्त से परिपूर्ण है। इसका आकार अण्डे के समान है। उसी में 12 अरों वाली नाभि है। उसी में **'कुण्डली का निवास'** है—

'तत्रैव नाभिचक्रं तु द्वादशारं प्रतिष्ठितम्।
शरीरं ध्रियते येन यस्मिन् वसति कुण्डली।। (2)

चक्र के चारों ओर **'अष्टमुखी कुण्डली'** निवास करती है। यह **वैष्णवी कुण्डली अष्ट प्रकृति** वाले भोग (फन) से उस चक्र को घेर करके सुषुम्ना से जाने वाले **'ब्रह्मरंध्र'** को अपने मुख से आच्छादित करके स्थित है—

'अष्टप्रकृतिरूपेण भोगेनावेष्ट्य वैष्णवी।
ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्नायाः पिदधाति मुखेन वै।। (3)

***नाड़ी-मण्डल और उनकी शरीर में स्थिति—**

1. चक्र के मध्य में स्थित—**'अलम्बुसा'** एवं **'सुषुम्ना'**
2. सुषुम्ना एवं पूर्वजाले के मध्य अरों में—**'कुहू' नामक नाड़ी।**
3. उसके बाद वाले अरे में—**'यशस्विनी' एवं 'वारुणा' नाड़ी।**
4. सुषुम्ना एवं दक्षिणवर्ती अरे में—**'पिङ्गला' नाड़ी।**

---

(2) अहि. सं. (32/12) (3) नारद पञ्चरात्र (5/10:32)

5. उसके बाद वाले अरे में—'**पयस्विनी**' एवं '**पूषा**' नाड़ी।
6. सुषुम्ना तथा पश्चिमवर्ती अरे में—'**सरस्वती**' नाड़ी।
7. उसके अनन्तर दो अरों में—'**शंखिनी**' एवं 'गान्धारी' नाड़ी।
8. सुषुम्ना एवं उत्तर के अरे के मध्य में '**इड़ा**' नाड़ी।
9. उसके अनन्तर वाले अरे में—'**हस्तिजिह्वा**' एवं '**विश्वोदरा**'।
10. चक्र के द्वादशारों में दाहिने ये 12 नाड़ियां जो ब्रह्मदेव की कन्यायें कही जाती हैं—स्थित हैं।

***मुख्य नाड़ियां—** मुख्य नाड़ियां 14 हैं—'**इड़ा**', '**पिङ्गला**', '**सुषुम्ना**' '**सरस्वती**', '**कुहू**', '**पयस्विनी**', '**वरुणा**', '**यशस्विनी**', '**विश्वोदरा**', '**हस्तिजिह्वा**', '**गान्धारी**', '**शंखिनी**', '**अलम्बुसा**' एवं '**पूषा**'—ये ही प्रधान 14 नाड़ियां हैं।

***शरीर में समस्त नाड़ियों की संख्या** — 72 हजार नाड़ियां।

मुख्यतमा नाड़ियां —3 '**इड़ा**', '**पिङ्गला**', '**सुषुम्ना**'।।

***सर्वप्रमुख नाड़ी** —मूर्धान्त पर्यन्त जाने वाली नाड़ी '**सुषुम्ना**' नाड़ी है।

***जीव का आवागमन** —यह जीव प्राण वायु पर सवार होकर इसी चक्र में सर्वदा घूमा करता है यथा मकड़ी अपने तन्तु-पञ्जर में परिभ्रमण करती रहती है।

***'सुषुम्ना' का परिचय** —तीनों नाड़ियों में प्रमुखतम नाड़ी '**सुषुम्ना**' है। '**सुषुम्ना**' **में पांच छिद्र हैं।** इनमें चार तो रक्त परिपूर्ण हैं। मध्य का छिद्र (ब्रह्मरंध्र) कुण्डली से आच्छादित है।

'**सुषुम्ना**' का पूर्व भाग ललाटान्त ऊंचा चला गया है। **पश्चिमी भाग कन्धे के अन्त तक चला गया है। बायां एवं दाहिना भाग** दोनों बगल से शिरपर्यन्त चला गया है।

***'अलम्बुसा नाड़ी'** — पैर के अन्त तक चली गई है।

***'कुहू' नाड़ी** — यह मेढ्रान्त एवं '**वरुणा**' शरीर में सर्वत्र प्रसृत है। '**यशस्विनी नाड़ी**' दाहिने पैर के अंगुष्ठपर्यन्त एवं '**पिङ्गला नाड़ी**' नासिका

के दाहिने भाग तक एवं 'पूषा' तथा 'पयस्विनी' दाहिनी आंख एवं दाहिने कान तक गई हैं और 'सरस्वती नाड़ी' जिह्वा के मूल भाग तक गई है।

1. 'शंखिनी' नाड़ी—बायें कान तक गई है।
2. 'गांधारी' नाड़ी—बायीं आंख तक गई है।
3. 'इड़ा' नाड़ी—बायीं नासिका तक गई है।
4. 'हस्तिजिह्वा' नाड़ी—बायें पैर के अंगुष्ठ तक गई है।
5. 'विश्वोदरा' नाड़ी—उदर तक गई है।
6. 'इड़ा' नाड़ी में—चन्द्रमा का निवास है।
7. 'पिङ्गला' नाड़ी में—सूर्य का निवास है।

ये ही दोनों काल का निर्माण करते हैं —

द्वावेव कुरुतः कालं और ब्रह्म नाड़िका उसका भोग करती है।

(3) *शरीर–चक्र* का वायुमण्डल 10 वायु हैं—

↓

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
'प्राण'	'अपान'	'समान'	'उदान'	'व्यान'	'नाग'	'कूर्म'	'कृकर'	'देवदत्त'	'धनञ्जय'

***प्राणापान वायु —**

'अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणापाने तथाऽपरे प्राणापानगती रुद्ध्वा **प्राणायामपरायणाः** —श्रीमद्भगवद्गीता।

1. **'प्राणवायु'** नाभि चक्र में रहता है। वह मुख, दोनों नासिका एवं हृदय में प्रकाशित होता है।

2. **'अपानवायु'** गुदा, मेढ्र, दोनों उरु एवं दोनों जानुओं में रहता है। यह उदर, वृष्ण, कठि, जंघा एवं नाभि–स्थान में दीपक की भांति प्रकाश फैलाता रहता है। **'अपान वायु'** गुदा एवं उदराग्नि में रहता हुआ मध्य में प्रकाश फैलाता है।

3. **'व्यान वायु'** श्रोत्र एवं आंख के मध्य; **'कृकर'** दोनों गुल्फ, घ्राण, गला तथा स्फिग (नितम्ब) देश में निवास करता है।

4. समस्त पैर एवं हाथ की सन्धियों में 'उदान' रहता है।

5. 'समान वायु' सारे शरीर को व्याप्त करके स्थित रहता है।

*प्राण के कर्म दो हैं—

1. 'निश्वास' (श्वास का नीचे आना)
2. उच्छ्वास (श्वास का उपर जाना)

'व्यान' के कार्य —1. ग्रहण एवं 2. त्याग।
'उदान वायु' से शरीर चलता है, ऊपर उठता है।
'समान वायु' का कार्य— शरीर पोषणदि कार्य।
उद्‌गार का कार्य— डकार निकालना। यह 'नाग कर्म' है।

1 'कूर्म' का कार्य—निमीलन का कार्य।
2 'कृकर' का कार्य — छींकने का कार्य।
3 'देवदत्त' का कार्य — जंभाई का कार्य
4 'धनञ्जय' का कार्य —शोकादि कार्य।।

(4) ***नाड़ी-शोधन की विधि** —समस्त नाड़ियों का शोधन आवश्यक है—'ततश्च सर्व नाडीनां कुर्याच्छो धनमात्मवान्।।

1. षोडशमात्रात्मक बाह्यवायु के द्वारा 'इड़ा नाड़ी' को परिपूर्ण करना चाहिए। फिर 32 मात्रात्मक काल पर्यन्त उस वायु को उदर में धारण करना चाहिए और अग्निमण्डल में 'रं' इस 'अग्निबीज' का स्मरण करना चाहिए। फिर नासाग्र भाग में पीयूषवर्षी चन्द्रमा विम्ब का स्मरण कर 'वं' इस बीज का जप करते हुए उस वायु का त्याग कर देना चाहिए।

'पिंङ्गला' से वायु को पूर्ण करके उतने ही काल तक उसे भीतर रखकर इड़ा नाड़ी द्वारा उसका त्याग कर देना चाहिए।

सन्ध्याकालत्रय में 3-3 प्राणायाम सहित चित्त को समाहित करना चाहिए। नियमानुसार ऐसा करने से पुरुष की समस्त नाड़ियां तीन मास में शुद्ध हो जाती हैं—

'मासत्रयेण शुद्धाः स्युरिति योग विदो विदुः।।

***वायु पर विज**— नाड़ी-शोधन के बाद वायु पर विजय करना चाहिए।[1]

***क्रिया**— शरीर में जहां-जहां वायु का निवास कहा गया है। **'वहां पर अग्नि बीज (रं) का स्मरण'** करते हुए मन को स्थिर रखने का प्रयास करना चाहिए। इसके अनन्तर समस्त पापों का नाश करने वाले प्राणायान का अभ्यास करना चाहिए।

*'षडक्षर मंत्र' का न्यास करने के स्थान

↓

शिखास्थान में	नाभिचक्र में	हत्पद्म में	कण्ठकूप में	भ्रुवद्वय में	जिह्वा मूल में

इन स्थानों में **षडक्षर मंत्र की स्थिति** का चिन्तन करना चाहिए—

'मनोः षडक्षराण्येषु क्रमेणैव विचिन्तयेत्।।' (32/50)

***प्राणायाम के प्रकार** [2]

1. **षोडशमात्रात्मक काल पर्यन्त** वायु को **'इड़ा'** से परिपूर्ण करके हृदय के मध्य में परमात्मा का स्मरण करना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार इस **'सुदर्शनमंत्र'** का जप करना चाहिए।
2. तदनन्तर **'षोडशमात्रात्मक काल पर्यन्त पिङ्गला नाड़ी'** द्वारा उसे छोड़ना चाहिए। इसी प्रकार **'पिङ्गला'** से वायु पूर्ण करके इड़ा नाड़ी से उसका त्याग करे।
3. वायु को पूर्ण करने (पूरक करने) के समय एवं उसे रोकते समय (**'कुंभक'** के समय) एवं **'रेचन'** करते समय **प्रणव** का जप करना चाहिए। **प्राणायाम की यह क्रिया 500 या 1400 गायत्री जप करने के पश्चात्** उक्त विधि से **निष्पादित करनी चाहिए।** इस प्रकार **प्रतिदिन 16-16 प्राणायाम करना चाहिए।** ऐसा करने से एक मास के भीतर महापातकी लोगों को भी पवित्र कर देता है।

---

(1) अहि.सं. (32) (2) अहि. सं. (32)

प्रत्याहार

(5) ***पञ्चाङ्गात्मक 'प्रत्याहार'**(1)— शब्द, स्पर्श, रुप, रस एवं गन्ध में संलग्न मन को विषयों में दोषदर्शन करते हुए उन्हें अपने से दूर हटाना चाहिए। इस प्रकार विषयों से मन को पृथक हटाकर साधक विष्णु का ध्यान करते हुए समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है।

(6) **'धारणा' का स्वरूप** —मन से विषयों के प्रति वैराग्य का अभ्यास करना चाहिए। परमात्मा में गुणों की स्थिति का चिन्तन करते रहना चाहिए। फिर मन को परमात्मा में लगाना चाहिए। मन की यही प्रक्रिया 'धारणा' है—

विषयेषु च वैराग्यादभ्यासाद् गुणदर्शनात्।
परमात्मनि संरोधो मनसो धारणा स्मृता।

***'प्रत्याहार'** —

'प्रत्याहारं ततः कुर्यादंगैः पञ्चभिरन्वितम्।
स्वभावेनेन्द्रियार्थेषु प्रवत्तं मानसं बुधैः।
तद्दोषदर्शनात्तेभ्यः समाहृत्य बलेन तु।
निवेशनं भवगति 'प्रत्याहार' इत समृतः।। (2)

(7) **'ध्यान' का स्वरूप**— धारणा द्वारा चक्ररुपी जनार्दन का स्मरण करते हुए प्रथम.तः उसमें अपना मन लगाकर नियमपूर्वक ध्यान करना चाहिए—

तदेवं धृतचित्तस्तु चक्ररूपं जनार्दनम्।
ध्यायीत नियतस्तस्मिन् युञ्जानः प्रथमं मनः।।

(8) ***परमात्म-ध्यान की विधि**— ध्यान-स्थान-रमणीय एवं पवित्र स्थान। एकान्त स्थान। जलाशय के निकट। वन। चित्त-प्रसन्न, शान्त, सर्वगुण युक्त।

***आसन** —

सम 'आसन' पर बैठकर। 'मेरूदण्ड'— सीधा। भक्ति-'मन' विष्णु भक्ति में निलीन करके। नेत्रस्थिति = नासाग्रभाग।

---

(1) अहि. सं. (2) अहि. सं.

प्राणायामोत्थित साग्निवायु से जो सुषुम्ना के मध्य भाग से प्रवाहित हो रहा हो उससे कुण्डलिनी का मुख-भेदन करके उसे फैला दे। अग्नि-ज्वाला से संदीप्त हृत्पद्मरुपी व्योम में अद्युत आकृति का ध्यान करना चाहिए।

(9) ***ध्यानालम्बन का स्वरूप**— पीली-पीली आंखों वाले, पीले-पीले केशों वाले, ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी, भयङ्कर मुख वाले, दीर्घ दांतों वाले, भृकुटी की कुटिलता से अति भयङ्कर दृश्यमान, बिजली के समान पीले-पीले उपर उठे हुए केशों वाले, मणि कुण्डल धारण किए हुए तथा अष्टभुजी, रक्त वर्ण वंशी, शंख-चक्र-गदा-पद्म-शार्ङ्ग-मुशल आदि श्रेष्ठ आयुधों से युक्त एवं अभयदाता विष्णु का ध्यान करना चाहिए।

(10) ***समाधि का स्वरूप**—उक्त प्रकार से निरन्तर स्मरण से उत्कर्ष प्रदान करने वाला एवं अर्थमात्रावमास ध्यान ही **'समाधि'** है—

तदेवं स्मृतिसन्तान जानितोत्कर्षणं क्रमात्।
अर्थमात्रावमासं तु समाधिं योगिनो विदुः।।

(11) ***समाधिनिष्ठ पुरुष का वैलक्षण्य**—

*समाधिस्थ पुरुष के लक्षण

↓

1	2	3	4
समाधि में तन्मय	अणिमादि-युक्त	चक्र के प्रभावों का भोक्ता	अभिलषित सारे पदार्थों को बिना प्रयास के प्राप्त कर लेने वाला। पदार्थों की स्वयमेव उपस्थिति

*समाधिस्थ पुरुष के लक्षण

5	6	7
सिद्धो विद्याधरो एवं यक्षों के वशीभूत होने की सिद्धि-प्राप्ति	सारे देवता, ऋषि गंधर्व, अप्सरा समूह, पिशाच, राक्षस सर्प के वशीभूत होने की सिद्धि-प्राप्ति	संसार को जन्मदान विनाश की शक्ति-प्राप्ति
8	9	10
सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता	सबके अनुरूप एवं वशीभूत हो जाने की स्थिति	पूर्ण का महत्व

1. सिद्धाः विद्याधरा यक्षाः कैंकर्यं तस्य कुर्वते।
देवाश्च ऋषयः सर्वे गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
तदाज्ञाकारिणः सर्वे पिशाचोरगराक्षसाः।। [1]

2. निखिलभुवनजन्मस्थेमभंगैक हेतु।
र्भवति सकलवेत्ता सर्वदृक सर्वशक्तिः।। [2]

(12) *योग और योग-साधना

(योग और योग-साधना का संक्षिप्त स्वरूप)

योग की औपनिषदिक परिभाषा—

***'योग' का अर्थ—**

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।। [1]

***महर्षि पतञ्जलि की दृष्टि—**

***योग की योगसूत्रीय परिभाषा—**

'योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः।। (1/2)'

---

(1) अहि. सं. (22) (2) तत्रैव (अ. 32) (1) कठोपनिषद् (2/3/11)

*महाभाष्यकार व्यास की दृष्टि—

'योगः समाधिः। स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः। —व्यास भाष्य

*भोजराज की दृष्टि—

योगशास्त्र के स्वतंत्र चिन्तक राजमार्तण्डकार भोजराज ने 'राजमार्तण्ड' में योग को परिभाषित करते हुए कहा है कि—

'चित्तस्य निर्मलसत्वपरिणामरूपस्य या वृत्तयोऽङ्गाङ्गिभाव परिणामरूपास्तासां निरोधो बहिर्मुखतया परिणति विच्छेदादन्तर्मुखतया प्रतिलोम परिणामेन स्वकारणे लयो 'योग' इत्याख्यायते।। (2)

*नागो जी भट्ट की दृष्टि—

'चित्तस्यान्तःकरणस्य वक्ष्यमाणा या वृत्तयस्तासां निरोधो निवर्तनं योग इत्यर्थः (3)

*मणिप्रभाकार की दृष्टि—

'चित्तस्य रजस्तमोवृत्तीनां निरोधो योगः' अतः संप्रज्ञाते सात्विकवृत्तिसत्वेऽपि गुणादि मत्वादालस्य दैन्यादिमत्वाच्च सत्वरजस्तमोगुणकं भवति।।' —रामानन्दयतिः 'मणिप्रभा'

*भावागणेश की दृष्टि—

'चित्तस्यान्तःकरणस्य वक्ष्यमाणा या वृत्तयः तासां निरोधो निवर्तनं योगः इत्यर्थः अत्र सर्ववृत्तिनिरोध-वचनेन संप्रज्ञातयोगोऽपि संगृहीतः। योगो हि द्विविधः-सम्प्रज्ञातोऽसम्प्रज्ञातश्च अत्राद्योध्येया तिरिक्तवृत्ति निरोधः। अन्त्यस्तु सर्ववृत्ति-निरोधः। वृत्तिनिरोधस्तूभय साधारण इति।।' (4)

*विष्णु पुराणोत्त्क दृष्टि—

'विष्णु पुराण' में कहा गया है कि —

'आत्म प्रयत्न-सापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो 'योग' इत्यभिधीयते।।'

मन की विशिष्ट गति का ब्रह्म के साथ संयोग = 'योग'

—विष्णु पुराणे (6/7/31)

---

(2) राजमार्तण्ड (3) योगसूत्र वृत्ति (4) योगसूत्र प्रदीप (5)

*वैष्णवागम की दृष्टि—

'मंत्राभ्यासेन योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पते।
न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हरिः।
द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम्।
तमः परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते।।
एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः।।
—नारद पञ्चरात्र (रात्र 5/अ. 10/41-42)

संयोगो 'योग' इत्युक्तो जीवात्म परमात्मनोः।
अष्टाङ्ग एष कथितो येनात्मा दृश्यतां गतः। (अहि.सं. 31/15)

*आयुर्वेद शास्त्र और योग शास्त्रः चतुर्व्यूहात्मक उभयसाम्य—

चिकित्सा/चिकित्सा→ शास्त्र	रोग	रोग निदान	आरोग्य	भैषज्य	विज्ञान
योगशास्त्र→	'हेय'	हेय हेतु	हान	हानोपाय	भिक्षु की दृष्टि

—(योगसार संग्रह)

(13) *'योग' की नाथपंथीय दृष्टि— प्राण एवं 'अपान' राजरेतस, सूर्यचन्द्र, जीव-परमात्मा एवं द्वन्द्वों का संयोग ही 'योग' है—

'योऽपान प्राणयोर्योगः स्वरजोरेतसोस्तथा।।
सूर्याच्चन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।
एवं तु द्वन्द्व जालस्य संयोगो 'योग' उच्यते।
'ज्ञान निष्ठो विरक्तोऽपि धर्मणेऽपि जितेन्द्रियः।
विना योगेन देवोऽपि न मुक्तिं लभते प्रिये।। (योग बीज)

*'योग' —(1) सूर्य-चन्द्र का योग (2) प्राणापनान का योग
(3) रज-रेतस का योग (4) द्वन्द्व-जाल का योग
(5) जीव परमात्मा का योग

***'योग' का महत्व—**

'योगेन चित्तस्य, पदेन वाचां, मलं शरीरम्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं पाञ्जलिरानतोऽस्म'

***'मोक्ष'**— न्याय दर्शन के अनुसार

1. दु:ख जन्म प्रवृति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभावादप वर्गः।। (न्याय सूत्रः 1/1/2)
2. **प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्ताऽवयव तर्क निर्णयवाद-जल्प-वितण्डा हेत्वाभास छल जाति निग्रहस्थानानां तत्व ज्ञानान्नि श्रेयसाधिगमः।।** (न्याय सूत्र 1/1)।

***'योग' की दृष्टि**— द्रष्टा का स्वस्वरूपाक स्थान ही **'मोक्ष'** है।

***दु:ख**— 'संयोग' ही संसार के समस्त दु:खों का कारण है।

***योग का लक्ष्य —**

सारे भारतीय दर्शनों का मूल उद्देश्य— दुखों का आत्यन्तिक क्षय।
बुद्ध का आर्य सत्य : 'दु:खं अरियसच्चं'

1. 'अविद्या'→ पुरुष-प्रकृति का 'संयोग'→ हेय (दु:ख)।
2. पुरुष प्रकृति के 'संयोग' का कारण:
   'अविद्या'→ पुरुष प्रकृति-संयोग →'दुखाविर्भाव'
3. पुरुष-प्रकृति-संयोग का अन्त = दुखों का अन्त।
   'संयोग' (द्रष्टा-दृश्य या पुरुष-प्रकृति का संयोग) ही **'हेय'** (दुख) का कारण है। 'संयोग' का कारण— **'अविद्या'** है— 'तस्य हेतुरविद्या' (2/24)

1. **'हेय'** — हेयं दु:खमनागतम् (2/16) : दुख
2. **'हेयहेतु'** — द्रष्टृ-दृश्ययोः संयोगो-हेय-हेतुः 2/17) : दुख का कारण
3. **'हान'** — तदभावात् संयोगाभावं हानं तद्दृशेः कैवल्यम।। (2/25)
4. **'हानोपाय'** — विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।। (2/26)

* राजमार्तण्डकार (भोजदेव) की दृष्टि—

1. 'योगो युक्तिः समाधनम्'— भोजवृत्ति।
2. व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं फलम्— भोजवृत्ति।
3. शास्त्राभिधेययोः प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव लक्षणः सम्बंधः।
4. अभिधेयस्य योगस्य तत्फलस्य च कैवल्येन साध्य-साधनभावः। योगः कैवल्याख्यं फल मुत्पादयति। -भो.वृत्ति

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' सूत्र में कथित चित्तवृत्तियां

↓

1	2	3	4	5	
प्रमाण	विपर्यय	विकल्प	निद्रा	स्मृति	चित्तवृत्तियाँ

('प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रास्मृतयः।। 1/6)

(14) * वृत्तियों के भेद : 1. 'क्लिष्ट' 2. 'अक्लिष्ट' *

* चित्त-की-पञ्च भूमियाँ—

योग-प्रतियोगी चित्तभूमियाँ			(योगोपयोगी भूमियाँ)	
1	2	3	4	5
क्षिप्त भूमि	मूढ़ भूमि	विक्षिप्त भूमि	एकाग्र भूमि	निरुद्ध भूमि

'तस्य चित्तस्य पञ्च भूमयः— क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति।।'

—योगसूत्रवृत्ति।। (मणिप्रभा)।।

'सात्विक वृत्ति विशेषः संप्रज्ञात योगो भवति' —मणिप्रभाकार।

यस्त्वेकाग्रे चेतसि समुद्‌भूतमर्थं प्रद्योतयति, क्षिणोति च क्लेशान् कर्मबन्धनानि श्लथयति, निरोधाभिमुखं करोति सं 'संप्रज्ञातो योग' इत्याख्यायत।।' — भाष्यकार व्यास की दृष्टि

15. *योग के भेद—1. 'संप्रज्ञात योग' 2. 'असंप्रज्ञात योग'

* योग-साधना में अनुपयोगी चित्त-भूमियाँ—

1. क्षिप्त 2. मूढ़ 3. विक्षिप्त ।

*** योग का अन्तिम फल–**

(1) 'तदा: द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।' (1/2)

(2) पुरुषार्थ-शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप-प्रतिष्ठा वा चिति शक्तेरिति।। (योग सूत्रः कैवल्यपादः 4/34)

*** 'नाड़ी योग' और उपनिषद–'शतं चैका न हृदयस्य नाड्य।।**

*** 'नाड़ी-संख्या'–**

1. 72000 एवं 2. साढ़े तीन लाख नाड़ियों की संख्या का भी शास्त्रों में उल्लेख है।

स्तासां मूर्धानममि निःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति। (109 नाड़ियां)
विष्वड्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति।। —कठोपनिषद्

16) * योग के आठ अंग (पातञ्जल योग सूत्र)-

↓

1	2	3	4	5	6	7	8	
यम	नियम	आसन	प्राणायाम	प्रत्याहार	धारण	ध्यान	समाधि	ॐ (प्रणव)

योग के अन्य प्रतिपाद्य विषय : 'क्रियायोग'–

↓

1	2	3
तप	स्वाध्याय	ईश्वर प्रणिधान' – तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः।।

(17) *शरीर तत्व –

मानव शरीर भगवती की आत्मतृप्ति का साधन है।

'**योगशास्त्र**' में '**शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्**' को अत्यन्त महत्व देते हुए शरीर को अत्यन्त महत्व दिया गया है। ल.तं. भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि – '**मानव शरीर रूपी सागर में बहत्तर हजार नाड़ियां हैं। मैं 72 हजार नाड़ियों से युक्त देह रूपी सागर में प्राणों की प्रेरणा से रसों के**

द्वारा अपने को तृप्त करती हूँ।

'मैं सुषुम्ना मार्ग से साधकों द्वारा परभाव से नित्योपास्या हूँ। मैं निर्मलयोग-दर्पण में बिम्बवत रहा करती हूँ।' [1]

(18) *'लक्ष्मी' वैष्णवों का शरीर हैं *

भगवती कहती हैं कि—

'ईडिता च सदा देवैः शरीरं चास्मि वैष्णवागम्। (ल.तं. 4/53)

(19) *शरीर के प्रकार —मुख्यतः शरीर के दो भेद हैं—

1. 'स्थूल शरीर' और 2. 'सूक्ष्म शरीर'—

स्थूल सूक्ष्मात्मको देहः शुभाशुभफलप्रदः। (ल.तं. 41-17)

शरीर त्रिगुणान्वित और अशेष कालुष्यों का आश्रय है। सम्पात हवन कर्म से यह देह स्वयमेव सूक्ष्म हो जाता है।

'सम्पात होमकर्मान्ते देहं सूत्रमयं स्वयम्'।(17/18)

दीक्षा के पूर्व शरीर का शोधन, विमलीकरण एवं पवित्रीकरण आवश्यक होता है क्योंकि अशुद्ध शरीर दीक्षार्ह नहीं हुआ करता।

शक्ति अनेकरूपा भी हैं —

'परास्य शक्ति र्विविधैवश्रूयते'—'शक्ति' शरीर में भी स्थित है।

*** शरीर में शिव तत्व एवं शक्ति तत्व ***

त्वगसृङमांस मेदोऽस्थिधातवः शक्तिमूलकाः।
मज्जा शुक्रप्राण जीव धावतः शिवमूलकाः।
नवधातुरयं देहो नवयोनिसमुद्भवः।
दशमी धातुरे कैव परा शक्तिरितीरिते।। (कामिकागम)

(20) *नाड़ी-केन्द्र रूप शरीर—

शरीर में 72000 नाड़ियां हैं। भगवती लक्ष्मी शरीरस्थ सुषुम्णा नाड़ी के एवं अन्य नाड़ियों द्वारा रस ग्रहण करती हैं।

---

(1) द्विसप्तत्या सहस्त्रेण नाड़ीनां देहसागरम्
तर्पयामि रसैर्नित्यं प्राणानां प्रेरणावशात्।। (ल.तं. 31-59/105)
सौषुम्नेनाध्वना नित्यं परं भावमुपेयुषम्।
बिम्बभावमुपेताहं विमले योग दर्पणे।। (ल.तं./अ.51/106)

(21) *'अहिर्बुध्न्य संहिता' की दृष्टि – शरीर तत्व

शरीर

↓

1	2	3
'स्थूल देह'	'सूक्ष्म देह	'आणविक देह'

'स्थूल सूक्ष्म परत्वेन देहं विद्यात् ततस्त्रिधा।'

1. स्थूल देह = 'अङ्गप्रत्यङ्ग को शाटयं प्रत्यक्षं स्थूलमुच्यते।
2. सूक्ष्म देह = 'पुर्यष्टकं तु सूक्ष्माख्यं परमाणव उच्यते।।
3. परमाणुदेह = 'परमाणव उच्यते।। (अहि.सं. 20/31)

'परमाणु वाला शरीर परदेह' है। करोड़ो सूर्यों के समान ज्वालाओं के कोलाहल से पूर्णतः आकुलित त्रिविध **'मन्त्रराज'** में तीनों प्रकार के देह की भावना करनी चाहिए। (अहि. सं. 20/32)

फिर अपनी-अपनी आत्मा का ध्यान दिव्य तेजपूर्ण महान उज्ज्वल मन एवं हृदय में रहने वाले सभी ज्योतियों के पति नारायणमय स्वरूप में करना चाहिए। [1]

*शरीर का महत्व–

योगशास्त्र में शरीर को इतना महत्व दिया गया है कि इसे ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म रूप कह दिया गया है और कहा गया है कि–

1. ब्रह्माण्ड संज्ञिते देहे यथा देशे व्यवस्थितः।।
2. पारमेष्ठयमिदं गात्रं पञ्चभूत विनिर्गतम्।
   ब्रह्माण्ड संज्ञकं दुःख सुख भोगाय कल्पितम्।। (शि.सं.)
3. इसी कारण जो ब्रह्माण्ड में है वही देह में भी है–
   'देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्त द्वीप समन्वितः
   सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः।
   ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
   पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठ देवताः।। [2]

---

(1) अहि.सं.(20/31-33) (2) शिव संहिता (द्वि.पटल)

'शरीर' सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात-दोनों योग-साधनाओं का आधार हैं। **सम्प्रज्ञात योग के योगियों की चार भूमियां हैं।**

(22) *सम्प्रज्ञात योगियों का भूमि चतुष्टय

↓

1	2	3	4
'प्रथम कल्पिक'	'मधु भूमिक'	'प्रज्ञाज्योति'	'अतिक्रान्तभावनीय'

*योगाधिकारी - आरुरुक्ष युञ्जान

योग का अन्तिम लक्ष्य —'योग के द्वारा दुःखों का आत्यन्तिक लोप (निवृत्ति) ही योग का अन्तिम लक्ष्य है। इसे ही **'कैवल्य' 'द्रष्टा का स्वरूप में अवस्थान'** कहा गया है। [3]

*आसन

'अष्टाङ्ग योग' में आसन योग का तृतीय अङ्ग माना गया है—

'योग' अष्टांग साधना द्वारा गुणों का अपने कारणों में **'प्रतिप्रसव'**, **'चित्तशक्ति की स्वरूप-प्रतिष्ठा'** एवं **'द्रष्टा का स्वरूपावस्थान'** है।

***कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि—** इस क्रिया या आधार को **'आसन'** की **आख्या क्यों दी गई है? आसन का अर्थ -**

'कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि के अनुसार 'आसन' के निम्न लक्षणों के कारण ही इसे **'आसन'** कहते हैं।

1. यह आत्म-सिद्धि प्रदान करता है
2. यह समस्त रोगों का निवारण करता है।
3. **'नव निधियों'** एवं नयी-नयी सिद्धियों का साधन है। इसे **'आसन'** कहते हैं।

'आत्मसिद्धि प्रदानाच्च सर्वरोगनिवारणात्।
नवसिद्धिप्रदानाच्च आसनं कथितं प्रिये।। [1]

(वृत्ति-निरोध लक्षण है)

---

(3) 'तदा द्रष्टु : स्वरूपऽवस्थानम्।। (योगसूत्र)

(1) कुलार्णव तंत्र (62)

*वृत्ति-निरोध के साधन

↓

1	2	3	4
अभ्यास	वैराग्य	श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि एवं प्रज्ञा से सिद्धि प्राप्त कराने वाले साधन	ईश्वर प्रणिधानम्

(अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः' 1/12)

* 'पर वैराग्य' = पुरुष के ज्ञान से प्रकृति के गुणों में तृष्णा का सर्वथा अभाव।

* संप्रज्ञातयोग के भेद –

1. 'वितर्क' 2. 'विचार' 3. 'आनन्द' 4. 'अस्मिता'

'अन्य योग'– 'विराम प्रत्यय' के कारण चित्त के स्वरूप का संस्कार मात्र में अवशिष्ट रह जाना। (सू. 1/18) :

अन्य प्रकार के योग भेद–'भवप्रत्यय योग':

(1) विदेहों का योग (2) प्रकृतिलयों का योग।

*साधना के सोपान –यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

*योग-साधना के पूर्व चित्त-वृत्ति का स्वरूप = 'वृत्ति सारुप्य' (1/4)

'योग' आसन-प्राणायाम मात्र नहीं है। 'योग' है 'प्रकृति' एवं पुरुष' का सम्बंध-विच्छेद–

'पतञ्जलमुनेरुक्ति : काप्यपूर्वाजयत्सौ।

पुम्प्रकृतयोर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यथा।। (भोजदेव)

*योग की (अन्तिम समाधि) अवस्था : 'निर्बीज', 'असम्प्रज्ञाज समाधि': 'कैवल्यावस्था' : 'गुणों का अपने कारण में लय', 'चित्ति शक्ति की स्वरूप प्रतिष्ठा', 'पुरुषार्थ शून्य गुणों का प्रतिप्रसव'।

'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चिति शक्तेरिति' -यो.सू. (34)

***योग के विषय : हेय, हेय हेतु, हान एवं हानोपाय**

↓

'हेय'	'हेय हेतु'	'हान'	'हानोपाय'
दुःख	द्रष्टा-दृश्य संयोग	प्रकृति-पुरुष-सम्बंध का विच्छेद	विवेक ख्याति

***योग में प्रतिपाद्यतत्व : 26 तत्व**

↓

1	2	
योग के 24 तत्व	25हवां आत्मा	26हवां 'ईश्वर'

(23) *गुरु तत्व और उसका स्वरूप *

'गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।'
(गुरु= ब्रह्मा। गुरु= विष्णु। गुरु= महेश्वर। गुरु= पर ब्रह्म।)

* गुरु और शिव में अभेद*

*भगवान शिव कहते हैं—

1. शिवरूपं समास्थाय पूजां गृहणामि पार्वति।
2. गुरुरूपं समादाय भवपाशन्निकृन्तये।। (कु.तं.)

क. 'शिव'→ पूजा ग्रहण।
ख. 'गुरु'→ भवनिकृन्तन।।

*यथार्थ गुरु—

'यः प्रसन्नः क्षणार्द्धेन मोक्षलक्ष्मीं प्रयच्छति।
दुर्लभं तं विजानीयाद् गुरुं संसारतारकम्।।
'सेव्यास्ते गुरवः शिष्यैरन्ये त्याज्याः प्रतारकाः।।'
क्षुधितस्य यथा तृप्तिराहारादाशु जायते।
तथोपदेशमात्रेण ज्ञानदो दुर्लभो गुरुः।।

} दुर्लभ गुरु

* गुरुओं में उत्कृष्टता के उत्तरोत्तर सोपान*

गुरवो बहवः सन्ति दीपवच्च गृहे-गृहे।
दुर्लभोऽयं गुरुर्देवि सूर्यवत् सर्वदीपकः।।
गुरवो बहवः सन्ति वेदशास्त्रादिपारगाः।
दुर्लभोऽयं गुरुर्देवि! परतत्वार्थपारगः।।
गुरवो बहवः सन्ति आत्मनोऽन्यप्रदा भुवि।
दुर्लभोऽयं गुरुर्देवि! लोकेष्वात्मप्रकाशकः।। } दुर्लभ गुरु

भगवान शिव स्वयमेव कहते हैं कि—मेरे दो स्वरूप हैं—

1. शिव-'गुरु रूपं समादाय भवपाशान्निकृन्तये'

'पूर्वेषामपि गुरुः→ कालेनानवच्छेदात्।। | मोक्ष प्रदाता शिव (योगसूत्र) | गुरु रुप शिव (मोक्षदाता शिव)

2. शिव-'शिवरूपं समास्थाय→ पूजां गृहणामि पार्वति। | भक्तों की पूजा के गृहीता शिव | पूजा-गृहीता शिव

*गुरुरूप ईश्वर ='सर्वानुग्रहकर्तृत्त्वादीश्वरः करुणानिधिः।
आचार्य रूपमास्थाय दीक्षया मोक्षयेत् पशून्।।' (1)

*सदाशिव देव एवं श्री सद्गुरु में भेदाभाव—

सदाशिवस्य देवस्य श्री गुरोरपि पार्वति।
उभयोरन्तरं नास्ति यः करोति स पातकी।। (2)

*सच्चा गुरु सदाशिव ही है—

गुरुः सदाशिवः साक्षात् सत्यमेव न संशयः।
शिव एवं गुरु नोंचेद्भुक्तिं मुक्तिं ददाति कः?

***वैष्णवागम में गुरु का महत्त्व**—ना.पं. में कहा गया है कि गुरु संसार सागर की नाव के कर्णधार एवं पर ब्रह्म है—

'गुरुरेव परं ब्रह्म कर्णधार स्वरूपकः।। (1/2/47)

---

(1) कुलार्णव तंत्र (13/63 (2) कुलार्णवतंत्र 13/69)

*गुरु का अर्थ—

गुरु शब्दस्त्वन्धकारः स्याद् रुशब्दस्तन्निरोधकः
अन्धकार निरोधत्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।। (1)

'गुरु' शब्द में 'गु' अन्धकार का द्योतक है। 'रु' शब्द उस अंधकार को निवृत्त करने का प्रतीक है। चूंकि गुरु अन्धकार की निवृत्ति करता है अतः 'गुरु' (अन्धकार को निवृत्त करने वाला) कहा जाता है।

'गकार': सिद्धिदः प्रोक्तो 'रेफ़' : पापस्य दाहकः।
'उकारो' विष्णुरित्युक्तस्त्रितयात्मा गुरु : परः।। (2)

'गुरु' शब्द में स्थित 'गकार' सिद्धियां प्रदान करता है और 'रेफ़' पापों को परिदग्ध कर देता है। 'उकार' (अक्षर) तो विष्णु है। त्रितयात्मा गुरु सर्वोपरि है।

गकारो ज्ञान सम्पत्ती रेफ़स्तत्र प्रकाशकः।
'उकारः' शिवतादात्म्यं गुरुरित्यभिधीयते।। (3)

(24) वैष्णवागम में गुरु तत्व—

वैष्णवागम में 'मांत्री दीक्षा' के प्रसंग में एवं योग-साधना के क्षेत्र में 'मंत्रद्रष्टा या मंत्रसिद्ध गुरु' से दीक्षा लेने का अत्यधिक महत्व स्वीकार किया गया है। इसमें कहा गया है कि प्रत्येक मंत्र का एक 'देवता' एक 'छन्द' तो होता ही है किन्तु साथ ही प्रत्येक मंत्र का एक 'ऋषि' भी होता है 'ऋषि' तो उस मंत्र का मंत्रद्रष्टा स्वरूप आद्य गुरु होता है किन्तु बाद में उस मंत्र को सिद्ध करने वाला साधक भी 'गुरु' होता है। अतः मंत्र-साधना करने के पूर्व किसी गुरु से उस मंत्र की दीक्षा ले लेनी चाहिए।

'नारद पञ्चरात्र' में श्री व्यास जी गुरु की प्रशंसा में कहते हैं कि— 'गुरुर्मे भगवान साक्षाद्योगीन्द्रो नारदो मुनिः।
गुरोर्गुरुर्मे शंभुश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।। (1/1/31)
तेषां पुण्येन पुत्रस्त्वं पुण्यराशिश्च मूर्तिमान।
पद्मानां मंत्र पुंसां च प्रकाशो भास्करः स्वयम्।। (4)

---

(1) कुलार्णवतंत्र (17/7,8,9) (2) कुलार्णव तंत्र (17/8)
(3)कुलार्णवतंत्र (17/9) (4) नारद पञ्चरात्र (1/1/32)

श्री कृष्णस्वरूप गुरु ने गोलोक के शतश्रृंग पर्वत पर विरजा नदी के तट पर वट वृक्ष के नीचे ब्रह्मा जी (शिष्य) को पाञ्चरात्र का ज्ञान दिया। इसी प्रकार शङ्कर (गुरु) ने नारद को ज्ञान दिया। ऐसे अनेक गुरु-शिष्य के आख्यान हैं। संसार की सर्वोच्च सत्ता भी गुरु है किन्तु वह गुरुओं का भी गुरु है— परमात्मा है। गुरु के प्रतिसर्वात्म समर्पण की दृष्टि भी वैष्णवागम में है—

'भूयः परित्य प्रणिपत्य देशिकं' तस्मै परस्मै पुरुषाय देहिनेः।
ता वित्तशाठ्यं परिहत्यं दक्षिणां, दत्वा तनुं च समर्पयेत् सुधीः।।
—(नारद पञ्चरात्र 3/9/12)

(25) *साधना का योग-मार्ग*

—('नारद पञ्चरात्र' के आलोक में)

*नारदपञ्चरात्रोक्त योग-मार्ग—

'नारद पञ्चरात्र' (1/3) में एक कथा आती है। ब्रह्मा जी ने सनत्कुमार से कहा कि एक बार एक ब्राह्मण अपने पुत्र के साथ किसी सम्बंधी के यहां से लौटकर अपने घर जा रहा था। मार्ग के मध्य में ही पुत्र ने पिता से वहीं भोजन करके फिर आगे की यात्रा करने का निवेदन किया किन्तु पिता ने निकटस्थ घोर अरण्य होने के कारण भयभीत होकर उसके प्रस्ताव का खण्डन करके किसी गांव में रूककर वहीं भोजन करने का प्रस्ताव रखा। पुत्र नहीं माना और मार्गस्थ चन्द्रभागा नदी के जल में स्नान करके मोदक खाया और पानी पिया। यात्रा-पथ पर आगे बढ़ने पर उसे एक भयानक व्याघ्र दिखा और भयभीत होकर परमात्मा भगवान श्री कृष्ण की पुष्पों-फलों के साथ पूजा की और श्री कृष्ण के चरणों का ध्यान किया। [1]

बालक ने यौगिक षट्चक्रों का ध्यान करते हुए सहस्त्रदल पद्म स्थित श्री कृष्ण का भक्तिभाव से चिन्तन किया। इसी प्रसंग में तांत्रिक योग के षट्चक्रों का उल्लेख और उसकी साधना का वर्णन इस प्रकार आता है। उस भयभीत बालक ने — (1)'मूलाधर चक्र' (2)'स्वाधिष्ठान चक्र' (3)'मणिपूर चक्र' (4)'अनाहत चक्र'(5)'विशुद्ध चक्र' एवं (6)'आज्ञा चक्र' की भावना (कल्पना या चिन्तन) करके अपनी (7) 'कुण्डलिनी शक्ति' के साथ (8)'सहस्त्रदल पद्म' का ध्यान किया। तथा उसने

(1) नारद पञ्चरात्र (1/3)

अपने हृदय एवं 'सहस्त्रदल पद्म में द्विभुज भगवान श्री कृष्ण को देखा–

'दृष्ट्वा च दूरतो व्याघ्रमुवास सरसस्तटे।
दध्यौ कृष्ण-पदाम्भोजं जन्ममृत्युजराहरम्।
'मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम्।
विशुद्धं च तथाज्ञाख्यं षट्चक्रं च विभाव्य च।।
कुण्डलिन्या स्वशक्त्या च सहितं परमेश्वरम्।
सहस्त्रदलपद्मस्थं हृदये स्वात्मनः प्रभुम्।
ददर्श द्विभुजं कृष्णं पीत कौशेयवाससम्।
सस्मितं सुन्दरं शुद्धं नवीन जलदप्रभम्।।
कोटिकन्दर्पसौन्दर्यं लीलाधाम मनोहरम्।
कोटिपार्वण पूर्णेन्दु प्रभाजुष्टं च सुन्दरम्।। (2)

* * * * * * * * * * * * * * * *

'नारद पञ्चरात्र' (1/1/48-51) में 'रात्र' के जो पांच प्रकार बताए गए हैं उनमें चतुर्थ रात्र (चतुर्थ ज्ञान) को 'यौगिक ज्ञान' कहा गया है। इस विषय में कहा गया है कि –'चतुर्थ ज्ञान' 'यौगिक ज्ञान' है। यह समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाला 'यौगिक ज्ञान' है। यह योगियों का सर्वस्व है तथा सिद्धों के लिए सुखप्रद है। यौगिक ज्ञान की आठ सिद्धियां हैं। इसके अतिरिक्त अन्य आठ सिद्धियां भी हैं। जिस यौगिक ज्ञान से ज्ञानियों का सोलह प्रकार की सिद्धियां सिद्ध हो जाती हैं उसे 'यौगिक ज्ञान' कहा जाता है। (1)

---

(2) ना.पं. (1/3/70-73)

(1) चतुर्थं यौगिकं ज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदं परम्।
सर्वस्वं योगिनां पुत्र! सिद्धानां च सुखप्रदम्।।
अणिमा, लघिमा, व्याप्तिः, प्रकाम्यं, महिमा तथा।
ईशित्वं च वशित्वं च तथाकामावसायिता।।
सार्वज्ञं दूरश्रवणं परकायप्रवेशनम्।
कायव्यूहं जीवदानं पर जीवहरं परम्।।
सर्गकर्तृत्वशिल्पं च सर्गसंहारकारणम्।
सिद्धं च षोडशविधं ज्ञानिनां च यतो भवेत्।। —नारद पञ्चरात्र (1/1/48-51)

(26) *यौगिक सिद्धियां (नारद पञ्चरात्र)

↓

1	2	3	4	5	6	7
अणिमा	लघिमा	व्याप्ति	प्रकाम्य	महिमा	ईशित्व	वशित्वं

8	9	10	11	12
वशित्व	तथाकामावसायिता	सार्वज्ञ	दूरश्रवण	परकाय-प्रवेश

13	14	15	16	17
कायव्यूह	जीवदान	परजीव-हरण	सृष्टिकर्तृत्वशिल्प	सृष्टिसंहार -कारणत्व।।

यह योग साधन के विषय में यह भी कहा गया है कि –
'चतुर्थं यौगिकं ज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदं परम्।
सर्वस्वं योगिनां पुत्र! सिद्धानां च सुखप्रदम्।' आदि।।

(27) *पञ्चरात्र और योग*

↓

1	2	3	4	5
'प्रथम रात्र'	'द्वितीय रात्र'	'तृतीय रात्र'	'चतुर्थ रात्र'	'पंचम रात्र'
जन्म, मृत्यु जरा का विनाशक रात्र (ज्ञान)	मुमुक्षु-'प्रिय ज्ञान/मुक्तिप्रद ज्ञान/हरिपद में लीन करने वाला ज्ञान	शुद्ध एवं माङ्गलिक ज्ञान/कृष्णभक्ति प्रदज्ञान/कृष्ण दास्यप्रद ज्ञान	यौगिक ज्ञान	वैषयिक सांसारिक ज्ञान विषयभोग परक ज्ञान
'सात्विक रात्र' (ज्ञान)		(त्रिगुणातीत निर्गुण एवं सबसे परे ज्ञान)	(राजसिक ज्ञान)	(तामसिक ज्ञान) (2)

(2) नारद पञ्चरात्र (1/1)

*'नारद पञ्चरात्र' (217) में कहा गया है कि– **कपिल-कृत** पञ्चरात्र में मुक्ति-ज्ञान के विषय में यह कहा गया है कि–

आध्यात्मिकं च कथितं प्रथमं ज्ञानमीप्सितम्।
भक्ति-ज्ञानं द्वितीयं च कृष्णस्य परमात्मनः।
मुक्तिज्ञानं तृतीयं च कथितं तद्यथा क्रमम्।
ज्ञानद्वय चावशिष्टं यौगिकं मायिकं मुने।। (1)

'कापिल पञ्चरात्र' में श्री कृष्ण ने मुक्तिज्ञान अत्यन्त विस्तारपूर्वक प्रतिपादित किया गया है शेष में संक्षेपपूर्वक–

'कापिले पञ्चरात्रेषु कृष्णेनोक्तं सुविस्तरम्' 2/7)

'नारद पञ्चरात्र' के द्वितीय रात्र के आठवें अध्याय में योग-ज्ञान पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। इसमें कहा गया है कि योग-ज्ञान दुर्बोध है और दुर्जनों के लिए तो यह अत्यन्त विषम है–

'योगज्ञानं च दुर्बोधमसतां विषमं परम्। (2/8/1)

(28) ***सिद्धियाँ**–'नारद पञ्चरात्र' में योग-मार्ग पर प्रकाश डालते हुए योग के स्वरूप, उसकी साधना, उसके सिद्धान्त एवं अभ्यास-प्रक्रिया आदि पर पहले प्रकाश न डालते हुए यौगिक सिद्धियों की विवेचना की गई है।

(29) ***यौगिक सिद्धियाँ** (रात्र 2/अध्याय 8)

↓

1	2	3	4	5	6	7
अणिमा	लघिमा	व्याप्ति	प्रकाम्य	महिमा	ईशित्व	वशित्व

8	9	10	11	12
कामावसायिता	दूरश्रवण	इष्टार्थसाधन	सृष्टिपतन	मनोयायित्व

13	14	15	16	17
परकाय-प्रवेशन	प्राणियों को प्राणदान	प्राणियों का प्राणापहरण	कायव्यूह	वाक्सिद्धि

(16 सिद्धियां या 17 सिद्धियां)

(1) नारद पञ्चरात्र (2/7/51-52)

रात्र 1 अध्याय 1 (45-51) में 16 सिद्धियों का नामोल्लेख किया गया है—

'सिद्धं च षोडशविधं ज्ञानिनां च यतो भवेत्।।' किन्तु द्वितीय रात्र (अध्याय 8 /1-5) में 17 सिद्धियों का नामोल्लेख किया गया है।

'अणिमा-लघिमा-व्याप्ति-प्रकाम्यं-महिमा तथा।
ईशित्वं च वशित्वं च तथाकामावसायिता'

यह श्लोक तो दोनों स्थलों (1/1/49-51) तथा 2/8/2-5) में एकरूप हैं किन्तु अगला श्लोक भिन्न भिन्न है—

'प्राणिनां प्राणदानं च तेषां प्राणपहारकम्।
कायव्यूहं च वाक्सिद्धं सप्तदशं स्मृतम्।' (2/8/4)

तथा 'सार्वज्ञं, दूर श्रवणं, परकाय-प्रवेशनम्।
काय व्यूहं, जीवदानं, पर जीवहरं परम्।'
'सर्गकर्तृत्वशिल्पं च सर्गसंहार कारणम्।
सिद्धं च षोडशविधं ज्ञानिनां च यतो भवेत।' (1/1/50-51)

यहाँ पर सप्तविधपञ्चरात्र की भी चर्चा की गई है—

(29) *** सप्तविध पञ्चरात्र**

↓

1	2	3	4	5	6	7
ब्राह्म	शैव	कौमार	वासिष्ठ	कापिल	गौतमीय	नारदीय

'ब्राह्म' शैवं च कौमारं वासिष्ठं कापिलं परम्।
गौतमीयं नारदीयमिदं सप्तविधं स्मृतम्।। (1/1/57)

(30) ***पञ्चविध पञ्चरात्र**

↓

(सात्विक रात्र) सात्विक:	'सर्वत: परम रात्र' तृतीय रात्र:	'राजस रात्र'	तामस रात्र'
1. प्रथम द्वितीय ज्ञान	त्रिगुणातीत निर्गुण रात्र	चतुर्थरात्र	पञ्चमरात्र 'तामस रात्र'

उपर्युक्त सिद्धियों के मूल्याङ्कन की दिशा में देखें तो प्रथम रात्र में इनकी कोई हेयता नहीं दिखाई गई किन्तु अष्टम अध्याय (रात्र2 308) में इनकी हेयता भी दिखाई गई है और कहा गया है कि—

'कायव्यूहं च वाक्सिद्धं सिद्धं सप्तदश स्मृतम्।
कृष्णभक्ति-व्यवहितं भक्तानां नाभिवांछितम्।
कृष्णवेतनमुग्भोक्तुं करोति दासतां मुने।।

अर्थात् ये सभी 17 सिद्धियां श्री कृष्ण की भक्ति में व्यवधान डालने वाली हैं अतः भक्तों के लिए अभीष्ट नहीं हैं। कृष्णभक्त तो कृष्ण की भक्ति और उनके 'दास्य भाव' को ही चाहता है

(31) *षट्चक्रात्मक तांत्रिक योग

'नारद पञ्चरात्र' (2:8) में कहा गया है कि —

मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम्।
विशुद्धमपि चाज्ञाख्यं षट्चक्रं परि कीर्तितम्।।

शक्ति कुण्डलिनीयुक्तं स्वे स्वे स्थाने स्थितं मुने।
योगोपयुक्तं नियतं योग विद्भिः प्रकीर्तितम्।। (2/8/7)

(32) *नाड़ीयोग (नाड़ी मण्डल)—

योगशास्त्र के अनुसार मानव शरीर नाड़ियों का एक महाजाल है क्योंकि मानव शरीर में 72000 या 3½ करोड़ नाड़ियां हैं। उनमें कतिपय नाड़ियों का परिचय इस प्रकार है—

(1) 'मेध्या नाड़ी'—यह वह नाड़ी है जो मन से युक्त होकर प्राणियों में श्रेष्ठ निद्रा उत्पन्न करती है।

2. 'इड़ा नाड़ी'—यह वह नाड़ी है जो मन से युक्त होने पर प्राणियों में तीव्र क्षुधावर्धन करती है।

3. 'पिङ्गला नाड़ी'—यह नाड़ी मन से युक्त होकर प्राणियों में तृष्णा को जन्म देती है।

4. 'सुषुम्णा नाड़ी'—यह नाड़ी मन से युक्त होकर निद्रा-भङ्ग करती है।[1]
5. 'चञ्चला नाड़ी'—यह मन से युक्त होकर संभोगेच्छा की वृद्धि करती है।
6. 'सुस्थिरा नाड़ी'—यह मन से युक्त होकर मानव में विचेतना उत्पन्न करती है [2]
7. 'मन' इन 6 नाड़ियों में क्रम से भ्रमण करता रहता है किन्तु इसमें कोई यथासंख्य सुनिश्चित व्यवस्था नहीं है अर्थात् मन किस नाड़ी में कितनी देर भ्रमण करेगा इसका कोई नियम नहीं है। मन तो स्वेच्छाधीन एवं चंचल है—'स्वेच्छाधीनं चंचलम्'

(33) *चक्रों का स्थान—

योगिशिश्नो परिस्थानं मूलाधारस्य नारद।
स्वाधिष्ठानं नाभि देशे मणिपूरं च वक्षसि।
'अनाहतं' तदूर्ध्वं च 'विशुद्ध' कण्ठदशतः।
'आज्ञाख्यं' चक्षुषोर्मर्ध्यं चक्रस्थानं प्रकीर्तितम्।।

(1) 'मूलाधार'—योनि एवं शिश्ण के ऊपर मूलाधार स्थित है
(2) 'स्वाधिष्ठान'—नाभिदेश में स्वाधिष्ठान स्थित है।
(3) 'मणिपूर'—यह वक्षस्थल में स्थित है।
(4) 'अनाहत'—मणिपूर के ऊर्ध्व में अनाहत चक्र है।
(5) 'विशुद्धचक्र—यह कण्ठदेश में स्थित है।
(6) 'आज्ञाचक्र'—यह दोनों चक्षुओं के मध्य में स्थित है।

(34) * नाड़ी और चक्रों का अवस्थान *

1. 'इड़ा नाडी' — मूलाधार चक्र में स्थित है।
2. 'पिङ्गला नाड़ी' — यह स्वाधिष्ठान चक्र में स्थित है।
3. 'सुषुम्ना नाड़ी' — यह नाड़ी मणिपूर चक्र में स्थित है।
4. 'चञ्चला नाड़ी' — यह नाड़ी अनाहत चक्र में स्थित है।

---

(1) नारद पञ्चरात्र (2/8) (2) नारद पञ्चरात्र (2/8)

* नाड़ी युक्त चक्र एवं वायु —

1. नाड़ी युक्त चक्रों में वायु निरन्तर विचरण करता रहता है।
2. जब वायु आज्ञा चक्र में बद्ध हो जाता है तब प्राणियों की मृत्यु हो जाती है।
3. योगी वायु को निश्वासबद्ध करके धारण करता है। अतः वायु पर 2 नियंत्रण कर लेने से मृत्यु नहीं हुआ करती। इसी प्रकार वायु को नियंत्रित करके उसे अपने वश में करना चाहिए।

(35) *धारणा और स्तंभ [1]

(स्तंभ के अनेक प्रकार हैं) * स्तंभ के प्रकार *

↓

1	2	3	4	5
वह्निस्तंभ	जलस्तंभ	मृदास्तंभ	मनःस्तंभ	वायुस्तंभ

*गुरुवाद

* **'सहस्त्रदल पद्म'** सभी के मस्तक में स्थित है। वहीं सूक्ष्म रूप से गुरुजी स्थित हैं। नर-गुरु—उसी गुरु का प्रतिबिम्ब है। शिष्यों के हितार्थ स्वयं भगवान श्री कृष्ण ही गुरुरूप में स्थित रहते हैं—

1. 'सहस्त्रदल पद्मं च सर्वेषां मस्तके मुने।
2. 'तत्रैव तिष्ठति गुरुः सूक्ष्मरूपेण संततम्।
3. 'तद्गुरोः प्रतिबिम्बश्च सर्वत्र नररूपकः। [2]
4. 'गुरुरूपो स्वयं कृष्णः शिष्याणां हित काम्यया।।
5. गुरु के सन्तुष्ट होने पर हरि भी संतुष्ट हो जाते हैं और हरि के सन्तुष्ट हो जाने पर सारे लोक सन्तुष्ट हो जाते हैं।
6. गुरु ही ब्रह्मा, विष्णुः, महादेव, परब्रह्म, परात्पर एवं पूज्य हैं।

---

(1) नारद पञ्चरात्र (2/8/18) (2) ना.पं. (2/8/21-23)

7. यदि हरि रुष्ट हों किन्तु गुरु सन्तुष्ट हों तो गुरु रक्षा करने में समर्थ हैं किन्तु सबके सन्तुष्ट होने पर भी यदि गुरु असन्तुष्ट हो तो फिर कोई भी रक्षा नहीं कर सकता।

8. गुरु द्वारा ज्ञान देने पर ही शिष्य को मंत्र-तंत्र का ज्ञान होता है।

(36) *भक्ति योग —

योग की विवेचना के प्रकरण में ही ग्रंथकार महादेव (उपदेष्टा) के माध्यम से भक्ति की महिमा पर प्रकाश डालता हुआ कहता है—

1. **तंत्र भी वही है और मंत्र भी वही है जिससे कृष्ण भक्ति आविर्भूत होती है।** वहीं बन्धु, पिता, माता, मित्र एवं भ्राता है। पति एवं पुत्र है जो कृष्ण के मार्ग का साक्षात्कार कराये—

'तत्तन्त्रं स च मन्त्रः स्यात् कृष्ण भक्तिर्यतो भवेत्।
स एव बन्धुः स पिता सा मैत्री जननी च सा।
स च भ्राता पतिः पुत्रो यः कृष्णवर्त्म दर्शयेत्। [1]

आगे पुनः **'सहस्त्रदल पद्म'** की चर्चा की गई है—

'सहस्त्रदल पद्मे च हृदयस्थो हरिः स्वयम्।
सर्वेषां प्राणिना विप्र! परमात्मा निरञ्जनः।। (ना.पं. 2/8)

यहीं पर (**'नारद पञ्चरात्र'**) में **'भक्ति'** की चर्चा करने के बाद कहा गया है कि मैंने **'पञ्चरात्र'** के **चतुर्थ रात्र (ज्ञान) 'योगज्ञान'** के विषय में सब कुछ कह दिया—**'इति ते कथितं सर्वं योगज्ञानं चतुर्थकम्।' क्या 'भक्ति' भी योग है?** यदि नहीं तो योग के प्रकरण में 'भक्ति' एवं भक्ति के प्रकरण में 'योग' की विवेचना क्यों की गई? उत्तर सुस्पष्ट है। स्वयं **'योग सूत्रकार'** ने भी (1) **'ईश्वर प्रणिधान' ('ईश्वर प्रणिधानाद्वा' सूत्र)** तथा प्रणव-साधना ('तस्य वाचक प्रणवः' सूत्र) द्वारा **'भक्ति'** को योग **की साधना में स्थान** दिया है। **शङ्कराचार्य** ने अपनी ज्ञान-साधना में भी 'भक्ति' को स्थान दिया है और उसे अन्तः शुद्धि का उपकारक साधन स्वीकार किया है।

---

(1) ना.पं. (2/8/24)

'नारद पञ्चरात्र' (5/10) में सविस्तार योग-साधना की विवेचना की गई है।

(37) *नाड़ी योग— महादेव कहते हैं कि **'श्रृणु नारद वक्ष्यामि योग धारण मुत्तमम्।'** वे योग धारण की उपेक्षा नहीं करते प्रत्युत उसे उत्तम कहते हैं और आरंभ में **'नाड़ी-योग'** पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि— (2)

1. **शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियां है। इनमें से दस प्रधान हैं और दस में से तीन प्रधान हैं।** ये तीनों मेरुदण्ड में स्थित हैं और चन्द्र, सूर्य तथा अग्निरूपिणी हैं।

(38) *नाड़ियों का स्वरूप एवं उनका अवस्थान—

1. शक्ति रूपा **'वामनाड़ी'** अमृत विग्रहा है **'शक्तिरूपा च सा नाड़ी साक्षादमृत विग्रहा।।'**

2. दक्षिणवर्ती **'पिङ्गला नाड़ी'** पुंरूपा एवं सूर्य नाड़ी है।

3. मेरु के मध्य में जो **'सुषुम्णा नाड़ी'** है वह अमृतविग्रहा हे। इसे **'विषतन्तु'** भी कहा गया है। यह दाडिम के पुष्प के समान होती है तथा **'मूलाधार चक्र'** तक गई है। इस सर्वतेजोमयी एवं बहुरूपिणी **'सुषुम्णा नाड़ी'** में एक अन्य अमृत प्लाविनी शुभ नाड़ी स्थित है इसे **'चित्रा या विचित्रा'** कहा गया है।
   'तस्या मध्ये विचित्राख्या अमृतप्लाविनी शुभा'
   सर्वदेवमयी सा तु योगिनां हृदयंगमा।।

यह (**चित्रिणी नाड़ी/चित्रा**) **'विसर्ग'** से **'बिन्दु'** पर्यन्त स्थित है। यहां **'वज्रा नाड़ी'** का उल्लेख नहीं किया गया है। (1)

(39) *चक्र और चक्र-साधना ('मूलाधार चक्र')

1. इच्छा-ज्ञान और क्रियास्वरूप **'मूलाधार'** के **'त्रिकोण'** में करोड़ों सूर्य के समान प्रभामण्डित **'स्वयंमूलिङ्ग'** स्थित हैं।

---

(2) ना.पं. (5/10/3-8)

(1) नाड़ी वर्णन के प्रसंग में ना.पं. में **'वज्रा'** एवं **'ब्रह्मनाड़ी'** का उल्लेख नहीं किया गया है।

2. 'स्वयंभूलिङ्ग' के ऊध्व में चन्द्रबिन्दुसमेत 'कामबीज' स्थित है और उसके उपर ब्रह्मस्वरूपिणी शिखाकारा कुण्डली शक्ति स्थित है। इसके बाहर पिघले हुए स्वर्ण के समान वर्ण वाला चतुर्दलपद्म स्थित है। इसी से इसे 'द्रुतहेमसमप्रख्य पद्म' (गले हुए स्वर्ण के वर्ण वाला पद्म) कहा गया है।

(40) *षड्दलात्मक 'स्वाधिष्ठान चक्र'—'मूलाधार चक्र' के ऊर्ध्व प्रदेश में अग्नि के समान और हीरे के समान प्रभावाला 'षडदलपद्म' अर्थात् 'स्वाधिष्ठान चक्र' स्थित है। इसके प्रत्येक पद्मदल पर 'क' से 'च' पर्यन्त वर्ण अंकित हैं। मूल में स्थित होने के कारण उक्त पद्म करे 'मूलाधार' तथा षट्कोण पद्म तथा स्वलिंग से युक्त होने के कारण 'स्वाधिष्ठान पद्म' मानना चाहिए।

(41) *दशदलात्मक 'मणिपूरपद्म'—

1. 'स्वाधिष्ठान' के ऊर्ध्व देश में नाभि देश में महान प्रभा से युक्त मेघवर्ण, विद्युत की प्रभा के समान अत्यन्त तेजोमय मणिपुर चक्र है।
2. इस पद्म के मणिवत होने के कारण इसे 'मणिपूर' कहते हैं।
3. इस पद्म के दलों पर क्रमशः 'द' से 'फ' वर्णों की स्थिति है। इसमें अधिष्ठित शिखा को विश्वोत्पत्ति का कारण कहा गया है। 'शिखेनाधिष्ठितं पद्मं विश्वो लोकैक कारणम्।।

(42) *द्वादशदलात्मक 'अनाहत पद्म'—

1. 'मणिपूर पद्म' के ऊर्ध्व देश में 'अनाहत चक्र' स्थित है। यह अर्कपत्र के समान एवं उदित होने वाले सूर्य के समान प्रतीत होता है।
2. इसके दलों पर 'क' से 'ठ' तक के सारे वर्ण अङ्कित हैं। इसके सहस्त्रों सूर्य की प्रभा से युक्त 'बाणलिङ्ग' स्थित है। इसमें से 'शब्दब्रह्म' (अनाहतनाद) निकलता रहता है।
   इसीलिए इसे 'अनाहत' कहा गया है। यह आनन्द सदन एवं परम-पुरुषावेष्टित है।

(43) *षोडशदल पद्म 'विशुद्ध चक्र'—

1. यह धूमवर्ण का एवं अतिप्रकाशमय है। यहां (महादेव) लोकों के अधिष्ठाता के रूप में स्थित रहता है और 16 सूर्य महादेव की पूजा करते हैं।

2. इसे 'आकाशाख्य विशुद्ध पद्म' कहते हैं।

(44) *द्विदलात्मक पद्म 'आज्ञा चक्र' —

1. 'षोडलदल पद्म' के ऊर्ध्व देश में दोनों भौंहों के मध्य 'आज्ञा चक्र' स्थित है।

2. यह आत्मा का परमाधिष्ठान है—'आज्ञा चक्र' तदूर्ध्वे च आत्मनाधिष्ठितं परम्।'

3. यहां से ही आज्ञा-संक्रमण होता है इसीलिए गुरु यहीं से आज्ञा देते हैं— 'आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्तितम्।।'

(45) *'कैलास' —'आज्ञा चक्र' के ऊर्ध्व देश के 'कैलास' है। 'कैलासाख्ये तदूर्ध्वे तु बोधनी तु तदूर्ध्वतः।।'

(46) *'बिन्दु-स्थान' —समस्त चक्रों के ऊर्ध्व में सहस्त्रदलों से युक्त एक महापद्म है जिसे कि 'बिन्दुस्थान' कहते हैं—

'सहस्त्राराम्बुजं बिन्दुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम्।।
'इत्येतत् कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम्।।

(47) *साधना-क्रम —

1. सर्वप्रथम पूरकयोग द्वारा मन को 'मूलाधार चक्र' में केन्द्रित करना चाहिए।

2. इसके उपरान्त 'गुदा' और 'मेढ्' के बीच 'शक्ति' को जाग्रत करके उसे विभि-१ चक्रों से होते हुए 'बिन्दु चक्र' में ले जाना चाहिए। 'बिन्दु चक्र'।

3. यहां पहुंचकर शिव और उनकी परा शक्ति शिवा के साथ ऐक्य की भावना करनी चाहिए।

योग वियोग दूर करके शिव-शक्ति के संयोग कराने की एक प्रक्रिया है। 'लाक्षारस' 'अमृत'।

4. यहां पिघले हुए लाख के समान अमृत रस उत्पन्न होता है। योग सिद्धप्रद कृष्णाख्य उस शक्ति को उस अमृत का पान कराना चाहिए। फिर षट्चक्रों के देवों को भी उस अमृत से तृप्त करना चाहिए।

'पाययित्वा च तां शक्तिं कृष्णाख्यां योगसिद्धिदाम्।
षट्चक्रदेवतास्तत्र संतर्प्यामृत धारया।।' (27)

5. साधक को चाहिए कि वह इस ज्ञानमार्ग के द्वारा **'मूलाधार चक्र'** में प्रतिदिन **वायु का नियंत्रण** करे। इससे वह जरामृत्यु एवं संसार के बन्धन से मुक्त हो जाएगा और पूर्वोक्त दूषित मंत्र भी सिद्धिप्रद हो जायेंगे।

'पञ्चकृत्यों' का निष्पादन करने वालों को जो-जो गुण आयत्त होते हैं वे सभी गुण भी उक्त योग-साधक को प्राप्त हो जाते हैं—

'ये गुणा : सन्ति देवस्य पञ्च कृत्यविधायिनः।

(48) ***'धारणा' और 'ध्यान'**— ना.पं.(5/10/31) में कहा गया है— इस प्रकार मैंने तुम्हें समस्त योग-मार्ग बता दिया। अब समाहित होकर धारणा और ध्यान के सम्बंध में सुनो। यहां **'योगमार्ग'** विवेचनोपरान्त कहा गया है कि—

'इत्येतत् कथितं सर्वं योगमार्ग मनुत्तमम्'
'इदं तु धारणा ध्यानं श्रृणुष्वावहितो मम'।

क्या **'धारणा'** एवं **'ध्यान' योगमार्ग से बाहर है?** यदि नहीं तो योग-मार्ग एवं धारणा-ध्यान को पृथक-पृथक क्यों कहा गया?

(49) *ध्यान और ध्यानाभ्यासक्रम—

1. दिक्काल के बन्धन से मुक्त होकर एवं अपने हृदय में **श्रीकृष्ण का ध्यान** करके उन्हें ब्रह्मस्वरूप जानते हुए यथाशीघ्र अपने **जीव को उनके साथ योजित करना चाहिए।**

'तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवो ब्रह्मणि योजनात्।।

2. यदि हृदय शीघ्र शुद्ध न हो सके और सफलता शीघ्र साफल्याप्ति भी

न हो सके तो उनके स्वरूप एवं अवयवों के ध्यान का अभ्यास करना चाहिए—

'तदावयवसंयोगाद्योगी योगान् समभ्यसेत्।।' (33)

(50) *श्री कृष्ण का सम्पूर्ण ध्यान (या शरीरावयव-ध्यान)

ध्यान-पद्धति —

1. सर्वप्रथम नखरूपी पुष्पों से समलंकृत उनके चरण-कमल का ध्यान करना चाहिए।
2. फिर कदली-काण्डवत मनोज्ञ उनकी दोनों जांघों का ध्यान करना चाहिए।
3. फिर मस्त हस्ती के सूंड के समान उनके उरुद्वय का ध्यान करना चाहिए।
4. फिर सिद्धवलिस्वरूप गंगा की भंवरों के समान उनकी नाभि का ध्यान करना चाहिए।
5. फिर श्री हरि के उदर फिर श्रीवत्स एवं कौस्तुभ मणि से सुशोभित उनके वक्षस्थल पर सहस्त्रों पूर्ण चन्द्रों के समान सुन्दर ललाट का और फिर उनके हस्तस्थ शंख, चक्र, गदा पद्म और फिर सहस्त्रादित्य वत प्रकाशमान उनके किरीट तथा कुण्डल का ध्यान करना चाहिए।

*ध्यानावधि —

1. 'ध्यान' का समय निश्चित नहीं है। इस विषय में एकनियम अवश्य है और वह यह है कि—'मनो निवेश्य कृष्णे वं तन्मयो भवति ध्रुवम् यावन्मनो लयं याति कृष्णे स्वात्मनि चिन्तयेत्।।'(ना. पं)

अर्थात् जब तक अपना मन श्रीकृष्ण में लयीभूत न हो जाए तब तक उनका ध्यान किया जाना चाहिए।

2. इस ध्यान के साथ 'तार' आदि एवं इष्ट मंत्र का जप एवं होम भी करना चाहिए।
3. परतत्व का ज्ञान हो जाने पर साधक को नियमों के पालन की बाध्यता नहीं रह जाती। ठीक भी है—

'ताल-वृन्तेन किं कार्यं लब्धे मलयमारुते।।

(मलय पवन के प्रवाहित होते रहने पर पंखे की क्या आवश्यकता?)

(51) *मन्त्रजप एवं योगाभ्यास—

1. मंत्र के जप एवं योग के अभ्यास (मान्त्री उपासना एवं योग-साधना) दोनों साधनों से एक ही 'ज्ञान' प्राप्त होता है।

2. 'योग' के बिना कोई मन्त्र नहीं है और मन्त्र के बिना हरि प्राप्त नहीं होते—

'मंत्राभ्यासेन योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पते।
न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हरिः।।

3. मंत्र-जप एवं योग-साधना अर्थात् दोनों के अभ्यास से ही 'ब्रह्मसिद्धि' प्राप्त होती है यथा किसी अंधेरे घर में दीपक के प्रकाश में ही घटादि दृष्टिगोचर पड़ते हैं उसी प्रकार माया से आच्छादित आत्मा 'मंत्र' से ही गोचरीकृत होती है—

'द्वयोरभ्यास योगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम्।।
'तमः परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते।
एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः।। (ना.पं.)
'एतत्ते कथितं ब्रह्मन् मंत्रयोगमनुत्तमम्।। (ना.पं. 5/10/43)

'भक्ति' तो 'ज्ञान' एवं 'योग' को भी सहायता प्रदान करती है क्योंकि 'ज्ञान' एवं 'योग' मन की एकाग्रता (अनन्य चिन्तन, अखण्ड धारा वाहिकता) के बिना तो सिद्ध हो नहीं सकते और भक्ति भी मन की एकाग्रता का साधन है क्योंकि 'भक्ति' ध्याता के चित्त का तैल धारावत अविच्छिन्न रूप से ध्येयाकार हो जाना ही तो है और यह अखण्ड एवं अनन्य चिन्तन तो 'ध्यान', 'भक्ति' एवं 'ज्ञान' (ज्ञेय के स्वरूप की अभिज्ञा) तीनों है।

(52) *शरीर तत्व—ना.पं. (5/11/1-31) में पुनः योग का वर्णन किया गया है। इसकी लम्बाई—

'षणवत्यंगुलायामं शरीरमुमयात्मकम्।।' (ना.पं.)

'मूलाधार चक्र'—गुदा और लिङ्ग के मध्य स्थान में गुदा से या लिङ्ग से दो अंगुल की दूरी पर 'मूलाधार चक्र' स्थित है। इसी स्थान पर स्थित 'कन्द' से सभी नाड़ियां आरंभ होती हैं जिनमें से तीन नाड़ियां सर्वप्रमुख हैं। बायें ओर 'इड़ा नाड़ी' दाहिनी ओर 'पिङ्गला नाड़ी' और इन दोनों के मध्य 'सुषुम्णा नाड़ी' स्थित हैं।

(1) दोनों पादांगुष्ठों से निकलकर **'शिवा नाड़ी'** शिर में जाकर वहां **'सोम' 'सूर्य' एवं 'अग्नि'** (इड़ा-पिंगला-सुषुम्णा) नाड़ियों से मिलती है। इस **'सुषुम्णा नाड़ी'** के भीतर योगी-दुर्लभ एवं पद्मसूत्र के समान **'विचित्रा नाड़ी'** है जो **'ब्रह्मरन्ध्र'** तक जाती है। इस सम्बंध में विभिन्न सम्प्रदायों में यद्यपि मतभेद हैं तथापि अमृतानन्दकारक इस दिव्य मार्ग को यहां बताया जा रहा है।

1. **'इड़ा नाड़ी'** में चन्द्रमा संचरण करता है और **'पिंगला नाड़ी'** में सूर्य संचरण करता है किन्तु ये तभी दृष्टिगोचर होते हैं जब **'सुषुम्णा नाड़ी' 'योगनिद्रा'** में होती है।

(53) *कुण्डलिनी शक्ति—

2. **'आधार चक्र'** में अत्यन्त कमनीय **'त्रिकोण'** है जो कि दिव्य ज्योति का स्थान है। वहां **'कुण्डली'** बद्ध सर्प के रूप में विद्युल्लता के आकार वाली पर देवता कुण्डली प्रसुप्त रहती है। वहीं सर्वात्मा के रूप में परिस्फुरित होती है।

3. **कुण्डलिनी शक्ति हंसाश्रित होकर आत्मा का पोषण करती है।** हंस प्राणाश्रित है और प्राणादि वायु अपने संचारण के लिए नाड़ी पथ के आश्रित है। समरूत देहधारियों में **'आधार चक्र'** के ऊपर के स्थानों में नाड़ियों के द्वारा ही वायु प्रयाण करती हैं।

4. **प्राण के प्रयाण का मान बारह अंगुल है।**

5. योगी को यथाक्रम पट्ट, **चर्म एवं कुश** से निर्मित रम्य एवं मृदु आसन पर, एक आसन में बैठकर (योगी को) योगमार्ग का अभ्यास करना चाहिए।

साधक देह की दृढ़ता प्राप्त करने हेतु देह में भूतों के स्थान का ज्ञान प्राप्त करके प्राणवायु के द्वारा उन **भूतों का देह में यजन करें।**

(54) ***नादध्वनि—** आन्तरिक अंगों को समाहित करते हुए दोनों **तर्जनियों को दोनों आंखों पर और दोनों अंगूठों को दोनों**

कानों पर दृढ़तापूर्वक रखकर उन्हें बंद करें। दोनों नासारंध्रो को दोनों मध्यमाओं से बंद करके शेष उंगलियों को यथास्थान दृढ़ रखें। फिर 'आत्मा, प्राण एवं मन के ऐक्य', का ध्यान करें। इस प्रकार वायु को सम्यक् रूप से धारण करे। इसके द्वारा दुर्लभ नाद उत्पन्न होगा जिसे शनैः शनैः सुनने का अभ्यास करना चाहिए।

*नादों के प्रकार— सर्वप्रथम भ्रमर के गुंजन के समान ध्वनि श्रुतिगोचर होगी। फिर वायु की सहायता से वंशी के समान ध्वनि श्रुतिगोचर होगी। फिर क्रमशः घण्टा एवं फिर मेघगर्जन की ध्वनियां श्रुतिगोचर होंगी। इस प्रकार अभ्यास करने से संसार के कष्टों का नाश हो जाता है।

(55) *'बिन्दु' और 'विसर्ग' के ज्ञान का आविर्भाव—

जब हंसक्षेपण का अव्यय बोध आविर्भूत हो जाता है तब 'पुरुष' और 'प्रकृति' रूपी 'बिन्दु' और 'विसर्ग' का ज्ञान प्राप्त होता है। इससे क्रमशः सर्गावसानात्मक बिन्दु और प्रकृत्याख्य हंस का ज्ञान उत्पन्न होता है क्योंकि प्रकृति हंसवान है।

(56) *अजपाजप— यह हंस योग—'हं' 'सः' का योग या 'अजपा जप' है। 'अजपा' को पुरुषत्वाश्रित जानकर जीव को सतत अभ्यास करना चाहिए। जब इससे ज्ञानोदय होता है तब 'सोऽहं' स्वयं अधिगत हो जाता है। सकारादि वर्णों ('साकारार्णा') का लोप करके सन्ध्याभ्यास करने का इसका पूर्वरूप 'प्रणव' हो जाता है। योगी को चाहिए कि वह परानन्दमय, नित्य चैतन्यगुणात्मक एवं आत्मा से अभिन्न इस 'प्रणव' का सदैव ध्यान करे—

'परानन्दमयं नित्यं चैतन्यैकगुणात्मकम्।
आत्माभेदस्थितं योगी प्रणवं भावयेत् सदा।।

(57) *मूल बीज तार (ॐ) या 'तारक बीज' — योगी को चाहिए कि वह ॐ का उच्चारण करते हुए उसे आत्मानन्द के

रस का एक मात्र सिन्धु जाने। उन्हें आत्मनिष्ठ होकर इस 'तारक बीज' पर नेत्रों को केन्द्रित करना चाहिए। अंगुष्ठ मात्र आद्य पुरुष का भजन करना चाहिए। साधकों को चाहिए कि वे अपने हृत्पद्म में पुराण पुरुष का ध्यान करें।

नारद जी कहते हैं कि मैंने योगशास्त्र के इस उत्तम माहात्म्य को जानकर इस ज्ञानामृत को संसार में प्रकाशित किया। बुद्धिमानों को इस 'ब्रह्मरसायन' का नित्य पाठ करना चाहिए। यह शास्त्र प: ब्रह्म को मिलाने वाला है। [1]

(58) *योगी और सात्वत—'सांख्य', 'योग', 'भागवत मत', एवं 'पाञ्चरात्रमत' के सिद्धान्तों में इतना अधिक साम्य है कि इन सभी को पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

'लक्ष्मी तन्त्र' (40/118) में कहा गया है—

एवं यो वर्तते योगी तारिकामननोद्यतः।
स कर्मठः स वै सांख्यः स योगी स च सात्वतः।।

(59) *जप और योग —जप एवं योग दोनों को एक साथ करने पर अधिक सफलता मिलती है। इसी बात को 'लक्ष्मी तंत्र' में साधना के नियम के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है—

(60) *पादचतुष्टय और योग—

'योगाच्छ्रान्तो जपं कुर्याज्जपाच्छ्रान्तो योगमाचरेत्।। [2]

समस्त आगमों एवं संहिता ग्रंथों में प्रतिपाद्य विषय के वर्गीकरण के रूप में पादचतुष्टय' को गृहीत किया गया है। उसमें एक पाद 'योगपाद' भी है।

(61) * पादचतुष्टय

↓

1	2	3	4
'ज्ञान'	'योग'	'क्रिया'	'चर्या'

(1) नारद पञ्चरात्र (5/11) (2) लक्ष्मी तंत्र (28/48)

*'योग' का अर्थ —'शिवपुराण' (7/2/10/31-33) में 'योग' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

'मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यवस्थितचेतसः।
वृत्यन्तर निरोधो हि योग इत्यभिधीयते।।
यत्रोपायो विरक्तानां षडङ्गः सुमहात्मनाम्।
रागिणामपि भोगार्थं योगपादः स उच्यते।।

(62) *उपाय चतुष्टयान्तर्गत 'योग' का स्वरूप—'लक्ष्मी तन्त्र' (15/14-17) में भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि मुझे प्रसन्न करने के चार उपाय हैं—

1. प्रथमोपाय - 'स्वजाति विहित कर्म'।
2. द्वितीयोपाय - सांख्य शास्त्र का अनुवर्तन
3. तृतीयोपाय - योगाभ्यास
4. चतुर्थोपाय - योगाभ्यास

'उपायांश्चतुरः शक्र श्रृणु मत्प्रीतिवर्धनान्।
यैरहं परमां प्रीति यास्याम्यनपगामिनीम्।। (15/16)
'उद्भावयामि तज्ज्ञान मात्म ज्योतिः प्रदर्शकम्।
उपायास्ते च चत्वारो मम प्रीतिविवर्धनाः। (15/16)

(63) *उपायचतुष्टय—

'स्व जातिविहितं कर्म, सांख्यं, योगंस्तथैव च।
सर्वत्यागश्च विद्वद्भिरुपायाः कथिता इमे।।

इन उपायों का 'लक्ष्मी तंत्र' (15/14-44,16-30-44) में सविस्तार वर्णन किया गया है। यहां 'योग' को भगवती को प्रसन्न करने में प्रयुक्त अनेक उपायों में से एक उपाय स्वीकार करते हुए कहा गया है कि—

1. योग के दो प्रकार हैं—(क) 'समाधि' (ख) 'संयम' आगे योग के अष्टांगों का भी उल्लेख करते हुए कहा गया है कि —

'यमाद्यङ्गसमुद्भूत॰ समाधिः संस्थितिः परे।
ब्रह्मणि श्री निवासाख्ये ह्युत्थानपरिवर्जिता।

फिर योग के द्वितीय प्रकार संयम के भी दो प्रकार बताए गए हैं (1) शारीरिक (2) मानसिक
'संयमो ना सत्कर्म परमात्मैकगोचरम्
तत्पुनर्द्विविधं प्रोक्तं शारीरं मानसं तथा। (16/33)

सारांश —*भगवती को प्रसन्न करने के उपाय

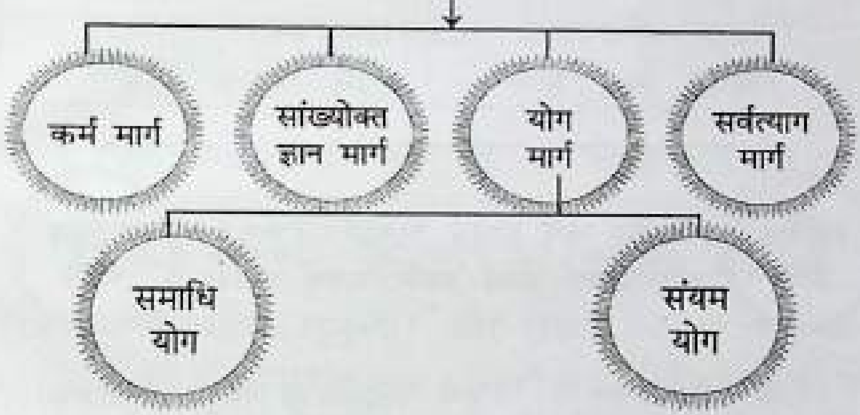

(64)

*'समाधियोग' के अङ्ग
↓

1	2	3	4	5	6	7	8
यम	नियम	आसन	प्राणायाम	प्रत्याहार	धारणा	ध्यान	समाधि

'समाधि योग' में 'समाधि' यौगिक साधना की पराकाष्ठा है—

(1) 'समाधि' का स्वरूप—'समाधि योग' के अष्टम अंग को 'समाधि' कहते हैं। यह वह स्थिति है जिसमें साधक ब्रह्म के पररूप में संस्थित होता है—

'ब्रह्मणि श्री निवासाख्ये ह्युत्थानपरिवर्जिता।। (16/31)

1. इस समाधि रूप अन्तिम योग-स्थिति में जीव और ब्रह्म में एकात्म्य स्थापित हो जाता है और जागतिक उत्थानावस्था समाप्त हो

जाती है। साधक **श्रीनिवास** नामक **ब्रह्म** में संस्थित हो जाता है—
'ब्रह्मणि श्री निवासाख्ये ह्युत्थान परिवर्जिता। (16/31)

2. ब्रह्मज्ञानियों की यह अवस्था **ब्रह्मसाक्षात्कारमयी** होती है।

3. ध्याता और ध्येय के रूप में अविभक्त (अर्थात् ध्याता एवं ध्येय में **तादात्म्यभावात्मक स्थिति)** यह स्थिति भगवती की अनुकम्पा से प्राप्त होती है—
'ध्यातृध्येयाविभागस्या मत्प्रसादसमुद्भवा।। (16/32)

(2) *संयम रूप योग — संयम नामक योग*

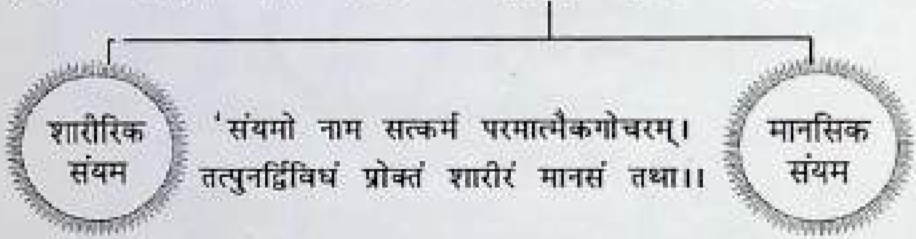

जो तृतीय उपाय है—**'उपायो यस्तृतीयस्ते वक्ष्यते योगसंज्ञकः।।'**
वह तृतीय उपाय 'समाध्यात्मा' है—
'तृतीयस्तु समाध्यात्मा प्रत्यक्षोऽविप्लवो दृढः।
प्रकृष्टसत्वसंभूतः प्रसादातिशयो हि सः।। (16/39)

'समाधि रूप उपाय' प्रत्यक्ष, दृढ़ और अपरिवर्तनीय एवं प्रकृष्ट सत्वसंभूत होता है। यह भगवती की अतिशय कृपा से प्राप्त होता है।

तृतीयस्य विधा योऽसौ संयमो नाम वर्णितिः।
भोगैः शुद्धैस्त्रिधोद् भूतैरत्यन्त प्रीतये मम्।।
(16/40)

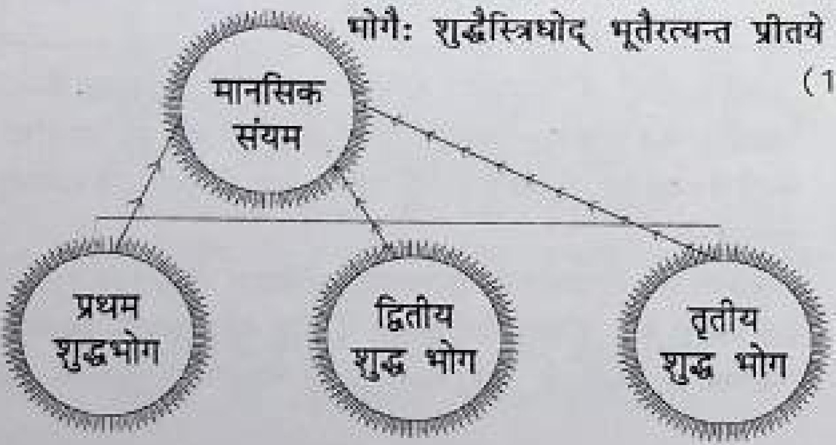

जिससे भागवती की प्रीति रहती है उसे ही यह प्राप्त होता है यहां विश्वात्मा, परावरा विष्णु शक्ति या पुरुषोत्तम नारायण वासुदेव विष्णु की आराधना की जाती है। यह तीन प्रकार के शुद्ध भोगों से प्राप्त होता है।

(65) * पादचतुष्टय एवं योग

↓

1	2	3	4
'ज्ञानपाद'	'योगपाद'	'क्रियापाद'	'चर्यापाद'

पूर्ण तन्त्रग्रंथ के चार पाद या खण्ड होते हैं जिसके अन्तर्गत तंत्र-प्रतिपादित समस्त विषय समाहृत (समाहित) होते हैं। उन्हें ही **'ज्ञानपाद' 'योगपाद' 'क्रियापाद'** एवं **'चर्यापाद'** कहा गया है।

(66) ***मध्यमार्ग (सुषुम्ना) और लक्ष्मी**—भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि मैं अग्निषोमात्मक (पिंगला-इड़ा वाले) मार्ग के मध्य में रहती हूं किन्तु साथ ही मध्यमार्ग का अनुवर्तन करती हूँ—

'अग्नीषोमद्वयान्तः स्थांमध्यमार्गानुवर्तिनीम्। (45/100)

अर्थात् भगवती अग्नि सोम के अन्तःकरण एवं सुषुम्णा दोनों में रहती है साथ ही प्रकाश और आनन्द के अन्तः में निवास करती हैं—

'प्रकाशानन्दयोरन्तरनुस्यूतामनुस्मरेत्।। (45/100)
अपराच्या मनोवृत्या मन्वीत मतिमान्ना।
अस्तमानाय्य सौषुम्ने मार्गे सूर्यनिशाकरौ।। (45/101)

जो अन्य मनोवृत्तियां हैं वे सभी लक्ष्मी से ही अन्वित हैं। **मनुष्यों की मति लक्ष्मी ही है।** ये सभी सूर्य-चन्द्र नाड़ी के मध्य में स्थित सुषुम्ना नाड़ी में अस्त हो जाते है। **समाधि में चित्तवृत्तियों का अभाव रहता है क्योंकि 'समाधि' में** चित्तवृतियां नहीं रहती।

—लक्ष्मी तंत्र (45/101)

(67) ***'तारिका' का योजन**— 'तारिका का जप' तो 'भक्तिमार्ग' की साधना है किन्तु 'लक्ष्मी तंत्र' में उसके साथ स्थान-योजन करके उसे योग-साधना का स्वरूप प्रदान कर देना चाहिए। ऐसा उसमें कहा गया है कि —योगी को—

1. 'तारिका' का योजन नासिकाग्र में
2. जिह्वाग्र में
3. जिह्वा के मध्य में
4. जिह्वा के मूल में
5. कण्ठ में
6. हृदय में एवं
7. ऊरु के अन्त में करना चाहिए।

'युञ्जीत विधिवद्योगी तारिका देह गोचरे।
नासिकाग्रे च जिह्वाग्रे जिह्वाया मध्यमूल्योः।।
कण्ठोरसोरुरोऽन्ते च धारयेत्तत्त्व पद्धतिम्।।' —(43/3)

(68) ***योगी और उसकी ध्यानपद्धति का स्वरूप**— 'लक्ष्मी तंत्र' (43/30) के अनुसार योगी सभी भावों में भगवती लक्ष्मी का ही संस्मरण किया करते हैं अतः जहां कहीं भी मन जाए वहां पर लक्ष्मी का ही चिन्तन करना चाहिए—

'संभरन्ति तथैकां मां सर्वभावेषु योगिनः।
यत्र यत्र मनो याति लक्ष्मीं तत्रैव चिन्तयेत्।। —(43/30)

(69) ***लक्ष्म्यात्मक 'शब्द ब्रह्म' का ध्यान**— योगशास्त्र में 'प्रणव' शब्द के प्रयोग द्वारा 'शब्दब्रह्म' का उल्लेख ही नहीं बल्कि उसकी साधना करने का भी विधान किया गया है—

1. 'तस्य वाचक प्रणवः'।।

2. 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (यो.सू.) अतः 'शब्दब्रह्म' एवं 'नाद' की साधना योग का प्रतिपाद्य विषय है भगवती कहती हैं—

1. दीर्घ घण्टानाद के समान जो दीर्घ 'ह्रींकार' नाद होता है उसी के समान 'शब्द ब्रह्म' की भावना मुझ में करनी चाहिए—
'गृणन्मांतारिकां दीर्घां दीर्घ घण्टानदोपमाम्।।'

—(ल.तं. 43/47)

भगवती कहती हैं कि जो योगी मेरा उक्त प्रकार से चिन्तन करता है या मेरे सुन्दर रूप का चिन्तन करता है वह साधक सभी कष्टों से मुक्ति पाकर मेरे ही भाव में स्थित हो जाता है।

(70) ***चक्र-ध्यान—**

'मूलाधार चक्र' में स्थित तीन कमलों में हृदय के नीचे के तीन कमलों में तथा मूर्धा के तीन कमलों में अर्थात् उक्त 9 कमलों में क्रमोत्क्रम से लक्ष्मी का चिन्तन करना चाहिए। मूर्धा में दो-दो के क्रम से 6 पद्मों में, हृदय के तीन पद्मों में और 'मूलाधार चक्र' के तीन कमलों में कुल द्वादश कमलों में भगवती का चिन्तन करना चाहिए। या भ्रूमध्य में तारिका का चिन्तन दीर्घघण्टा के निनाद की भांति करना चाहिए।
योगी को चाहिए कि वह अन्य ध्यानों में मन लगने पर उसे भी कर सकता है।

(71) ***भ्रूमध्य में ध्यान** —'भ्रूमध्य' में मूंग के आकार में ज्योति का ध्यान करना चाहिए। इसके उपरान्त मूंग से छोटे सरसों के आकार में ज्योति का ध्यान करना चाहिए। इसके बाद भ्रूमध्य में निराकार ज्योति का ध्यान करना चाहिए।

*भ्रूमध्य में ध्यान के प्रकार—

1 क. मूंग के आकार में ज्योति का ध्यान	2 सरसों के आकार में ज्योति का ध्यान	3 भ्रूमध्य के निराकार ज्योति का ध्यान

ख. 4 भ्रूमध्य में दीर्घघण्टा निनादवत तारिका का चिन्तन	(भ्रूमध्य में तारिका का चिन्तन) भ्रूमध्ये चिन्तयेद्वापि तारिकां तारनादिनीम्।। (ल.तं. 43/51)
ग. उत्पन्नभावों में तत्वों का चिन्तन	यह भी कहा गया है कि घट या कूप आदि जितने रूप में भाव उत्पन्न हो उसमें शास्त्रोक्त विधानानुसार तत्वों का चिन्तन करना चाहिए तथा सभी को लक्ष्मी में उनकी अहंभावना (अहन्ता) के रूप में चिन्तन करना चाहिए।
घ. संसार के समस्त भावों में भगवती की मूल कारणता का ध्यान	जगत में जितनी भी वस्तुएं हैं उनमें मूल कारण के रूप में भगवती लक्ष्मी को अनुस्यूत मानना चाहिए। (ल.तं./43/54)
ङ. समस्त युग्मों में लक्ष्मी नारायण का ध्यान	योगी को चाहिए कि वह संसार के समस्त दम्पत्तियों, युगल सत्ताओं, युग्मों अर्थात्—नर-नारी, क्रिया-कर्ता, आधार-प्राधेय, शक्ति-शक्तिमान, गुण-गुण्य, शुभ-अशुभ, भोक्ता-भोग्य, उपाय-उपायकर्ता, शब्द-अर्थ आदि समस्त द्वन्द्वभूत युगल वस्तुओं को लक्ष्मी-नारायण के रूप में देखे।।

(72) ***प्रत्येक जड़-चेतन नारी में भगवती का दर्शन**— योग की ध्यान-प्रक्रिया के अन्तर्गत ही योगी को संसार की प्रत्येक नारी को भगवती लक्ष्मी के रूप में ही देखना चाहिए।
'सिया राममय सब जग जानी,
करउं प्रनाम जोरि जुग पानी।। की ही भांति प्रत्येक योगी को सारे विश्व को लक्ष्मीनारायण के रू‍ में भी देखना चाहिए। यहीं तांत्रिक ध्यान का स्वरूप है।

(73) ***नारी को ब्रह्म मानकर उसका ध्यान**— योगियों के लिए इस ध्यान का भी विधान किया गया है कि वह प्रत्येक नारी को ब्रह्म के रूप में कल्पित करे—
'अनुस्मृत्य गृणन् ब्रह्म भावयेदवे मां धिया।।

ऐसा करने से योगी को उसकी योग-साधना का अन्तिम लक्ष्य **'समाधि'** भी प्राप्त हो जाता है—
ततः समाधिसम्पत्तौ तत्राविष्टा भवाम्यहम। —लक्ष्मी तंत्र (43/78)

(74) ***तारिकाराधना—'लक्ष्मी तन्त्र'** (44/8,9,10) में कहा गया है कि जो योगी होते हैं वे—
(1) तारिका नामक **'ह्रीं'** की ही आराधना करते हैं।
(2) **'ह्रीं स्वाहा'** मन्त्र योगी; देवता एवं ब्रह्म आदि द्वारा पूजित है।
(3) योगियों के द्वारा (या लक्ष्मी नारायण द्वारा) ही संज्ञा मंत्र का प्रभाव वर्णित किया जा सकता है अन्य के द्वारा नहीं। (यहां योगी को लक्ष्मी और लक्ष्मी नारायण के समतुल्य उंचा स्थान दिया गया है।)

(75) ***'शब्द ब्रह्म'—'शब्दब्रह्म' की साधना** भारतीय योग शास्त्र, वेदान्त, तंत्र, बौद्ध-जैन योग, संगीत एवं वैष्णव-शैव-शाक्त आगम साहित्य, काव्य आदि सभी शास्त्रों में किसी न किसी रूप में स्वीकृत है किन्तु प्रधान रूप से यह योगशास्त्र की साधना है। **'नादानुसन्धान'** उद्गीथोपासना' **'अजपाजप' 'सोऽहं साधना' 'हंस योग'** आदि सभी साधनाओं में **शब्दब्रह्म** अनुस्यूत है। यह **'मंत्रयोग'** का भी प्राण है और **'नाद'** तथा **'शक्ति'** का स्वरूप है। भगवती कुण्डलिनी एवं 'परावाक्' का भी यह रूपान्तर है।

(76) ***'शब्दब्रह्म' का वैलक्षण्य**—नाथयोग एवं तांत्रिकयोग की तो यह प्रमुख साधना है। वैसे तो **'शब्द ब्रह्म'** ही **'परब्रह्म'** तक पहुंचाने की सीढ़ी है—

'शब्दब्रह्मणि निष्णातः पर ब्रह्माधिगच्छति।।'

किन्तु इसके अतिरिक्त **'शब्दब्रह्म'** (1) समस्त शास्त्रों, समस्त वर्णमालाओं, समस्त ध्वनियों, समस्त अर्थों, समस्त देवी-देवताओं एवं समस्त भगवन्नामों एवं मंत्रों का भी मूल बीज है। (2) समस्त पञ्च तन्मात्राओं, पञ्चभूतों, अध्वों (षडध्व) प्राणों, चेतनाओं आदि सभी का मूल है।

वैष्णवागम मानता है कि **भगवती लक्ष्मी स्वयं** 'शब्दब्रह्म' है—

1. **हिताय सर्व जीवानामुन्मिषन्ती स्ववाञ्छया।**
शब्दब्रह्ममयी भूत्वा मातृकामन्त्रविग्रहा।
भवामि मन्त्ररूपाहं तत्तद्वाच्यानुकारिणी।।

(77) ***'शब्दब्रह्म' की साधना-पद्धति**—

शब्दब्रह्म की साधना हेतु प्रक्रिया इस प्रकार है—

'प्रथमं तार रूपेण यथास्म्येवं समुद्धरेत्।
प्रथमं ध्रुवमादाय ततः कर्ण समुद्धरेत्।
नाभिं समुद्धरेत्पश्चात् त्रयमेकत्र योजयेत्।
ओमित्येतत् समुत्पन्नं प्रथमं ब्रह्मतारकम्।
बिन्दुना भूषयेत् पश्चान्नादेन तदनन्तरम्।।

(78) ***'शब्दब्रह्म' के ध्यान की पद्धति**—

इसका जप 'ओम् ओम्' के रूप में नहीं किया जाता इसके जप एवं ध्यान की पद्धति इस प्रकार है—

ध्यायेत् सन्ततनादेन तैलधारामिवाततम्।
एत तद्वैष्णवं रूपं त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।

—लक्ष्मी तन्त्र (24/7)

ॐ (नाद) का ध्यान तैलधारावत किया जाता है। शब्दब्रह्म त्र्यक्षरात्मक मंत्र है।

(79) 'शब्दब्रह्म' सम्बंधी की वैष्णवागम की दृष्टि—

वैष्णवागम 'शब्दब्रह्म' के स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत करता है—

1	2	3
'अ' के अधिदेवता: **'अनिरुद्ध' है**	'उ' के अधिदेवता **'प्रद्युम्न' हैं।**	'म' के अधिदेवता **'संकर्षण' हैं।**

4 'बिन्दु' के अधिदेवता: **'वासुदेव' हैं।**	'अनिरुद्ध स्त्वकारोऽत्र' प्रद्युम्नः पञ्चमः स्वरः।
ओंकार (शब्दब्रह्म) में स्थित **'नाद'** की पराकाष्ठा	संकर्षणों मकाररस्तु' वासुदेवस्तु बिन्दुकः।। (लक्ष्मी तंत्र 25/8)

अहन्तास्वरूपा भगवती परमेश्वरी है—

'नादस्य या परा काष्ठा साहन्ता परमेश्वरी।। (24/9)

'नादान्त गगनं नामक श्रेष्ठ शक्ति एवं शब्द ब्रह्म भगवती लक्ष्मी ही हैं—

'शक्तिः सा परमा सूक्ष्मा नादान्त गगनाह्वया।

शब्दब्रह्ममयी सूक्ष्मा साहं सर्वावगाहिनी।।

'नाद' के विराम होने पर जो स्वयं प्रस्फुटित होती है, उसी परम ज्योति को **'लक्ष्मी नारायण'** कहते हैं। [1]

'आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दु समुद्भवः।।

---

(1) विरामेसति नादस्य यः स्फुरीभवति स्वयम्।
ज्योतिस्तत्परमं ब्रह्म लक्ष्मीनारायणा ह्वयम्।। (24/11)

'शक्ति' का प्रथम परिणाम या अवस्थान्तर ही 'नाद' है अतः 'नाद' और परमात्मा की शक्ति का पयार्य है।

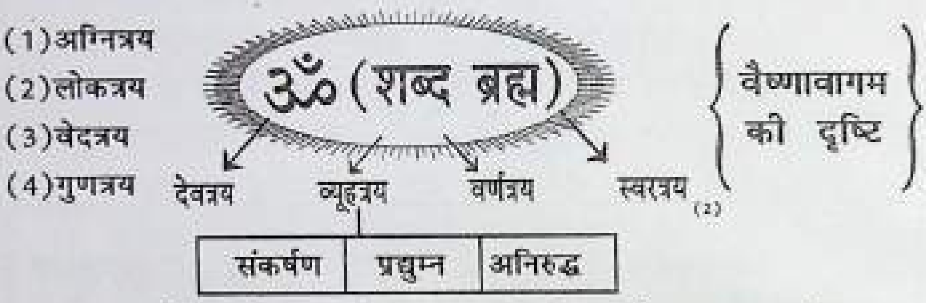

(80) ***योग-प्रतिपाद्य 'शब्दब्रह्म' की सर्वमूलकता**— वैष्णवागम में ॐशब्द ब्रह्म को कारणों का कारण स्वीकार कर लेने से उसकी सर्वमूलकता सिद्ध होती है क्योंकि—

(1) 'अ' समस्त शब्दों की उत्पत्ति का कारण है।
(2) 'उ' तीनों सूर्य, सोम एवं अग्नि रूप सारे तेजों का जनक है।
(3) 'म' पृथ्वी से लेकर प्रकृति पर्यन्त समस्त तत्वों का जनक है।

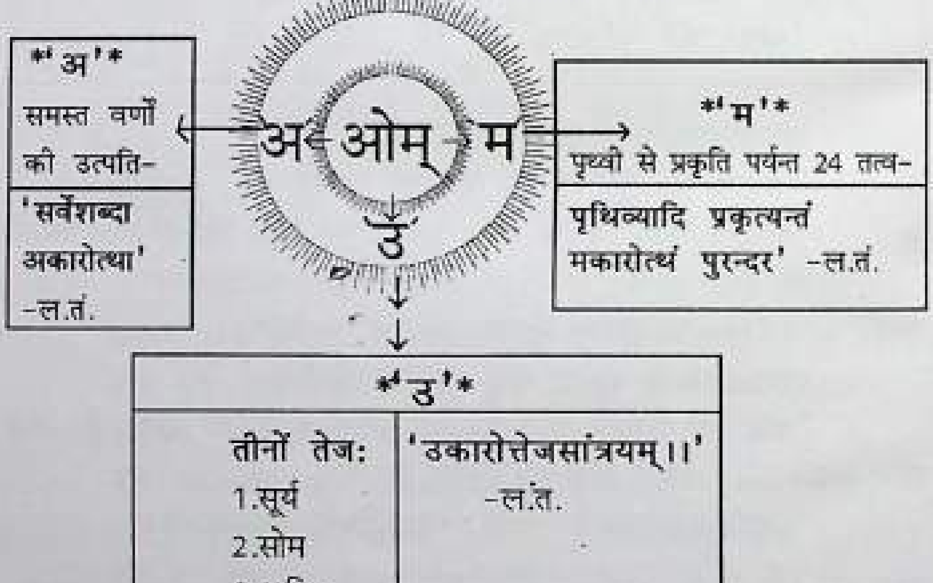

(2) इस संसार में जो कुछ भी सभी तीन-तीन के समूह में हैं। इनमें आद्यत्रितय ज्योतिर्मय अर्धमात्रा के रूप मे 'नादबिन्दु हैं। —लक्ष्मी तंत्र (24/20)

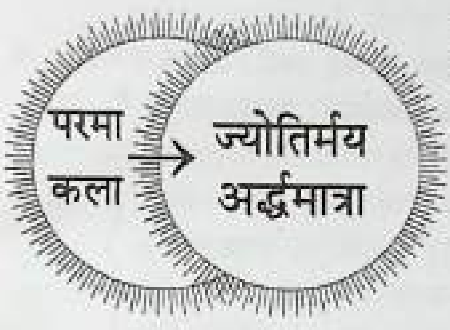

आविर्भाव—

1. आरंभिक 6 स्वर - अ,आ,इ,ई,उ,ऊ
2. अन्तिम 6 स्वर - ऋ लृ ए ऐ ओ औ।
3. संयोगी 6 स्वर - आ, ई, ऊ, लृ ऐ औ।

1. गुर्वाज्ञा लेकर शिष्य को 'ॐ' (मंत्र) के पुरश्चरणार्थ किसी महानदी के तट पर सिद्ध स्थल जाना चाहिए।

*पुरश्चरण (पञ्चाङ्ग)

↓

1	2	3	4	5
जप	होम	तर्पण	मार्जन	विप्र भोजन

1. पलाश के जंगल में निर्जन स्थान में, समतल भूमि में, पुरश्चरण करे। नित्य याग हवन करे। काले मृग के चमड़े का वस्त्र पहने।
2. ब्रह्मचर्य एवं जितेन्द्रियता के साथ सन्ध्यात्रय में स्नान करना चाहिए। हाथ में पलाश का दण्ड धारण करना चाहिए।
3. प्रातः मध्याह्न एवं सायंकाल वन्दना करनी चाहिए।
4. दूध या यव से निर्मित भिक्षान्न में से एक का केवल एक बार भोजन करना चाहिए। मौन व्रत रखें।
5. कुशासन पर बैठे एवं चटाई पर लेटे एवं सन के कपड़े पहने और 10 लाख ॐ का जप करें। —लक्ष्मी तंत्र (24/39)

***यन्त्र— कुलार्णवतंत्रकार की दृष्टि—** चूंकि यह यम एवं भूत आदि अनिष्टकारी तत्वों से निरंतर रक्षा करता है अतः इसे 'यंत्र' कहते हैं—

यम भूतादि सर्वेभ्यो भयेभ्योऽपि कुलेश्वरि।
त्रायते सवतश्चैव तस्माद् यंत्रमितीरितम्।। (1)

(1) कुलार्णवतंत्रकार (61)

***यन्त्र एवं चक्र —**

वैष्णवागम में 'यंत्र' के नाम से तो नहीं किन्तु 'चक्र' के नाम से यंत्रों पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है— यथा-

'मूलाधारं, स्वाधिष्ठानं, मणिपूरमनाहतम्।
विशुद्धं च तथाज्ञाख्यं 'षटचक्रं' विभाव्य च।
'कुण्डलिन्या स्वशक्त्या च सहित परमेश्वरम्।
सहस्त्रदलपद्मस्थं हृदये स्वात्मनः प्रभुम्।
ददर्श द्विभुजं कृष्णं पीत कौशेयवाससम्।। (2)
} षट चक्र

'अहिर्बुध्न्य संहिता' के उन्चासहवें अध्याय में 'सुदर्शन चक्र' के स्वरूप की सविस्तार विवेचना की गई है। इसी ग्रंथ के 36हवें अध्याय में कहा गया है कि भगवान विष्णु—

1. 'महालक्ष्मी' रूपा शक्ति से जगत की सृष्टि करते हैं।
2. 'लक्ष्मी शक्ति' के द्वारा ही विष्णु जगत का पालन एवं संहार भी करते हैं किन्तु वे—
3. 'सुदर्शन चक्र' से दैत्यों का विनाश करते हैं।

'अनेन सर्वं सृजति देवोऽनेनैव पाति च।
अनेन संहृतिं देवो विश्वस्यान्ते करोति च।।
अनेन दानवान् दैत्यान्निहन्ति मधुसूदनः।। (3)

इतना ही नहीं वे 'सुदर्शन चक्र' से वे सारे कार्य निष्पादित करते हैं—'क्रियतेऽनेन तत्कर्म सर्वं सर्वगतेन वै।।'

1. विष्णु के समस्त कार्यों को पूर्ण करने हेतु प्रधानभूता दो ही शक्तियां हैं। इसी से वे जगत की धुरी का संचालन करते हैं—
1. प्रथम शक्ति है 'इच्छात्मिका शक्ति'। (महालक्ष्मी)
2. द्वितीय शक्ति है क्रियात्मिका शक्ति। (क्रियात्मिका शक्ति)

'प्रथमा परमा लक्ष्मीर्जगत्त्रातुः कुटुम्बिनी।।
'तत्व विद्भिरिदं प्रोक्तं द्वितीयेह सुदर्शनम्।। (3)

(81) *कुण्डलिनी तत्व और वैष्णवागम—'कुण्डलिनी' वह ब्रह्माण्डव्याप्त शाश्वत शक्ति है जिसमें सम्पूर्ण जगत कुण्डलित रहता है। यह शब्द शक्तिस्वरूप है—

(2) ना.पं. (1/3/71) (3) अहि.सं. (36/55-56)

'सैषा कुण्डलिनी शक्तिर्यस्यां कुण्डलितं जगत्।
शब्दशक्तिस्वरूपेण यथा तदवधारय।। [1]

'शिवसंहिता' में कुण्डलिनी के स्वरूप एवं उसके अवस्थान के विषय में इस प्रकार कहा गया है—

'तत्र विद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता।
सार्धत्रिकारा कुटिला सुषुम्नामार्ग संस्थिता।

अर्थात् योनिमण्डल में स्थित 'कुण्डलिनी परदेवता' विद्युत के समान हैं। वह साढ़े तीन वलयों में कुण्डलित हैं और सुषुम्ना मार्ग को रोके हुए स्थित हैं।

वैष्णवागम में 'कुण्डलिनी शक्ति' का भी उल्लेख है—

'तदूर्ध्वे काम बीजं तु फलशान्तीन्दुनादकम्।
तदूर्ध्वे तु शिखाकारा कुण्डली ब्रह्मविग्रहा।। [2]

'अहिर्बुध्न्य संहिता' (32हवें अध्याय) में कहा गया है कि—

शरीरं ध्रियतेयेन तस्मिन् वसति कुण्डली।। —अहि.सं. (32/9)

अर्थात् अण्डाकार मूल कन्द है। उसी में 12 अरों वाली नाभिचक्र स्थित है। उसी के द्वारा शरीर धारण किया जाता है। उसी में कुण्डली निवास करती है। यह भी कहा गया है कि चक्र के चारों ओर आठ मुखों वाली कुण्डलिनी निवास करती है—

'वर्तते परितश्चक्रमष्टवक्त्राथ कुण्डली।। (32/11)

यह वैष्णवी कुण्डलिनी अष्ट प्राकृतिक भोगों (फणों) से उस चक्र को घेर कर सुषुम्ना नाड़ी से जाने वाले 'ब्रह्मरंध्र' को अपने मुख से आच्छादित करके स्थित है—

'अष्टप्रकृतिरूपेण भोगेना वेष्टय वैष्णवी।
ब्रह्मरंध्र सुषुम्नायाः पिदधाति मुखेन वै।। (अहि.सं. 32/12)

'कुण्डलिनी' को भारतीय योगशास्त्र में 'जगतसंसृष्टिरूपा' कहा गया है। इसे ही 'देवों द्वारा नमस्कृत वाग्देवी' भी कहा गया है—

'जगत संसृष्टि रूपा सा निर्वाणे सततोद्यता।
वाच्यमवाच्या वाग्देवी सदा देवैर्नमस्कृता।।
यह मुक्ति की ओर उन्मुख शक्ति अवाच्य है। [3]

●●●

(1) लक्ष्मी तंत्र (26/15) (2) नारद पञ्चरात्र (5/10/10)
(3) शिव संहिता (द्वि.पटल 24)

बन्धन और मुक्ति

चतुर्दश अध्याय

वैष्णवतंत्रोपदेष्टा भगवान शिव एवं श्रोता ऋषि तथा देवता

चतुर्दश अध्याय

बन्धन और मुक्ति

प्रदीप इव शान्तार्चिः परिव्राड् ध्यानमास्थितः।
देहसंस्कारनाशेन वैष्णवं श्रयते पदम्।। —अहि.सं.(15/75)
केवलो धर्म नित्यश्च महाप्रस्थानमाचरन्।
वीतशोकभयो वन्यो ब्रह्मलोके महीयते।। —अहि.सं. (15/59)
न मे बन्धो न मोक्षो मे भीतस्यैतां विभीषिकाः।
प्रतिबिम्बमिदं बुद्धेर्जलेष्विव विवस्वतः।। —विज्ञान भैरव
शालीन् पलालपुरुषोऽवति यः कृशानु
दग्धाननश्चटक पेटक भीतिदानैः।
त्रातुं स एव विहितो विपिने विद्ध्यति।
किं तत्र भंजनकृत्वां वनकुंजराणाम्।। —कल्हण
अजरामरतामेति सोऽणिमादि गुणैर्युतः।
योगि नीनां प्रियो देवि सर्वमेवलापकाधिपः।
जीवन्नपि विमुक्तोऽसौ कुर्वन्नपि न लिप्यते। —विज्ञान भैरव (138)
कर्मसाम्यं समासाद्य शुल्क कर्मव्यपाश्रयः।
वेदान्त-ज्ञान-सम्पन्नः सांख्य योग-परायणः।
सम्यक्सात्वतविज्ञानाद्विष्णौ सद्भक्तिमुद्वहन्।
कालेन महता योगी निर्धूत क्लेश-संचयः।
विधूय विविधं बन्धं द्योतमानस्ततस्ततः।
प्राप्नोतिं परमं ब्रह्म लक्ष्मीनारायणात्मकम्।। —ल.त. (13/12-14)
आत्मानो जीवसंज्ञास्ते बन्ध-मोक्षौ व्रजन्ति ते। (अहि.सं. 6/37)
प्राप्त वेदान्त-विज्ञानो वैष्णवं श्रयते पदम्।। अहि. सं. 15/53)
सम्प्राप्य तत्वविज्ञानं वैष्णवं श्रयते पदम्। (अहि.सं. 15/59)

* 'नारद पञ्चरात्र' की दृष्टि—

लीनता हरिपादाब्जे मुक्तिरिर्प्यभिधीयते।
इदमेव हि निर्वाणं वैष्णवानाम सम्मतम्।
सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यमित्यतः क्रमात्।
भोगरूपं च सुखदमिति मुक्तिचतुष्टयम्। -नारद पञ्चरात्र (2/7/2-3)

*वैष्णवपदयामुक्ति–

(1) *वैष्णवपद की प्राप्ति–

वैष्णवागम में **'मोक्ष (मुक्ति)'** और **'वैष्णव पद की प्राप्ति'** या **'निर्वाण'** पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। **'अहिर्बुध्न्य संहिता'** (अ. 15/75) में कहा गया है कि एक सन्यासव्रती परिव्राजक ध्यान में निमग्न रहकर एवं अपने देह-संस्कार का नाश करके **'वैष्णवपद'** प्राप्त कर लेता है–

'प्रदीप इन शान्तार्चिः परिव्राटध्यानमास्थितः
देह संस्कार नाशेन वैष्णवं श्रयते पदम्।।

—अहि. स.

'शुद्धविद्या' (ज्ञान) ही **मुक्ति का साधन है। 'लक्ष्मी तंत्र'** में कहा गया है कि —

'आविद्यं मत्स्वरूपं तु व्याख्यातृ ते पुरा मया।
शुद्धविद्यासमायोगात् सङ्कोचं यज्जहाप्यसौ।
तदा प्रद्योतमानोऽयं सर्वतो मुक्त बन्धनः।।

भगवती का जो अविद्या स्वरूप है। (बंधन प्रद है) वह शुद्ध ज्ञान के समायोग से संकुचित हो जाता है। अतः सर्वत्र बन्धन मुक्त हो जाता है। यद्यपि भगवती सभी जीवों में आत्मभूता होकर निवास करती हैं। तथापि अविद्या के कारण जीव भगवती का साक्षात्कार नहीं कर पाता–

'एवंरूपमपि त्वेतच्छाद्यतेऽनाद्यविद्यया।
सुदृश्यमात्मभूतां मां नैव पश्यत्यसौ ततः।। (13/38)

'अज्ञान' ही बंधन का कारण है। ज्ञानोदय के बिना अज्ञान का निवारण **नहीं** होता। **जब तक** भगवती करुणार्द्र होकर जीव **को देखती** नहीं तब तक जीव का ज्ञान **संकुचित** रहता है–

'यावन्निरीक्ष्यते नायं मया कारुण्यवत्तया।
तावत्संकुचिता ज्ञानः करणैर्विश्वमीक्षते।। (13/33)

'अहिर्बुध्न्य संहिता' में कहा गया है कि कोई भी साधक —

1. निष्काम भाव से एवं अहंकार एवं लोभ से रहित होकर,

2. मन एवं कर्म के द्वारा आचरण करके,
3. उत्तम तर्कों एवं प्रयत्न से युक्त रहकर,
4. जन्म के कष्टों को स्मरण करते हुए,
5. श्रौत स्मार्त क्रियाओं एवं नित्य-नैमित्तिक कर्मों में संलग्न रहकर,
6. उत्तम ज्ञान प्राप्त करके वेदान्त के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति कर **'वैष्णव पद'** प्राप्त कर लेता है—

क. 'प्राप्तवेदान्तविज्ञानो वैष्णवं श्रयते पदम्।।

(अहि.सं. 15/5-53)

ख. 'सम्प्राप्य तत्वविज्ञानं वैष्णवं श्रयते पदम्।

(अहि.सं. 15/59)

ग. नित्य धर्माचरण करने, महाप्रस्थान का आचरण करने एवं शोक तथा भय का त्याग करने से वाणप्रस्थी ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है—

केवलो धर्म नित्यश्च महाप्रस्थानमाचरन्।
वीतशोकमयो वन्यो ब्रह्मलोके महीयते।। (15/60)

(2) * बन्धन और मुक्ति *

'मलत्रयमिदं प्रोक्तं बन्धत्रयमिदं बुधैः।।
तिरोभावनशक्त्यैवं वैष्णव्या बन्धमेयुषः।
अविद्यास्मित्वरागाद्या मलं समुपचिन्वते।।
'मलत्रय' ही बन्धनत्रय भी है।

—अहि.सं.(14/20-21)

'विधूय विविधं बन्ध द्योतमानस्ततस्ततः।
प्राप्नोति परमंब्रह्म लक्ष्मीनारायणत्मकम्।। (ल.तं. 13/14)

(3) *'कर्म' बन्धन के प्रधान कारण के रूप में—

*** 'कर्मणा बध्यते जन्तुः'—कर्म ही 'बन्धन' का कारण है।**

संसार में पड़ा हुआ जीव क्लेश-प्रदा अविद्या के क्लेशों को प्राप्त करता हुआ प्रेप्सा एवं जिहासा से अभिप्रेरित होकर अपने इष्टार्थ की प्राप्ति के लिए तथा अनिष्ट-विवारणेच्छा करता हुआ कामनावश शुभाशुभ फल देने वाले कर्मों को निष्पादित करता है। फिर उन-उन कर्मों के विपाक (परिणाम) स्वरूप दैववश

शुभाशुभ से मिश्रित जाति, आयु एवं भोगों को प्राप्त करता है—

'ततः कर्मविपाकस्थः शुभाशुभविमिश्रितान्।
जात्यायुरनुबन्धान् स प्राप्नोति विधिचोदित्:।। (14/24)

'बन्धन' तो जीव के (1) **'आकार'** (2) **'विज्ञान'** एवं (3) **'ऐश्वर्य'** के तिरोधान के कारण और **'तिरोधान शक्ति'** द्वारा **'अविद्या'** **'अस्मिता'** एवं **'रागादि'** **'मलों'** से जीव के आच्छादित होने एवं बन्धन में पड़ जाने के कारण हुआ करता है। परमात्मा की इसी **'निग्रह शक्ति'** के द्वारा सृष्टि-स्थिति-प्रलय रूप वाली शक्तियां उन उन निष्पादित संचित कर्मों से जीव को संसार के बन्धन में प्रवृत्त करती रहती हैं। जीव का बन्धन अनादि है— **'बंधोऽनादिरयं प्रोक्तो'**

'मुक्ति' भगवत्तामयी (**'सायुज्य'**, **'सामीप्य'**, **'सालोक्य'** एवं **'सारूप्य'** रूपा) है—

भगवत्तामयी प्रोक्ता मुक्तिश्च त्रिपुरद्विषा।। (14/3)

मुक्ति का साधनभूत **'तत्वज्ञान'** दो प्रकार का है। निष्काम धर्म मुक्ति का साधन है—**'तस्याश्च साधनं साक्षात् तत्वज्ञानं द्विधास्थितम् साधनं तस्य च प्रोक्तो धर्मो निरभिसन्धिक:।।** (14/3-4)

(4) *'पञ्चमी शक्ति'*

पञ्चमी शक्ति मोक्षसाध्य है। वह किसी का साधन नहीं होता

'मोक्षश्च साध्य एवेति' (अहि.सं.13/37)
बन्धन एवं बन्धन के कारण दोनों ही अनादि हैं—
'बन्धोऽनादिरयं प्रोक्तो बन्धहेतुश्च नादिमान'।। (14/29)

संसार-चक्र में अपने कर्म के द्वारा भ्रमण करते हुए दुःख से आकुल जीव पर कोई अहैतुकी भगवत्कृपा उत्पन्न होती है। इसे ही हम **'विष्णु की संकल्परूपिणी पंचमी शक्ति'** कहते हैं।

'या ह्युक्ता पञ्चमीशक्ति विष्णुसंकल्परूपिणी।।
(अ.सं.14/29)

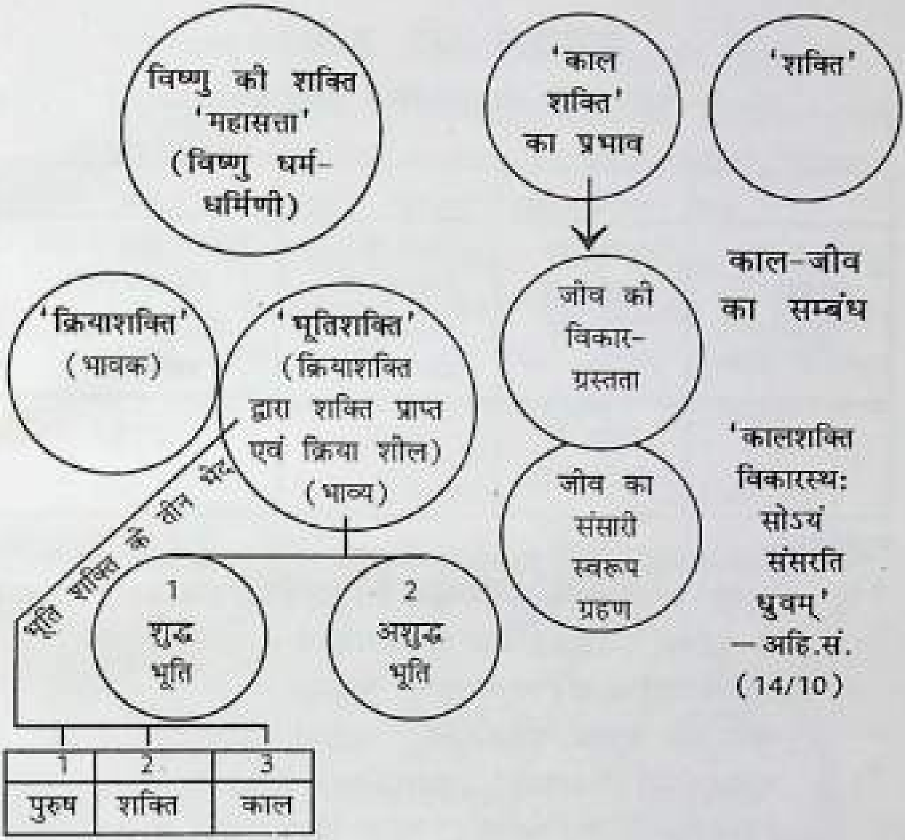

1	2	3
पुरुष	शक्ति	काल

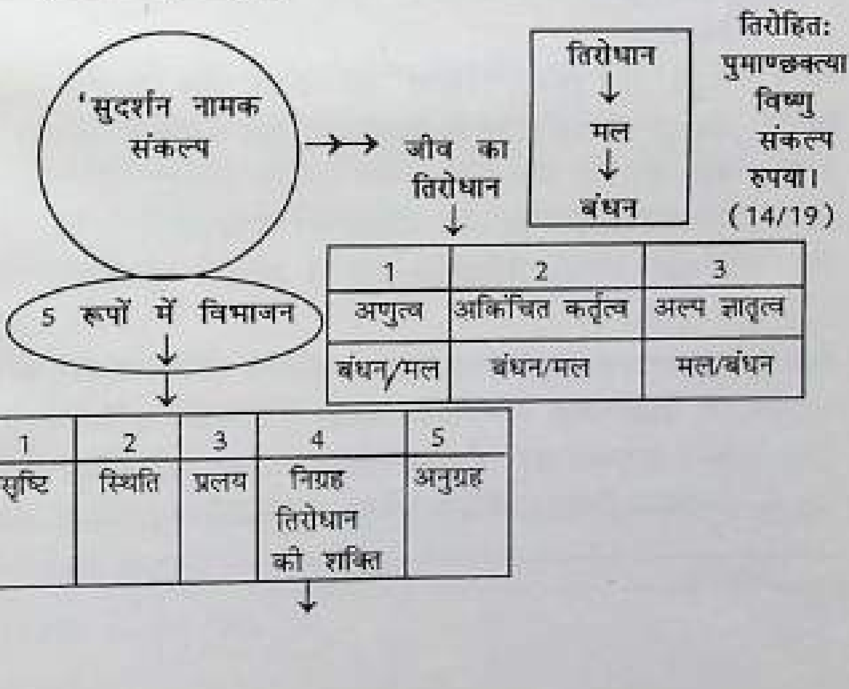

1	2	3
अणुत्व	अकिंचित कर्तृत्व	अल्प ज्ञातृत्व
बंधन/मल	बंधन/मल	मल/बंधन

1	2	3	4	5
सृष्टि	स्थिति	प्रलय	निग्रह तिरोधान की शक्ति	अनुग्रह

तिरोधान की शक्ति

*जीव या पुरुष का 'तिरोधान'

↓

1	2	3	4
पुरुष का आकार से तिरोभाव	पुरुष का ऐश्वर्य से तिरोभाव	पुरुष का विज्ञान से तिरोभाव (ज्ञान-संकोच)	पुमांसं जीव संज्ञंसा तिरोभावयति स्वयम्। आकारै श्वर्यविज्ञान
पुरुष में अणुत्व	पुरुष में अकिंचित्करता	अज्ञता	तिरोभावन कर्मणा। (14/16

सारांश—

*1. 'पुरुष' अनादि एवं अपरिच्छेद्य है। यह चिदानन्दस्वरूप भगवान से भावित (उद्भूत) एवं भगवन्मय है—
अनादि परिच्छेद्यश्चिदानन्दमयः पुमान्।
भगवन्मय एवायं भगवद्भावितः सदा।। (14/6)

*2. भगवान की 'महासत्ता' (महाशक्ति) के दो भेद हैं-
(क)'भूति' (ख)'क्रिया'। 'भूति'-क्रिया शक्ति के द्वारा नाचती है।

*3. 'भूति' के 'पुरुष', 'शक्ति' एवं 'काल' तीन भेद हैं।

*4. जब पुरुष काल शक्ति से विकारग्रस्त होता है तब वे 'संसारी' बन जाता है।

(5) *कालशक्ति→(जीव की बन्धन ग्रस्तता)[1]
('काल शक्ति विकारस्थः सोऽयं संसरति ध्रुवम्।।')

—(अहि.सं)

भगवान का (पूर्णकाम) दिव्य 'स्वातंत्र्य' अवाप्तसर्वकाम होने पर भी विश्वरचना की क्रीडा करता है। अर्थात् सृष्टि करने का कोई प्रयोजन नहीं है। यह केवल भगवान की क्रीड़ा है—
'अवाप्त विश्वकामोऽपि क्रीडते राजवद्वशी।। (अहि.सं.14/13)

---

(1) अहि. सं.

*5. 'क्रीड़ावाद' —विश्व भगवान की क्रीड़ा मात्र है।

(6) **विष्णुसंकल्परूप 'तिरोधानशक्ति' के कार्य**— भगवान का संकल्प 'सुदर्शन' कहलाता है। उसके 'सृष्टि', 'स्थिति', 'प्रलय', 'अनुग्रह', 'निग्रह' नामक पांच भेद हैं।

*6. 'निग्रह' या 'तिरोधानकरी शक्ति' अपनी 'तिरोभावन शक्ति' के द्वारा जीव के 'आकार', 'ऐश्वर्य' एवं 'विज्ञान' का तिरोभावन करके, आकार-तिरोधान द्वारा उसमें अणुत्व, ऐश्वर्य-तिरोधान द्वारा अकिंचित्करता एवं ज्ञान-तिरोभावन द्वारा अज्ञता उत्पन्न करती है।

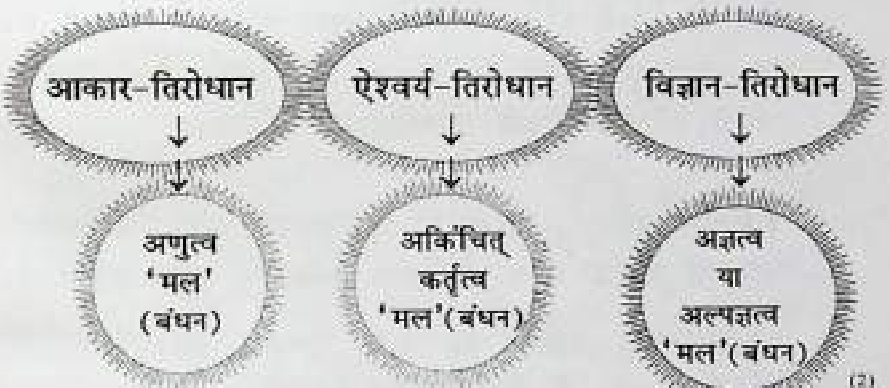

(2)

*7. पुरुष रुप जीव विष्णुसंकल्परुप भगवान की शक्ति के द्वारा अपनी सर्वकर्तृत्व, सर्वव्यापकत्व एवं सर्वज्ञातृत्वं की शक्ति (तिरोधानकरी शक्ति द्वारा) खो देता है और उसके स्थान पर-अणुत्व, अकिंचित्कर्तृत्व एवं अल्पज्ञत्व का शिकार बन जाता है। उसकी शक्तियों का यह संकोच ही 'मल' एवं 'बंधन' है।

*8. वैष्णवी शक्ति की 'तिरोभावन शक्ति' से बन्धनग्रस्त होने वाले जीव का 'अविद्या' 'अस्मिता', 'राग', आदि 'मल' घेर लेते हैं।

*9. अविद्यादिक क्लेशों से क्लेशित जीव प्रेप्सा-जिहासा से उत्प्रेरित होकर इष्टार्थ-प्राप्त्यर्थ एवं अनिष्ट निवारणार्थ कामनावश शुभाशुभ फलप्रद कर्म करता है।

---

(2) अहि. सं. (अ. 14)

*10. उन-उन निष्पादित कर्मों के '**विपाक**' द्वारा जीव को उन कर्मों के शुभाशुभ फल प्राप्त होते हैं।

*11. जीव सुख की वासनाओं का संचय करने की अपनी अखण्ड क्रिया एवं तन्निहित मानसिक वृत्ति के द्वारा वासनाओं को दृढ़मूल करता है और इसके द्वारा '**तिरोधानशक्ति**' को जीवगत शक्तियों को संकुचित करने का आमंत्रण देता है।

*12. '**भूति**' के जो दो भेद हैं—'**काल**' एवं '**शक्ति**'— ये '**निग्रहशक्ति**' की सहायता करते हैं।

*13. इसी पारमात्मिक शक्ति से तीनों (सृष्टि-स्थिति-प्रलय) शक्तियां जीव को उसके संचित कर्मों से **संसार-बंधन में बांधती हैं।**

*14. यह बंधन और बंधन का कारण दोनों अनादि हैं—
'**बन्धोऽनादिरयं प्रोक्तो बन्धहेतुश्च नादिमान।।**'
—(अहि.सं.14/28)

*15. **"पञ्चमी शक्ति'**— भगवान की अनुग्रहात्मिका शक्ति, '**शक्तिपात**', '**पञ्चमी शक्ति**' जीव को उसके **बन्धन से मुक्त करती है।**

अनुग्रहात्मिका शक्तिः सा कृपा वैष्णवी परा।
शक्तिपातः स वै विष्णोरागमस्थैर्निगद्यते। (14/30)
'**या ह्युक्ता पञ्चमीशक्ति विष्णु संकल्परूपिणी।।** (14/29)

सुदर्शनमयी अनुग्रहात्मिका (करुणा वर्षिणी) वैष्णवी शक्ति द्वारा करुणा द्वारा जीव को स्वीकार करने पर शक्ति की करुणावर्षा से समीक्षित बद्ध जीव अपने '**संचित**' एवं '**क्रियामाण**' कर्मों को सम बनाता है—

क. (करुणावर्षा द्वारा)'**शक्ति**' का जीव को अपना स्वीकार करना

ख. '**शक्ति**' द्वारा जीव की समीक्षा

ग. विष्णुसमीक्षित जीव के संचित कर्मों में '**साम्य**' का उदय→

घ. कर्मफलों का नाश→जीव की मुक्ति।[3] (जीव द्वारा '**वैष्णव पद**' की प्राप्ति)[4]

---

(1) अहि. सं. (14) (2) अहि. सं. (14)
(3) अहि. सं. (14/34-35) (4)अहि. सं. (14/40)

(8) *अनुग्रहात्मिका शक्ति और मुक्ति—जीव अपने को विविध बन्धनों में फंसाना तो जानता है किन्तु उससे मुक्त होना नहीं जानता। मुक्ति का दुष्कर कार्य तो भगवत्कृपा करती है।

अनुग्रहात्मिका शक्तिः सा कृपा वैष्णवी परा।
शक्तिपातः स वै विष्णो रागमस्थैनिगद्यते।। (अहि.सं. 14/30)

इस कृपा या भगवदग्रह को 'शक्तिपात' भी कहते हैं। यह कार्य भगवान की 'अनुग्रहात्मिक। शक्ति' करती है।

(9) *भगवान की जीव सम्बंधी दो प्रधान शक्तियां

"पञ्चमी शक्ति' *"निग्रह शक्ति'*

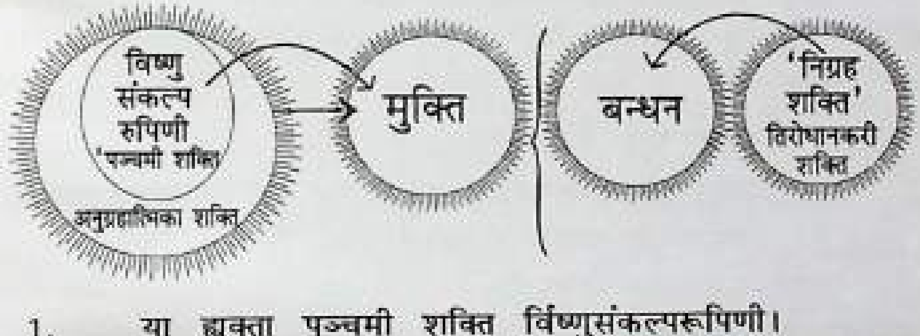

1. या ह्युक्ता पञ्चमी शक्ति र्विष्णुसंकल्परूपिणी।
2. अनुग्रहात्मिका शक्तिः सा कृपा वैष्णवी परा।
शक्तिपातः स वै विष्णोरागम स्थैर्निगद्यते।। (अहि.सं. 14/30)

*'कर्म-साम्य'

सुदर्शनमयी, अनुग्रहात्मिका, विष्णु की करुणावर्षिणी शक्ति जब जीव को इन प्रकार आत्मीकृत करती है तब उसकी 'करुणा- वर्षा' से संदृष्ट एवं भगवान विष्णु से समीक्षित जीव अपने 'संचित', 'प्रारब्ध' एवं 'क्रियमाण' कर्मों को सम बना लेता है अत: उसके तीनों कर्म नष्ट हो जाते हैं।
'कर्मों का साम्य' हो जाने पर और उनके द्वारा होने वाले जीव के भोगों के नष्ट हो जाने पर भगवान का 'शक्तिपात' जीव को संसार रूप संसृति से पार कर देता है—

'अनुग्रहात्मना शक्त्या सुदर्शनमयात्मना।
स्वीकृतो हि यदा विष्णोः: करुणावर्षरू। (39)
समीक्षितस्तदा सोऽयं करुणावर्षरूपया।
'कर्मसाम्यं' भजत्येव जीवो विष्णुसमीक्षितः।।
'शक्तिपातः' स वै जीवमुत्तारयति संसृतेः।
कर्मणी च समे तत्र तूष्णींभावमुपागते।। (1)

***'शक्तिपात'—**

यथा कोई संपत्तिवान पथिक, धन-सम्पत्ति लेकर जाते समय, मार्ग में लुटेरों के द्वारा लूटने के प्रयास करने पर भी किन्हीं कारणों से यदि न लूटा जा सके तो लुटेरे अपनी असमर्थता के कारण यदि उसे न लूट सकने की स्थिति में उसके प्रति उदासीन हो जाते हैं उसी प्रकार **'भगवान की अनुग्रहात्मिका शक्ति'** के द्वारा **'शक्तिपात'** किये जाने के क्षण में शुभाशुभ कर्मों की समतलता (समत्व) होने के कारण कोई भी प्रभाव नहीं डाल पाते। (2)

***मुमुक्षा, वैराग्य एवं विवेक—**

उस **'अनुग्रहात्मिका भगवच्छक्ति'** के पात होते ही **'जीव'** मोक्ष की जिज्ञासा से वैराग्य में प्रवृत्त होता है और विवेक में अभिनिवेश करने लगता है।

***प्रेप्सा' एवं जिहासा—**

यह समय **'प्रेप्सा'** (अपने पूर्ववर्त्ती ईश्वर स्वरूप को प्राप्त करने की आकांक्षा) एवं **'जिहासा'** (मायामय जीवत्व के परित्याग की आकांक्षा) ही मोक्ष-मार्ग के प्रकाश स्तंभ हुआ करते हैं—

'नुन्नः प्रेप्सा जिहासाभ्याभागमाननुसम्पतन्।।'

—अहिर्बुध्न्य संहिता

---

(1) अहि.सं. (14/31-33)

(2) यथा हि मोषकाः पान्थे परिबर्हमुपेयुषि।
निवृत्तमोषणोद्योगाः समाः सन्त उदासते। (34)
अनुग्रहात्मिकायास्तु शक्तेः पातक्षणो तथा।
उदासाते समीभूय कर्मणी ते शुभाशुभे।। (35) —अहि.सं. (अ. 14/34-35)

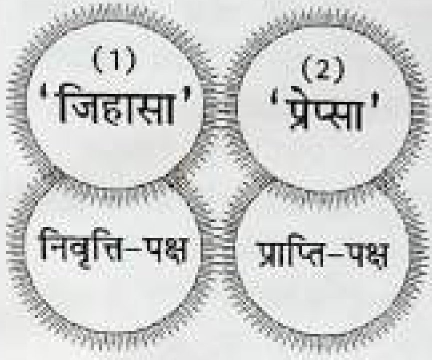

* मुक्ति-मार्ग के पाथेय *
बंधनी शक्ति': तिरोभाव-शक्ति
'बन्धनी जीव कोशस्य तिरोभाव।
भिधा विधा'
— (ल.तं. 12/35)

इस समय मुमुक्षु जीव शास्त्राभ्यास करता हुआ (शास्त्रचिन्तन) करता हुआ एवं गुरुओं के निकट जाकर उन-उन सत्वों के प्रकारों को प्राप्त करके प्रबुद्ध हो जाता है और मान-ज्ञान प्राप्ति के प्रयत्न में तत्पर हो जाता है। गुरुप्राप्त ज्ञान को बढ़ाते हुए अविद्याजनित क्लेशादि को विनष्ट करते हुए समस्त तत्वों का सन्धान करते हुए परमात्मा में बुद्धि लगाकर **'सांख्य योग'** में अविष्ट हो जाता है।

(9) *'वैष्णवपद' की प्राप्ति–

इस प्रकार सत्कर्म में लगकर कठिन तपस्या करते हुए **'ज्ञानी' 'जीव'** वेदान्त-ज्ञान में अपनी अविचल श्रद्धा रखते हुए समुदायात्मक या पृथक मार्ग द्वारा निश्चित मार्ग से दुःसह क्लेशों को सहता हुआ **'वैष्णव पद'** प्राप्त करता है। (1)

जीव प्रचुर ज्ञानावाप्ति के द्वारा अपने चित्त को निर्मल करके सर्वथा शुद्ध एवं दुखमुक्त **'विष्णु पद में प्रवेश'** कर जाता है।

'सम्प्राप्य ज्ञानभूयस्त्वं निर्मलीकृत चेतनः।
अनाविलम संक्लेशं वैष्णवं तद्विशेत् पदम्।। (2)

---

(1) अक्षिण्वन् गुरुसम्बोधं क्षिण्वन् क्लेशादिकानपि।
विचिन्वन् सर्वतः सारमुपचिन्वन परां श्रियम्।।
सांख्ययोग समावेशी सत्कर्मनिरतः स्वयम्।
उग्रव्रतधरो ज्ञानी वेदान्त ज्ञाननिश्चलः।
संहतं विगृहीतैश्च मार्गैरेभिः सुनिश्चयैः।
क्लेशेन महता स्थानं वैष्णवं प्रतिपद्यते।। (अहि.सं. 14/40)

(2) अहिर्बुध्न्य संहिता (14/41)

'वैष्णवागम' में 'ब्रह्मभावापत्ति' को भी मोक्ष कहा गया है। कारण यह है कि इस स्थिति में जीव ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाता है। उसका पुनरावर्तन नहीं होता। वह निरतिशय एवं दिव्य आनन्द का उपभोग करता है।

'जयाख्य संहिता' के अनुसार यह अवस्था नदी का समुद्र में मिलकर समुद्र के साथ एकाकार हो जाना है। 'वैष्णवपद' प्राप्त कर लेने पर मुक्त 'त्रसरेणु' के आकार के किन्तु करोड़ों रश्मियों से भूषित होकर मुक्ति लोक में रहते हैं—

'त्रसरेणु प्रमाणास्ते रश्मिकोटिविभूषिताः।।' (अहि.सं.6/27)

***(10) सांख्यदर्शन की दृष्टि**—इसी सन्दर्भ में सांख्य दर्शन की दार्शनिक दृष्टि की भी पर्यालोचना कर लेनी चाहिए क्योंकि वैष्णवागम सांख्य एवं वेदान्त शास्त्र के सिद्धान्तों को स्वीकार करता है।

वैष्णवागम ने 'सांख्य' एवं 'वेदान्त दर्शन' 'पाशुपत', 'भागवत धर्म' आदि को अपनी दार्शनिक दृष्टि का प्रतिपादक माना है और कहा है कि—

'सांख्ययोगसमावेशी सत्कर्मनिरतः स्वयम्'
'उग्रव्रतधरो ज्ञानी' (पाशुपत दर्शन) वेदान्तज्ञाननिश्चलः'। [1]

वैष्णवागम 'सांख्य' 'योग' एवं 'वेदान्त' से अत्यधिक प्रभावित है अतः सांख्य की दृष्टि भी जान लेनी चाहिए।

***(11) (क) सांख्य दर्शन की 'बन्धन' एवं 'मुक्ति' सम्बंधिनी दृष्टि**—'बन्धन' क्या है? 'बन्धन' एक पाश है जो जीव को अज्ञान के कारण परिबद्ध करके उसे 'पशुपति' से 'पशु' बना देता है। परमार्थतः बन्धन है ही नहीं—

तस्मान्नबध्यतेऽद्धा, न मुच्यते, नापि संसरति कश्चित्।
संसरति, बध्यते, मुच्यते, च नानाऽऽश्रया प्रकृतिः। [2]

---

(1) अहिर्बुध्न्य संहिता (14/39) (2) सांख्यकारिका (62)

*बन्धन जीव का या प्रकृति का?

'सांख्य दर्शन' के उक्त सिद्धान्त के अनुसार पारमार्थिक दृष्टि से 'बन्धन' एवं 'मोक्ष' का अस्तित्व ही नहीं है। यदि है भी तो बंधन 'संसरण' और 'मुक्ति' केवल प्रकृति की होती है न कि आत्मा की। प्रकृति इन सात साधनों से जीव को बांधती है—

'रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण।।' [2]

*'प्रकृति' की सप्त बन्धन श्रृंखलायें (सां.का. 63)

↓

1	2	3	4	5	6	7
'धर्म'	'अधर्म'	'अज्ञान'	'वैराग्य'	'अवैराग्य' (राग)	'ऐश्वर्य'	'अनैश्वर्य

* 'वैष्णवागम' एवं 'त्रिकदर्शन' में भी सैद्धान्तिक— साधनात्मक साम्य है।

*(12) (ख) काश्मीरीय तांत्रिक शैव दर्शन— आचार्य क्षेमराज की दृष्टि—

आचार्य क्षेमराज के अनुसार आत्मा में अनात्मा या अनात्मा में आत्मा का ज्ञान ही 'बन्धन' है—

1. सुख दुःख मोहमयाध्यवसादादि वृत्तिरूपं तदुचितभेदावभासनात्मकं यत् 'ज्ञानं' तत् बन्धः। तत्पाशितत्वादेव हि अयं संसरति।
2. आत्मनि अनात्मताभिमानरूपाख्यातिलक्षणा ज्ञानात्मकं ज्ञानं केवलं 'बन्धो' —शिवसूत्र विमर्शिनी
3. यावद् अनात्मनि शरीरादौ आत्मताभिमानात्मकम अज्ञानमूलं ज्ञानमपि 'बन्ध' एव। —शिवसूत्र विमर्शिनी
4. परमेश्वरेण स्वस्वातंत्र्यशक्त्याभासित स्वरूपगोपनारुपया महामाया शक्त्या स्वात्मन्याकाश कल्पेऽनाश्रितात् प्रभृति मायाप्रमात्रन्तं संकोचोऽवभासितः स एव शिवाभेदाख्यात्यात्मका ज्ञानस्वभावोऽपूर्ण मन्यतात्मकाणवमल - सतत्त्व संकुचित ज्ञानात्मा बन्धः।। —शिवसूत्र विमर्शिनी

---

(2) सांख्यकारिका (63)

***(13) शिवसूत्रवार्तिककार की दृष्टि**— आचार्य वरदराज ने भी 'शिवसूत्र-वार्तिक' में शिवसूत्रोक्त 'ज्ञान' एवं 'बन्धन' के स्वरूप की विवेचना की है। वे कहते हैं—

अज्ञानमितितत्राद्यं चैतन्यस्फाररूपिणी।
आत्मन्यनात्मताज्ञानं ज्ञानं पुनरनात्मनि।
देहादावात्ममानित्वं द्वयमप्येतदाणवम्।
मलं स्वकल्पितं स्वस्मिन्बंधः स्वेच्छाविभावितः।।[1]

* * * * * * * * * * * * * * *

अन्तःसुखादिसंवेद्य व्यवसायादिवृत्तिमत्।
बहिस्तद्योग्य नीलादि देहादि विषयोन्मुखम्।
भेदाभासात्मकं चास्य ज्ञानं बन्धोऽणुरूपिणः।
तत्पाशितत्वादेवासावणुः संसरति ध्रुवम्।। [2]

***(14) मल-कल्पना और बन्धन**—

जैन, बौद्ध आदि एवं योग, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, सांख्य आदि दर्शनों में 'बन्धन' का कारण 'अज्ञान' या 'अविद्या' को माना गया है किन्तु वैष्णवागम (शैव-शाक्त तंत्र) की भांति) 'मल-कल्पना' भी की गई है। इसके अनुसार 'मल' ही बन्धन के कारण हैं

*** 'मल और उसके प्रकार ***

↓

मल	मल के प्रकार		
	1 'आणवमल'	2 'मायीय मल'	3 'कार्ममल'
अपने आत्म चैतन्य को आच्छादित करके देहात्मबोध उत्पन्न करने वाले कारक ही 'मल' हैं	'अपूर्णत्वाभिमननं मलमाणव संज्ञकम्'	भिन्नस्य प्रथनं यत्तन मायीयमिति संज्ञितम्।।	धर्माधर्मस्वरूपं च मलं कार्म प्रकीर्तितम्।।

(1) वरदराज : शिवसूत्रवार्तिक (2) वरदराज : शिवसूत्रवार्तिक

मलत्रय ही बन्धन है—

'मलत्रयमिदं प्रोक्तं बंधत्रयमिदं बुधैः।। [3]

वैष्णवी शक्ति की 'तिरोधान शक्ति' से बंधनग्रस्त जीव को 'अविद्या', 'अस्मिता' एवं रागादि 'मल' घेर लेते हैं—

तिरोभावनशक्त्यैवं वैष्णव्या बन्धमेयुषः।
अविद्यास्मित्यरागाद्या मलं समुपचिन्वते।। [4]

'सुदर्शन' 'नामक सकल्प' के अनन्त रूप हैं तथापि उसे पांच रूपों में विभक्त किया गया है।

* सुदर्शन नामक संकल्प *

*(15) सङ्कल्प और बन्धन—

'सङ्कल्पसृष्टिवाद' एवं संकल्प तथा बन्धन

भगवत्संकल्परूप सुदर्शनाख्य सङ्कल्प के भेद

↓

1	2	3	4	5
'सृष्टि'	'स्थिति'	'प्रलय'	'निग्रह'	'अनुग्रह' [5]

(शैव शास्त्रों में ये 'पञ्चकृत्यकारी शिव' के 'पञ्चकृत्य' कहे गए हैं।)

'संकल्पो नाम यस्तस्य सुदर्शनसमाह्वयः।
सत्यप्यनन्तरूपत्वे पञ्चधा स विजृंभते।। (अहि.सं. 14/14)

यह वैष्णवी, तिरोधानकर्त्री निग्रहात्मिकाशक्ति ही जीव को 'बन्धन' में डालती है—

'तिरोधानकरी शक्तिः सा निग्रहसमाह्वया।
पुमांसं जीवसंज्ञं सा तिरोभावयति स्वयम्।
आकारैश्वर्यविज्ञान तिरोभावनकर्मणा।

(3) अहिर्बुध्न्य संहिता (14/20) (4) अहि.सं. (14/21) (5) अहि.सं. (14/15)

माया विद्या महामोहो महातामिस्त्रमिप्यपि।
तमो बन्धोऽथ हृदग्रंथिरिति पर्यायवाचकाः।। [2]

तिरोधायिका शक्ति— तिरोधान-कर्त्री 'निग्रह-शक्ति' जीवों के परमैश्वर्यों को तिरोहित करके उन्हें बन्धन में डालती है। इसकी समतुल्य आख्यायें (पर्याय) इस प्रकार हैं—(1) निग्रहात्मिका शक्ति (2) 'तिराधानकरी शक्ति' (3) 'माया' 'विद्या' 'महामोह' 'महातामिश्र' 'तम' 'बन्ध' एवं 'हृदयग्रंथि' आदि हैं। [3]

यही 'निग्रहात्मिका शक्ति' जीव संज्ञक पुरुष को—(1) 'आकार' से (2) 'ऐश्वर्य' से (3) 'विज्ञान' से अपने तिरोभावन-कर्म के द्वारा तिरोहित करती है—

'पुंमासं जीव संज्ञंसा तिरोभावयति स्वयम्।। (14/16)

* 'तिरोधान' के भेद *

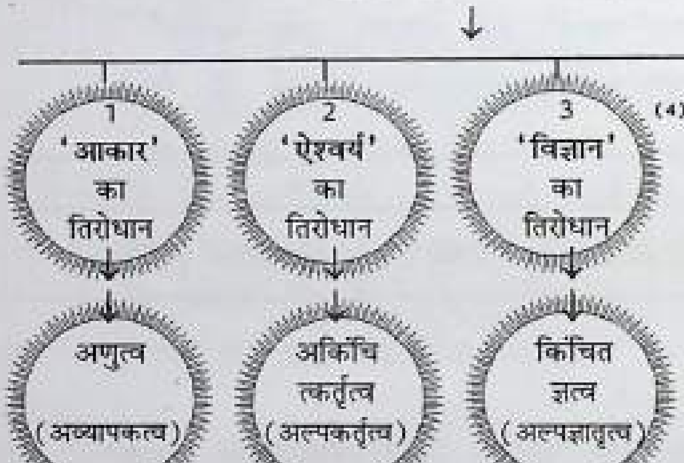

तिरोधान-प्रकार
पुंमासं जीव संज्ञं सा तिरोभावयति स्वयं
आकारैश्वर्य विज्ञान तिरोभावन कर्मणा
-अहि.सं. (14/16)

आकारस्य तिरोधानाणुत्वं पुंस इष्यते।
ऐश्वर्यस्य तिरोभावाद किंचित्करता स्मृता।। (14/18)

---

(2)अहि.सं. (3) अहि.सं. (14/7) (4) अहि.स (14/16)

पुंसो विज्ञान संकोचाद ज्ञत्वं समुदाहृतम्।
तिरोहितः पुमाञ्छक्त्या विष्णुसंकल्परूपया।। (14/19)
अणुः किंचित्करश्चेति किंचिज्ज्ञश्चेति कथ्यते।। (14/19)

(16) *मल और बन्धन—ये तिरोधानत्रय ही 'बन्धनत्रय' एवं 'मलत्रय' कहलाते हैं—
'मलत्रयमिदं प्रोक्तं बन्धत्र्यमिदं बुधैः।। (14/20)

1. जब पुरुष (जीव) के **'आकार का तिरोधान'** हो जाता है तब वही पुरुष **'अणुत्व'** प्राप्त कर लेता है।
2. जब पुरुष (जीव) के **'ऐश्वर्य का तिरोभाव'** होता है तब उसमें **अकिंत्करता** आ जाती है।
3. जब पुरुष (जीव) के **'ज्ञान का तिरोभाव'** हो जाता है तब उसमें ज्ञान के संकुचित हो जाने से **अल्पज्ञत्व** आ जाता है।

सारांश —

इस प्रकार पुरुष (जीव) विष्णु-संकल्प **रूप शक्ति** से तिरोहित हो जाता है और वैष्णवी शक्ति की **'तिरोभावन शक्ति'** से बन्धन ग्रस्त जीव को **'अविद्या'**, **'अस्मिता'** एवं **'रागादि मल'** घेर लेते हैं।[1]

मलोपहित, अज्ञान-ग्रस्त, तिरोधान-पंकिल जीव **'अविद्या'** के क्लेशों को प्राप्त करता हुआ **'प्रेप्सा'** (अपने पूर्ववर्ती ईश्वरत्व) एवं **'जिहासा'** (जीवत्व के परित्याग) से अभिप्रेरित होकर अपने इष्टार्थ के प्राप्त्यर्थ एवं अनिष्ट-निवाणार्थ शुभाशुभ कर्म करता है। फिर वह उन-उन कर्मों के विपाकस्वरूप शुभाशुभ कर्मों से **'जाति'**, **'आयु'** और **'भोग'** पाता है। फिर धीरे-धीरे उन-उन सुख-वासनाओं का संचय करता है और इस प्रकार **'तिरोधान शक्ति'** की परम्परा खड़ी कर लेता है।[2]

वैष्णवी महाशक्ति से उत्पन्न **'भूति'** एवं **'क्रिया'** नामक शक्तियों में से जो **'भूति'** शक्ति है उसके दो भेद हैं—(1) **'काल'** (2) **'शक्ति'**। ये दोनों भी **'तिरोधान'** के साथ ही रहती हैं। **'काल'** और **'शक्ति'** के साथ

---

(1) तिरोभावनशक्त्यैवं वैष्णव्या बन्धमेयुषः।
अविद्यास्मित्वरागाद्यां मलं समुपचिन्वते।। (14/29)

(2) अहि.सं. (14/20-25) (3) अहि.सं. (अ.: 14/26)

होकर '**तिरोधान शक्ति**' पुरुष के तिरोभाव को विस्तृत कर देती है। परमात्मा की इसी शक्ति से तीनों **सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय रूप वाली शक्तियां** निष्पादित संचित कर्मों से जीव को संसार रूप बंधन में प्रवृत्त करती रहती है। इस प्रकार **जीव का बन्धन अनादि** है और उसके **बंधन का कारण भी** अनादि है।[1]

इस प्रकार अनादि **संसार-चक्र** में निमग्न और अपने कर्मों के द्वारा भ्रमण करते हुए, दुःखाकुल जीव पर जब भगवान की कोई अहेतुकी अनुकम्पा होती है—अर्थात् जब **'विष्णु की संकल्परूपिणी पञ्चमी शक्ति'** कृपा करती हैं तभी जीव का बन्धनों से उद्धार होता है। इसी अनुग्रह शक्ति की आख्या है—**'पञ्चमी शक्ति'**—

'या ह्युक्ता पञ्चमी शक्ति विष्णुसङ्कल्परूपिणी।।' [2]

एक ओर तो विष्णु-संकल्प रूप शक्ति द्वारा

1.	आकार का तिरोधान→ अणुत्व	**'तीन मल'** या तीन **'बन्ध'**
2.	ऐश्वर्य का तिरोधान → अकिंचित कर्तृत्व।	
3.	ज्ञान का तिरोधान → किंचित ज्ञातृत्व (अज्ञता)	

'मलत्रयमिदं प्रोक्तं बन्धत्रयमिदं बुधैः।

(17) ***कर्म और बन्धन** — प्राणी **इष्टार्थ की प्राप्ति** एवं **अनिष्ट के निवारणार्थ** शुभाशुभफल देने वाले कर्मों का निष्पादन करता है—

'इष्टार्थप्राप्तयेऽनिष्ट विघाताय च लालसः।
कर्म तत् कुरुते कामी शुभाशुभ-फलोदयम्।। (अहि.सं.)

***कर्म विपाक**

उन-उन '**कर्मों के विपाक**' (परिणाम) स्वरूप दैववश शुभाशुभ से मिश्रित जाति, आयु एवं भोगों के कर्मफल प्राप्त करता है:

'ततः कर्मविपाकस्थः शुभाशुभविमिश्रितम्।
जात्ययुरनु बन्धान स प्राप्नोति विधि चोदितः।। [3]

---

(1) अजस्य त्वनयाशक्त्या तिस्त्रः सृष्ट्यादिशक्तयः।
सञ्चितैः सम्प्रवर्तन्ते तैस्तैः कर्मभिरूर्जितैः।।
बंधोऽनादिरयं प्रोक्तो बन्धहेतुश्च नादिमान।। (14/27-28)

(2) अहिर्बुध्न्य संहिता (14/29) (3) अहि.सं.(14/24)

***भोग-वासना**

जीव उन-उन सुख की वासनाओं को अपने भीतर संगृहीत करता है। वही **भोग-वासना तिरोधानशक्ति को आमंत्रित करती है।**

***सारांश— कर्म→**

'कर्मविपाक' (शुभाशुभ कर्मों का फलोत्पादक)→**जाति, आयु एवं भोग**→शुभ कर्मों के कारण प्राप्त सुखात्मक भोगों के प्रति आसक्ति→ सुख की वासनाओं का संग्रह, **'तिरोधानशक्ति'** द्वारा मलोत्पादन→ बन्धन।।

(18) ***मुक्ति और 'पञ्चमीशक्ति'**— भगवान की दो **मुख्य शक्तियां** हैं जिनका सम्बंध जीवों के बन्धन एवं मुक्ति से है। वे शक्तियां हैं—
(1)**'तिरोधान करी शक्ति'**
(2)**अनुग्रात्मिका 'पञ्चमी शक्ति' सृष्टिस्थित्यन्तकारेण निग्रहानुग्रहात्मना।**

(क) तिरोधानकरी शक्तिः सा निग्रहसमाह्वया।
पुंमासं जीवसंज्ञं सा तिरोभावयति स्वयम्।। (14/16)

(ख) या ह्युक्ता पञ्चमीशक्तिर्विष्णुसंकल्परूपिणी।
'अनुग्रहात्मिका शक्तिः सा कृपा वैष्णवी परा।
शक्तिपात : स वै विष्णोरागमस्थैर्निगद्यते।। (14/29-30)

जीव अपने शुभाशुभ कर्मों के कारण संसार-चक्र में भ्रमण करते हुए अनेक जन्मों में जन्म-मरण का चक्र पूरा करते हुए दुःखों से क्लान्त, परिश्रान्त एवं दुःखार्त होकर संसरण करता रहता है। उसे दुःखपरितप्त देखकर भगवान की कभी अहेतुकी कृपा हो जाती है—

'एवं संसृतिं चक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः।
जीवे दुःखाकुले विष्णोः कृपा काप्युपजायते।।

---

(1) अनुग्रहात्मना शक्त्या सुदर्शनमयात्मना।
स्वीकृतो हि यदा विष्णोः करुणावर्षरूपया।
समीक्षितस्तदा सोऽयं करुणावर्षरूपया।
कर्मसाम्यं भजत्येव जीवो विष्णुसमीक्षितः।
शक्तिपातः स वै जीवमुत्तारयति संसृतेः।। (14/31-33)

यही अहेतुकी कृपा '**विष्णु संकल्परूपिणी पंचमी शक्ति**' कहलाती है—

'या हुक्ता पंचमी शक्तिर्विष्णुसंकल्प रूपिणी।'

—(अ. 14/29)

***कर्म-साम्य—**

जब विष्णु की '**सुदर्शनमयी, अनुग्रहात्मिका करुणाशक्ति**' जीव को अपनाती है तब विष्णु की इस **करुणा-वर्षिणी शक्ति** से परिदृष्ट और भगवान विष्णु से समीक्षित जीव अपने **संचित-प्रारब्ध-क्रियमाण कर्मों को सम बना लेता है** अर्थात् उसके ये सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार कर्मों का **साम्य** हो जाने पर उनके द्वारा होने वाले जीव के भोगों के नष्ट हो जाने पर वह '**शक्तिपात**' जीव को संसार रूप संसृति से पार कर देता है और ऐसी स्थिति में जीव के समस्त निष्पादित कर्म तूष्णीभाव धारण कर लेते हैं। (1)

(19) ***जीव द्वारा संचित कर्मों की स्थिति—'परमात्मा की अनुग्रहात्मिका करुणावर्षा'** से जीव के कर्मों में जो साम्य आता है उससे वे कर्म **कर्मफल देने में उदासीन (अशक्त)** हो जाते हैं। (2)

उस **अनुग्रहात्मिका भगवच्छक्ति** के पात से जीव मोक्ष की जिज्ञासा से वैराग्य में प्रवृत्त हो जाता है और **विवेक में अभिनिवेश** करने लगता है। वह शास्त्रों का परिशीलन करता हुआ, गुरुजनों के पास जाकर उन-उन सत्वों के प्रकारों को प्राप्त करके प्रबुद्ध हो जाता है। वह गुरु-ज्ञान को संवर्धित करते हुए अविद्याजन्य क्लेशादि को विनष्ट करते हुए, सब प्रकार से सत्वों की खोज करते हुए, परमात्मा में बुद्धि लीन करते हुए सांख्य योग में आविष्ट हो जाता है—

'सांख्ययोगसमावेशी सत्कर्मनिरतः स्वयम्।
उग्र व्रतधरो ज्ञानी वेदान्तज्ञाननिश्चलः।।

---

(1) कर्मणी च समे तत्र तूष्णीभावमुपागते।। (14/33)

(2) अनुग्रहात्मिकायास्तु शक्तेः पातक्षणे तथा।
उदासाते समीभूय कर्मणी ते शुभाशुभे।। (1+235)

इस प्रकार जीव सत्कर्म-निरत होकर कठोर तप करते हुए वेदान्त ज्ञान में अपनी अविचल श्रद्धा रखते हुए क्लेशों को सहता हुआ 'वैष्णवपद' प्राप्त करता है—

'क्लेशेन महता स्थानं वैष्णवं प्रतिपद्यते।। (14/40)
'सम्प्राप्य ज्ञानभूयस्त्वं निर्मलीकृतचेतनः।। (अहि.सं.)

अनाविलमसंक्लेशं वैष्णवं तद्विशेत् पदम्।। (14/41 अहि.सं.)
अर्थात् प्रचुर ज्ञान-प्राप्ति से अपने चित्त को निर्मल बनाकर जीव सर्वथा शुद्ध और दुःखरहित 'विष्णुपद' में प्रविष्ट हो जाता है। [3] 'वैष्णवपद' की प्राप्ति ही मोक्ष है।

(20) * मोक्षोपाय एवं योग *

* 'मोक्ष' के उपाय चतुष्टय *

'लक्ष्मी तंत्र' (15हवां अध्याय) में मोक्ष के चार उपाय बताए गए हैं और इन्द्र के पूछने पर भगवती लक्ष्मी ने कहा कि मैं जीवों में उस ज्ञान का संचार करती हूं जो आत्म-प्रकाश का प्रदर्शक है तथा जो मेरी प्रीति बढ़ाने वाला एवं उपायचतुष्टयात्मक है—

'उदभावयामि तज्ज्ञानमात्मज्योतिप्रदर्शकम्।
उपायास्ते च चत्वारो मम प्रीतिविवर्धनाः।। [1]
'उपायांश्चतुरः शक्र श्रृणु मत्प्रीतिवर्धनम्।
यैरहं परमां प्रीतिं यास्याम्यन पगामिनीम्।। (15/16)

***मोक्ष के उपाय चतुष्टय**—ये चार उपाय इस प्रकार हैं—

(1) अपनी जाति के लिए विहित कर्मों का निष्पादन-'कर्ममार्ग' रूप उपाय।
(2) सांख्य दर्शन का 'ज्ञानमार्गरूप' उपाय
(3) चित्तवृत्तिनिरोध या जीवात्मपरमात्म संयोग रूप 'योगमार्ग'-रूप उपाय।
(4) सर्वत्यागात्मक सन्यास 'योगरूप उपाय'। [2]

---

(3) अहिर्बुध्न्य संहिता (14/41) (1) ल.तं. (15/14)
(2) स्वजातिविहितं कर्मसांख्यं योग स्थैव च।
सर्वत्यागश्च विद्वद्भिरुपायाः कथिता इमे। (ल.तं. 15/17)

प्रथमोपाय : कर्ममार्गीय मोक्षोपाय

चार लक्षणों से समन्वित वैदिक कर्मों के तीन प्रकार हैं—

1. **प्रथम कर्म**—अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार आचार निष्पादित करना।
2. **द्वितीय कर्म**—सन्ध्या वन्दन, पूजादिक, नित्यकर्म करना।
3. **तृतीय कर्म**—नैमित्तिक कर्म-पुत्रेष्टियज्ञ, ज्योतिष्टोम यज्ञ आदि करना। इसे **'काम्य कर्म'** कहते हैं जो विशेष कामनाओं की सिद्धि हेतु किया जाता है।
4. **चतुर्थ कर्म**—निष्काम कर्म करना। तीन कर्मों के करने के बाद **'चतुर्थ कर्म'** करना चाहिए। यह सन्यासोपरान्त निष्पादित किया जाता है। **(निष्काम कर्म योग)**[3]

***'कर्ममार्गीय उपाय' के अन्तर्गत**—मंत्रों में वर्णित देवताओं में प्रकृति में या इन्द्रियों में या परदेवों के देव जनार्दन वासुदेव में पूर्वकृत्यों का सन्यास करना अपेक्षित है और उससे प्राप्त फल का त्याग भी करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य कर्मों का भी त्याग करना पड़ता है। जनार्दनार्थ शास्त्रीय आचार से नित्य नैमित्तिक कार्य भी करना पड़ता है।

इस प्रकार के शास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिक कर्मों का आचरण करता हुआ जो भगवती की आराधना की इच्छा करता है वह भगवती लक्ष्मी को निरन्तर प्रसन्न किया करता है। [1]

मुमुक्षुओं को भगवान वासुदेव में सभी कर्मों का सन्यास करना चाहिए। यही **प्रथम उपाय है।** श्रुति स्मृतियों में वर्णित, निदर्शित कर्मों में से यह लेशमात्र है।

* द्वितीय उपाय : * सांख्य नामक मोक्षोपाय *

सांख्य मार्ग में तीन संख्यायें हैं—(1) **प्रथम संख्या**— लौकिकी संख्या (2) **अभ्यर्चनस्वरूपा 'संख्या'** (3) **समीचीना धी।** इन तीनों संख्याओं की समष्टि को **'सांख्य'** कहते हैं—

---

(3) चतुर्विधस्तु सन्यासस्तत्र कार्यो विपश्चिता।

(1) शास्त्रीयमाचरन्नेवं नित्य नैमित्तिकात्मकम्
मदाराधनकामः सञ्शश्वत् प्रीणाति मां नरः। (ल.तं. 15/22)

'सांख्यास्तिस्त्रो हि मन्तव्याः सांख्यशास्त्रनिदर्शिताः।
प्रथमा लौकिकी संख्या द्वितीया चर्चनात्मिका।
समीचीना तु या धीः सा तृतीया परिपठ्यते।
संख्यात्रयसव्यूहो यः 'सांख्यं' तत्परिपठ्यते। (2)

*कपिल के 'सांख्यसूत्र', ईश्वर कृष्ण की 'सांख्य कारिका' पुराणों में वर्णित सेश्वर सांख्य', 'तत्वसमास सूत्र' आदि में प्रतिपादित सांख्य-दर्शन से यह सांख्य दर्शन की दृष्टि पृथक भी है।

***संख्या और सांख्य शास्त्र—** 'लक्ष्मी तंत्र' (15/24-25) में कहा गया है कि सांख्य मार्ग में तीन संख्यायें हैं—(1) प्रथम संख्या (लौकिकी संख्या) (2) अभ्यर्चन वाली द्वितीय संख्या (3) बुद्धिरूप परम समीचीन तृतीय संख्या।

इन तीनों संख्याओं के समुदाय को 'सांख्य' कहते हैं। (1)
(यही है सांख्य योग)

***'ज्ञानयोग'** —इसे ही 'ज्ञानयोग' कहते हैं। (1) पृथ्वी (2) जल (3) तेज (4) वायु (5) आकाश (6) अहङ्कार (7) महत (8) **'परमा प्रकृति'**— ये **'आठ उसकी प्रकृतियां या स्वरूप'** हैं। (2)

***सांख्य में प्रकृति-तत्व—** इन अष्ट प्रकृतियों का पूर्ण विवरण इस प्रकार है—(1) प्रकृति के भेद—(क) माया (ख) सूति (ग) गुणात्मिका **'माया'** किसे कहते हैं।

आसक्तिरहित, आसक्तियुक्त, अद्वैत-तरंगरहित, अनश्वर रुप से अचेतनों को पर-सूक्ष्म रूप से जो प्रभावित करती है उसे **'माया'** कहते हैं। (3)

***'प्रसूति' और 'परा प्रकृति'—** उसके थोड़े से विस्तार को **'प्रसूति'** कहते है।। तीनों गुणों के उन्मेष से प्रकृति का यह विस्तार निष्पादित होता है। गुणों में साम्य होने पर उसे **'परा प्रकृति'** कहते है।। (4)

---

(2) 'लक्ष्मी तंत्र' (पञ्चदशोध्यायः 24-25)

(1) लक्ष्मी तंत्र (15/24-25) (2) ल.तं. (15/26)

(3) निःसक्तासक्तमद्वैतमतरंगमनश्वरम्।
अचेतनानां परमं सौम्यं मायेति गीयते।। (15/28)

***माया का स्वभाव–**

प्रकट न होने वाली, (अव्यक्त) क्षरणरहित (अक्षर), सबकी उत्पत्ति का स्थान (योनि) ज्ञान-शून्यता (अविद्या), तीन गुण (सत्व-रज-तम) से समन्वित स्थिति वाली को **'मायास्वभाव'** आदि पर्यायवाची शब्दों के नाम से जाना जाता है। [5]

***सांख्यदर्शन में तत्वविज्ञान–** तत्व चौबीस हैं किन्तु वे दो प्रकार के हैं– (1) चित् एवं (2) अचित।[1]

24 तत्व : (1) प्रकृति (2) महत् (3) अहङ्कार (4) पांच तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) (5) पांच महाभूत (क्षिति, जल, पावक, पवन, आकाश) (6) पांच ज्ञानेन्द्रियां (आंख, कान, रसना, नासिका, त्वगेन्द्रिय) (7) पांच कर्मेन्द्रियां (हाथ, पैर, पायु, उपस्थ) (8) मन = 24 तत्व।। चित्तत्व–(1) ईश्वर (2) जीव = 26 तत्व

***'षोडशक' विकार–** 5 ज्ञानेन्द्रियां, 5 कर्मेन्द्रियां, 5 तन्मात्रायें 1 मन = 16 का समूह 16 विकार हैं।

'बुद्धि कर्मेन्द्रियगणौ पञ्चकौ मन एव च।
विकारा एव विज्ञेया एते षोडश चिन्तकैः।। [2]

***सप्त कार्यकारण तत्त्व–** (1) **'महत् तत्त्व'** (2) **'अहंकार'** (3) **'पांच तन्मात्रायें'**। इन तन्मात्राओं से पञ्चतत्व उत्पन्न होते हैं–

'महदाद्यास्तु सप्तान्ये कार्य कारणरूपिणः।
तन्मात्रेभ्य : समुद्भूता विशेषा वियदादयः।।

---

(4) ईषदुच्छूनता तस्याः प्रसूतिरिति गीयते।
गुणत्रय समुन्मेषः साम्येन प्रकृतिः परा। (15/29)

(5) अव्यक्तमक्षरं योनिर विद्या त्रिगुणा स्थितिः।
माया स्वभाव इत्याद्याः शब्दाः पर्याय वाचकाः (15/30)

(1) चतुर्विंशति रेतानि तत्त्वानि कथितानि ते। (2)ल.तं. (16/9)

***'मुक्ति'— वैष्णवागम की दृष्टि—** भगवान की स्तुति, उन्हें साष्टांग प्रणाम उनकी शरणपन्नता, प्रदक्षिणा, अपराधक्षमा हेतु निवेदन एवं दास समझकर अनुगृहीत करने के निवेदन से एक दिन में ही **'मुक्ति'** प्राप्त हो जाती है।

'सुदर्शन नृसिंह च विष्णुरूपं सुदर्शनम्।
समाराध्यतस्त्ववमेकाहमपि ॱ ारद।
मुक्तिः करे स्थिता तस्य सर्वे कामाश्च किं पुन? (2)

***गुणत्रय— प्रकृति के तीन गुण हैं**—(1)**'सतोगुण'** (2)**'रजो गुण'** एवं (3) **'तमोगुण'**।

(1) **'सतोगुण'** की वृति-इसकी वृत्ति प्रकाश होती है। यह चैतन्य को उदग्रहण करने वाला होता है। (1)

(2) **'रजोगुण'** दुःख रूप एवं चंचल है। इसकी प्रवृत्ति को **'वृत्ति'** कहते हैं। यह सभी की गतिशीलता का कारण है। यह लघु एवं विनाश-रहित है। (2)

(3) **'तमोगुण'**—यह गुरु (भारीपन से युक्त) होता है। यह मोहरूप होता है किन्तु इसमें चंचलता नहीं होती। तमोगुण की वृत्ति **'नियम'** है। इसमें आलस्य एवं निद्रा होती है। उसके होने पर न पृथ्वी दृष्टिगत होती है न दिन दृष्टिगत होता है और न आकाश। निद्रित व्यक्ति के लिए ये सभी अलक्षित रहते है।(3)

***भूत—** भूत प्रकृति के इन तीनों गुणों से मुक्त होता है। ये गुण चित्त में अधिष्ठित होकर इन्द्रियों में गतिशील रहते हैं। सुख, दुःख और मोह विषयों में स्थित रहकर इन्द्रियों से गुण कर्मों को कराते रहते हैं। (4)

---

(2) अहिर्बुध्न्य संहिता (28/79-81)

(1) सत्वं रजस्तमश्चेति गुण एते त्रयो मताः।
तत्र सत्वं लघु ज्ञेयं सुखरुपमचञ्चलम्। ल.तं. (15/39)

(2) प्रकाशोनाम तद्वृत्तिश्चैतन्योद्ग्रहणात्मकः। ल.तं. (15/32-33)
रजोऽपि च लघु ज्ञेयं दुःखरूपं च चंचलम्।

(3) नियमो नाम तद्वृत्तिः क्वचित् स्वापन लक्षणम्।
न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि व्योम्नि च वासव।। (15/34)

(4) सुखं दुखं तथा मोहं विषय स्था कुर्वते। (ल.तं.)
शरीरेन्द्रियतां याता गुणा इन्द्रियगास्तथा।। (ल.तं 15/35)

***तृतीयोपाय— योगमार्गीय मोक्षोपाय—** 'लक्ष्मी तन्त्र' में योग नामक उपाय का वर्णन 16हवें अध्याय में किया गया है। [1]

'उपायो यस्तृतीयस्ते वक्ष्यते योगसंज्ञकः।' (16/30)

समाधि-प्राप्ति के साधन : 'अष्टांग योग' ही 'समाधि' प्राप्ति का साधन है

*** 'अष्टांगयोग के अष्टांग' ***

↓

1	2	3	4	5	6	7	8
'यम'	'नियम'	'आसन'	'प्राणायाम'	'प्रत्याहार'	'धारणा'	'ध्यान'	'समाधि'

***(1) 'समाधि' का स्वरूप—** समाधि में साधक की स्थिति ब्रह्म के पर रूप में होती है। उत्थान से रहित श्रीनिवास नामक ब्रह्म में संस्थिति होती है—(1) **'समाधिः संस्थितिः परे।।'**

(2) **'ब्रह्मणि श्रीनिवासाख्ये ह्युत्थानपरिवर्जिता।।'** (16/31)

ब्रह्मवेदियों की स्थिति—

ब्रह्मवेदियों की स्थिति भगवत्साक्षात्कारमयी होती है। ध्याता और ध्येय के रूप में विभक्त यह स्थिति भगवती की कृपा से प्राप्त होती है।[2]

---

(1) लक्ष्मी तं. (अ.16/30) (2) लक्ष्मी तं. (16/30-32)

***(2) 'संयम' का स्वरूप**—'संयम' नामक 'सत्कर्म केवल परमात्मा को दृष्टिगोचर होता है। यह **'संयम'** भी दो प्रकार का होता है—
(1) शारीरिक (2) मानसिक।

अन्तःकरण के शोधन से शुद्ध संज्ञान प्राप्त होता है। मन बुद्धि और अहंकार इन तीनों को **'अन्तःकरण'** कहते हैं। (3)

अन्तःकरण की शुद्धि → शुद्धज्ञान का उदय।

'ददामि बुद्धियोगं तमन्तःकरण शोधनम्।।

शास्त्रों के अध्ययन से जो ज्ञान प्रापत होता है उसे **'परोक्ष ज्ञान'** कहते हैं। **'परोक्षज्ञान'→निर्णय करने में दृढ़ता।** प्रत्यक्षप्रायज्ञान ही भगवती में भक्ति उत्पन्न करता है भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि मैं अपने स्वरूप, गुण एवं वैभव से साधक को ऐसा ज्ञान प्रदान करती हूं जो साधक को विवेक प्रदान करता है।

'समाधि' रूप उपाय प्रत्यक्ष, दृढ़ और अपरिवर्तनीय होता है और प्रकृष्ट सत्वसंभूत होता है। यह भी भगवती की अतिशय कृपा से प्राप्त होता है।

'संयम' तीन प्रकार के शुद्ध भोगों से उत्पन्न होता है। उसे केवल भगवती की महती अनुकम्पा से प्राप्त किया जा सकता है। **'संयम की साधना'** में विश्वात्मा, परावरा **'विष्णु शक्ति'** ही समाराधन के योग्य है या पुरुषोत्तम नारायण वासुदेव ही समाराध्य हैं।

'अहं हि तत्रविश्वात्मा विष्णुशक्तिः परावरा।
साक्षादेव समाराध्या देवो वा पुरुषोत्तमः।। (16/41)

(3) संज्ञानं जनयेच्छुद्धमन्तःकरण शोधनात्।।
अन्तःकरण शोधन→ज्ञान→सदाचार निवेदण→देवी की प्रसन्नता।। (16/35)

***तृतीयोपाय— योगमार्गीय मोक्षोपाय—'लक्ष्मी तन्त्र' में योग नामक** उपाय का वर्णन 16हवें अध्याय में किया गया है। [1]

'उपायो यस्तृतीयस्ते वक्ष्यते योगसंज्ञकः।' (16/30)

समाधि-प्राप्ति के साधन : 'अष्टांग योग' ही 'समाधि' प्राप्ति का साधन है

*** 'अष्टांगयोग के अष्टांग' ***

↓

1	2	3	4	5	6	7	8
'यम'	'नियम'	'आसन'	'प्राणायाम'	'प्रत्याहार'	'धारणा'	'ध्यान'	'समाधि'

***(1) 'समाधि' का स्वरूप—** समाधि में साधक की स्थिति ब्रह्म के पर रूप में होती है। उत्थान से रहित श्रीनिवास नामक ब्रह्म में संस्थिति होती है—(1) **'समाधिः संस्थितिः परे।।'**

(2) 'ब्रह्मणि श्रीनिवासाख्ये ह्युत्थानपरिवर्जिता।।' (16/31)

ब्रह्मवेदियों की स्थिति—

ब्रह्मवेदियों की स्थिति भगवत्साक्षात्कारमयी होती है। ध्याता और ध्येय के रूप में विभक्त यह स्थिति भगवती की कृपा से प्राप्त होती है।[2]

---

(1) लक्ष्मी तं. (अ.16/30) (2) लक्ष्मी तं. (16/30-32)

*(2) **'संयम' का स्वरूप**— **'संयम'** नामक **'सत्कर्म** केवल परमात्मा को दृष्टिगोचर होता है। यह **'संयम'** भी दो प्रकार का होता है—
(1) शारीरिक (2) मानसिक।

अन्तःकरण के शोधन से शुद्ध संज्ञान प्राप्त होता है। मन बुद्धि और अहंकार इन तीनों को **'अन्तःकरण'** कहते हैं। (3)

अन्तःकरण की शुद्धि → शुद्धज्ञान का उदय।

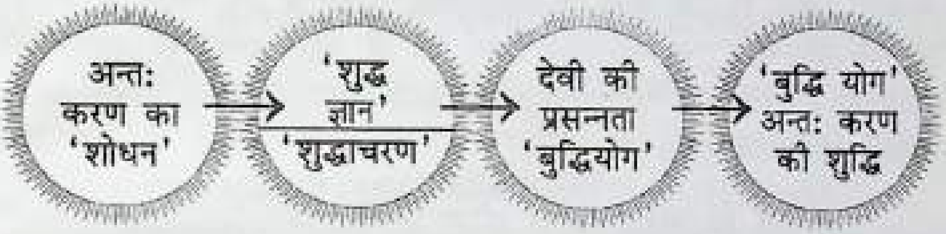

'ददामि बुद्धियोगं तमन्तःकरण शोधनम्।।

शास्त्रों के अध्ययन से जो ज्ञान प्रापत होता है उसे **'परोक्ष ज्ञान'** कहते हैं। **'परोक्षज्ञान'→निर्णय करने में दृढ़ता।** प्रत्यक्षप्रायज्ञान ही भगवती में भक्ति उत्पन्न करता है भगवती लक्ष्मी कहती हैं कि मैं अपने स्वरूप, गुण एवं वैभव से साधक को ऐसा ज्ञान प्रदान करती हूं जो साधक को विवेक प्रदान करता है।

'समाधि' रूप उपाय प्रत्यक्ष, दृढ़ और अपरिवर्तनीय होता है और प्रकृष्ट सत्वसंभूत होता है। यह भी भगवती की अतिशय कृपा से प्राप्त होता है।

'संयम' तीन प्रकार के **शुद्ध भोगों से उत्पन्न होता है।** उसे केवल भगवती की महती अनुकम्पा से प्राप्त किया जा सकता है। **'संयम की साधना'** में विश्वात्मा, परावरा **'विष्णु शक्ति'** ही समाराधन के योग्य है या पुरुषोत्तम नारायण वासुदेव ही समाराध्य हैं।

'अहं हि तत्रविश्वात्मा विष्णुशक्तिः परावरा।
साक्षादेव समाराध्या देवो वा पुरुषोत्तमः।। (16/41)

---

(3) संज्ञानं जनयेच्छुद्धमन्तःकरण शोधनात्।।

अन्तःकरण शोधन→ज्ञान→सदाचार निषेवण→देवी की प्रसन्नता।। (16/35)

***चतुर्थोपाय : सर्वपरित्याग रूप मोक्षोपाय**– यह सर्वत्यागमूलक उपाय है–

'श्रृणूपायं ह्यचतुर्थं मे सर्वत्यागसमाह्वयम्।। (16/42)

इसमें सभी उच्च नीच अंगों वाले धर्मों का परित्याग करके संसार की अग्नि में सन्तप्त होते हुए केवल भगवती की शरण में ही आना होता है। साधक को चाहिए वह **'शरणागति'** में सदैव स्थिर रहे। जो अनन्य चित्त से जो कोई भगवती की शरण में आ जाता है उसकी समस्त मलिनताएं भगवती नष्ट कर देती हैं और आत्मा से आत्मा को प्राप्त करा देती हैं। शरणापन्न जीव सभी पापों से मुक्त होकर आत्म साक्षात्कार कर लेता है–

'अहं हि शरणं प्राप्ता नरेणानन्यचेतसा।
प्रापयाम्यात्मनात्मानं निर्धूताखिलकल्मषम्।। (लं.त. 16/44)

इस साधना का मूल मंत्र निम्नांकित है जिसे देवी स्वयं अपने श्रीमुख से कहती हैं–

***शरणागति–**

**'तत्र धर्मान् परित्यज्य सर्वानुच्चावचाङ्ककान्।
संसारानलसन्तप्तो मामेकां शरणं व्रजेत।।**

अर्थात् समस्त उच्च-नीच अंगों वाले धर्मों का परित्याग करके संसार की अग्नि में सन्तप्त होते हुए केवल मेरी ही शरण में आना चतुर्थ उपाय है। मेरी शरणागति में ही सदैव स्थिर रहना चाहिए। (1)

शक्र भगवती से निवेदन करते हैं कि हे अम्बुजे! कृपया चतुर्थ उपाय पर प्रकाश डालिए। भगवती कहती हैं–

1. एको नारायणो देवो वासुदेवः सनातनः।
   चातुरात्म्यं परं ब्रह्म सच्चिदानन्द भव्रणन्। (17/3)
2. एकाहं परमा शक्तिस्तस्य देवी सनातनी।
   करोमि सकलं कृत्यं सर्वभावानुगामिनी।। (17/4)

---

(1) लक्ष्मी तंत्र (16/43)

अर्थात् शान्त, अनन्त एवं चिदानन्द ब्रह्म परम ध्रुव हैं और सब ओर से समतासम्पन्न महाविभूतियों के संस्थान हैं। **लक्ष्मी जी उसी ब्रह्मरूप महाविभूति की ब्राह्मी शक्ति हैं।** उनका स्वरूप शान्त, आनन्दपूर्ण और चिन्मय है—

1. **'शान्तानन्द चिदानन्द यद ब्रह्म परमं ध्रुवम्। (ब्रह्म)**
2. **तस्य शक्तिरहं ब्राह्मी शान्तानन्द चिदात्मिका।। (लक्ष्मी)**

जीवों के संतरणार्थ जो मूर्ति आविर्भूत होती है वह भी **नारायण पर ब्रह्म** है और भगवती लक्ष्मी उस मूर्ति की परा **नारायणी शक्ति** हैं— **'तदा मूर्तिमती साहं शक्तिर्नारायणी परा।।'**

परमसुखस्वरूप एवं निर्दुःख तो **'परम व्योम'** है और यह विष्णु एवं लक्ष्मी दोनों का **'उत्तमपद'** है।

***'शरणागति' — 'षाड्गुण्य'** का स्वच्छन्द प्रसार ही देश है। अनन्य चित्त वाले शरणागत को भगवती (1) मालिन्यों से दूर कर देती हैं तथा (2) आत्मा से आत्मा प्राप्त करा देती हैं (3) शरणापन्न व्यक्ति को सारे पापों से मुक्त कर देती है।।

'अहं हि शरणं प्राप्ता नरेणानन्यचेतसा।
प्रापयाभ्यात्मनात्मानं निर्धूताखिलकल्मषम्।। ('शरणागति 16/44)

यही **'शरणागति योग'** का फल है।

***मोक्ष—** चतुर्थ उपाय के प्रसंग में बार-बार देवी ने **'परमपद'** का उपदेश दिया है। (2)

(20) *चतुर्थोपायरूप निष्काम कर्मयोगात्मक मोक्षोपाय के प्रसंग— में 'लक्ष्मी तन्त्र' (अ.17)— में (चतुर्थ मोक्षोपाय की) सविस्तार विवेचना की गई है और मोक्षाप्ति के लिए निम्नसाधकों को अधिकारी स्वीकार किया गया है।

---

(2) ल.तं.(17/11,12,14,15,21)

*मोक्ष-प्राप्ति के नियम एवं साधना तथा अधिकारी

↓

1	2	3	4
संख्याविधिज्ञ एवं सांख्य से संज्ञान-प्राप्त साधक	इन्द्रियजेता, धारणा ध्यानरत, योग-समाहित, क्लेशमुक्त (1)	अछिद्र, पञ्च कालज्ञ, पञ्च यज्ञविचक्षण (2)	इन्द्रियजयी, अनाहारी, द्योतमान, अनिष्यन्द कालुष्यविहीन अमल (3)

5	6	7
एकान्तिन महाभाग्य शाली, वैष्णव **अष्टाक्षर मंत्र** ॐ नमो नारायणाय एवं **द्वादशाक्षर** 'ॐनमो भगवते वासुदेवाय' का जप एवं ध्यान करने वाले	**षड्क्षर वैष्णव** मंत्र के जापक, ॐ या 'जितं ले पुण्डरीकाक्ष मंत्र एवं तारिका ह्रीं का जप करने वाले।	**अनुतारा एकाक्षर मंत्र श्रीं**, का जप करने वाले, विमल आत्मा वाले। (यथा-अनन्त गरुड़, ईशान, विष्वक्र सेन आदि।)

इसी प्रसंग मे लक्ष्मी जी ने वासुदेव एवं अपने स्वरूप का वर्णन किया तथा विश्वोद्धारार्थ विष्णु से की गई अपनी प्रार्थना का भी उल्लेख किया। फिर नारायण के उपदेश देने का उल्लेख किया गया है। फिर षडङ्गात्मिका

---

(1) प्रत्याहृतेन्द्रिय ग्रामैर्धारणाध्यानशालिभिः।
योगैः समाहितैः शश्वत्क्लेशेन यदवाप्यते।। (17/12)
(2) अछिद्राः पञ्चकालज्ञाः पञ्चयज्ञविचक्षणाः।। (17/13)
इन्द्रियच्छिद्रविधुरा द्योतमानांश्च सर्वतः।
(3) अनिष्यन्दा अनाहाराः षाड्गुण्यतन वोऽमलाः।। (17/16)
एकान्तिनो महाभागा यत्र पश्यन्ति नौ सदा।
क्षपयित्वाधिकारान् स्वान् शश्वत्कालेन भूयसा।। (17/17)

'शरणागति' की विवेचना की गई है। वासुदेव ने जीवों के संतरण के उपाय के रूप में (1) **'कर्म योग'** (2) **'सांख्ययोग'** एवं (3) **'योगशास्त्र'** का उल्लेख किया —

'कर्मसांख्यं तथा योग इति शास्त्र व्यापाश्रयाः।' (17/48-49)

***उपायाभ्यास के पात्र या अधिकारी**—'भगवान वासुदेव सर्वप्रथम उपायाभ्यास के अधिकारियों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि इन उपायों का आत्मीकरण करके साधना करने वाले लोग अत्यल्प हैं क्योंकि —

'देवदेव न ते शक्याः कर्तुं कालेन गच्छता।। (17/50)

(21) *उपायाभ्यास के प्रत्यूह : कालतत्व

लक्ष्मी भगवान कहती हैं कि —हे वासुदेव! आपके स्वरूप वाला यह **'काल'** सबसे पाप कराता रहता है। यह परम स्वतंत्र है। यह प्राणियों के ज्ञान, बल, सत्व और आयु को कम करता रहता है। प्राणियों के अन्तःकरण में विविध वासनायें रहती है।। ये वासनायें कालवश प्राणियों को विविध यातनायें देकर उन्हें पतन के गर्त में गिराती रहती है। **वासना-विवश प्राणियों के प्रति आप (वासुदेव) उदासीन रहते हैं। अतः जो जैसा कर्म होता है वह कर्म स्वयं कर्ता को तदनुकूल फल देता है। कालानुरूप ही प्राणियों** के कर्म होते हैं और प्राणियों को कालानुरूप फल भी प्राप्त होते हैं।

भगवान कहते हैं कि मेरे द्वारा निर्मित समस्त शास्त्रों में वर्णित उपयों एवं विघ्नों की विवेचना की जा चुकी है। उनमें **कुछ उपाय करणीय हैं और कुछ अकरणीय** होने के कारण निषिद्ध उपयों को **'अपाय'** कहते हैं। निषिद्धाचार करने से पाप लगता है।

(22) *शरणागति —मार्ग— भगवान वासुदेव कहते हैं कि कर्मों का फल इस प्रकार होता है—

क. विहित उपायों का आलीकरण करने पर→ ऊर्ध्व गति एवं ऊर्ध्वोत्थान

ख. अपाय कर्म निष्पादन करने पर → निम्न गति एवं आध्या पतन

ग. अपाय -उपाय दोनों का त्याग और मध्यमावृत्ति का आत्मीकरण करने पर → कल्याण -प्राप्ति।।

*आध्यात्मिक साधना के मार्गद्वय

मोक्षोन्मुख या परमात्मोन्मुख आध्यात्मिक साधना के प्रमुख मार्ग दो हैं→

(23) ***'परमपद' का स्वरूप**— यह वह पद है जहां अनेक ब्रह्मा, अनेक शङ्कर, अनेक इन्द्र, अनेक सूर्य, अनेक सिद्ध, सर्वज्ञ एवं समदर्शी नित्य, आनन्द से निवास किया करते हैं।[1] जिस प्रकार आकाश पुरातन है, सबसे श्रेष्ठ एवं अटल है उसी प्रकार यह पद भी है तथा यह तत्वज्ञों को सभी बंधनों से मुक्त कर देता है। तत्वज्ञसर्वबंधनमुक्त होकर आकाशकल्प इस 'परमपद' को प्राप्त करते हैं जिस प्रकार पद को सांसारिक बंधनों से मुक्त जन प्राप्त करते हैं और वहां पर विराजमान रहते हैं वह पद करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान हैं। वह 10 हजार पूर्णिमा के चन्द्रों की भांति शीतल एवं कौमुदीसम्पन्न है।[2] साधक पूरे सौ वर्ष तक जीवित रहकर धैर्यपूर्वक यह 'परमपद' प्राप्त करते हैं।[3]

परम पद

(क) जहां वैष्णव अष्टाक्षर मंत्र एवं वैष्णव द्वादशाक्षर मंत्र का जप एवं ध्यान करके भगवत्साक्षात्कार करने वाले सिद्ध महात्मा रहते है—

'वैष्णव परमं रूपं साक्षात्कुर्वन्ति यत्र ते'
'अष्टाक्षरैकसक्तानां द्विषट्कार्णारतात्मनाम्'।।

---

(1) वेधसो यत्र मोदन्ते शङ्कराः सपुरन्दराः।
सूर्यो नित्य संसिद्धाः सर्वदा सर्वदर्शिनः।। ल.तं. (17/18)

(2) यत्तत्पुराणमाकाशं सर्वस्मात् परमं ध्रुवम्।
यत्पदं प्राप्य तत्त्वज्ञा मुच्यन्ते सर्वबन्धनैः।
सूर्य कोटिप्रतीकाशाः पूर्णेन्दयुतसन्निभाः।
यस्मिन् पदे विराजन्ते मुक्ताः संसार बन्धनैः।। ल.तं.(17/14-15)

(3) पूर्णे वर्षशते धीराः प्राप्नुवन्ति यदञ्जसा।।' —लक्ष्मी तंत्र

(ख) जहां विष्णु के षडक्षर मंत्र ('ॐ विष्णवे नमः') 'ॐ' मंत्र 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष' मंत्र, 'एकाक्षर मंत्र' ह्रीं' का निरन्तर जप एवं ध्यान करने वाले निवास करते वही 'परमपद' है—

'षडक्षर प्रसक्तानां प्रणवासक्तचेतसाम्।
नितंतासक्ताचित्तानां तारिका निरतात्मनाम्। (17/20)

(ग) जो अनुतारा 'श्री', मंत्र के जप में निमग्न रहते हैं और जो विमल आत्मा वाले अनन्त, गरुड़ , ईशान एवं विष्वकसेन आदि जो देव हैं वे सभी उसी 'परमपद' में आनन्दमग्न रहकर निवास करते हैं। [4]

(24) *'वैष्णवपद' —मुक्ति ही वैष्णवपद की प्राप्ति भी है—

'क्लेशेन महता स्थानं वैष्णवं प्रति पाद्यते। (अहि.सं. 14/40)
'अनाविलमसंकलेशं वैष्णवं तद्विशेत् पदम्।। (अहि.सं. 14/41)

(25) *पूर्णाहन्ता — अपने विशुद्ध, चिद्रूप स्वरूप की विराट विश्वमयता एवं विश्वातीतता की अनुभूति ही 'पूर्णाहन्ता' है।

*'शक्ति' पूर्णाहन्ता है—

1. निस्तरङ्गादयोऽनन्तो वासुदेवः प्रकाशते।।
पूर्णाहन्तास्मि तस्यैका शक्तिरीश्वरतामयी।। (ल.तं. 18/14)
2. अहमित्येव यः ग्पूर्णः पुरुष : पुष्करेक्षणः। (ल.तं. 18/11)
3. सिसृक्षालक्षण पूर्वा पूर्णाहन्ता हरेरहम्।
सृष्टिरूपा पराशक्ति रूपेत्येवोदितास्म्यहम्।। (ल.तं. 19/1)
4. 'स्वातंत्र्यशक्तिरे वास्य सनातनी पूर्णहन्तारूपा।। (स्पदं निर्णय)

(क) *सङ्कुचित अहन्ता—

अविद्याच्छादित, बन्धनग्रस्त, मायापङ्किल जीवों की अहन्ता का स्वरूप इस प्रकार है—

'सम्पन्नोऽस्मि कृशोऽस्मि स्निह्यत्करणोऽस्मि मोदमानोऽस्मि।
प्राणिमि शून्योऽस्मीति च षट् सु पदेष्वस्मिता दृष्टा। [1]

---

(4) ल.तं. (17/20-21)
(1)विरुपाक्ष पञ्चाशिका(3)

(ख) *विराट अहन्ता : 'विश्वदेहत्व'—'विश्व देहत्व' ही अपनी विराट अस्मिता है। देहेन्द्रिआदि से सम्बद्ध उक्त संकुचित अस्मिता से ऊपर उठकर विराट अस्मिता के साथ अपना तादात्म्य अर्थात् 'विश्वदेहत्व' की अनुभूति ही साधक का लक्ष्य होना चाहिए—

'विषय शरीरेन्द्रियधी प्राणनिरोध प्रसिद्धयदस्मित्वाम्।
इत्थं चितिमखिलेऽध्वनि धारयतो 'विश्वदेहत्वम्।। (2)

'विश्वदेहत्व' की अनुभूति के लिए आवश्यक है कि हम 'बिन्दु' 'प्राण' 'शक्ति' 'मन' इन्द्रियमण्डल' एवं शरीर में प्रवेश करके इनका भी संचालन करने वाली उस 'अहन्ता' को सर्वत्र धारण करें न कि बिन्दु, प्राण आदि से तादात्म्य स्थापित करें—

'बिन्दुं-प्राणं-शक्तिं-मन-इन्द्रियमण्डलं-शरीरं च।
आविश्य चेष्टयन्तीं धारय सर्वत्र चाहन्ताम्।। (3)

***'अहन्ता' है क्या?**

'विरूपाक्ष पञ्चाशिका' में कहा गया है —
'ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतंत्रता चित्स्वरूपा चेति!
एतेऽहन्तायाः किल पर्यायाः सद्भिरुच्यते।।8।।

***काश्मीरीय त्रिक दर्शन और अहन्ता**— त्रिक दर्शन के दोनों मूल ग्रंथ (1) 'शिव सूत्र' एवं (2) 'स्पन्द कारिका' अहंविमर्शात्मक पूर्णाहन्ता के प्रतिपादक हैं।

इन दोनों ग्रंथों की दृष्टि यही है कि 'शक्ति' का स्वरूप 'पूर्ण अहं विमर्श' है। यह 'अहंविमर्श' ही वह मौलिक स्फुरणा है जिससे वह एकात्मिका शक्ति अनन्त रूपों में स्फुरित होकर अनन्त वैचित्र्यों में अवभासमान है। शाश्वत रूप में स्फुरणशील होने के कारण ही उसको 'स्पन्द शक्ति' कहा जाता है। 'स्पन्द' अहंविमर्शात्मक स्वरूप वाला है। यह क्या है? यह चिद्घन भगवान की विश्वात्मक रूप में 'स्वतंत्र' शक्ति प्रसार की ओर संकल्पात्मक उन्मुखता है। विश्व के रूप में अहंप्रत्यवमर्श ही 'विश्वाहन्ता'

---

(2) विरुपाक्ष पञ्चशिका(4) (3) वि.पं.(स्कंध प्रथम/7)

है। अन्तर्मुख '**अहं**' में, अभिन्नतयावस्थित विश्वकल्पना का बहिर्मुख '**इदं**' रूप में अवभासन एंव '**इदम**' रूप में अवभासित विश्व की अन्तर्मुख अनुसन्धानात्मक '**अहं**' रूपता में विश्रान्ति ही '**पूर्णहन्ता**' है। वि र्शात्मक स्पन्दशक्ति अपनी '**स्वातंत्र्य शक्ति**' के द्वारा समस्त अवभासित पदार्थों को अपने में लय कर सकती है और अपने एकात्मक स्वरूप को '**एकोऽहं बहुस्याम**' के संकलप द्वारा अनन्तरूपात्मक विश्व के रूप में अवभासित भी कर सकती है। परमेश्वर की स्वाभिन्ना '**स्वातंत्र्य शक्ति**' विश्व रूप में प्रसृत होने की ओर उन्मुख होने के समय–

1. सर्वप्रथम '**इच्छाशक्ति**' का स्वरूप धारण करती है।
2. '**इच्छाशक्ति**' उत्तरोत्तर प्रसृत होती हुई '**ज्ञान शक्ति**' एवं '**क्रिया शक्ति**' के रूप में उन्मिषित होती है–

   '**या सा शक्ति जगद्धातुः कथिता समवायिनी।**
   इच्छात्वं तस्य सा देवी सिसृक्षोः प्रतिपद्यते।। (मा.वि.3.5)

   '**एवं सैषा द्विरूपापि पुनर्भेदैरनेकताम्।**
   अर्थोपाधिवशाद्याति चिन्तामणिरि वेश्वरी।। (मा.वि.3-8)

वही '**एक**' ही शक्ति **अष्टवर्गात्मक अधिष्ठात्रियों** के रूप में प्रकट होती है जिनका नाम इस प्रकार है–

1. माहेश्वरी शक्ति 2. ब्राह्मणी शक्ति 3. कौमारी शक्ति 4. वैष्णवी शक्ति 5. ऐन्द्री शक्ति 6. याम्या शक्ति 7. चामुण्डा शक्ति 8. योगीश्री शक्ति।

यही शक्ति अन्तःकरणों एवं बहिष्कारणों के साथ संबंध रखने वाली– (1) '**खेचरी**' (2) '**भूचरी**' (3) '**दिक्चरी**' एवं (4) '**गोचरी**' शक्ति के रूप में उदित होती हैं।

'शक्ति' **पूर्णाभेदमय अहं विमर्श की स्फुरणा** के रूप में नित्य स्थित रहती है। **शक्ति के दो स्वरूप हैं–**

(1)'**विश्वोत्तीर्ण**' (2) '**विश्वमय**' (**शाक्त प्रसार**)

चित् तत्व का स्वरूप विश्वात्मक अहं विमर्श है।

(26) *अहंविमर्श के रूप

1	2
'शुद्ध अहंविमर्श' इसका सम्बंध **'पतिप्रमातृभाव'** के साथ है। इसमें सारे भेद, द्वन्द्व, वैषम्य, भिन्नताएं, द्वैत, लयीभूत होकर विशुद्ध चिद्रूप में एकाकार हो जाते हैं। यह 'एकोऽहं' की अवस्था है। 'अहं' 'अहंमस्मि' 'अहमिदम' एवं 'इदमहम्' के विमर्श में 'शुद्ध अहं' का विमर्श रहता है एवं 'सद्विद्या' की ही भूमिका रहती है। इसमें– 'स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्' की अनुभूति होती है। अर्थात् 'क्रियाशक्तिस्फुरणरूपो विकास विश्वम्' की ही अनुभूति होती है और अपना समस्त आत्माओं, जगत एवं परमात्मा के साथ ऐकात्म्य बोध होता है। 'शिवतुल्यो जायते' (शिवसूत्र) इसी अवस्था का परिचायक है।	**'अशुद्ध अहंविमर्श'** इसका सम्बंध **'पशुप्रमातृभाव'** (जीव) के साथ है। इसमें विशुद्ध चित् तत्व अपने ही रूपान्तर माया शक्ति द्वारा अपनी ही ज्ञानशक्ति-क्रियाशचित और मायाशक्ति को संकोच में डालकर 'पति' को 'पशु' बना देता है। यह 'बहुस्याम' की अवस्था है 'आणव मल' 'मायीय मल' एवं 'कार्ममल' तथा पञ्च कञ्चुकों की अधोगामिनी क्रीडा के मूल में 'अशुद्ध अहं विमर्श' ही स्थित है। यह भेद-प्रसार एवं द्वैत-विस्तार की अवस्था है।

*भगवती की विश्वाहन्तात्मक अनुभूति और उसका स्वरूप

भगवती 'पूर्णाहन्ता' हैं इसीलिए वे सर्वरूप, सर्वाकार, सर्वमय, सर्वानुस्यूत, सर्वेश्वरी, विश्वमय एवं सृष्टिरूपा हैं और वे सब कुछ हैं–

1. एषा हि श्रेयसो मूलमेषा हि परमागतिः (1/37)
2. एषैव जगतां प्राणा एषैव जगतां क्रिया (1/38)
3. एषैव जगतामिच्छा ज्ञानमेषा परावरा। (1/39)
4. एतत्तु वैष्णवं धाम यतो नावर्तते यतिः।
5. एषा सा परमा निष्ठा सांख्यानां विदितात्मनाम्।। (1/41)
6. एषा सा योगिनां निष्ठा यत्र गत्वा न शोचति।
7. एषा पाशुपती निष्ठा सैषा वेदविदां गति।। (1/42)
8. पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य सैषा निष्ठा सनातनी।
9. सैषा नारायणी देवी स्थिता नारायणात्मना।। (1/43)
10. एकैवैषा परा देवी बहुधा समुपास्यते। (1/45)
11. जगतः संस्थितां देवीं जगतां मातरं परम्। (1/52)
12. सर्वावस्थागता देवी स्वात्मभूतानपायिनी।
13. अहन्ता ब्रह्मणस्तस्य साहमस्मि सनातनी।। (2/12)
14. अहन्ता सर्वभूतानामहमस्मि सनातनी। (2/13)
15. अपृथग्भूतशक्तित्वाद ब्रह्माद्वैतं तदुच्यते।
    तस्य या परमा शक्ति ज्योंत्स्नेव हिमदीधितेः।।(2/11)
16. तादात्म्यं विद्धि सम्बंध मम नाथस्य चोभयोः। (2/18)
17. निरुन्मेषे निरुन्मेषा साहन्ता पारमेश्वरी। (2/20)
18. ज्ञानाद्याः षड्गुणा एते षाड्गुण्यं मम तद्वपुः। (2/36)
19. आद्य रूप से मेरी अभिव्यक्ति 'वासुदेव' 'सङ्कर्षण' 'प्रद्युम्न' और 'अनिरुद्ध' इन चार रूपों में होती है।
    'तदाद्यं में चातुरात्म्यममूर्तिमत' (2/43)
20. *'संकर्षण' रूप से मैं प्रलय करती हूँ, शास्त्रोपदेश करती हूँ, 'प्रद्युम्न' रूप से मैं सृष्टि करती हूँ एवं शास्त्रों का प्रवर्तन करती हूँ, तथा अनिरुद्ध' के रूप में मैं जगत का पालन एवं शास्त्रार्थ के फलों का निर्वहन करती हूँ।'

21. *एक होकर भी भगवती कर्ता, कर्म एवं क्रिया के रूप में अपने को विभक्त करके विराट विश्व बन जाती है और विश्वमय हो जाती है
'विभजे बहुधात्मानं कर्तृकर्म क्रियादिना।। (3/36)
22. अहं नारायणी नाम भावोऽहं तादृशो हरेः।। (4/1)
तादृशस्य हरेर्विष्णोः स्वरूपमखिलात्मनः। (4/2)
'तदाकारा सर्वतः समतां गता। (4/3)
23. सिसृक्षा नाम तद्रूपा सृष्टिमिष्टां करोम्यहम्।। (4/5)
24. मम ज्ञान धनाद्रूपाच्छुद्धा सृष्टिः प्रवर्तते।। (4/7)
25. (भगवती निरपेक्ष स्वातंत्र्य शक्ति है।)
हेत्वान्तरानपेक्षंयत् स्वातंत्र्यं विश्वनिर्मितौ। (4/9)
26. मम रूप ममी देवाः पुरुषाः पुष्करेक्षणाः।। (4/11)
27. *वासुदेव को सिसृक्षा होने पर सृष्टि में सर्वप्रथम भगवती ही प्रकट होती है अतः वे सृष्टि का आदिरूप हैं—
'रूपं सिसृक्षमाणायां वासुदेवो ममादिमम्। (4/12)
28. *मैं महालक्ष्मी हूँ। रजोरूप से अधिष्ठित होकर मैं इच्छानुसार सृष्टि करती हूँ। मैं ही भद्रकाली आदि हूँ—
'महालक्ष्मीः समाख्याता साहं सर्वाङ्गसुन्दरी।
महाश्रीः सा महालक्ष्मीश्चण्डा चण्डी च चण्डिका।
भद्रकाली तथा भद्राकाली दुर्गा महेश्वरी।
त्रिगुणा भगवत्पत्नी तथा भगवती परा।। (4/39-40)
29. *"पुण्य-पाप, सुकर्म-कुकर्म करने वाली जो शक्ति है वही 'महालक्ष्मी' मैं हूँ—'महनीया च सर्वत्र महालक्ष्मीः प्रकीर्तिता।।
30. महत्वाच्च 'महामाया' 'भद्रकाली समाख्याता' 'मायाश्चर्य गुणात्मिका' 'योजनाच्चैव योगाहं योगमाया च कीर्तिता' 'मायायोगेति विज्ञेया।
31. पूर्णषाडगुण्य रूपत्वात् साहं भगवती स्मृता
'विशालत्वाच्च स्मृता व्योम, पूरणाच्च पुरी स्मृता 'शकनच्छक्ति-रूक्ताहं'

32. मत्तः प्रक्रियते विश्वं प्रकृतिः सास्मि कीर्तिता।
33. साहमेवं विद्या नित्या सर्वाकारा सनातनी (4/54)
34. 'गुणत्रय अधिठात्री' 'त्रिगुणा परिकीर्तिता'
35. या साहन्ता हरे राधा सर्वाकारा सनातनी।
शुद्धानन्दचिदाकारा सर्वतः समतां गता। (5/1)
36. साहं सिसृक्षया युक्ता स्वल्पाल्पेनात्म बिन्दुना।
सृष्टिं कृतवती शुद्धां पूर्ण षाड्गुण्य विग्रहाम्।। (5/2)
37. रजःप्रधाना तत्राहं महाश्रीः परमेश्वरी।
मदीयं यत्तमोरूपं महामायेति सा स्मृता।। (5/4)
38. मदीयं सत्वरूपं यन्महाविद्येति सा स्मृता।
39. 'प्रद्युम्न के अंश से मैं ब्रह्मा की सृष्टि करती हूं। (5/7)
40. पूर्णाहन्ता हरेराधा साहं सर्वेश्वरी परा। (6/34)

प्रश्न— 'विश्वाहन्ता' शक्ति और शक्तिमान का स्वधर्म है या कि साधक की साधना की अन्तिम निष्पत्ति? क्या 'विश्वमयता' और 'विश्वातीता' की (पारमात्मिक) अनुभूति परमात्मा और उसकी शक्ति को हो तो क्या फिर भी हम उसे 'विश्वाहन्ता' की आख्या दे सकते हैं? हां।

उत्तर— शङ्कर दर्शन 'विश्वाहन्ता' की दृष्टि स्वीकार करता ही नहीं क्योंकि उसकी दृष्टि में तो ब्रह्म के अतिरिक्त कोई सत्य है ही नहीं। और विश्व मिथ्या है। यदि विश्व मिथ्या है फिर 'विश्वमयता' या 'विश्वाहन्ता का विमर्श' या उसकी अनुभूति कैसी?

वेदान्त के निष्क्रिय एवं निर्गुण ब्रह्म के साथ तो शक्ति है ही नहीं वहां 'शक्ति' 'ब्रह्म' के साथ नित्य समवेत रूप में नहीं रहती। प्रथमतः तो 'शक्ति' है ही नहीं किन्तु यदि 'माया' के रूप में उसे स्वीकार कर भी लिया जाए तो वह नित्य एवं सत्य नहीं प्रत्युत् 'चतुष्कोटिविनिर्मुक्त' अनिर्वचनीय तत्व है जिसे न सत्य कहा जा सकता है और न असत्य। इन परिस्थितियों में वेदान्त की जड़ माया और ब्रह्म दोनों विश्वमयत्वं एवं विश्वाहन्ता की अनुभूति नहीं कर सकते। 'विश्वाहन्ता' की अनुभूति के लिए 'विश्व' और माया शक्ति को नित्य और सत्य मानना पड़ेगा।

*'**विश्वाहन्ता'**– '**विश्वाहन्ता शक्ति' और 'शक्तिमान'** या भगवती '**लक्ष्मी' और 'वासुदेव'** का सहज स्वभाव है किन्तु जीवों के लिए इस सहज स्वभाव को अपना स्वभाव बनाकर अपने **विश्वमयत्व एवं** अपने **विश्वाहन्ता** का साक्षात्कार करना उसका साधनात्मक आदर्श है।

पूर्णाहन्ता

↓

1	2	3	4
'मैं अनन्त विश्व हूँ'	'निखिल चित् अचित् तत्व मेरे स्वाङ्ग हैं।'	'मैं ही परा शक्ति हूँ'	'मैं ही वासुदेव हूँ'

5	6
विश्व ('इदम्' मेरे 'अहं' का विराट •स्कार है अतः मैं 'विश्वमय' हूँ किन्तु मैं उससे परे विश्वातीत भी हूँ।	(वेदान्त की पूर्णतमा अहन्ता में 'अहंब्रह्मास्मि' तो है किन्तु विश्वाहन्ता नहीं है क्योंकि वहां विश्व को मिथ्या माना गया है।)

'विश्वाहन्ता' का साक्षात्कार तभी संभव है जब विश्व को नित्य मान कर उसके साथ तादात्म्य स्थापित किया जाए। इसीलिए **'विरूपाक्ष पञ्चाशिका'** (त्रिकदर्शन का ग्रंथ) में कहा गया है कि–

'व्यक्तं हि पदार्थात्मकमिदं जगन्तित्यमेव तल्लग्नम्
शक्त्यात्मकमव्यक्तं तत्रैव पुनर्निमज्जति च।। (16)

परमात्मा 'विश्वशरीर' है, 'विश्वैकात्म्यावभासी' है–

'नमो विश्वशरीराय विश्वैकात्म्यावभासिने नित्यप्रत्यवमर्शाय शंभवे विश्वसिद्धये।।

विश्वैकात्म्य (विश्व के साथ एकात्मता या तद्रूपता की अनुभूति) विश्वाहन्ता के लिए आवश्यक है।

यह अहन्ता अपनी पूर्णता के लिए '**अहं**' के साथ भी तादात्म्य सम्बंध रखती है। विमर्शरूपी एवं स्वयं स्फुरित चितिशक्ति ही '**परावाक्**' है जो कि आद्यन्त वर्ण अ एवं ह अर्थात् 'अहं' के रूप में अनन्त सृष्टि के प्रत्येक कण में स्फुरित हो रही है और इस 'अहं' रूप में विश्वात्मक व्याप्ति को ही अहन्ता कहना समीचीन है—

प्रत्यवमर्शात्मासौ चितिः स्वरसवाहिनी परा वाग् या।
आद्यन्त प्रत्याहृत वर्णगणा-सत्यहन्ता सा ।। 9।।

स्वपरावभासनक्षम आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ।
अहमिति स एक उक्तोऽहन्ता स्थितिरीदृशी तस्य ।।10।।

और '**विश्वदेहत्व**' भी समीचीन है—

विषयशरीरेन्द्रियधी प्राणनिरोध प्रसिद्धयदस्मित्वाम्।
इत्थं चितिमखिलेऽध्वनि धारयतो विश्वदेहत्वम्।

यही '**विश्वोऽहं**' की अनुभूति '**वैश्वात्म्य**' कहलाती है—

'वैशात्म्यमाख्यातम्।। (वि.प. 50)'

यही कारण है कि—'**लक्ष्मी तंत्र**' में सर्वत्र वैश्वात्म्य-भावना व्यक्त की गई है और '**विश्व**' को शक्ति एवं शक्तिमान से अभिन्न दिखाया गया है—

1. 'विष्णुर्नारायणो विश्वो विश्वरूप इतीर्यते। (2/6)
2. 'क्रोडीकृतमिदं सर्वं चेतनाऽचेतनात्मकम्। (ल.तं. 2/4)
3. 'मत्तः प्रक्रियते विश्वं प्रकृतिः सास्मि कीर्तिता।। (ल.तं. 4/51)
4. जगत्तया लक्ष्यमाणा सा लक्ष्मीरिति गीयते। (अहि.सं. 3/9)
5. जगदाकारसंकोचात् स्मृता कुण्डलिनी बुधैः। (अहि.सं. 3/12)
6. स्वातंत्र्यरूपा सा विष्णोः प्रस्फुरत्ता जगन्मयी। (अहि.सं. 3/6)

(27) *'अहं' का स्वरूप—

1. 'अहं' —आत्मा के रूप में:
'अहं' नाम स्मृतोयोऽर्थ :
स आत्मा समुदीर्यते।।
—ल.तं.(2/3)

'अनवच्छिन्नरूपोऽहं परमात्मेति शब्द्यते।। क्रोडीकृतमिदं सर्व चेतनाऽ-चेतनात्मकम्ं — (2/4)

(1) वस्त्ववस्तु च तन्नास्ति यन्ना क्रान्तम हन्तया।
इदन्तया यदालीदमाक्रान्तं तदहन्तया (ल.तं. 2/7)
(2) ल.तं.(2/25) (3) ल.तं.

8. 'शक्ति' ही शिव की 'अहन्ता' है—'अहं' और 'पूर्णाहन्ता' काश्मीरीय शैव कहता है—

1. 'विश्वरूपोऽहमिद मित्यखण्डामर्श बृंहितः'
2. 'स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च यां'
3. 'सोऽहं ममायं विभवइत्येवं परिजानतः उत्पलदेव

—प्रत्यभिज्ञा कारिका

वैष्णवागम में कहा गया है—

1. 'अनस्तमितमारूपं सर्वाभिन्नमहंपदम्'

—लक्ष्मी तंत्र (20/4)

2. अहन्ता नाम सा शक्ति स्तभिन्नासदोदितां
अनस्तमित भारूपा वेद्यवेदकवर्जिता

—लक्ष्मी तंत्र (20/5)

3. तस्याहं परमा शक्तिरहन्ता श्रीरभेदिनी
सर्वाधारा सर्वशक्तिः सर्वज्ञा सर्वतोमुखी —ल.तं. (21/4)

भगवती लक्ष्मी कहती हैं—
'मेरा समुद्भव 'पराविष्णु' की अहन्ता से सिसृक्षा के वशीभूत होता है।'
'सिसृक्षा या परा विष्णोरहन्तायाः समुदगता।

***हरि की पूर्णाहन्ता और लक्ष्मी—** लक्ष्मी कहती हैं कि—हरि (विष्णु) की जो पूर्णाहन्ता है वही आद्या परा सर्वेश्वरी मैं हूं। 'पूर्णाहन्ता हरे राधा साहंसर्वेश्वरी परा।। (6/34)

(28) * मुक्ति और मुक्ति के भेद *

वैष्णवागम में 'मुक्ति' 'मोक्ष' 'निर्वाण' 'परमपद' 'वैष्णवधाम की प्राप्ति' आदि शब्दों को समानार्थक रूप में ग्रहण किया गया है। यहां मुख्यतः 'कर्मसाम्य' के उपरान्त (समस्त कर्मफलों का प्रणाश हो जाने से) प्राप्त होने वाली मुक्ति को ही मुक्ति माना गया है।

*मुक्ति के भेद

↓

1	2	3	4	5
'सालोक्य'	'सार्ष्टि'	'सामीप्य'	'सारूप्य'	'सायुज्य'

'मुक्ति चतुष्टय' के रूप में प्रथम चार को ही परिगणित किया गया है—

'सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यमित्यतः क्रमात्।
भोगरूपं च च सुखदमिति मुक्ति चतुष्टयम्।। [1]

भक्ति एवं दास्य को निर्वाणप्रद कहा गया है—

'निर्वाणमोक्षदं वत्स् कर्म-मूलनिकृन्तनम्।
निर्वाणमोक्षमेवेदं मोक्षविद्भिः प्रकीर्तितम्।। [2]

यथार्थमुक्ति— यदि वैष्णवागम को यथार्थ दृष्टि से देखा जाय तो यथार्थ मुक्ति का स्वरूप 'हरिचरणों में लीनता है—'लीनता हरिपादाब्जे मुक्ति :'

'लीनता हरिपादाब्जे मुक्तिरित्यमिधीयते।
इदमेव हि निर्वाणं वैष्णवानाम सम्मतम्।। [3]

'दास्य' और 'मुक्ति' को सारी मुक्तियों से श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि मुक्तियों को सुखप्रदायक भोग' भी कहा गया है—

'भोगरुपं च सुखदमिति मुक्तिचतुष्टयम्।। [4]

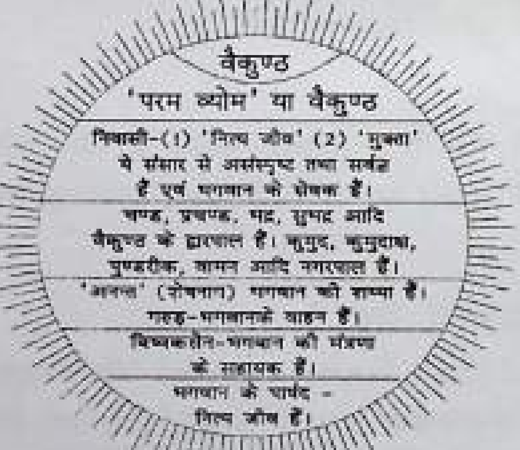

*** वैकुण्ठ का स्वरूप ***

लोकं वैकुण्ठ नामानं दिव्यं षाड्गुण्य संयुतम् अवैष्णावानाम प्राप्यं गुणात्रयविवर्जितम् नित्यमुक्तैः समाकीर्णतन्मयैः पाञ्चकालिकै :
सभा प्रमोद संयुक्तं वनैश्चोपननैः शुभैः।

---

(1) नारद पञ्चरात्र (2/7/3) (2) नारद पञ्चरात्र (2/7/6)
(3) नारद पं. (2/7/2) (4) ना.पं. (2/7/3)

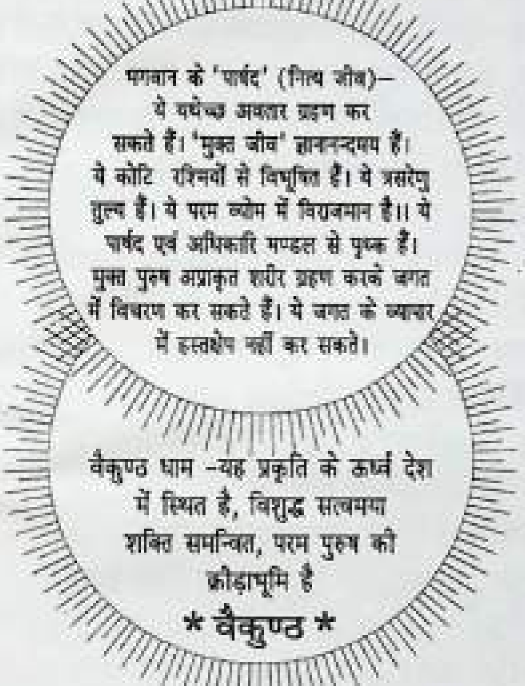

वापीकूपतडागैश्च वृक्षखण्डैश्च
मण्डितम्
अप्राकृत सत्वराशिं त्वां कदा
द्रक्ष्यामिचक्षुषा
क्रीडन्तंरमया सार्धं लीलाभूमिषु
केशव।

आचार्य रामानुज के गद्यत्रय के अन्दर 'वैकुण्ठ गद्य' है। उसमें वैकुण्ठ का रमणीय वर्णन है।

(29) *पाप-पुण्य एवं वासना के क्षय से मुक्ति—वैष्णवागम केवल भक्ति से ही नहीं प्रत्युत् ज्ञान साधना से भी मुक्ति की संभावना स्वीकार करता है। अनेक जन्म जन्मान्तरों में निष्पादित पाप-पुण्यों का जब परिश्रय हो जाता है और सम्यक् ज्ञान रूप शस्त्र से वासना-जाल को काट दिया जाता है तब वह ब्रह्म अनुभूतिगम्य बन जाता है—

अनेकजन्मसंसिद्ध पुण्यपाप परिक्षये।
निकृत्ते वासना जाले सम्यङ्विज्ञान शस्त्रतः।। (41) [1]

*त्रिगुणोपरति से ब्रह्म-साक्षात्कार—

जब त्रिगुण की उपरति हो जाती है (विनाश हो जाता है) तब ब्रह्म स्वयं अनुभवगम्य हो जाता है—

त्रैगुण्योपरमे तत्तु स्वेनानुभवितुं क्षमम्।
साक्षादिदमिति व्यक्तं वक्तुं न शक्तुमः।। (42) [2]

(1) अहिर्बुध्न्य संहिता (2) अहि. संहिता

(30) ***सामरस्यावस्था**— जहां दो एक हो जाते हैं—जहां द्वैत एवं अद्वैत दानों समरस हो जाते हैं—उसे ही '**सामरस्यावस्था**' कहते हैं। लक्ष्मी एवं विष्णु, शिव एवं शक्ति, प्रकृति एवं पुरुष, नर एवं नारी, द्रष्टा एवं दृश्य, ज्ञाता और ज्ञेय सभी में एकता का सम्यक् अनुसन्धान ही '**सामरस्य**' है। इस समय की अनुभूति निम्नांकित है।

नाहमस्मि न चान्योऽस्ति,
निराभासस्तदा भवेत्।
सावस्था परमा प्रोक्ता,
शिवस्य परमात्मनः।। (नेत्र तंत्र 8/39)
नाहमस्मि न चान्योऽस्ति,
ध्येयं चात्र न विद्यते।
आनन्दपदसंलीनं,
मनः समरसीगतम्।। (नेत्र तंत्र 8/40)

*मुक्तों का स्वरूप—मुक्तों के निम्न लक्षण हैं—

1. वे न तो आविर्भूत होते हैं।
2. न तो तिरोहित होते हैं।
3. अतः वे आविर्भाव - तिरोभाव से दूर रहते हैं।
4. वे संसाररूप अध्वा को अतिक्रान्त करके '**परम वैष्णव पद**' प्राप्त किए हुए होते है—

आविर्भाव तिरोभाव धर्मभेद विवर्जिताः।
परमं तेऽध्वनः पारं वैष्णवं पदमाश्रिताः।। (2)

ये काल के तरङ्ग से संकुल इस संसार रूप अध्वा में प्रवेश नहीं करते—

'विशन्ति नेममध्वानं कालकल्लोल संकुलम्।'

संसार में रहने वाले वे भक्त भगवान के जिस रूप की भक्ति करते हैं '**परमव्योम**' में निवास करने पर भी उसी रूप का साक्षात्कार करते हैं। वे **वहां कई करोड़ प्रलय पर्यन्त चिरकाल तक विहार करके फिर 'षाड्गुण्य' युक्त दिव्य यश में प्रविष्ट हो जाते हैं—**

'विहृत्य सुचिरं कालं कोटयोध्प्रतिसंचरम्।
ततो विशन्ति ते दिव्यं षाड्गुण्यं वैष्णवं यशः।। (3)

(1) अहि.सं. (अ.6/27-28) (2) अहि.सं.(6/28) (3) अहि.सं. (अ.6/30)

'परम व्योम' के विस्तार का वर्णन तो दस हजार वर्षों तक की सुदीर्घ 3 कालान्तराल में भी कर पाना सम्भव नहीं है—

नैव युतेनापि वक्तुं शक्योऽस्य विस्तरः।।'

उस 'परम व्योम' के नीचे के भाग में समस्त आत्माओं की समष्टि मधुमक्षिका के कोश के समान स्थित है। वहां विभूति का शुद्धाशुद्धमय भाव जिसमें पुरुष स्थित है वह अनादि वासना के रेणु से कुण्ठित आत्माओं से घिरा हुआ है।

नारद महादेव से पूछते हैं कि जिस मंत्र के कहने से प्राणियों को शाश्वतिक मुक्ति प्राप्त हो जाती है वह 'मंत्र' कौन सा है। महादेव उसके उतर में कहते हैं कि उसे दाहिने कान में सुनो किन्तु किसी अन्य से कहना मत। फिर वे कहते हैं कि वह मंत्र है—

'ॐ रां रामाय स्वाहा' (यह सप्ताक्षर मंत्र है)

***राधा की उपासना** —कार्तिक पूर्णिमा को राधा की अर्चना, पूजा और दर्शन, चाहे वह किसी भी स्थान पर किया जाए परम निर्वाणकारक होता है—

शिव चतुर्दशी को शिव की स्थापना करके पूजा करना और उस दिन व्रत रखना परम निर्वाण कारक है। मञ्च पर बैठे मधुसूदन के दर्शन मात्र से निर्वाण हो जाता है। इसी प्रकार वामन के दर्शन मात्र से 'निर्वाण' हो जाता है—

'रथस्थं वामनं चैव निर्वाणं दृष्टिमात्रतः।
कार्तिकी पूर्णिमायां च राधार्चा दृष्टि पूजनम्।
यत्र तत्र न नियमो परं निर्वणकारकम्।
परं शिवचतुर्दश्यां शिवं संस्थाप्य पूजनम्।
तद्दिनेऽनशनं विप्र परं निर्वाणकारणम्।
शुभाशुभं च यत्कर्म तत्तत्कर्म निकृन्तनम्।।

—नारद पंचरात्र (2/7/16-18)

***कृष्णभक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है—**

गङ्गायां च जले मुक्तिः क्षेत्रे नारायणे मुने।
ज्ञानतश्चेत् त्यजेत् प्राणान् कृष्णस्मरणपूर्वकम्
जले स्थले चान्तरिक्षे गंगासागर-संगमे। (3)

●●●

(1) अहि.सं. (अ.6) (2) ना.पं. (2/7/12-13) (3) नारद पञ्चरात्र (2/7/7)

(एक विहंगमावलोकन)

पञ्चदश अध्याय

वैष्णवागम की आधारभूत
श्रीश्रीमहालक्ष्मी देवी

अध्याय –पञ्चदश

वैष्णव तन्त्र और वैष्णव सम्प्रदाय

सारांशभूत एक विहंगमावलोकन

1. पञ्चरात्र
2. 'पञ्चरात्र' नामकरण का रहस्य
3. पञ्चविधरात्र- 369 उक्तरात्रों का वर्गीकरण
4. सप्तविध पञ्चरात्र-369 नारदीय पञ्चरात्र का वैशिष्ट्य
5. मंत्र, जप एवं योग का महत्व – 360 वैष्णवों का महत्व विष्णु की महिमा- दास्य भक्ति सर्वश्रेष्ठ है–
6. पञ्चरात्रानुसार मुक्ति के भेद
7. मोक्ष का सर्वोच्च साधन
8. पाद चतुष्टय
9. पञ्चरात्र ज्ञान का महत्व
10. 'पञ्चरात्रात्मक कृष्णमत वेदों का सार है
11. 'नारद पञ्चरात्र' एवं समस्त पञ्चरात्र दर्शन की विशेषतायें।
12. पञ्चरात्र के उपास्य
13. साधना के मार्ग
14. प्रपत्ति के लक्षण
15. प्रपत्ति के 6 अंग
16. वैष्णव
17. राधा का महत्व
18. कृष्ण भक्ति की महत्ता
19. हरिभक्ति और गुरु
20. वैष्णव सम्प्रदाय और उनके भेद–

    'श्रीसम्प्रदाय' और आचार्य रामानुज, 'ब्रह्मसम्प्रदाय' (माध्व सम्प्रदाय) और माधवाचार्य, 'महानुभव पंथ' 'वारकरी पंथ' 'रामदासी पन्थ' निम्बार्काचार्य और उनका 'सनक सम्प्रदाय' चैतन्य मत।।
21. अन्य वैष्णव सम्प्रदाय–

    'महापुरिया सम्प्रदाय' 'रामदासी', 'राधावल्लभीय'–'यट्टी', 'हरिदासी', 'सन्तमत'–'वारकरी'-'महानुभाव पंथ', उड़ीसा के वैष्णव कवि और उनके सम्प्रदाय।

....

अध्याय –पञ्चदश

वैष्णव तन्त्र और वैष्णव सम्प्रदाय सारांशभूत एक विहंगमावलोकन

1. ***पञ्चरात्र का स्वरूप**– महर्षि नारद कहते हैं कि मैं ब्रह्मा का पुत्र नारद परम गुरु भगवान शङ्कर से ज्ञानामृत पाकर दधिसमुद्रस्वरूप चारों वेदों को ज्ञानरूपी मथानी से अच्छी तरह से मथकर नया मक्खन निकालते हुए 'नारद पञ्चरात्र' का समारंभ (प्रणयन) कर रहा हूं–

'वेदेभ्यो दधिसिन्धुभ्यश्चतुर्भ्यः सुमनोहरम्।
तज्ज्ञानमन्थदण्डेन संनिर्मथ्य नवं नवम्।।
नवनीतं समुद्धृत्य नत्वा शंभोः पदाम्बुजम्।
विधिपुत्रो नारदोऽहं 'पञ्चरात्रं' समारभे।।' (1)

— इस कथन से सिद्ध होता है कि 'वैष्णवतन्त्र' ज्ञानसिन्धु एवं जगद्गुरु भगवान शङ्कर के 'ज्ञानामृत' से सुस्निग्ध एवं चारों वेदों के सारतम भाग से पवित्रीकृत एक दिव्य तान्त्रिक ग्रंथ है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यह इतना ही पुराना है जितना कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के मानसपुत्र नारद हैं। इतना ही नहीं स्वयं ब्रह्मा ने भी 'पञ्चरात्र तन्त्र' का उपदेश दिया है अतः यह सृष्टि का समारंभ करने वाले ब्रह्मा से भी प्राचीनतर है। व्यास जी इस तंत्र को वेदों का सार कहते हैं–

'श्रूयतां पञ्चरात्रं च वेदसारमभीप्सितम्'

वे इसे 'पञ्चसंवादात्मक' भी कहते हैं–

'पञ्चसंवादमिष्टं च भक्तानामभिवाञ्छितम्।'

स्पष्ट है कि 'वैष्णव तंत्र' वेदों के समान प्राचीनतम है, उसी का सारभाग है और 'पञ्चसंवादात्मक' है।

---

(1) नारद पञ्चरात्र (1/1/10-11)

प्राचीन काल में गोलोक के शतश्रृंग पर्वत पर, विरजा नदी के तट पर मनोहर वट के वृक्ष के नीचे भगवान श्री कृष्ण ने भगवती राधा के समक्ष इसे (पञ्चरात्र को) सुनाया था–

ब्रह्मा जी ने इसे भगवान शङ्कर को भी बताया। ब्रह्मा जी ने 'स्वर्ग की मन्दाकिनी के तट पर वट वृक्ष के नीचे बैठ भगवान से पञ्चरात्र-दर्शन के 'ज्ञानामृतं' का वर्णन किया।

भगवान शिव ने इस वैष्णतंत्र (पञ्चरात्र) को नारद को भी बताया –

'शुभश्च कथयामास स्वशिष्यंनारदं मुनिम्। (2)

2. *'पञ्चरात्र' नामकरण का रहस्य–'पञ्चरात्र' को 'पञ्चरात्र' क्यों कहा गया है?

–चूंकि पाञ्चरात्रिक वैष्णव तन्त्र पञ्चरात्रिक है और इसमें पञ्चरात्रात्मकता है अर्थात् इसमें पांच ज्ञान समाविष्ट हैं इसीलिए इसे 'पञ्चरात्र' कहते हैं। 'रात्र' का अर्थ है ज्ञान।
पञ्चरात्र में इन्हीं पांच रात्रों (ज्ञानों) का वर्णन है–

'रात्रं च ज्ञानवचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम्।
तेनेदं पञ्चरात्रं च प्रवदन्ति मनीषिण:।। (1)
'पञ्चरात्रमिदं शुद्धं भ्रमान्धध्वंससदीपकम्।। (2)

3. *पञ्चविध रात्र (रात्रं च ज्ञान वचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम्।)

↓

1	2	3	4	5
जन्म, वार्धक्य, मृत्यु का नाशक रात्र	मुमुक्षा-सहायक रात्र, मुक्तिप्रद रात्र	कृष्णभक्ति प्रदरात्र	यौगिक ज्ञानप्रद रात्र	सांसारिक, वैषयिक रात्र

1	2	3	4	5	6	7	8
अणिमा	लघिमा	व्याप्ति	प्रकाम्य	महिमा	ईशित्व	वशित्व	कामावसायिता

(2) ना.पं. (1/1/42) (1) ना.पं. (1/1/44) (2) ना.पं.(1/1/43)

9	10	11	12	13	14	15	16	
सर्वज्ञत्व	दूरश्रवण	परकाया प्रवेश	काय व्यूह	जीव-दान	परजीव हरण	सर्गकर्तृत्व शिल्प	सर्ग संहार	षोडशविध रात्र

*उक्त रात्रों का वर्गीकरण

↓

1	2	3	4
सात्विक ज्ञान	त्रिगुणातीत निर्गुण रात्र	राजसिक रात्र	तामसिक रात्र
प्रथम द्वितीय रात्र (ज्ञान)	तृतीय रात्र	चतुर्थ रात्र (भक्तों को अनभीष्ट रात्र)	पञ्चरात्र (विद्वानों को अनभीष्टरात्र) (3)

*'ज्ञान'— ज्ञान 5 प्रकार के हैं और इन्हें ही 'पञ्चरात्र' कहा गया है—

'ज्ञानं पञ्चविधं प्रोक्तं पञ्चरात्रं विदुर्बुधाः।। (4)

4. *सप्तविध पञ्चरात्र

1	2	3	4	5	6	7	
ब्राह्म पञ्च रात्र	शैव पञ्च रात्र	कौमार पञ्च रात्र	वसिष्ठ पञ्च रात्र	कापिल पञ्च रात्र	गौतमीय पञ्च रात्र	नारदीय पञ्च रात्र	'पञ्चरात्रं सप्तविधं नां ज्ञानदं परम्।। (5)

*'नारदीय पञ्चरात्र' का वैशिष्ट्य —

'पुण्यं च पाप विघ्नघ्नं भक्तिदास्यप्रदं हरेः।
सर्वस्वं वैष्णवानां च प्रियं प्राणाधिकं सुत।।
सारभूतं सर्वेषां वेदानां परमाद्भुतम्।
नारदीयं पञ्चरात्रं पुराणेषु सुदुर्लभं। (6)

---

(3) ना.पं. (4) ना.पं. (1/1/56) (5) ना.पं. (6) ना.पं. (1/1/61)

मंत्र, जप एवं योग का महत्व— इन तीनों में से तीनों ही एक ज्ञान का दान देते हैं—

'मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पते।
न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हरिः।। [1]

(5) ***वैष्णवों का महत्व**— पाञ्चरात्र मत में वैष्णव सर्वोच्च माने गए हैं अतः कहा गया है कि—

बहुना किमिहोक्तेन वैष्णवानां तु दर्शनात्।
निर्मलाः पापरहिताः पापिनः स्युर्न संशयः।। —ना.पं.

1. वैष्णवे संगतिः कार्या वैष्णवे च सदा रतिः। [2]
2. भक्तप्राणो हि कृष्णश्च कृष्णप्राण हि वैष्णवाः।
ध्यायन्ते वैष्णवाः कृष्णं कृष्णश्च वैष्णवांस्तथा।। [3]
3. भक्तस्य पादरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा।।
नहिश्तस्त्रिभुवने श्री कृष्ण सेवकात् परः।। [4]

विष्णु की महिमा—

पाञ्चरात्र मत में विष्णु और वासुदेव परमोपास्म है अतः विष्णु की महिमा इस प्रकार मानी गई है—

नास्ति विष्णोः परं सत्यं, नास्ति विष्णोः परपदम्।
नास्ति विष्णोः परं ज्ञानं नास्ति मोक्षो ह्यवैष्णवः।। [5]

'दास्य भक्ति' सर्वश्रेष्ठ है। यह मुक्ति से भी श्रेष्ठतर है। इसी उपर्युक्त दृष्टि को ध्यान में रखकर कहा गया है कि—

श्रीहरेर्भक्तिर्दास्यं च सर्वमुक्तेः परं मुने।
वैष्णवानामभिमतं सारात्सारं परात्परम्।।

(नारद पञ्चरात्र2/7/4))

---

(1) ना.पं. (5/10/41) (2) ना.पं. (5/9/16) (3) ना. पं (1/2/36)
(4) ना. पं. (1/2/23) (5) ना.पं. (4/3/199)

(6) *पाञ्चरात्रानुसार मुक्ति के भेद–

↓

1	2	3	4	
सालोक्य	सार्ष्टि	सामीप्य	सारूप्य	सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्य मित्यतः क्रमात्। भोगरूप च सुखवर्दमिति मुक्ति चतुष्टयम्।। —ना.पं.

(7) *मोक्ष का सर्वोच्च साधन —

पाञ्चरात्र मत में भक्ति से बढ़कर अन्य कोई भी मोक्ष का श्रेष्ठतम साधन नहीं है–

'हरिभक्तेः परा नास्ति मोक्षश्रेणी नगेन्द्रजे।

और वैष्णव से अधिक भगवान को कोई प्रिय भी नहीं है।

वैष्णवेभ्यः परं नास्ति प्राणोभ्योऽपि प्रियो मम।।

(ना.पं. 4/8/172)

(8) *पादचतुष्टय —

पाञ्चरात्र दर्शन के समस्त **प्रतिपाद्यविष्य चार पादों में विभाजित है–वेदमंत्रों की ग्राह्यता–**

'श्री सूक्त' एवं 'पुरुष सूक्त' दोनों वेदों के स्तोत्रात्मक मंत्र हैं। इनका **'अहि. सं.', 'लक्ष्मी तंत्र'** आदि में **सर्वाधिक महत्व** बताया गया है। **'चातुरात्म्य' 'अंशांशिवाद' पाञ्चकालिक पूजा' सांख्य, योग, वेदान्त आदि के प्रति निष्ठा** आदि विशेषताएं वैष्णवतंत्र की प्रधान विशेषताएं हैं।

(9) *पाञ्चरात्र ज्ञान का महत्व —

इसे जान लेने पर अन्य शास्त्रों की स्पृहा नहीं रह जाती। यह समस्त अर्थों के ज्ञान का मूल कारण, अज्ञानरूपी अंधकार के लिए दीपक, वेदों का सार एवं सर्वाभीष्ट है। (1) जिस प्रकार अमृत पीने वाले

(1) सर्वार्थज्ञानबीजं चाप्य ज्ञानान्धप्रदीपकम्।
वेदसारोद्धृतं तत्त्वं सर्वेषां समभीप्सितम्।। (ना.पं. 1/1/83)

को अन्य वस्तु की अभिलाषा नहीं होती उसी प्रकार पञ्चरात्र को जान लेने के बाद अन्य वस्तु की स्पृहा नहीं रह जाती। [2]

(10) ***पाञ्चरात्रात्मक कृष्णमत वेदों का सार है—**

'वेदसारं कृष्णमतं ममापि नहि कल्पना।
अन्तर्बहिर्यदि हरियेषां पुंसां महात्मनाम्।। [3]

(11) ***नारदपञ्चरात्र एवं समस्त पाञ्चरात्र दर्शन की विशेषता— बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त आदि तांत्रिक सम्प्रदायों ने वेदों को 'वेश्या' तक कहकर उसे अपमानित किया किन्तु वैष्णवागम वेदों को सर्वोच्च प्रमाण मानता है और अपने को** उसी की सन्तान या सारांश स्वीकार करता है—

शाक्त सम्प्रदाय में **'समयाचार मत' 'श्रीविद्या' 'त्रिपुरामत'** हयग्रीव का **'शक्तदर्शनम्'** और अगस्त्य का **'शक्ति सूत्र'** आदि तांत्रिक मत एवं पुस्तकें भी वेदों को अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखती है।

(12) ***पाञ्चरात्र के उपास्य—** पाञ्चरात्रिकों के मुख्य उपास्य देवता (1) **'विष्णु'** (2) **'लक्ष्मी'** (3) **'श्री कृष्ण'** (4) **'राधा'** हैं और इसके साथ ही इनके अवतार—(1)**'व्यूह'** (2)**'विभव'** (3)**'अर्चावतार'** एवं (4)**'अन्तर्यामी'** भी पूज्य एवं उपास्य है। प्रधानतया तो इसमें **'लक्ष्मी'**, **'लक्ष्मीनारायण'**, **'वासुदेव'** एवं **'भगवती राधा'** ही परमोपास्य देवता के रूप में स्वीकृत है।

(13) ***साधना के मार्ग— पाञ्चरात्रिक दर्शन पांच प्रकार के ज्ञान** स्वीकार करने के कारण—(1)**'ज्ञान'** (2)**'भक्ति'** (3)**'कर्म'** एवं (4) **'योग'**—इन चारों साधना-मार्गों में विश्वास रखता है। किन्तु (1) **'भक्ति'** (2)**'दास्य'** एवं (3) **'प्रपत्ति'** (न्यास) :

---

(2) यथा निपीय पीयूषं च स्पृहा चान्यवस्तुषु।
पञ्चरात्रमभिज्ञाय नान्येषु च स्पृहासताम्।। (ना.पं.1/1/82)

(3) नारद पञ्चरात्र (1/2/31)

'शरणागति योग' में सर्वाधिक विश्वास रखता है। इसीलिए कहा गया है कि —

(क) सर्वोच्च ज्ञान कृष्णभक्तिप्रदाता ज्ञान है—
'स पिता ज्ञानदाता यो, ज्ञानं तत् कृष्णभक्तिदम्।। [1]

(ख) सर्वोच्च भक्ति कृष्णपदारविन्द की सेवा एवं दास्य है—
'सा भक्तिः परमा शुद्धा कृष्णदास्यप्रदा च या।। [2]
सर्वोच्च भक्ति प्राप्त करने का साधन 'प्रपत्तियोग' है जो षड्विध है—

(14) ***प्रपत्ति के लक्षण**—प्रपत्ति का लक्षण निम्नाङ्कित दीन भावना है—
'अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगतिः।
त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थनामतिः।
शरणागतिरित्युक्ता सा देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम्।। [3]

(15) ***प्रपत्ति के 6 अङ्ग**

↓

1	2	3	4	5	6
आनुकूल्यस्य संकल्पः	प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्	रक्षिष्यतीति विश्वासो	गोप्तृत्व वरणं तथा	आत्म निक्षेप	'कार्पण्ये'

—षड्विविधा शरणागतिः।। [4]

(16) ***'वैष्णव'**—
'वैष्णव तंत्र' एवं 'वैष्णव सम्प्रदाय' शब्दों में प्रयुक्त विष्णु शब्द पाञ्चरात्रिक मत विष्णुपरायणता का सूचक है।

विष्णु का अर्थ— 'अहिर्बुध्न्य संहिता' (54/25-26) में **'विष्णु'** शब्द

---

(1) नारद पञ्चरात्र (1/1/18) (2) नारद पञ्चरात्र (1/1/18)
(3) अहिर्बुध्न्य संहिता (37/30-31) (4) अहि. सं. (37/27-28)

की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

विविनक्ति जगत्यस्मिन् सच्चासच्च विचेष्टते। 15।
वेवेष्टि निखिलान् भोगान यच्छति प्राणिनां स्वयंम्।
आयत्तैः सकलैर्जीवैः प्रणीत्यन्तः स्वरात्मना।
इति शब्दार्थतत्त्वज्ञा विष्णुं देवं प्रचक्षते।।'

(17) ***'राधा' का महत्व —**
पाञ्चरात्र मत के अनुसार 'रा' शब्द के उच्चारण मात्र से भक्त मुक्ति और भक्ति तथा 'धा' शब्द के उच्चारण से हरिपद प्राप्त कर लेता है—
'रा' शब्दोच्चारणाद्भक्तो भक्तिं मुक्तिं च राति सः।
'धा' शब्दोच्चारणेनैव धावत्येव हरेः पदम्।।

(18) ***कृष्णभक्ति की महत्ता**— कृष्णभक्ति से रहित द्विज अधम चाण्डाल से भी निकृष्ट है—
'कृष्णभक्ति विहीनेभ्यो द्विजेभ्यो:श्वपचो महान।'

ब्राह्मणों का धर्म — निरन्तर कृष्ण सेवन ही ब्राह्मण धर्म है—
'ब्राह्मणानां स्वर्धश्च सन्ततं कृष्णसेवनम् च.'।

(19) ***हरिभक्ति और गुरु**— हरिभक्ति ही सुदृढ़ नौका है और गुरु ही परब्रह्म एवं कर्णधार है —
'सुपक्वा हरिभक्तिश्च तरणी भवतारणे।
गुरुरेव परं ब्रह्म कर्णधार स्वरूपकः।। (1)

(20) ***वैष्णव सम्प्रदाय और उनके भेद**— दक्षिण भारत के द्वादश आलवार सन्त 'वैष्णव' थे। दक्षिण भारत के वैष्णव सम्प्रदायों में आचार्य रामानुज का 'श्री वैष्णव सम्प्रदाय' प्रमुख है। इस काल (भक्ति विकास के द्वितीय चरण के काल) में तिरुमडिसै आलवार, शठकोप नामालवार, कुलशेखर आलवार, विष्णुचित्त, परिया आलवार, गोदा

---

(1) नारद पञ्चरात्र(1/2/47)

अण्डाल, विप्रनरायण, मुनि वाहन, नीलन्, रङ्गनाथ मुनि, यामुनाचार्य आदि प्रसिद्ध वैष्णव भक्त एवं वैष्ण आचार्य हुए हैं।

'माध्व सम्प्रदाय' की दृष्टि से मध्वाचार्य, जयतीर्थ व्यासराय एवं कर्नाटक के दासकूट—पुरन्दर दास, कनकदास व्यासराय आदि प्रख्यात वैष्णव सन्त हुए।

यदि हम महाराष्ट्र के वैष्णव सम्प्रदायों पर दृष्टि डालें तो—

1. 'महानुव-पन्थ' एवं गोविन्द प्रभु, श्री चक्रधर, आदि प्रसिद्ध हैं।
2. वारकरी पन्थ और ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि वैष्णव सन्त प्रख्यात है।
3. इसी प्रकार रामदासी पन्थ एवं 'गुजराती वैष्णव पन्थ' भी प्रख्यात हैं। नरसी मेहता इस पन्थ के प्रधान कवि है। नरसी मेहता कहते हैं कि भूतल पर स्थित भक्ति पदार्थ ब्रह्मलोक में भी नहीं है। भक्ति अलभ्य पदार्थ है—

'भूतल भक्ति पदारथ मोटुं, ब्रम्हलोक मां नाही रे।।'

हरि-भक्ति मुलिन मांगकर बार-बार जन्म ही मांगते हैं जिससे कि वे भगवान की नित्य सेवा कर सकें तथा नित्य कीर्तन एवं उत्सव में नन्द कुमार के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करते रहे।

'हरि ना जन तो मुक्ति न मांगे मांगे जन्मोजन्म अवतार रे।
नित सेवा नित कीर्तन ओच्छव, नीरखवा नन्द कुमार रे।।'

गुजरात के स्वामी नारायण पंथ के वैष्णव भी भगवान नारायण को अपना उपास्य एवं भक्ति को श्रेष्ठतमा मुक्ति साधन मानते हैं।

भक्ति-विकास के तृतीय चरण में 'रामावत सम्प्रदाय' एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय हुआ। इसमें आचार्य रामानन्द सेननाई, पीपाजी, सन्तरैदास कबीर, कृष्णदास पयहारी, कील्हदास, चेतनदास, तुलसीदास आदि प्रख्यात वैष्णव व भक्त हुए।

यदि हम निम्बार्क सम्प्रदाय पर दृष्टिपात करें तो कृष्णोपासक निम्बार्काचार्य और पुरुषोत्तमाचार्य, हरिव्यास जी, परशुरामाचार्य स्वामी हरिदास आदि प्रसिद्ध वैष्णव सन्त हुए।

यदि हम कृष्णोपादक **'वल्लभ सम्प्रदाय'** एवं उसके उपासक **वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, सूरदास, परमानन्दास, कुंभनदास, कृष्णदास, नन्ददास, छीत स्वामी, गोविन्दस्वामी** एवं **चतुर्भजदास** आदि प्रसिद्ध वैष्णव सन्त हुए और उन्होंने अमूल्य वैष्णव साहित्य का निर्माण किया।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय भी वैष्णवसम्प्रदायों में से एक है। **हित हरिवंश जी, व्यास जी, ध्रुवदास** आदि इस सम्प्रदाय के प्रधान सन्त एवं विद्वान भक्त हैं। यदि **पूर्वी भारत के वैष्णव आन्दोलन** पर दृष्टिपात करें तो **'सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय'** एवं **चैतन्यमत प्रधान है** एवं **उसमें महाप्रभु चैतन्य माधवेन्द्रपुरी, ईश्वरपुरी, केशवभारती** आदि प्रधान वैष्णव भक्त हुए हैं।

षट्गोस्वामी भी यथेष्टरूप से प्रख्यात हैं। **रूपगोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी रघुनाथ भट्ट, गोपालभट्ट,जीव गोस्वामी** एवं **श्री कृष्णदास कविराज** प्रख्यात वैष्णव कृष्ण भक्त हुए हैं।

उत्कल प्रदेश में भी वैष्णवोपासना का सम्प्रदाय था। इसमें जनन्नाथ-**सम्प्रदाय** एवं **पञ्चसखा सम्प्रदाय** एवं **श्री जगन्नाथ की उपासना प्रमुख** है। यदि हम **आसाम के वैष्णवों** पर **दृष्टि** डालें तो उनमें **शङ्कर देव, माधवदेव** आदि प्रसिद्ध सन्त हुए हैं।

*स्थूल दृष्ट्या वैष्णव सम्प्रदाय के निम्नप्रख्यात सम्प्रदाय हुए—

↓

1	2	3	4	5
आचार्य श्रीरामानुज (विशिष्टाद्वैतवाद) **श्री सम्प्रदाय** 1037–1137	निम्बार्काचार्य द्वैताद्वैतवाद **सनक सम्प्रदाय** 11रहवीं सदी	मध्वाचार्य द्वैतवाद **ब्रह्म सम्प्रदाय** 1199–1203	वल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवाद रुद्र **सम्प्रदाय** 11वींशताब्दी	महाप्रभुचैतन्य अचिन्त्यभेदा भेदवाद : **गौड़ीय सम्प्रदाय** भेदाभेवाद 1485–1533
लक्ष्मी नारायण श्री विष्णु	श्रीचक्र	विष्णु	श्रीकृष्ण	श्रीकृष्ण

*अन्य वैष्णव सम्प्रदाय

↓

1	2	3	4	5
महापुरुषिया सम्प्रदाय	रामदासी सम्प्रदाय	उद्धवि सहजानन्द	राधावल्लभीय सम्प्रदाय हितहरिवंश	टट्टी सम्प्रदाय हरिदास
1449-1568	1608-1681	1781-1829	1585 ई.	16हवीं सदी
शङ्कर	रामदास			

*सगुण निर्गुण भक्ति प्रधान वैष्णवमत

↓

1	2	3	4	5
हरिदासी	सन्त सम्प्रदाय कबीर, नानक आदि सन्त	वारकरी सम्प्रदाय	महानुभाव पंथ	उड़ीसा के वैष्णवकवि
13हवीं शताब्दी	15हवीं सदी	13वीं सदी	11वीं सदी	प्रथम सदी से

****

श्रीहरिवाक्यसुधासिन्धोः । कृष्णवल्लभाचार्येण विरचितम् ब्रह्मरसायन भाष्यस्य प्रथमखण्डे **प्रथम भागस्य** १-४६, तरङ्गाणांकनीनिका, सूत्राणि, उपनिषन्नामानि च १००.०० प्रथमखण्डे **द्वितीयभागस्य** ४७ से ७८ तरंग १००.०० सारङ्गपुर-कारियाणी-लोयापञ्चालानां समूहित वचनामृतानां ससूत्रं ब्रह्मरसायनभाष्यम्। ७९ से १३३ तरंग द्वितीय भाग १२५.००, तरंग १३४ से २०० तृतीय भाग १७५.००, चतुर्थ प्रकरणात्मकस्य भागस्य २०१ से २६२ तरंग

व्यञ्जनाप्रपञ्चसमीक्षा । (तुलनात्मक प्रतीकतत्वविमर्शः) मुकुन्द माधव शर्मा

आचार्य भास्कर (भास्कराचार्य एक अध्ययन)। (ज्योतिष) रामजन्म मिश्र

प्राचीनराजशास्त्रार्थशास्त्रयोर्वैज्ञानिकमध्ययनम् । (प्राचीन राज्यशास्त्र) सत्यनारायण मिश्रः

परिभाषेन्दुशेखरः (व्याकरण)। नागेशभट्ट विरचितः, श्रीनारायण मिश्र कृत परिभाषा प्रकाशख्य हिन्दी व्याख्या

वी. राघवन अभिनन्द ग्रन्थः । (सचित्र) प्रधान सम्पादक वी. सुब्रह्मण्यम् शास्त्री

वैयाकरणभूषणसारः । श्रीकौण्ड भट्टकृत। दर्पण व्याख्या तथा हिन्दी भाष्योपेतः। व्याख्याकार ब्रह्मदत्त द्विवेदी

वृषभानुजानाटिका । श्रीमथुरादास विरचिता। 'हेमसुन्दरी' हिन्दी व्याख्या। व्याख्याकार कपिलदेव गिरि

पारस्करगृह्यसूत्रम् । (सम्पूर्ण) श्रीवेणीराम शर्मा गौडेन कृता 'विवृतिः' समाख्ययाटीकयासमन्वितम् अथ च 'मूलशान्ति'-'यमलजननशान्ति'-'पृष्टोदिवि'-पिरिशिष्टादि समलङ्कृतम्। विवृतिकारः श्रीवेणीरामशर्मागौडः

रसगङ्गाधरः (अलङ्कार)। पण्डितराज जगन्नाथ। मर्मप्रकाशिका सं. टी. एवं हिन्दी व्याख्या सं. डॉ. महाप्रभुलाल गोस्वामी। प्रथमाननपर्यन्त प्रथमभाग

अर्थसंग्रहः । श्रीलौगाक्षिभास्करप्रणीतः 'किरणावली' संस्कृत व्याख्यादि। श्रीकृष्णवल्लभाचार्य स्वामिनारायण विरचिता

वेदसमुल्लासः (दिल्लीविश्वविद्यालयसंस्कृत एम.ए. पाठ्यक्रम निर्धारिता वेदमन्त्राः)। सम्पादकौ सत्यभूषणयोगी, (श्रीमती) वन्दितामधुहासिनी (योगी) अरोड़ा

वेदान्तसारः। अनुवाद, विवेक व्याख्या, रामतीर्थकृत विद्वन्मनोरञ्जनी एवं पारिभाषिक शब्द परिचय आदि सहित।
प्रो. राममूर्ति शर्मा सजिल्द २००.०० अजिल्द

अद्वैत वेदान्त (इतिहास तथा सिद्धान्त)। डॉ. राममूर्ति शर्मा

भारतीय दर्शन की चिन्तनधारा। डॉ. राममूर्ति शर्मा

कालिदास की कृतियों पर मल्लिनाथ की टीकाओं का विमर्श। डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी

भारतीय न्याय शास्त्र (एक अध्ययन)-परमहंस स्वामी अनन्त भारती (डॉ० ब्रह्ममित्र अवस्थी)

पातञ्जलयोगशास्त्र (एक अध्ययन)-परमहंस स्वामी अनन्त भारती (डॉ० ब्रह्ममित्र अवस्थी)

उपदेशसाहस्री। श्रीमच्छङ्कराचार्य प्रणीता। गद्यापद्योमय-भागात्मिका। पदयोजनिकाख्यया श्रीभद्रामतीर्थविरचित व्याख्यया संवलिता, हिन्दी अनुवादक श्री बी.डी. कौशिक (मौनीबाबा)

३. चौखम्भा राजमाता ग्रन्थमाला

तैत्तिरीयोपनिषद्। समूलशाङ्करभाष्य एवं 'ज्योति' हिन्दी टीका सहित। व्याख्याकार श्री कन्हैयालाल जोशी

छन्दःशास्त्रम्। श्रीपिङ्गलाचार्यविरचितं। श्रीहलायुधभट्ट-विरचितयामृतसंजीवन्याख्यया वृत्त्या समेतम्, पं. श्री मधुसूदन-विद्यावाचस्पतिरचितछन्दो निरुक्तिसनाथीकृत च। म.म.पं. श्री दुर्गाप्रसाद तनयेन पं. केदारनाथेन संशोधितम् तच्च वि. अनन्तशर्मणा विशल्यकरणी नाम्न्याटिप्पण्यासमलङ्कृत्य संस्कृतम्

मृच्छकटिकम्। महाकवि शुद्रकप्रणीतं।
पृथ्वीधरकृत व्याख्यासहित

रघुवंशम्। महाकविकालिदासविरचितं मल्लिनाथकृत संजीविनीसमेतम्। काशीनाथ-पाण्डुरङ्गपर्व इत्यनेन पाठान्तरैः संयोज्य संशोधितम्

सरस्वतीकण्ठाभरणम्। (अलङ्कारशास्त्रम्) भोजकृत। १-३ परिच्छेद तक रामसिंह विरचित टीका तथा ४ परिच्छेद को जगद्धररचित टीका सहित

रूपदीपिका। महामहोपाध्याय पण्डित विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदिनः प्रपौत्रेण रामानन्द द्विवेदिन विरचिता

वेणीसंहारम्। भट्टनारायणप्रणीतं। जगद्धरकृतया टिप्पण्या समेतम् उपोद्धात-शेषराज शर्मा

उत्तररामचरितम् भवभूति प्रणीतं। श्री वाधूल वीर राघव विरचितया भवभूति भावतल स्पर्शिनी समाख्यया व्याख्यया समेतम्। उपोद्धात: आचार्य शेषराज शर्मा, भूमिका डॉ. सुधाकर मालवीय

अष्टाविंशत्युपरिषदत्संग्रह। मूलमात्र

उत्तरगीता। गौडपादीया दीपिका सहिता (१ से ३ अध्याय)। बाक्रेइत्युपाह्वगङ्गाधरभट्टसूनुना महादेवशर्मणा

वृत्तरत्नाकर:। केदारभट्टविरचितो। श्री बौद्धागम चक्रवर्ति-रामचन्द्रकविभारतिविरचितया। वृत्तरत्नाकर पञ्चिकाख्यया व्याख्यया समलङ्कृत:। आचार्य श्री शैलस्कन्धमहास्थविखरेण संशोधित: संस्कृतश्च

न्यायलीलावती। श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता। इयं मङ्गेशरामकृष्ण तेलङ्ग

न्यायबिन्दु:। श्रीमत्तत्सदुपाख्यवैद्यनाथभट्ट प्रणीत:। (पूर्वमीमांसाधिकरणार्थसंग्राहकोग्रन्थ:) पाठको पाह्वपण्डितमदन-मोहनकृतटिप्पनीसहित:। बाक्रेइत्यु पाह्वगङ्गाधरभट्टसुतमहादेवशर्मणा संशोधित:

तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यम्। श्रीमच्छंकराचार्यकृतं। श्रीमदानन्दगिरि-शंकरानन्द-विद्यारण्यकृत-टिप्पण-दीपिका तैत्तिरीयकविद्याप्रकाश सहितम्। दिनकर विष्णु गोखले

अमरुशतकम्। श्रीअमरुककविविरिचतम्। अर्जुनवर्म देवप्रणीतया रसिकसंजीविनीसमाख्य व्याख्यया परिशिष्टैश्च समुल्लसितम्। नारायण राम आचार्य

उन्मत्तराघवम्। श्रीभास्करकविविरचितं। जयपुरमहाराजाश्रितेन पण्डितव्रजलालसूनुनामहामहोपाध्याय पण्डित दुर्गाप्रसादेन, परबोपाह्वपाण्डुरङ्गात्मजकाशिनाथशर्मणा च संशोधितम् स च पणशीकरोपाह्वलक्ष्मणशर्मात्मजवासुदेवशर्मणा च संस्कृतम्।

सूर्यशतकम्। श्रीमयूरकविविरचितं। त्रिभुवनपालप्रणीतया व्याख्ययासनाथीकृतम्। नारायण राम आचार्य

पञ्चीकरणम्। श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यवर्यप्रणीतं। (१) श्री सुरेश्वराचार्यकृतं 'वार्तिकं' (२) नारायणेन्द्रसरस्वतीकृतं 'वार्तिकाभरणं' (३) आनन्दगिरिकृतं 'विवरणं' (४) श्रीरामतीर्थकृता 'तत्वचन्द्रिका' (५) श्रीशान्त्यानन्दसरस्वतीकृतं 'अद्वैतागमहृदयं' (६) यतिवरगंगाधकृता 'पञ्चीकरणचन्द्रिका' इति षट्टीकालङ्कृतम्। संस्कृत्यालङ्कर्ता 'साधले' इत्युपाभिख्यः शम्भुसूनुर्गजाननः।

चम्पूभारतम्। श्रीमदनन्तकविकुञ्जरविरचितं। श्रीखण्डोपाह्वबाजी-रायात्मजनारायणसूरिविरचित टीका सनाथम्। मेहेंदळे इत्युपाह्व महादेवसुतगणेशेन संशोधितं टिप्पण्यां संयोजितं च

श्रीमद्वाजसनेयिमाध्यन्दिनशुक्लयजुर्वेदसंहिता। महामहोपाध्याय सर्वतन्त्रस्वतन्त्रप्रतिभश्रीमदुवटाचार्य विरचित मन्त्रभाष्येण श्रीमन्महीधरकृत वेददीपाख्यभाष्येण च संवलिता। (विविध परिशिष्ट-मन्त्रकोशसहिता च) पणशीकरोपाह्वविद्वद्वर लक्ष्मणशर्मतनुजनुषा वासुदेवशर्मणा विद्वत्साहाय्येन संशोधिता।

४. काशी स्त्रोत्र ग्रन्थमाला

आदित्यहृदय स्तोत्र – हिन्दी टीका सहित

ललितासहस्त्रनामस्तोत्र-नामावली सहित

चण्डीपाठ विधि। पं. सूर्यनारायण उपाध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता (मूलमात्र)

अथ सत्यनारायण पूजा कथा। (मूलमात्र)
पं. सूर्यनारायण उपाध्याय

शुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी। (मूलमात्र)
पं. सूर्यनारायण उपाध्याय

श्री रेणुका सहस्त्रनाम रेणुकाकवचं च।
पं. सूर्यनारायण उपाध्याय

त्रैलोक्य मोहन कवचम्। पं. सूर्य नारायण उपाध्याय

प्रत्यंगिरा विपरीत प्रत्यंगिरा सहित। पं. सूर्यनारायण उपाध्याय

अथाशौचनिर्णयः त्रंबकीयः। पं. सूर्यनारायण उपाध्याय

ललितास्तवनवमणि माला। पं. सूर्यनारायण उपाध्याय

27325